साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष-छवि

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
पीएच. डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

1985

प्रस्तुतकर्त्री

रीता श्रीवास्तव, एम. फिल.

निर्देशक

डॉ. शशि मुदीराज
लेक्चरर, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद—500001

अध्यक्ष

डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह
रीडर, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद—500001

डा· शशि मुदीराज
लेक्चरर,
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
नामपल्ली स्टेशन रोड
हैदराबाद – 500 001·

प्रमाण – पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि " साठोत्तरी महिला-उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष छवि " नामक यह शोध प्रबंध पी·एच·डी· की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया सुश्री रीता श्रीवास्तव का मौलिक कार्य है । रीता श्रीवास्तव अपने आचरण और चरित्र से पी·एच·डी· की उपाधि के सर्वथा उपयुक्त है । यह शोध प्रबंध उन्होंने मेरे निर्देशन में तैयार किया है ।

(डा· शशि मुदिराज)

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

0· प्राक्कथन 1 - 9

0·1 प्रस्तुत अध्ययन का औचित्य

0·2 प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र

0·3 प्रस्तुत अध्ययन की योजना

अध्याय - एक

नारी मानस संरचना 10-62

1·11 जैविक सन्दर्भ 10-18

1·12 मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ 18-26

1·13 आर्थिक सन्दर्भ 26-34

1·14 सामाजिक सन्दर्भ 34-39

1·15 निष्कर्ष 39-40

1·2 सामाजिक विकास-क्रम में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण 41-62

1·2·1 आदिम सहयोगी सम्बन्ध 41-45

1·2·2 शोषक-शोषित सम्बन्ध 45-55

1·2·3 मानवीय सम्बन्ध 55-59

1·3 निष्कर्ष 59-62

अध्याय - दो

2· नारी : अस्मिता की खोज 63-113

2·1 नारी मुक्ति का पहला आयाम : भारतीय नवजागरण 63-74

2·2 नारी मुक्ति और राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन 74-86

पृष्ठ संख्या

2·3	नारी अस्मिता की खोज : लेखन के माध्यम से	86-98
2·4	साठ-पूर्व महिला उपन्यासकार पुरुष-छवि के विशेष सन्दर्भ में	98-103
2·4·1	आरम्भिक काल	103-104
2·4·1·1	आदर्श पुरुष चरित्र	104·
2·4·1·2	यथार्थ पुरुष चरित्र	104-105
2·4·1·3	यथार्थोन्मुख आदर्शवादी पुरुष चरित्र	105·
2·4·1·4	पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुष चरित्र	105·
2·4·2	विकास-काल	106·
2·4·2·1	आदर्श पुरुष चरित्र	106-107·
2·4·2·2	यथार्थ पुरुष चरित्र	107-109
2·4·2·3	आदर्शोन्मुख यथार्थ पुरुष चरित्र	109-110
2·4·2·4	मनोवैज्ञानिक पुरुष चरित्र	110-112
2·5	निष्कर्ष	112-113

अध्याय - तीन

3· साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष पात्र 114-200

3·1	पात्रों का वर्गीकरण	114-127
3·2	चरित्र-प्रकृति का विश्लेषण	127-136
3·2·1	आदर्शात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित पूर्व परम्परा की विकसित चरित्र-प्रकृति	136-146

3·2·2 मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्तिपरक संवेदनशील चरित्र-प्रकृति 146-159

3·2·3 वैयक्तिक यौन-चेतना से जुड़े चरित्र 159-169

3·2·4 समष्टि परक मूल्यों से लिये संबंधित चरित्र प्रकृति 169-173

3·2·5 यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित चरित्र प्रकृति 173-192

3·3 निष्कर्ष 192-200

अध्याय : चार

4· साठोत्तरी महिला उपन्यासों के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध 201-299

4·1 वैवाहिक सम्बन्ध 201-229

4·2 विवाहेत्तर यौन-संबंध 230-241

4·3 पारिवारिक सम्बन्ध 242-243

4·3·1 पिता-पुत्री का सम्बन्ध 243-250

4·3·2 माता और पुत्र का सम्बन्ध 250-253

4·3·3 भाई-बहन का सम्बन्ध 253-259

4·3·4 देवर-भाभी का सम्बन्ध 259-260

8·3·5 अन्य सम्बन्ध 260-261

4·4 परिवारेत्तर यौन संबंध 262-280

4·2 मूल्य संक्रमण और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में बदलाव 281-298

4·3 निष्कर्ष 299

पृष्ठ संख्या

अध्याय-पाँच

5.	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग दृष्टि और युग छवि	300-394
5.1	वर्ग क्या है ?	300-301
5.1.1	भारतीय समाज की वर्ग-संरचना - विभिन्न वर्गों का अस्तित्व में आना	301-304
5.1.1.1	उच्च-वर्ग	304-307
5.1.1.2.	मध्य-वर्ग	307-313
5.1.1.3.	निम्न-वर्ग	313-316
5.2.	विभिन्न वर्गों के स्वभाव एवं चरित्र	316-317
5.2.1	उच्च वर्ग	317-318
5.2.1.1	सामन्त वर्ग	318-319
5.2.1.2	जमीन्दार वर्ग	319-320
5.2.1.3	पूँजीपति वर्ग	320-323
5.2.1.4	राजकीय अधिकारी एवं नेता	323-324
5.2.2	मध्य-वर्ग	324-325
5.2.2.1	उच्च मध्यवर्ग	325-328
5.2.2.2	मध्य-मध्य वर्ग	328-332
5.2.2.3	निम्न-मध्य वर्ग	332-335
5.2.3	निम्न-वर्ग	335.
5.2.3.1	कृषक वर्ग	335-336.
5.2.3.2	श्रमिक वर्ग	336-338

5·3	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग दृष्टि	338–341	
5·4	पुरुष पात्रों का वर्गगत विश्लेषण	341·	
5·4·1	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उच्चवर्गीय पुरुष पात्र	341–353	
5·4·2	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के मध्यवर्गीय पुरुष-पात्र	353–354·	
5·4·2·1	उच्च-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र	354–363	
5·4·2·2	मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र	363–381	
5·4·2·3	निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र	381–387	
5·4·3	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के निम्न-वर्गीय पुरुष पात्र	387–394	
5·5	निष्कर्ष	394	

अध्याय – छः

6·	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि और पुरुष-छवि		395–417
6·1·	महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि	395–399	
6·2	साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के पुरुष पात्रों का सौन्दर्य चित्रण	399–414	
6·3	निष्कर्ष	414–417	

अध्याय – सात

7·	उपसंहार	418–430
आधार-ग्रंथ		431–436
संदर्भ ग्रंथ सूची (हिन्दी)		437–449
" " (अंग्रेजी)		450–453
कोष, ग्रंथ, पत्रिकाएं		454·

--00--

प्रा क क थ न

प्रस्तुत शोध का विषय है " **साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष छवि** " । इस विषय के तीन पक्षों का प्रतिपादन आवश्यक है । एक, महिला उपन्यासकार, दो, उनके उपन्यासों में प्रस्तुत पुरुष छवि और तीन, साठोत्तर परिप्रेक्ष्य । "महिला उपन्यासकार" कहने का अर्थ यह नहीं कि महिला उपन्यास लेखन सामान्य लोक से हटकर होने वाला कोई नये ढंग का लेखन है या "महिला" कहने के साथ ही उसके द्वारा किये गये लेखन को एक अलग स्थान दिया जाना चाहिये । विशेषकर आज एक ओर स्त्री और पुरुष के समान अस्तित्व और रचना शक्ति की बात की जाती है, दूसरी ओर स्त्री अधिकार विषयक आन्दोलनों ने "फेमिनिस्ट लिटरेचर" की संकल्पना को पुष्ट किया है । एक ओर ममता कालिया जैसी प्रतिष्ठित लेखिका का कहना है कि " महिला " शब्द को केवल मूत्रालयों और प्रतीक्षालयों तक ही सीमित कर दिया जाना चाहिये । जबकि दूसरी ओर मृणाल पाण्डे जैसी सजग रचनाकार और आलोचिका की मान्यता है कि आज स्त्री और पुरुष की चेतना के संसारों की पुन: तटस्थ पड़ताल की जानी चाहिये, उनकी शारीरिक और सामाजिक स्थिति के अन्तर के परिप्रेक्ष्य में नहीं, बल्कि मानवीय चेतना के दृष्टिकोण और जीवन के मूलभूत विरोधाभासों को मूल बिन्दु मानकर । लेखन एक कला रूप है और लेखन में किसी प्रकार का लैंगिक या वर्गगत विभेद नहीं होता है । यह सही है, लेकिन इसके साथ यह भी उतना ही सच है कि लेखन एक ऐसा कला रूप है जिसमें शब्दों के माध्यम से मानवीय चेतना सर्वाधिक सार्थक विस्तार पाती है । लेखक एक व्यक्ति है । लेखक के अनुभव एक व्यक्ति के अनुभव हैं, और इस कारण इन अनुभवों को निर्धारित और निर्मित करने वाली सामाजिक

स्थितियाँ महत्वपूर्ण होती है । लेखन का विश्लेषण केवल कुछ मुद्रित और वाक्यों का विश्लेषण नहीं होता है बल्कि यह उन शब्दों और वाक्यों में छिपे एक समूचे मानवीय संसार का विश्लेषण है । यह संसार जो लेखक के आदिम प्रागैतिहासिक स्मृतियों से लेकर अद्यतन क्षण के अनुभवों तक फैला है लेखक जहाँ एक व्यक्ति है, वहाँ एक मनुष्य भी है जिसके मानस में मानव विकास की एक लम्बी परम्परा प्रतिध्वनित होती रहती है । इस कारण लेखक की अभिव्यक्ति का विश्लेषण उसके समग्र अनुभव का विश्लेषण होता है और जब अनुभव के विश्लेषण की बात आती है तो इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि यह अनुभव स्त्री और पुरुष उन विशिष्ट स्थितियों में प्राप्त करते हैं जो सामाजिक और ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया में उन्हें सौंपा है ।

इस कारण महिला लेखन की बात उठाना महिला को सामाजिक विकास क्रम से काटकर एक अलग-थलग अस्तित्व के रूप में देखना नहीं है, एक महिला रचनाकार कोचेतना की एक पुरुष रचनाकार की चेतना से निषेध में या विरोध में रखकर देखना नहीं है । बल्कि महिला लेखन को मानवीय यथार्थ के अनछुए और अविचारित पहलू के रूप में उठाना ही इस शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है । क्योंकि इस अनछुए और अविचारित पहलुओं में रचनायें सदियों से चली आने वाली स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की गाथा है । रचना मानवीय-सम्बन्धों का दस्तावेज होती है, और जब स्त्री रचनाकार हो तो उसकी रचना में निश्चय ही मानवीय सम्बन्धों का वह विशिष्ट अनुभव और दृष्टिकोण प्रतिफलित होगा जो कि स्त्री ने स्वयं अनुभव किये हैं ।

यह निर्विवाद है कि स्त्री ने आज लेखन के द्वारा अपनी अस्मिता को प्राप्त किया है । इस कारण स्त्री लेखन मुख्यतः केवल एक निषेध, प्रोटेस्ट या निगेटिव दृष्टिकोण से की गई अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि अब तक उपलब्ध लेखन का एक नया तथा पृथक अंग

है जो कि अतीत के समस्त अर्थहीन और अन्याय मूलक मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुये जीवन के प्रति एक सतत् और अखण्ड आस्था से जुड़ा रहता है ।

अब बात पुरुष छवि की आती है । महिला उपन्यासकारों के द्वारा लिखित उपन्यासों में पुरुष छवि पर विचार करने में मेरा एक विशेष उद्देश्य है । यह उद्देश्य जितना रोचक है उतना ही जिज्ञासामूलक भी । आज तक साहित्य में पुरुष लेखकों की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण पर विपुल-चर्चा हुई है । किन्तु एक स्त्री का पुरुष के प्रति क्या और कैसा दृष्टिकोण है इस पर विचार करने की कभी आवश्यकता अनुभव नहीं की गई । जबकि यह आवश्यक ही नहीं आज के सन्दर्भों में अनिवार्य है । साहित्य-सृजन का लक्ष्य होता है मानवीय अनुभव को उसकी समग्रता में रचना । इसी क्रम में साहित्यालोचन का लक्ष्य होगा मानवीय अनुभव को उसकी समग्रता में व्याख्यायित और मूल्यांकित करना । साहित्यिक शोध एवं आलोचना इसी लक्ष्य से बढ़ती है । मेरा यह विषय साहित्यिक अनुसंधान और आलोचना दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त और संभावना पूर्ण है । आज स्त्री को पुरुष के समकक्ष मानने की वैचारिक मूल्य कहाँ तक कार्यान्वित हुए है, इसका पता साहित्य ही दे सकता है । मानवीय अनुभव की समग्रता नितांत आवश्यक है । यह स्त्री-अनुभव चेतना के एकदम दूसरे छोर से आरम्भ होता है । इतिहास साक्षी है कि आज से शतियों पूर्व व्यक्तिगत सम्पत्ति और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ-साथ स्त्री का अनुभव-संसार पुरुष के विपरीत कोण पर चला गया । समाज में वर्ग-भेद,वर्ण-भेद में परिणत होता गया, और इस वर्ग-विभक्त समाज की विकास प्रक्रिया ने स्त्री की चेतना को भी विभक्त कर दिया । अंग्रेज लेखिका वर्जीनिया वुल्फ बड़ी बेबाकी से लिखती है कि " अगर आप एक औरत है तो आपने

पाया होगा कि कभी-कभी हठात् आपको चेतना के दो टुकड़े हो जाते हैं .... जब अचानक आपको लगता है कि जिस संस्कृति के बीचों-बीच आप खड़ी है, आप उसकी हकदार नहीं है। बल्कि उसके ठीक विपरीत वहाँ आपकी हैसियत एक बाहरी व्यक्ति की है, जो उसमें नितांत अजनबी और तटस्थ प्रेक्षक की तरह भटक रहा है। यह ठीक है कि स्त्री आज एक ऐसी सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत से जुड़ी है जिसकी वह हकदार कभी नहीं रही। सामाजिक विकास के इस लम्बे इतिहास में उसे कभी निर्णय लेने का अधिकार भी नहीं दिया गया बल्कि वह किसी और के निर्णयों की भोक्ता बनी रही। निश्चय ही स्त्री अनुभव के पीछे स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों की कष्टपूर्ण और शोषणमूलक स्मृतियां है। ऐसे में अपनी रचनाओं में पुरुष चरित्रों को प्रस्तुत करते समय यह अनुभव हस्तक्षेप नहीं करता होगा ? स्त्री हमेशा से प्रदत्त स्थितियों में रहती आई है। ये स्थितियां पुरुष प्रदत्त थी और है। स्त्री के सोचने और समझने के ढंग ही नहीं उसके मूल्यों और मानदण्डों को भी पुरुष प्रधान सभ्यता ने ही निर्धारित किया है। इसलिये आज पुरुष के प्रति उसके दृष्टिकोण में कहीं विरोध, प्रतिरोध, अस्वीकार जैसे आत्यंतिक लक्षण मिलें तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये, जैसा कि वर्जीनिया वुल्फ अपने समकालीन एक अन्य लेखिका की आलोचना करते हुए लिखती है जबकि उसे पात्रों के बारे में लिखना चाहिये।" वुल्फ की यह आलोचना स्त्री-लेखिका की लम्बी अनुभव यात्रा को रेखांकित करती है। आज स्त्री लेखन को एक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रही है। वह एक प्रतिशोध की भावना से लिख रही है। पुरुष के प्रति उसका दीर्घ अनुभव उसे विद्रोही बनाता है, तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। यही कारण है कि जिसने मुझे स्त्री लेखिकाओं के द्वारा प्रस्तुत चरित्रों के विश्लेषण की ओर प्रवृत्त किया। निश्चय ही यह कार्य स्त्री के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक

आर्थिक संरचना तथा अनुभव स्रोतों का अनुसंधान तथा लेखन में पुरुष के प्रति उसके दृष्टिकोण की जाँच पड़ताल को लेकर चलेगा । इससे यह भी देखा जा सकेगा कि एक रचनाकार के रूप में स्त्री किस सीमा तक अपने "स्त्रीत्व" से परिचालित होती है और कहाँ जाकर वह रचना की कलात्मक अर्हता और चेतना से जुड़ती है ।

इस शोध कार्य का क्षेत्र है साठोत्तर उपन्यास । यूँ तो महिला उपन्यासकारों की रचनायें हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक युग से ही मिलने लगती है किन्तु मैंने अपने शोध के लिये साठोत्तर परिवेश को ही केन्द्र में रखा । इसके दो कारण है, एक, साठोत्तर भारत में बदली सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और उनसे निसृत मूल्य व्यवस्था, दूसरे, परिवर्तित स्थितियों में स्त्री की चेतना का अध्ययन । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में प्रमुख नाम है मन्नू भण्डारी,ममता कालिया, उषा प्रियंवदा, निरुपमा सेवती, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, शशिप्रभा शास्त्री आदि । रजनी पनिकर, कृष्णा अग्निहोत्री, शान्ति जोशी आदि रचनाकारों का भी उत्कर्ष काल साठ के बाद ही दिखाई देता है । इस समय के महिला रचनाकारों और उनके उपन्यासों की सूची बहुत लम्बी है और मैंने कुछ विशिष्ट एवं प्रतिनिधि रचनाकारों को ही केन्द्र में रखकर इसे सीमित करने की चेष्टा भी नहीं की है, क्योंकि मेरा अध्ययन केन्द्र है "पुरुष छवि का विश्लेषण" । अतएव मेरी चेष्टा यही रही है कि इन उपन्यासकारों के द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्रों का यथा सम्भव व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण अध्ययन । इसलिये इस शोध प्रबंध में लेखिकाओं की प्रमुखता या गौणता पर ध्यान नहीं दिया गया है , बल्कि उनके द्वारा प्रस्तुत पुरुष छवियों की विविधता पर दृष्टि केन्द्रित की गई है ।

प्रस्तुत शोध के लिए सन् 1960 से 1980 तक का समय ही लिया गया है ।

प्रस्तुत अध्ययन सात अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय "नारी मानस की संरचना " तथा उसके सामाजिक विकासक्रम में

स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों के विकास का अध्ययन करता है । इस तरह इस अध्याय के दो उपशीर्षक बन जाते हैं - एक, नारी मानस की संरचना और दो, सामाजिक विकास क्रम में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण । नारी मानस की संरचना को जैविक, मनोवैज्ञानिक , आर्थिक और सामाजिक संदर्भों में विश्लेषित किया गया है । स्त्री की जैविकी उसके व्यक्तित्व निर्माण में तथा सामाजिक संबंधों के निर्वाहन में केन्द्रीय स्थान रखती है । इसका प्रभाव उसके मनोविज्ञान पर पड़ता है । स्त्री-मानस की संरचना में आर्थिक और सामाजिक संदर्भों का अध्ययन आवश्यक है इस दृष्टि से पहले अध्याय के उपशीर्षक " नारी मानस " की संरचना में उसके जैविक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक संदर्भ को सम्मिलित किया ग या । इसका दूसरा उपशीर्षक है सामाजिक विकास क्रम में स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण ।

प्रबंध का दूसरा अध्याय है नारी अस्मिता की खोज । इसके अंतर्गत भारतीय नवजागरण को नारी मुक्ति के पहले आयाम के रूप में देखा गया । इसके साथ ही नारी मुक्ति और "राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन" पर विचार किया गया । क्योंकि उस समय के देश व्यापी चेतनात्मक आंदोलन से ऐसा लगता है कि भारत की स्त्री भारत के मुक्ति संग्राम में सक्रिय भाग लेकर उसमें कहीं अपनी मुक्ति की खोज रही थी । इसी अध्याय का एक उप-शीर्षक है " नारी अस्मिता की खोज -लेखन के माध्यम से " । इसके बाद "साठ पूर्व महिला उपन्यासकारों की पुरुष छवि के सन्दर्भ के रूप में देखा गया है क्योंकि साठोत्तरी उपन्यासकारों के अध्ययन के रूप में यह आवश्यक था ।

प्रस्तुत प्रबंध के तीसरे अध्याय से हम इसके प्रतिपाद्य विषय पर आ जाते हैं । यह प्रतिपाद्य विषय है साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रस्तुत पुरुष छवि का विश्लेषण ।

इसे चार अध्यायों में क्रमशः पल्लवित किया गया है । ये चारों अध्याय वस्तुतः प्रतिपाद्य विषय के चार आयाम हैं । तीसरा अध्याय "साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष चरित्र"। चौथा अध्याय है "साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध" । पाँचवा अध्याय है "महिला उपन्यासों की वर्ग दृष्टि और पुरुष छवि" तथा छठा अध्याय है - "साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि और पुरुष छवि"।
तीसरे अध्याय में इन प्रस्तुत पुरुष चरित्रों का अध्ययन किया गया है । सबसे पहले इन पात्रों का शास्त्रीय दृष्टि से वर्गीकरण देखा गया है । यद्यपि आज की धारणा के अनुसार मनुष्य का चरित्र कटे -छँटे नापों वाला बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है । फिर भी प्रगति की दिशा पहचानने के लिए परम्परा का पृष्ठाधार भी देखना आवश्यक होता है । इसी प्रकार इन पात्रों का गुणों के आधार पर, वर्ग के आधार पर तथा चरित्र विकास के आधार पर विभाजन किया गया है । यह सारे विभाजन इन उपन्यासों में आये पुरुष पात्रों का समग्र आंकलन देने में सहायक होते हैं । इस अध्याय के दूसरे उप-शीर्षक के अन्तर्गत इन पात्रों की चरित्र-प्रस्तुति का विभिन्न शैलियों के आधार पर अध्ययन किया गया है।यह शैलियाँ है बहिरंग शैली, अंतरंग शैली, अंतर्द्वन्द्व शैली, नाटकीय शैली, मुक्त आसंग प्रणाली, प्रत्यावलोकन शैली इत्यादि । इसके बाद पुरुष चरित्रों के चित्रण की प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है । यह प्रवृत्तियाँ हैं ।1. आदर्शात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित पूर्व परम्परा की विकसित चरित्र प्रस्तुति । 2. मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्तिपरक संवेदनशील चरित्र प्रस्तुति । 3. वैयक्तिक यौन चेतना से जुड़े चरित्र प्रस्तुति । 4. समष्टिपरक मूल्यों के लिए संघर्षरत चरित्र प्रस्तुति । 5. यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित चरित्र प्रस्तुति ।

चौथा अध्याय साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से विवेचित है । इसके अन्तर्गत वैवाहिक सम्बन्ध, विवाहेत्तर सम्बन्ध, पारिवारिक सम्बन्ध और परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्ध,, हमारे विवेचन के विषय रहे हैं ।

पाँचवा अध्याय आलोच्य काल के महिला उपन्यासकारों की वर्ग दृष्टि और उसके संदर्भ में प्रस्तुत पुरुष छवि का विवेचन करता है । प्रस्तुत अध्याय में महिला उपन्यासकारों की वर्ग चेतना और उसके आलोक में प्रस्तुत पुरुष चरित्रों की वर्गीय पृष्ठभूमि का अध्ययन किया गया है । इसकी पृष्ठभूमि के रूप में वर्ग, भारतीय सामाजिक संरचना में विभिन्न वर्गों के उद्भव और विकास , उच्च, मध्य और निम्न वर्ग के स्वभाव और चरित्र का क्रमशः अध्ययन किया गया है । इसके बाद यह देखा गया है कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग दृष्टि क्या और कैसी है ?

प्रस्तुत प्रबन्ध का छठा अध्याय साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौंदर्य दृष्टि और पुरुष छवि का विवेचन करता है । यह इस विषय का एक सर्वथा अनछुआ पहलू है कि जिसे उठाने की कोशिश मैंने की और यह है महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य-दृष्टि उसके अपने विशिष्ट वर्गानुभवों , वर्ग संस्कारों तथा व्यापक रूप में सामाजिक प्रशिक्षण की देन होती है । इस अध्याय में आलोच्य उपन्यासों में प्रस्तुत पुरुष पात्रों के सौन्दर्य -विश्लेषण के द्वारा यह देखने की चेष्टा की गई है कि इनका सौन्दर्यांकन करने में इन रचनाकारों के कौन से सौन्दर्य मूल्य और मानदण्ड सामने आते हैं ।

प्रस्तुत प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय है उपसंहार जिसमें इस शोध कार्य से प्राप्त निष्कर्षों का आकलन किया गया है ।

अतः प्रबंध के प्रारम्भ से पूर्व .... आभारी हूँ श्रद्धेया डा॰ शशिप्रभुदिराज जी का जिन्होंने इस प्रबंध का निर्देशन कर अपने अमूल्य सुझावों से " समग्रता " में प्रस्तुत करने की सुनिश्चित दृष्टि दी । वस्तुतः जो कुछ भी लेखन कार्य सम्पन्न हुआ है उन्हीं के विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन का परिणाम है । वस्तुतः उनके प्रति हृदयगत आभार को अभिव्यक्त करने में मेरे शब्द सर्वथा असमर्थ हैं ।

महिला उपन्यासकारों के प्रति मेरी रुचि विषय से चयन कर दिये गए विषय को स्वीकार कर, विभागाध्यक्ष डा॰ विजेन्द्र नारायण सिंह ने मुझे अनुगृहित किया है । प्रबंध की रचना करते समय कुछ ऐसी जिज्ञासा एवं सवाल निर्माण हुए जिनकी पूर्ति करने में आपने सहायता की है तथा सरल स्वभाव के कारण निरन्तर नई-नई उक्तियों के साथ मुझे सदैव प्रेरित किया है उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

उन सभी मित्रों का सादर आभार जिनका सहयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष प्राप्त हुआ ।

मेरे पूज्य स्वर्गीय पिता "श्री उमेशचन्द्र श्रीवास्तव" की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे पी॰एच॰डी॰ करने के लिये प्रेरित किया । ज्ञान भण्डार के सजग प्रहरियों से सन्दर्भ-ग्रन्थों के रूप में जो भी सहायता मैंने ली है, उसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ ।

अंततः परिवार के सदस्यों की प्रेरणा ही जीवन का सम्बल है और प्रबंध का आधार कहने में अतिशयोक्ति नहीं ।

रीता श्रीवास्तव

अध्याय : एक

1. नारी मानस : संरचना

1.11 जैविक सन्दर्भ

आधुनिक युग में दूसरे विषयों के साथ-साथ मानस भी स्वयं अध्ययन का विषय बन गया है । मानस-विज्ञान में नारी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । इसलिये उसका हर क्षेत्रों में अध्ययन हो रहा है । जीव विज्ञान, अर्थ विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान आदि सभी नारी-सम्बद्ध गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन कर उसकी मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति पर प्रकाश डाल रहे हैं । अतः सर्वप्रथम हम नारी मानस की स्थिति का वर्णन जैविक सन्दर्भ में करेंगे । नर और नारी दोनों ही सृष्टि के महत्वपूर्ण अंग है । जीव की उत्पत्ति किसी की इच्छा पर निर्भर नहीं, बल्कि वह परिस्थितियों के अनुसार और प्राकृतिक नियमों पर है । एक होते हुये भी इनमें विषमता है तथा इस विषमता का आभास लिंग-भेद के आधार पर मिलता है । स्त्री और पुरुष में शारीरिक असमानता है, इन दोनों के व्यक्तित्व में पाये जाने वाले गुणों में अन्तर है । "स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष" उनके अन्तर को लिंग सम्बन्धी माना जाता है । किन्तु वह अन्तर शरीर पर ही नहीं है, तदनुसार मानस में भी है ।[1] शरीर रचना की दृष्टि से स्त्री तथा पुरुष में कतिपय विभिन्नताएं हैं, जिनके कारण उत्पन्न हुए नवजात शिशुओं में से कुछ बालक तथा कुछ बालिका रूप में इस जगत् में प्रवेश करते हैं । गर्भस्थ बालक तथा बालिका-रूप में लिंग-भेद किस प्रकार हो जाता है यह भी लिंग सम्बन्धी पित्र्य सूत्रों (sex determining (hromosomes)) पर निर्भर करता है ।

- -

1. प्रेम और विवाह : जैनेन्द्र कुमार : पृ. 65.

प्रकृति में स्त्रीत्व-पुरुषत्व का जो संबंध स्थापित है, उसे यौनिक सम्बन्ध कहते है, जो प्राकृतिक नियमों द्वारा प्रभावित होता रहता है । वनस्पतियों में यौन भेद का चिन्ह उनके फूलों में रहता है । वैज्ञानिक जाँचों के आधार पर यह निश्चय ही पाया कि फूलों में निहित स्त्रीत्व के अंग की रचना पुरुष की अंग रचना की अपेक्षा विशेष विकास है । विकास के सिलसिले में पुरुषांग पहले निर्मित होता है, और पश्चात स्त्रीत्वांश । पुरुषांश अत्यधिक मात्रा में होता है । नर नामक शब्द एक लिंग है, जो दोनों लिंगों को जोड़ता है, नर की बनाई हुई इस दुनिया में नारी को निकाल नहीं सकते है । अगर हम ध्यान दें तो सबसे पहले हमारे जीवन में मादा और न र की बहुत सरलता से उनकी बाल्यावस्था में ही जान सकते हैं । जाति, धर्म, राष्ट्रीयता,सामाजिक वर्ग आदि जानने से पहले ही तीन साल की लड़की को यह पता चल जाता है कि वह एक लड़की है और नारी बनेगी,और लड़के को पता चल जाता है कि वह एक लड़का है और नर बनेगा ।[1] शारीरिक बनावट की दृष्टि से यह निश्चय ही पाया है कि एक दूसरे की आकृति में केवल बाह्य रूप से ही अन्तर नहीं बल्कि शरीर के अवयवों में भी कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है । स्त्री-पुरुष के बीच भिन्नता का प्राथमिक चिन्ह शरीर के अवयव हैं जो संतानोत्पत्ति से संबंधित रहते है । वैज्ञानिक दृष्टि से एक और बड़े महत्व की बात है, जो इस भिन्नता पर विशेष प्रकाश डालती है । स्त्री-पुरुष दोनों की बनावट

- -

1. Woman's exclusion from the man-made world is not altered by the contention that the word man is generic meant to include both sexes we must consider the following first, sex identify (our belief that we are female of male) is learned very early in life, be-fore there is an awareness of race, religion, nationality, on social class. By three years or so, a girl 'knows' she is a girl and will became a woman, a boy 'knows' he is a boy and will become a man - Woman in a man-made world - Nona Glazer p. 1.

स्त्री-पुरुष दोनों की बनावट में युवावस्था के समय कुछ परिवर्तन आना प्रकृति के अनुकूल है । लेकिन इस प्रकार का परिवर्तन पुरुषों में विशेष रूप से होता है । स्त्रियों में केवल यौन-सम्बन्धी अवयवों में परिवर्तन होता है जो यौन रस-संचालन के प्रभाव से प्रभावित नहीं होता । पुरुष के शरीर पर अधिकाधिक रूप से बालों की वृद्धि होती है । दाढ़ी और मूंछ की वृद्धि उनके शरीर के अन्तर्गत यौन रस संचालन के प्रभाव से होती है .... । स्त्री जाति के रूप-रंग में विशेष विपरीतता नहीं आती और वृद्धा अवस्था को प्राप्त होने पर भी बहुत कुछ मधुर दीख पड़ती है लेकिन यह तो तर्कयुक्त बात है कि पुरुष और नारी में शारीरिक क्रियाओं तथा शरीर के रासायनिक मिश्रण में अन्तर है । रक्त-कोष, रक्त-परिभ्रमण, शारीरिक विकास तथा स्नायविक प्रबल आदि सभी में नारी तथा पुरुष में भिन्नता है । इसी कारण नारी आपादमस्तक नारी और पुरुष आपादमस्तक पुरुष होता है ।[1] यौन प्रक्रिया में स्त्री पुरुष पर निर्भर होती है । "रिडल द वुमन" ने स्त्री और पुरुष की यौन चेष्टाओं का पार्थक्य स्पष्ट करते हुये लिखा है कि स्तनपायी मादा निष्क्रिय होती है, और यौन-प्रक्रिया में पहल के लिये पुरुष पर निर्भर होती है वह पुरुष को प्रेरित करती है, उत्तेजित करती है और अनेक प्रकार की चेष्टाओं से लुभाती है लेकिन वह उसे (पुरुष को) सम्भोग करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती । सम्भोग का निर्णय पुरुष ही लेता है । यह प्रक्रिया कीटाणुओं से लेकर मछलियों, पक्षियों और स्तनपायी जीवों में देखी जाती है । पक्षियों

- -

1. Physiologically woman is 'woman' from head to toes, she has engraved its image with indelible marks, not only on the sex - organs proper , where the sexual differences are most specifically emphasized but on every part of woman's body -

Tenenbaum
The Riddle of Woman p.26.

और स्तनपायी जीवों में पुरुष अपने आप को मादा पर आरोपित करता है, और मादा उदासीन भाव से समर्पण करती है यह कभी-कभी प्रतिरोध भी करती है। मादा चाहे इच्छुक हो न हो यह पुरुष ही है जो मादा को "भोगता" है। मादा "भोगी" जाती है पुरुष अपने अंगों की मजबूती और विशिष्ट लैंगिक रचना के कारण सम्भोग की क्रिया में सक्रिय और निर्णायक भूमिका सम्पन्न करता है। वह (कीटों, पक्षियों और स्तनपायी जीवों में) मादा में प्रवेश करता है। मादा एक सम्वेष्टन के समान है जो कि इस क्रिया में तोड़ी जाती है।[1] सम्भोग की स्थिति में पुरुष के लिंग की तरह ही स्त्री का भगांकुर कार्य करता है। स्त्री तथा पुरुष में लिंग अथवा काम का निर्धारण दो भिन्न ग्रन्थिगत स्रावों (Hormonal secretion) द्वारा होता है जो पुरुष तथा नारी के लिये अलग-अलग होते हैं। आज यह सिद्ध हो चुका है कि पुरुष तथा स्त्री दोनों में ही नर तथा नारी सम्बन्धी ग्रन्थियाँ स्राव करती हैं। पुरुष में androgen नर सम्बन्धी male sex hormone का स्राव होने के साथ-साथ estrogen का भी स्राव होता है। इसी प्रकार स्त्रियों के estrogen के साथ-साथ androgen का भी स्राव होता है। इन दोनों के परस्पर परिमाण के आधार पर ही निर्धारित होता है कि किसी व्यक्ति विशेष में स्त्री उचित विशेषतायें होंगी अथवा पुरुष उचित।[2] नारी में काम भावना का केन्द्र कोई अंग-विशेष नहीं होता। तथा उसकी काम-भावना कभी भी पूर्ण रूप से विमुक्त नहीं होती जिसके कारण नारी की संचित शक्ति अन्य कार्यों के उपयोग में नहीं आती। नारी की त्वचा का कोई भी भाग यौन-उत्तेजना के लिए ग्रहणशील है। जबकि पुरुष में काम-वासना इन्द्रिय-विशेष में ही केन्द्रित रहती

- -

1. The second sex - Simone De Beauvoir : p.53.

2. आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी : सरला दुआ : पृ. 4

है जिसके कारण शरीर के अन्य भाग काम-भावना के अनुभव अथवा अभिव्यक्ति से मुक्त रहते हैं, और पुरुष की त्वचा का कोई भी भाग यौन-उत्तेजना के लिए गुप्तशील नहीं होता। प्रकृति ने नारी को पुरुष से इस प्रकार भी भिन्न बनाया है कि नारी में लाल रक्तकण पुरुष की अपेक्षा कम होते हैं। स्त्री में पुरुष की अपेक्षा त्वचा की सूक्ष्म रचना है, पुरुष की ठोढ़ी स्त्री की अपेक्षा अधिक बड़ी होती है " लेकिन नर और जननदायी मादा की मुख्य विभिन्नता इसमें है। शुक्राणु जो नर की जिन्दगी है वह दूसरे शरीर में प्रवाहित होते हैं। उसी समय मादा भी स्वयं से अजनबी बनकर उसके शरीर से अलग होती है। इसी तरह नर भी व्यक्तिगत रूप से अपने शरीर को अलग कर पुनःशक्ति प्राप्त करता है। इसके विरुद्ध मादा के शरीर में से अंडा पूरी तरह परिपक्व होकर मादा के शरीर से अलग हो जाता है। अंडा Follicle से निकलकर डिम्बवाहिनी [Oviduct] में गिरता है, और अगर बाहर आ रहा gamete से मिलता है तो उससे तादात्म्य हो जाता है, और फिर गर्भाशय से जाकर जुड़ जाता है। पहले से नष्ट हुई मादा अब फिर संक्रमित होकर अपने आप अलग हो जाती है। वह भ्रूण [foetus] को अपने उदर में उठाकर उसे विकास की सीमा पर पहुँचाती है जो हर जीवन के अनुसार बदलती है। 1* मासिक धर्म भी नारी को अपनी शारीरिक असमर्थता का बोध करता है। इस अवस्था में स्त्री सामान्य से अधिक भावुक, अधिक तनावयुक्त और अधिक चिड़चिड़ी रहती है, और ऐसे में गम्भीर मानसिक प्रतिक्रिया भी सम्भव है। मासिक-धर्म के दिनों में भी स्त्री अपने शरीर को बहुत कष्ट के साथ अनुभव करती है, शरीर उसके लिए जैसे अनजान अजनबी चीज बन जाता है। वास्तव में शरीर इन दिनों में एक कठिन और पराये जीवन से गुजरता है, हर महीने यह जीवन बनता है और इसकी समाप्ति के साथ-साथ एक

- -

1* The second sex : S. D. Beauvoir : p. 54.

पालना (cradle) टूट जाता है । हर मासिक धर्म एक बच्चे की रचना की पूरी तैयारी और फिर विकास प्रणाली में परिणत हो जाने की प्रक्रिया है । स्त्री-पुरुष के ही समान एक शरीर होती है लेकिन यह शरीर "स्व" के परे भी कुछ है ; जहाँ पुरुष शुक्र कीटाणु उसकी योनि में डालकर निश्चिन्त हो जाता है, वहीं मादा को प्रजनन क्रिया की सारी विपदाओं को अकेले भोगना पड़ता है । स्त्री निषेचन की प्रक्रिया में एक गहन आघात अनुभव करती है यह ठीक है कि गर्भधारण और सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया स्त्री के लिये नितान्त सामान्य प्रक्रिया है और यह यदि स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की सामान्य स्थितियों में सम्पन्न हो तो यह मादा के लिये हानिकारक भी नहीं होता । इस आशावादी दृष्टिकोण के बावजूद इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह प्रक्रिया सामाजिक दृष्टि से स्त्री के लिये भारी त्याग, सहिष्णुता, उत्तरदायित्व आदि की माँग करती है और फलस्वरूप स्त्री की स्वतन्त्रता बहुत सीमित हो जाती है ।[1] मासिक धर्म बन्द होने की प्रक्रिया में भी स्त्री के लिये एक परिवर्तनकारी मोड़ सिद्ध होता है । यह स्थिति स्त्री के जीवन में चालीस और पचास वर्ष के बीच आती है और इसमें होने वाले कुछ शारीरिक परिवर्तन उसे मानसिक रूप से तनाव पूर्ण बना देते हैं । मासिक धर्म का आरम्भ जहाँ उसकी उर्वरता के आरम्भ का समय है वहाँ मासिक-धर्म का बन्द होना उसकी उर्वरता के समाप्ति का सूचक है ।[2] नर जाति तथा मादा जाति के जीवाणुओं के बाद जब दोनों की शारीरिक तथा मानसिक बनावट भिन्न होने लगी तो इस विभाजन में जहाँ नर-जाति को अपेक्षाकृत सरल शारीरिक संरचना प्राप्त हुई वहीं मादा जाति को प्रकृति ने विशेष जटिल संरचना का माध्यम बनाया । इस मौलिक पार्थक्य का सीधा प्रभाव नारीजाति की प्रजननानुभूति तथा अभिव्यक्ति

- -

1.

2. The second sex : S. D. Beauvoir : p.61.

- do - - do - : p.62.

पर पड़ा बुनियाद रखने ने इस संबंध में ठीक ही लिखा है कि – "मस्तिष्क जैसे-जैसे विकसित होता गया, नई प्रतिभाएं उत्पन्न होती गयीं । मानव जाति को कुलानुक्रम तथा अविच्छिन्न बनाने की आवश्यकता पड़ी । साथ ही अपने अंगों के कारण वह अपनी रक्षा में पूर्ण ही नर के सामने झुकने लगी ।"1. समाज तथा शिक्षा की दृष्टिकोण से भी पुरुष, नारी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है । समाज में नारी के प्रति हीन भावना का एकमात्र कारण उसकी शारीरिक दुर्बलता ही है । मनोवैज्ञानिक "टायलर" का इस विषय में यह कथन है कि

'over many centuries ... the view persisted that women were inferior to men. The fact that they were weaker physically led to an assumption of all round weakness.[2]

प्रायः जन्म के पश्चात् दो साल तक बालक और बालिका दोनों की शरीर वृद्धि विशेष होती है । परन्तु तीसरे और चौथे साल में शरीर वृद्धि कम हो जाती है । पांचवें साल से नौवें साल तक बालकों में बालिकाओं की अपेक्षा विशेष शरीर-वृद्धि होना देखा जाता है परन्तु नौं और पन्द्रहवें साल के बीच लड़कियों के शरीर-वृद्धि में विशेष उन्नति रहती है । जिस काल में बालिकाओं की शरीर वृद्धि में विशेष उन्नति देखी जाती है, उस काल में बालकों की शरीर वृद्धि कम देखी जाती है । पन्द्रहवें साल के बाद लड़के बहुत तीव्रता से बढ़ते हैं । उनकी इस प्रकार की वृद्धि दो साल बाद क्रमशः कम होने लगती है और तेइसवें वर्ष बाद शरीर वृद्धि होना प्रायः रुक ही जाता है । लड़कियों की शरीर वृद्धि सोलहवें साल से कम होती है और बीसवें साल बाद बिल्कुल नहीं । इस प्रकार लड़कियाँ लड़कों से तीन साल पहले युवावस्था में पदार्पण करती है । अपनी शारीरिक

- -

1. हिन्दी उपन्यासों में नायक : डा. कुसुम वार्ष्णेय : पृ 20.

2. Psychology of Human Differences p.6t.

कमजोरियों के कारण स्त्री हीनता का भाव अनुभव करती है । शारीरिक संरचना के कारण ही वेश्यावृत्ति मात्र स्त्रियाँ कर सकती है, पुरुष नहीं । शारीरिक बनावट में भिन्नता के कारण उत्पन्न नारी की मानसिकता में भी अन्तर आ जाता है । एक बालक एक बालिका को नंगी देखता है और गौरव से भर जाता है कि उस नंगी बालिका की अपेक्षा उसके अवयव ज्यादा पुष्ट और बड़े है और बालिका उसे क्षति समझ कर एक ग्रंथि पाल लेती है, यह अन्तर उस स्त्री में हीनभाव उत्पन्न कर देता है, तब या तो वह मूक, अनुगामिनी निर्जीवा बन जाती है, या फिर उसकी क्षतिपूर्ति के लिए वह स्वेच्छाचारिणी, स्वच्छंद और क्रान्तिकारिणी बन जाती है । कितनी स्त्रियाँ समलैंगिक इसी कारण से हो जाती है कि वह पुरुषों की तरह संभोग की स्थिति में सक्रिय होना चाहती है । अपनी ही जाति को प्राप्त कर वह पुरुष जैसा व्यवहार करने में आनन्द पाती है तथा ऐसा करके वह यह समझती है कि उन्होंने पुरुषों के प्रति एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है, और किसी भी मामले में वह पुरुष से निकृष्ट नहीं ।1* स्त्री और पुरुष की शारीरिक संरचना और अस्तित्व के बारे में सूजी द्वारा एनालीको ने कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने रखा है । स्त्रियाँ जहाँ आक्रोश का प्रदर्शन मुंह से कर पाती है, वहाँ पुरुष शारीरिक शक्ति से इसे व्यक्त करते हैं । स्त्रियाँ घरेलू कामकाजों में ज्यादा दिलचस्पी लेती है तो पुरुष घर के बाहरी कामों में । मनुष्य के रूप में स्त्री का अपनी इस असहायता के विरुद्ध संघर्ष का रहा है । "सिमन द बउवा" की जैविक जटिलता से उत्पन्न असहायता तथा उसकी जीवनी शक्ति की अपूर्णता रेखांकित करते हुये लिखती है कि स्त्री की पराधीनता अपनी विशिष्ट जाति (species) के कारण है, और यही कारण है कि स्त्री का जैविक जीवन अनेक प्रकार की उसकी पूर्व और कठिन

- -

1* Many woman become lesbian because of a natural predisposition, but for many others it is part of a general protest against the apparent antithesis of feminity and action : The female woman : Arianna Stassinopoulos: p.53.

प्रक्रियाओं से गुज़रता है जैसे मासिक धर्म, प्रजनन, मासिक धर्म की समाप्ति और इन सबके कारण उसका अस्तित्व उसके लिये बहुत संकटपूर्ण हो जाता है, इसकी तुलना में पुरुष का जीवन काफी स्थायी और सुविधापूर्ण होता है । उसका यौन जीवन उसके अस्तित्व के विपरीत नहीं होता अपितु वह एक समान गति से बिना किसी दुर्घटना या संक्रान्ति से गुज़रता है । सामान्यतः स्त्री पुरुष से जितनी ही या कभी उससे अधिक भी आयु पाती है, लेकिन इस आयु में भी यौन संक्रान्तियों के अलावा रोग इत्यादि की भी सम्भावनाएं भरपूर रहती है । इस तरह स्त्री की दैहिक संरचना और दैहिक जीवन बहुत कठिन और जटिल है, किन्तु अपने ही इस अस्तित्व के विरुद्ध छिड़े गये कठिन लड़ाई के कारण आधुनिक युग में यह विचार मान्य हो गया है कि स्त्री किसी भी कार्य में अपनी दक्षता दिखाने हेतु हर प्रकार से सम्पन्न है । मैरान्ड-शार्डमोक ने भी अपनी पुस्तक " On becoming a woman " में स्त्री की शारीरिक संरचना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उसके अंग पुरुषों की अपेक्षा उलझे हुए हैं और उसमें जीवनी शक्ति की कमी नहीं है । वह मानसिक धरातल पर भी पुरुष से कम नहीं है । अपने अंगों के प्रति बस सावधान और आत्मविश्वासित होने की आवश्यकता है । अतः आज जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जो स्त्री से शून्य हो, और स्त्रियों ने ही पुरुषों से अधिक कुशलता दिखलाई है ।

1·12 मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ

शारीरिक संरचना में अन्तर होने के कारण मानसिकता में भी अन्तर पड़ता है, जिसके कारण व्यवहार और व्यक्तित्व में भी अन्तर आ जाना स्वाभाविक है । इसीलिए जैनेन्द्र कुमार ने कहा है कि "स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष है" उनके अन्तर को लिंग सम्बन्धी मानते हैं, किन्तु वह अन्तर शरीर पर ही नहीं है, तदनुसार मानस में भी है ।[1]

1· प्रेम और विवाह : जैनेन्द्र कुमार : पृ· 65·

मनोवैज्ञानिकों ने इसीलिये " नारी मनोविज्ञान" के लिए अलग से अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की । उन्होंने स्त्री और पुरुष के शारीरिक अन्तर से उत्पन्न मानसिक अन्तर से उत्पन्न नारी की हीनता भाव का उल्लेख किया है ।

आधुनिक एवं प्राचीन अन्वेषणों से ज्ञात होता है कि स्त्री और पुरुष में उपलब्धि (achievement) प्रवणता (aptitude) रुचि (Interest) व्यवसाय सम्बन्धी रुचि (Vocational interest) मान्यताओं का अध्ययन (Value Studies), व्यक्तित्व आदि सभी दृष्टिकोण से भिन्नता पाई जाती है । अतः प्रकृति से स्त्री-पुरुष में क्या अन्तर है, इसका निर्णय एक दूसरे में निहित भिन्नता पर विचार करने से हो सकता है । आज स्त्री-पुरुष के बीच जो भिन्नता देखने में आती है, उसमें कितने कारण सामाजिक व्यवहारों के प्रभाव से उपस्थित है । मनोविज्ञान के परीक्षण के द्वारा यह भी ज्ञात हो चुका है कि स्त्री और पुरुष में रुचि और मान्यताओं के स्तर पर भी अन्तर है । "इसी प्रकार नारी के व्यक्तित्व में पाये जाने वाले गुण अथवा उनमें पाई जाने वाली विशेषताएँ इस प्रकार है - सहिष्णुता, परनिर्भरता, ईर्ष्या, सामाजिकता, सहयोग, ईश्वरोन्मुख धार्मिक भावना , संवेदनशीलता, सहनशीलता आदि । इसी प्रकार पुरुष में पाये जाने वाले कतिपय गुण अथवा पाई जाने वाली विशेषताएँ ये हैं - आक्रामकता, अधिकार प्रियता, औत्सुक्य, स्थूल संवेदनशीलता आदि ।"1. पुरुषत्व तथा नारीत्व को पृथक समझा जाता है । पुरुष कठोरता, हिंसा का प्रतीक है । नारी कोमलता स्नेह तथा शांति का । पुरुष में विश्वास कम है, इसीलिये वह ठग लेता है, स्त्री में विश्वास की मात्रा अधिक है, इसलिये वह ठगी जाती है । नारी तीव्र, परन्तु उथले दिमाग वाली होती है, और पुरुष गंभीर तथा दृढ़ विचार वाले होते हैं । प्रायः यह देखने में आता है कि स्त्रियाँ तर्कप्रिय होती है और पुरुष अधिकाधिक विचारशील मस्तिष्क

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी : सरला दुआ : पृ. 6

बाला होता है । यही एक दूसरे के आन्तरिक भावों को परखने में भी स्त्रियाँ विशेष दक्ष पाई जाती है, परन्तु इस विषय में अधिकांश पुरुष अनभिज्ञ बने रहते हैं । अधिकतर स्त्रियाँ अनुरागी प्रकृति की होती है । दूसरों की बातों की सत्यता में विश्वास कर उसमें अन्धविश्वास कर लेना स्त्रियों में स्वाभाविक गुण देखा जाता है । अतः जैनेन्द्र कुमार ने कहा है कि " स्त्री शरीर यदि कोमल है, स्त्री स्वभाव यदि भावनात्मक है तो मान लेना चाहिए कि कोमल के प्रतीक के रूप में उसकी सृष्टि हुई है । उधर पुरुष यदि अधिक अस्थिर और गतिशील है, उसमें बल और वेग है तो पुरुष आत्मकार की विशेषताओं का मूर्त अवलम्बन माना जा सकता है । स्त्री हृदय है तो पुरुष मस्तिष्क है । अस्तु नारी एवं पुरुष के स्वाभाविक गुणों में हम भिन्नतायें पाते हैं । स्वाभाविक लक्षणों के भी दो समूह बन गये हैं जिनमें से अधिक सौम्ययुक्त समूह नारी से सम्बन्धित माना जाता है तथा अधिकतर प्रभुता (ascentent) को पुरुष सम्बन्धी । पुरुष एवं नारी की शारीरिक रचना के साथ-साथ उनकी प्रवृत्तियों में भी जन्मजात अन्तर पाया जाता है ।"स्त्री और पुरुष में प्रवृत्यात्मक संवेगितियों में भी अन्तर होता है और यह अन्तर स्त्री के उत्तरकालीन स्वभाव को निर्धारित करते हैं । एक छोटी बालिका सामान्यतः कम आक्रामक और स्वयं पर्याप्त होती है । वह अपने प्रति प्यार एवं स्नेह की अधिक माँग रखती है और इसकी अपेक्षा में वह पर निर्भर और विनम्र होती है ।[1] नारी के स्वाभाविक निर्माण

- -

1. In their instinctual disposition as well, there are differences which foreshadow the later nature of the woman. The little girl is as a rule less aggressive; less defiant and self sufficient; she has a greater need for affection to be shown to her and there fore to be more dependent and docile.
New Introductory Lectures on Psychoanalysis.p. 156.

में इस यौन अन्तर का पृथक योग होता है जैसेकि Anna Oakley के अनुसार जब बालिका अपने शरीर को पुरुष के शरीर के समान बड़ा सक्षम और सुदृढ़ देखने की इच्छा से प्रेरित होती है तब वह माँ की तरफ से विमुख हो जाती है और अपने प्रेम को पिता की ओर प्रक्षेपित कर देती है । वह पिता से लिंग प्राप्ति की आशा रखती है लेकिन जब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सम्भव नहीं है तब उसकी यह इच्छा एक शिशु को जन्म देने की इच्छा में परिवर्तित हो जाती है ।[1]

Anna Oakley का यह विश्लेषण फ्रायड के पुलिंग (penis) प्रमुखता विश्लेषण पर आधारित है किन्तु आज मनोवैज्ञानिक ने इसके आगे के मनोवैज्ञानिक कारणों पर विचार किया और इनका कहना है कि स्त्री के द्वारा पुरुष की अपेक्षा अपने आपको हीन समझने का कारण केवल पुरुष-लिंग का प्रभाव मात्र ही नहीं है बल्कि आगे के सम्पूर्ण जीवन में वह जिन जैविक प्रक्रियाओं से गुजरती है उसमें वह अपने आपको हीन अनुभव करके उसी को दृष्टि में रखकर अपनी हीनता का भाव उसे मासिक धर्म को लेकर होता है । जिससे वह मानसिक दृष्टि से कुण्ठित हो जाती है । Dr. Katherina Dalton के अनुसार " मासिक-धर्म के कारण स्त्री बहुत सारी प्रक्रियाओं को ग्रहण कर लेती है । समाज द्वारा, परिवार द्वारा उसे यही समझाया जाता है कि ऋतु-स्राव के समय अतिरिक्त विश्राम की आवश्यकता है

- -

1. Female child is disappointed in her clitoris, wishing it to be more male in size and function; she turns away from her mother (when she holds responsible) and projects her love towards her father. From her father she hopes to get a penis Later, when it is clear she will not, she translates this desire in to desire to bear a child : Sex Gender and Society: Anna Oakley : p. 122.

पीड़ा के इन दिनों में वह अपने को पुरुष से हीन भी मान लेती है । उसके व्यवहार और दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर परिलक्षित होने लगता है । वह शारीरिक और मानसिक दृष्टि से उद्विग्न हो जाती है ।[1] एडलर का कहना है कि फ्रायड ने स्त्री के मनोविज्ञान पर विचार करते समय पुरुष को ही दृष्टि में रखा था, और उसका विचार था कि स्त्री यह सोचती है कि वह विकृत पुरुष है लेकिन विकृति की धारणा तुलना और मूल्यांकन पर आश्रित है ।[2] जबकि एडलर के अनुसार स्त्री के मन में हीनता की भावना अपने स्त्रीत्व के अस्वीकार कर दिये जाने की लज्जा के रूप में आती है । पुलिंग का अभाव ही इस हीन-ग्रंथि का एक मात्र कारण नहीं है, बल्कि स्त्री की सम्पूर्ण स्थिति भी है । छोटी बालिका यदि पुलिंग के अभाव से ईर्ष्या अनुभव करती भी है तो वह सिर्फ इसलिये कि वह उसके लिए लड़कों द्वारा पाये जाने वाली सुविधाओं का प्रतीक बन जाता है । परिवार में पिता की स्थिति विश्व भर में व्याप्त पुरुषों की उच्चता की भावना और उसकी सर्वश्रेष्ठता ये सारी बातें पुरुषों के उच्चता के प्रति उसके विश्वास की पुष्टि ही करती है । कालान्तर में जब वह यौन वास्तविकताओं में सहभागी बनती है तब भी पुरुष की अपेक्षा अपनी स्थिति को वह हीन ही पाती है । वह पुरुष के विरोध के रूप में प्रतिक्रिया करती है । इस प्रतिक्रिया के अन्तर्गत वह या तो अपने आपका पुरुषीकरण करती है या पुरुष के विरुद्ध संघर्ष में अपने स्त्री हथियारों का प्रयोग करती है । मातृत्व के द्वारा वह अपने बच्चे के रूप में पुलिंग का समानक पाने में सफल हो जाती है किन्तु इसकी एक परिणति यह भी होती है कि वह माता के रूप में स्त्री-भूमिका को पूर्ण तरह से स्वीकार कर लेती है और हीन स्थिति में ही बनी रहती है । इस तरह वह पुरुष

---

1. Sex, Gender and Society : Anna Oakley : p.44.

2. -do.-

की अपेक्षा बहुत गम्भीर रूप में अपने आपके विरुद्ध ही विभक्त हो जाती है ।1. इस प्रकार एडलर ने स्त्री की सम्पूर्ण स्थिति और उसके विकास प्रक्रिया को उसके पुरुष की तुलना में हीनतर स्थिति के लिये उत्तरदायी माना है ।

फ्रायड ने स्त्री-पुरुष के लैंगिक अस्तित्वों और उनकी निर्मित मानसिकताओं पर विचार करते हुये एक महत्वपूर्ण सूत्र दिया था 'Anatomy is destiny' अर्थात शरीर की रचना ही नियति है। फ्रायड के इसी सूत्र को प्रतिध्वनित करते हुये Merleau-Ponty ने कहा कि The body is generality अर्थात् शरीर ही सामान्यता है ।"

सिमन द बउआ के अनुसार आज स्त्री की मानसिकता का विश्लेषण पूरी तरह से लैंगिक संरचना पर आधारित नहीं है, और ऐसा होना भी नहीं चाहिए । सिमन द बउआ अपना निष्कर्ष देते हुये लिखती है कि स्त्री का जीवनक्रम और उसकी गतिविधियाँ केवल कोरे " प्रतिक्रियाओं" के रूप में क्यों देखी जायें ! वे उसकी सहज इच्छाओं से प्रेरित क्यों नहीं हो सकती : यदि बच्ची पेड़ पर चढ़ती है तो एडलर के समान यह क्यों माना जाये कि वह लड़कों से प्रतिस्पर्धा करना चाहती है, यह क्यों नहीं कहा जा सकता कि पेड़ पर चढ़ना उसकी स्वाभाविक इच्छा से प्रेरित है । स्त्री को जब उसके सहज स्वाभाविक रूप में देखा जाय तब ही उसका सही विश्लेषण हो सकता है ।2. बउआ के अनुसार स्त्री एक मानवीय अस्तित्व है । जो पुरुषों के संसार में पुरुषों की खोज में रत है, एक ऐसे संसार में वह खोज कर रही है जो आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं से बना हुआ है । इसीलिये स्त्री को उसकी समग्र स्थिति को ध्यान में रखते हुये एक अस्तित्वात्मक परिदृश्य में ही देखा जाना चाहिये । 3.

1.
2. The second sex : S. D. Beauvoir : p.
   - do - - do - : p. 78.
3.
   -do- - do - p. 83.

तब प्रश्न उठता है कि स्त्री की मानसिकता में हीनता-ग्रन्थि का परिलक्षण अब भी क्यों किया जा रहा है । इसका एक कारण है सदियों से चली आने वाली पुरुष की दासता । क्यों-स्त्री है, कमज़ोर है, अबला है पुरुष के आश्रय के बिना वह संसार में नहीं रह सकती । वह " स्त्रीत्व" की भावना पर हम उसे ऊपर उठाती रहती थी, और उसकी उन्नति के पथ में बाधक थी । 1. इसी दासता के कारण वह अपनी रक्षा आप नहीं कर सकती थी । पुरुष अपनी शारीरिक सबलता के बल पर इतनी शक्ति रख पाता है कि उसके साथ कोई बलात्कार नहीं कर सके । लेकिन स्त्री को खुली यौन बलात्कार से उसकी रक्षा नहीं कर पाती । समाज भी अन्धात्मक रूढ़ियों के द्वारा स्त्री का शोषण करता है जिससे उसकी मानसिकता बदलती है । क्योंकि बड़ी से बड़ी नारी भी बुद्धि से कम भावना से अधिक परिचालित होती है । वह सोचती है कम, सपने अधिक देखना चाहती है और अपने उसी कहते है, "नारी, तेरी सारी सार्थकता पुरुष को लेकर है । तेरी सारी जिन्दगी इन्तजारी में कटेगी और हर बात के लिए तुझे पुरुष का मुँह जोहना पड़ेगा, और मुँह जोहना केवल रोटी और कपड़े के लिए ही नहीं है, बल्कि यह जानने भी कि तू सुन्दर है या नहीं, कि तेरे प्रेम का अर्थ क्या है, अथवा उसे कोई स्वीकार भी करता है ।"2. कुछ लोग वातावरण को भी नारी की मानसिकता के परिवर्तन का एक कारण मानते हैं । क्योंकि किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में पाये जाने वाले गुण मुख्यतः तथा पूर्णतः उसके वातावरण के ही कारण है । इसका प्रमुख कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक है । नारी की मानसिकता एवं अपने को हीन अनुभव करने का बहुत कुछ इन कारणों से भी है । क्योंकि कोई भी नारी किस प्रकार का व्यवहार करती है, उसकी मानसिकता की कौनसी विशेषताएं पाई जाती है, यह बात उस पर निर्भर करती है कि वह किस वातावरण में पली बाल्यावस्था में

- -

1. स्त्रियों की स्थिति : चन्द्रावती लखनपाल : पृ.50

2. विवाह की मुसीबतें : रामधारी सिंह "दिनकर" पृ. 9.

उसे किस प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए, उसके आस-पास के लोग, उसके परिवार के मित्र, समुदाय के तथा युवक, समाज के लोग उससे पृथक-पृथक रूप में क्या आशा करते हैं, उसकी संस्कृति में कौन-सी सामाजिक तथा नैतिक मान्यतायें हैं, इन सभी बातों पर उसकी मानसिकता निर्भर करेगी । मार्गरेट मीड तथा रूथ बेनेडिक्ट ने इस सम्बन्ध में विशेष रूप से कार्य किया और पाया कि एक नारी दूसरे राष्ट्र की नारी से भिन्न है, एक जाति की नारी दूसरी जाति की नारी से भिन्न है । इसकी व्याख्या वे इस प्रकार करती हैं कि भिन्न-भिन्न जातियों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रतिमान मान्यतायें भिन्न-भिन्न होती हैं । विभिन्न समाजों में नारी का स्थान भिन्न है तथा इसी प्रकार इसी आधार पर जो व्यवहार उससे अपेक्षित होता है वह इसी प्रकार कार्य करती है ।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि नारी की मानसिकता की संरचना मुख्यतः राष्ट्र या जाति पर निर्भर करेगी जिसमें वह नारी उत्पन्न हुई है तथा जिसमें वह विकास कर रही है ।

आज के देश में आधुनिक चेतना सम्पन्न नारी अपने किसी भी रूप में स्वयं को कमजोर नहीं मानती । वह वेश्या बनती भी है तो भी उसकी स्वतंत्र अस्तित्व-चेतना उससे छूट कर नहीं जाती । वह किसी प्रकार के धन द्वारा आर्थिक उपार्जन करके, सदा स्वावलंबन के गौरव भाव से मण्डित रहती है । नैतिकता और अनैतिकता की धारा को लाँघने के उपक्रम में आज की नारी पिछली मान्यताओं को कुचलने में लगी दिखाई देती है । इसलिये उसे पग-पग पर टकराना पड़ता है, जूझना पड़ता है, और उसे अनेक ऐसे तनावों से गुजरना पड़ता है जो उस काल की नारियों के लिए अपरिचित थे और पुरुषों ने जिन तनावों को न कभी भोगा, न कभी भोगेंगे ।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नारी की मानसिकता उसके उत्पन्न होने-बोध एवं उसके व्यवहारों का उत्तरदायित्व

सर्वप्रथम उसकी शारीरिक संरचना पर है । साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताएँ भी बहुत कुछ उसके मानसिक जगत को निरन्तर प्रभावित करती रहती है जिसके परिणाम स्वरूप उसकी मानसिकता में भी निरन्तर परिवर्तन होते रहता है ।

1·13 आर्थिक सन्दर्भ

मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ के साथ-साथ आर्थिक सन्दर्भ का भी नारी की स्थिति एवं मानसिकता को बनाने में बहुत बड़ा योगदान है । हर युग में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया है । आदिम काल में नारी की स्थिति उतनी शोचनीय नहीं थी जितनी कि आज है । सब लोग मिल जुल कर रहते थे " जो भी सम्पत्ति थी वह सम्मिलित थी , क्योंकि वह सम्मिलित श्रम से प्राप्त होती थी । इस अवस्था को "आदिम साम्यवाद" कहते हैं । इस आदिम साम्यवादी काल में ऊँच-नीच वर्ग नहीं थे, धर्म नहीं, यहाँ तक कि युद्ध से रक्षित के अलग अधिकार का ख्याल भी नहीं था । सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते थे, साथ मिलकर खाद्य संग्रह करते थे साथ भोजन करते थे, साथ ही यौन-परितृप्ति करते थे । 1· इस युग में स्त्री और पुरुष का भेद नहीं होता था । क्योंकि अभी कृषि एवं उत्पादन आदि का समय नहीं आया था । स्त्री भी पुरुष के समान खाद्य सामग्री एकत्र करने में सहयोग देती थी । इस विवाहहीन समाज में माता ही परिवार का मूल थी । एंगेल्स ने अपनी पुस्तक प्रकृति का "द्वन्द्ववाद" में इस अवस्था पर और विस्तार से लिखा है । उन्होंने दिखलाया है कि पशु जगत से निकलकर मनुष्य बनने में सबसे अधिक महत्व मनुष्य के श्रम का है, उनका कहना है कि एक अर्थ में मनुष्य श्रम द्वारा ही पशु से मनुष्य बना है ।2· यह अवस्था मनुष्य की पहली अवस्था थी । जिसमें वह सिर्फ श्रम संग्रह ही करता था । डा· देवकी जैन ने अपनी पुस्तक "इण्डियन

- -

1· मानव-समाज : राहुल सांकृत्यायन : पृ· 28·

2· मानव सभ्यता का विकास : रामविलास शर्मा : पृ· 15·

वूमन" में इस स्थिति का विश्लेषण करते हुये बताया है कि आदिम पारिवारिक उत्पादन में ऐसा लैंगानुगत श्रम विभाजन नहीं पाया जाता था जिसमें की पुरुष कार्य-निरीक्षक होते थे और स्त्रियाँ कार्य करने वाली । आदिम पारिवारिक उत्पादन प्रक्रिया में कार्य निरीक्षकों और कार्यकर्ताओं का लैंगानुगत विभाजन तो था किन्तु यह विभाजन लिंग पर नहीं, बल्कि आयु पर आधारित था । जिसमें वृद्ध पुरुष और स्त्रियाँ युवा पुरुषों और स्त्रियों के कार्यों का निरीक्षण करते थे ।[1,2]

परन्तु बाद में शिकार करना मनुष्य की जीविका का प्रधान साधन हो गया । यहाँ पर आकर श्रम विभाजन हुआ । परन्तु अभी मातृ सत्तात्मक युग ही था । यह विभाजन अभी आपसी सहयोग पर ही था, और यह श्रम-विभाग बिल्कुल स्वाभाविक है और यह सिर्फ स्त्री-पुरुष के काम के सम्बन्ध में है । पुरुष लड़ाई करते थे, मछली और जानवरों का शिकार करने जाते थे । खाद्य-सामग्री के लिये औजार हथियार प्रस्तुत करते थे । स्त्रियाँ घर का काम-काज देखती थी । खाना, कपड़े का बन्दोबस्त, रसोई-पुताई सिलाई का काम करती थी । अपने-अपने कार्य क्षेत्र में स्त्री-पुरुष का पूरा अधिकार था । जंगल का स्वामी पुरुष, और घर के भीतर स्त्री का राज । अपने बनाये या इस्तेमाल किये जाने वाले हथियारों का अपना-अपना अधिकार है पुरुष और जानवर के शिकार में काम आने वाले हथियारों का स्वामी और स्त्री घर के सामान की मालकिन । किन्तु इतिहास की प्रक्रिया में धीरे-धीरे स्थिर जीवन की धारणा विकसित होती गई । इसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध निश्चित हुआ और यहीं से परिवार का उद्भव हुआ जिसमें पुरुष की भूमिका प्रमुख थी, क्योंकि वह लड़ाकू और शिकारी था । स्त्री की भूमिका गौण हुई क्योंकि वह घरेलू काम तक सीमित थी । पुरुष ने अपने श्रम के साधनों पर अधिकार

- -

1. मानव सभ्यता का विकास : रामविलास शर्मा : पृ. 15.
2. इंडियन वूमेन : देवकी जैन : पृ. 106.

कर शिकार और स्त्री घरेलू उपकरणों की स्वामिनी बनी रही ।[1]

भारत के संदर्भ में हम देखते हैं कि वैदिक आदर्श के अनुसार स्त्री-पुरुष में एक दूसरे से अच्छा-बुरा होने का कोई सवाल नहीं था । दोनों का क्षेत्र अलग-अलग था । दोनों ने श्रम विभाग के अनुसार रजामंदी से भिन्न-भिन्न क्षेत्र चुन लिये थे । पुरुष के क्षेत्र में स्त्री दखल नहीं देती, और स्त्री के क्षेत्र में पुरुष चुप रहता था ।

Amaury de Rien Court के अनुसार स्त्री के घरेलू कार्यों तक सीमित रह जाने के लिये उसकी शरीर रचना भी उत्तरदायी थी । मासिक स्राव, गर्भधारण और शिशु पालन आदि के कारण वह शिकार आदि में पुरुष के साथ भाग ले पाती न थी । इस तरह श्रम-विभाजन का एक नया दौर आरम्भ हुआ । जिसमें जो कि धीरे-धीरे लिंग भेद पर आधारित होता चला गया ।[2]

जैसे जैसे मनुष्य विकसित होता गया वैसे वैसे उसकी भावनायें भी बदलती गईं । यद्यपि बच्चा संरक्षण और शिकार में स्त्री-पुरुष से पीछे नहीं थी । क्योंकि उस समय के व्यक्ति यह जानते थे कि उनकी सही एक माता है । परन्तु बाद में स्त्री का ह्रास उस समय होने लगा जब पुरुष जीविका के अर्जन में अपने को प्रधान मानने लगा । क्योंकि तभी पशु पालन और कृषि का युग आरम्भ हो गया । उत्पादन के विकास से ही नर-नारी के श्रम में महत्वपूर्ण विभाजन होता है । खेती और पशुपालन के प्रसार के साथ पुरुष आगे आता है और मातृ-सत्तात्मक परिवार के विघटन होने का समय आ जाता है । हल की खेती शुरू होने से नारी ने कृषि में अपना स्थान खो दिया था । कम से कम हर परिवार या गाँव को स्वयं खेती करने वाली नहीं रही । आर्थिक रूप से भी स्त्री पुरुष को अपने ऊपर अधिक दिखाई

---

1. Socio-Economic statues of Indian women : Ed. Murali Mohoher : p.2.

2. Sex and Power in History : Amaury de Rien Court p.4.

देने लगी । पुरुष धन का उपार्जन करके लाता था, स्त्री घर में रहकर संतान का पालन तथा गृह प्रबन्ध करती थी " पहले भी पुरुष का काम था, जीविका के साधन और हथियार एकत्र करना, और इसीलिये इन दोनों पर उसका अधिकार होना स्वाभाविक था । पाले हुए पशु, जीविका के अब नये साधन हाथ लगे थे । इन पशुओं को पालतू बनाना तथा चराना पुरुष का काम था, इसलिये पशु पुरुष की चीज थी । पशुओं के विनिमय से मिले सामान या दास भी पुरुष की चीजेंथीं। जीविका के साधनों से पैदा किये तथा खर्च करके बच रहे सामान पुरुष की सम्पत्ति थी । स्त्री का इन अतिरिक्त वस्तुओं में सहयोग था, किन्तु उसके वह उनकी स्वामिनी नहीं हो सकती थी .. । स्त्री का स्थान अब पुरुष से भिन्न हो गया .. । स्त्री पुरुष में श्रम का जो विभाजन हुआ था, उसने उसके भीतर सम्पत्ति का भी विभाग कर दिया था । 1· इसके साथ ही पितृ सत्ता स्थापित होती है । जिसके साथ सही नहीं कि स्त्री का स्थान समाज में हीन हो जाता है, अपितु वर्ग हीन मानव समाज में वर्ग भेद आरम्भ हो जाता है । घर के भीतर के काम की जिम्मेदारी पहले भी स्त्री पर थी, किन्तु तब उसका महत्व उतना न था, जिससे कारण स्त्री को दुर्बलता मिली थी । अब भी उसकी रही घर के भीतर काम की जिम्मेदारी थी ; किन्तु अब यही उसकी अपनी दुर्बलता से युक्त करने का कारण बनी । इसी के साथ-साथ परिवार में धन की मात्रा भी बढ़ी । अब कुछ नये धन शक्तियों का लाना आवश्यक हो गया । कार्ल मार्क्स और एंगिल्स का विश्लेषण हमें बतलाता है कि किस प्रकार मानव-सभ्यता के इतिहास में शोषक और शोषित के विभेद ने जन्म लिया । उसके अनुसार धन की नयी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये युद्ध में प्राप्त बन्दी जनों को दासों के रूप में उपयोग किया गया । यहीं से मानव-समाज का पहला बड़ा विभाजन हुआ और इस विभाजन दो वर्गों के रूप में सामने आया - मालिक और दास, शोषक और शोषित । धीरे-धीरे वर्ग विभेद की इस प्रक्रिया में स्त्री शोषित वर्ग में सम्मिलित

- -

1· मानव समाज : राहुल सांकृत्यायन : पृ· 42·

हो गई क्योंकि उत्पादन के साधनों पर अधिकार पुरुष का था । मार्क्स और एंगेल्स आगे बतलाते हैं कि श्रम प्रथा की विभाजन ने पूर्ववर्ती पारिवारिक सम्बन्ध उलट दिया जिस कारण स्त्री घर में प्रमुख मानी जाती थी, ठीक उसी कारण वह घर में पुरुष से गौण हो गई । धीरे-धीरे परिवार में पुरुष " मालिक " बनता गया और स्त्री एक "महत्वहीन अतिरिक्त" में परिणत होती गई ।[1]

इस तरह धीरे-धीरे नारी दासता की ओर अग्रसर होती गई । जिसे पहले देवी मान कर पूजा जाता था, वही अब बन्धनों की श्रृंखलाओं में जकड़ती गयी । वैसा " श्रम विभाग" के नाम पर, स्त्री को उन क्षेत्रों से सर्वथा निष्कासित कर दिया गया जिनका शासन पर निर्णायक प्रभावपड़ता है । इन क्षेत्रों में धन के उत्पादन का क्षेत्र प्रमुख है । स्त्री एवं पुरुष के बीच पहला श्रम-विभाजन सन्तानोत्पत्ति को लेकर हुआ, और यह स्त्री को सौंपा गया । मनु ने लिखा है -

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ॥[2]

जीविकोपार्जन द्वारा परिवार के पोषण एवं संरक्षण का कार्य पुरुष के जिम्मे आया । स्त्री और पुरुष दोनों के ही कार्य पारिवारिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टि से समान महत्व के हैं । आय का सम्यक् संयोजन उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना उसका अर्जन । किन्तु आय के स्रोतों पर पुरुष का अधिकार होने के कारण, वह परिवार के भीतर भी निर्णायक हो गया । यहीं से समाज, सर्वहारा, और शोषक के दो वर्गों में बँट गया और नारी शोषण का काला इतिहास भी प्रारंभ होता है ।[3]

अतः उत्पादन के परिवर्तन के साथ-साथ नारी के आर्थिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन आता गया । यह अब पूर्ण रूप से आर्थिक क्षेत्र में

- -

1. The woman question : Enslavement of Women ; p. 10.

2. मनुस्मृति 92 श्लोक : पृ.27.

3. प्राण-प्रतिष्ठा : शशिकांत मुकुल, पृ. 7.

पुरुष पर निर्भर हो गयी । उसकी स्थिति उस कुत्ते के समान हो गई कि जिसके सामने दुत्कारने के साथ रोटी फेंकी जाती है । कभी-कभी आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्त्री को अपना शरीर तक बेचना पड़ा । सामंती युग में उसे भोग्या का दर्जा दिया गया था ।

इस प्रकार स्त्री व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रादुर्भाव के साथ-साथ कहीं भी पुरुषों के अन्तर्गत परिसीमित होने लगी । एंगेल्स के अनुसार यह स्त्री जाति की महान् ऐतिहासिक पराजय थी । यहीं से व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित पितृसत्तात्मक व्यवस्था का आरम्भ हुआ ।[1]

कृषि उद्योग के साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र भी बढ़ता गया । हर एक नये साधन के आविष्कार से उत्पादन शक्ति बढ़ती गई । पितृसत्ता-युग से ही स्त्री के अधिकारों पर प्रहार आरम्भ होने लगा था, किन्तु अभी स्त्री इतनी अबला नहीं थी । यह सामन्तवादी युग ही था, जब कि स्त्री को पराश्रिता का अधिकारी घोषित किया गया । यहीं नहीं पूँजीवाद ने स्त्रियों और बच्चों का शोषण खास तौर से बढ़ाया । यह शोषण उन धन्धों में भी था जो मशीन से चलते हैं और उनमें भी जो शारीरिक बल पर निर्भर हैं । इस सम्बन्ध में मार्क्स ने लिखा है कि " जिस हद तक मशीनें शारीरिक शक्ति पर निर्भर नहीं रहतीं, वे उन श्रमिकों को काम देने का साधन बनती हैं जिनकी शारीरिक शक्ति कम है अथवा जिनका शारीरिक विकास अपूर्ण है । लेकिन इसलिये जिनके अंगों में और भी लोच है । इसलिये मशीनों का इस्तेमाल करने वाले पूँजीपतियों ने सबसे पहले स्त्रियों और बच्चों के श्रम की तलाश की ।

आज नारी का शरीर बेचना पूँजीवादी सभ्यता का एक जबर्दस्त अंग है । वेश्यावृत्ति स्त्री की आर्थिक मजबूरियों का ही परिणाम है

इस विश्लेषण से हम देखते हैं कि स्त्री की हीन स्थिति के पीछे

- - The Second Sex - S. De Beauvoir - p.65. - - - - - - -

1.

उसका आर्थिक अवमूल्यन भी कम उत्तरदायी नहीं है । बैबेल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि स्त्री और सर्वहारा दोनों ही दलित हैं ।[1] दोनों को मुक्त करने के लिये आर्थिक मुक्ति की आवश्यकता है । आपके पूँजीवादी समाज में स्त्रियों की समस्या उसकी श्रम क्षमता की समस्या ही सीमित हो कर रह गई है ।[2] स्त्रियों की पराधीनता, उनका निम्न वर्ग में परिणत होना सिर्फ ऐतिहासिक घटना ही नहीं है । उन्हें इस हालात में रखने के लिये आज भी उनको ऐसी शिक्षा-दीक्षा बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रबन्ध है, जिससे कि वह उबर उठने में असमर्थ रहे ।

धीरे-धीरे नारी में जागृति उत्पन्न हो रही है । नारी मुक्ति आन्दोलनों, एवं समाज सुधारों के फलस्वरूप वह अपना भला सोचने लगी है । शिक्षा ने नारी को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उसने अपने अधिकारों को समझा । उसने अपने अस्तित्व को पढ़ लिख कर जाना है । पुरुषों के अत्याचारों का मुकाबिला करने और उनकी अधीनता से मुक्त हो उसमें जागृति उत्पन्न हुई । पर इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण लाभ उसे यह हुआ कि आज तक जिसकी और तक अपनी जीविका के लिये अनिवार्यतः एक मात्र पुरुष पर ही निर्भर रही है ।परन्तु इस आर्थिक स्वतंत्रता के कारण उनका दूसरे प्रकार का शोषण भी प्रारंभ हो गया । उन्हें घर और बाहर की दोहरी भूमिका निभानी पड़ रही है । पहले उन्हें पुरुषों के समान वेतन भी नहीं दिया जाता था । क्योंकि उन्होंने समान आर्थिक स्वतंत्रता की आवाज उठाई ।
लेखिका नोना ग्लैजर अपनी पुस्तक "Woman in a man made world" में यही सवाल उठाती है कि श्रम के बाजार में जब स्त्री श्रमिक समान माने जाते हैं तो स्त्री की स्थिति पुरुष से हीन क्यों है ? इसका एक सम्भाव्य उत्तर यह हो सकता है कि श्रम के बाजार में मनुष्य और श्रमिक में भेदभाव अन्तर किया जाता है, और निर्मिमाय की इस व्यवस्था में जो जितना श्रम करेगा उतना ही मूल्य उसे मिलेगा ।[3]

---

1. 'Woman and the proletarit are both downtrodden : The Second Sex : S.D.Beauvbur : p.86.
2. The Second Sex : S.D.Beauvoir : p.86.
3. Woman in a manmade world : Nona Glazer P.72.

परन्तु भारत में भी श्रम की असाधारण स्त्री और पुरुष के लिंग भेद के साथ जुड़ी रही आयी है । पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस पर विचार करते हुये लिखते हैं कि किसी भी देश में महानता तब होती है जब तक उस देश की स्त्रियों की परिस्थिति और जीवन स्थितियों को प्रभावित करने में सफल हो । आज समाज की बदलती हुई व्यवस्थाओं, राष्ट्रीय आवश्यकताओं के कारण तथा अपनी स्वयं की सन्तुष्टि और आर्थिक मुक्ति के उद्देश्य से भी स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही है ।[1] आज भी भारत ही नहीं अफ्रीका और यूरोप में भी कुछ काम केवल स्त्रियों के माने जाते हैं जैसे अफ्रीका में पुरुषों ने अनाज उगाने से मना कर दिया था क्योंकि उनके अनुसार यह स्त्रियों का काम था, या लैटिन अमेरिका में पुरुष अधिक मुर्गी पालन का व्यवसाय नहीं करना चाहते क्योंकि उनके अनुसार यह स्त्रियों का पारंपरिक व्यवसाय रहा है । अतएव जब तक यह श्रम विभाजक लिंग भेद समाप्त नहीं होगा तब तक स्त्री मुक्ति भी पूर्णतया: सफल नहीं हो सकती ।[2]

पिछले तीन दशकों में महानगरों की कामकाजी स्त्रियों की संख्या में काफी इजाफा हुआ है । काम करने वाली महानगरों की स्त्री आर्थिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक बड़ी ताकत बन गई है । फिर भी ऐसा पूर्वाग्रह भी समाज में देखने को मिलता है कि " असुरक्षा की भावना, हीनभावना और अहम को ठेस लगने की वजह से पति अपनी नौकरी करने वाली पत्नियों पर यह दोषारोपण करते है कि वे पति और घर-बार की ओर ध्यान नहीं देती है, क्योंकि उनका अपने उच्चाधिकारी से वैसा सम्बन्ध है । पति उन्हें विवाहेत्तर यौन-सम्बन्ध रखने वाली भी बताने लगते हैं । जब पुरुष यह देखते है कि कोई स्त्री तरक्की करती जा रही है तो वे यही अनुमान लगाते हैं कि उस स्त्री का अपने उच्चाधिकारी से अवैध सम्बन्ध है ।[3] इस तरह नारी आर्थिक स्वतन्त्रता के बावजूद एक दुहरी जिन्दगी जी रही है । उसे घर और

- -

1 The Story of Women in India:Padmini Sen gupta :p.237.

2. Indian Woman : Devaki Jain : P. 101.

3. कामकाजी भारतीय नारी : डा॰ प्रमिला कपूर : पृ॰ 98॰

बाहर का तनाव उसके मनोमस्तिष्क में सदैव घर किये रहता है । स्त्री की स्वतंत्रता सम्भव तभी होगी, जबकि वह बिना रोक-टोक जीविका उत्पादन के काम में पूर्णतया भाग लेने लगेगी और घर के काम का बोझ उसके ऊपर नाम मात्र रह जायगा ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि मातृसत्तात्मक समाज में नारी की जिस प्रकार उच्च स्थिति थी वह स्थिति क्रमशः क्षीण होती गई । आज जबकि वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है फिर भी वह अपने अधिकारी वर्ग के प्रति कृतज्ञता जताने को बाध्य करती प्रतीत होती है । उच्च प्रशासनिक पदों पर कार्यरत महिलाएं सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान का अर्जन करते हुए भी अपनी व्यक्तिगत ज़िन्दगी में किसी अभाव को गहरे अनुभव करती है । इस तरह वह आज के युग में दोहरे जीवन को निभा रही है, इस प्रकार की दोहरी मानसिकता के कारण उसके मानस में तनाव एवं कुंठा घर किये हुये हैं ।

1·14 सामाजिक सन्दर्भ

प्रत्येक समाज में, चाहे वह आदिम हो या उन्नत, स्त्रियों की स्थिति उस समाज में प्रचलित आदर्शों, विश्वासों, मान्यताओं व मूल्यों के आधार पर तथा उन्हें सौंपे गए कार्यों के अनुसार निर्धारित होती है । विद्वानों के अनुसार आदिम युग का समाज मातृसत्तात्मक समाज था । मनुष्य जीवन के विकास के प्रारंभ काल में स्त्रियों के आधिपत्य पुरुषों पर स्वभावतः होना इसलिये स्वाभाविक रहा है कि आरंभ में स्त्रियों द्वारा ही विकास सम्भव हुआ । पारिवारिक जीवन स्त्रियों द्वारा स्थापित हुआ । उसकी संचालिका स्त्रियाँ बनीं । पारिवारिक जीवन के प्रारम्भ-काल में पुरुष स्त्रियों के आदेशानुसार आचरण करते थे । यह सत्य है कि समतावादी समाज में नारी समाज और संस्कृति की नेता थी । आखेट और संग्रहण अवस्था में नारी के श्रम का बहुत महत्व था, आखेट जो पुरुषों का

होता था भोजन के लिये आतुर था । जो भी शाकाहारी भोजन मिलता था उसे स्त्री पका लेती थी । आदिमकाल में लोगों का आहार कच्चा मांस होता था । स्त्रियों ने ही खेतीबारी, छोटे जानवरों को पालतू बनाना, और मिट्टी के बर्तनों को विकसित किया, तथा कुटाई आदि का अन्वेषण किया ।1. आदिम समाज में वंशानुक्रम और उत्तराधिकार माता या नारी के पक्ष से चलता है । मातृसत्तात्मक गोत्रों में किसी एक परिवार में स्त्रियों का गोत्र तो होता है लेकिन पुरुषों का गोत्र अलग-अलग हो सकता है ।

ऋग्वेद भारत का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है । इनमें मातृसत्ता की सत्ता का संकेत मिलता है । जहाँ पर पुरुष प्रायः पत्नी ही के गृह में निवास करता था ।2. मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त नारी की नग्न मूर्तियाँ उसी मातृपूजा की पुष्टि करती है । वैदिक कालीन भारतीय समाज में भी नारी का स्थान अतिशय महत्व दृष्टिगत होता है । उस समय जाति की विकासोन्मुख होने के कारण स्त्री आवश्यक और आदरणीय तो थी ही, साथ ही उसके जीवन तथा सम्बन्धी नियम भी अधिक कठोर नहीं बनाये जा सके । स्वाधीनता के अभाव में भी समाज उसकी सन्तान को त्याज्य नहीं कह सकता था सौभाग्य से शून्य होने पर भी समाज उसे गृहधर्म से निर्वासन-दंड न दे सकता था । वह मत्स्योदरी होकर भी राजरानी के पद पर प्रतिष्ठित हो सकती थी, कुन्ती होकर भी मातृत्व की गरिमा से गुरु रह सकती थी और द्रौपदी होकर भी पतिव्रता के आसन से नहीं हटाई जा सकती थी ।3. भारतवासियों के सभी आदर्श स्त्री रूप में ही पाये जाते हैं । जैसे विद्या का आदर्श " सरस्वती " में धन का "लक्ष्मी" पराक्रम का "महामाया" या दुर्गा में, सौन्दर्य का "रति" में पवित्रता का गंगा में । यहाँ तक कि भारत वासियों ने परम शक्तिशाली भगवान

1. The Women's Movement - Barbara Sinclair Deckard page

2. पुरोषा पर्षीसे भावि सूर्येद् विसो पतिः ।
एहमो आतकता व्याःपरिसर्वेन्हेषु सकयो ॥
वरातनुर्ध्वसि ला कहो पापसीभूता ।
परिसर्वद् ताकता वहता स्वकीर्ततरिषिवस्तो ॥ -विवाह सूक्त 10/85

३. श्रृंखला की कड़ियाँ: महादेवी वर्मा :पृ. 146.

को भी "अग्रजननी" के रूप में देखा है । वेद में स्त्री को घर की रानी कहा जाता था । इसी से उस समय परिवार में स्त्री की ऊँची स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है । यही नहीं ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 39 और 40 सूक्तों की सृष्टि करने वाली नारी घोषा थी । वैदिककालीन संस्कृति में नारी के व्यापक सौन्दर्य तथा सृजन शक्ति की जो दिव्य भावात्मक कल्पना की गई है उसने उसकी सामाजिक स्थिति को भी गरिमा दी है । सृष्टि में पुरुष तथा नारी की उत्पत्ति का एक ही केन्द्र है । बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि ब्रह्म एकाकी न रहकर अपने आपको दो में विभक्त कर लिया जिसके दक्षिण अंश को पुरुष तथा वाम को नारी की संज्ञा दी गई । इस मान्यता ने समाज में दोनों की स्थिति समान कर दी । इतना ही नहीं, आगे चल कर शिव के अर्द्ध नारीश्वर रूप में भी यह धारणा साकार हुई है ।[1]

परन्तु नारी की यह स्थिति आगे चल कर नहीं रही । धीरे-धीरे उसकी स्थिति में परिवर्तन आता गया । मातृसत्तात्मक समाज के समाप्त होते ही नारी की स्थिति नीचे गिरती गई । पितृसत्तात्मक परिवार के प्रतिस्थापित होने से वर्ग-विभाजन समाज और वर्ग समुदाय समाज उत्पन्न हुआ । साथ ही यह विचारधारा भी चल पड़ी कि नारी स्वभावतः पुरुष से हीन है, वह भोग की वस्तु है, सार्वजनिक जीवन में भाग लेने योग्य नहीं है । इस तरह सामाजिक घटनाओं के घात-प्रतिघात से स्त्रियों की जीवन गति में बराबर परिवर्तन होता रहा है । मानव समाज में पाशविक घटनाओं का होना इसलिये अनिवार्य रहा कि पुरुष व्यक्तियों में पाशविक वृत्तियों का प्राबल्य बराबर ही बना रहा । विशेषतः स्त्रियों पर व्यक्तिगत आधिपत्य पाने के निमित्त पुरुषों ने अनेक अमानुषिक व्यवहारों का प्रयोग किया है । बट्रेंड रसेल के अनुसार पितृसत्तात्मक समाजों में ईर्ष्या की

---

1. संभाषण : महादेवी वर्मा : पृ. 105.

उत्कटता उस डर के कारण है कि कहीं उसकी पत्नी किसी अन्य पुरुष के साथ सम्पर्क के कारण सन्तानोत्पत्ति न कर दे ...। और शिशु पुरुष के अहं का प्रसाद है और बच्चे के लिये उसका स्नेह अहं का ही रूप है...। इसलिये पितृत्व का तथ्य मालूम हो जाने पर, स्त्रियों की परतन्त्रता का श्रीगणेश हुआ ।[1] उसकी स्वाभाविक तथा शारीरिक दुर्बलताएं जो पहले उसकी सरलता, शोभा, सान्निध्य तथा सौन्दर्य को बढ़ाने वाली थी, अब उसकी बहुत बड़ी कमजोरी के रूप में मानने लगी । उसकी शारीरिक निर्बलता पुरुष को अपने ऊपर एक बोझ-सी प्रतीत होने लगी। पुरुष का स्त्री के प्रति पहले का दृष्टि-बिन्दु अब बदल चुका था । अतः नारी स्त्री, जो उसके लिए पहले "सम्राज्ञी" थी, अब एक साधारण-सी आश्रिता पत्नी प्रतीत होने लगी । गृह-लक्ष्मी पालिका के रूप में नजर आने लगी , माता सेविका बन गई, जीवन और शक्ति प्रदायिनी देवी अब निर्बलताओं की खान बन गई । स्त्री को न अब देवी कहलाता थी, और न पहले से अधिकार । स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः यह कह कर उसके प्रति नाना शंकात्मक अभिव्यक्तियां लोक में प्रकट होने लगी । प्रथम भाग की उस परम्परा से जो नारी की परिग्रह का कारण, सृष्टि में बालक तथा माता जानती थी और दूसरे युद्धों ने समाज में नारी की स्थिति को इतना प्रभावित किया है वह सहयोगिनी से पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाने लगी ।

समाजशास्त्र भी नारी के इस क्रमिक ह्रास के कारणों की मीमांसा करता है । मैलिनोवस्की के अनुसार किसी भी युग की नारी की स्थिति का परिचय उस युग के नारी और पुरुष के पारस्परिक कर्तव्यों तथा दोनों के इस सम्बन्धी विधानों द्वारा प्राप्त हो सकता है ।[2] मध्ययुग में विशेष रूप से भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों के फलस्वरूप एवं मुगलों के राज्य के बाद भारत में स्त्रियों की स्थितियों में और

---

1. विवाह और नैतिकता : बर्ट्रेंड रसेल : पृ. 15 अनुवादक : धर्मपाल
2. Social Anthropology : Malinowski : P. 141

गिरावट आई । इनके आक्रमणों के दौरान लड़कियों के अपहरण की घटनाएं बढ़ी तो हिन्दुओं में छोटी-छोटी बच्चियों का विवाह किया जाने लगा । जिससे पर्दा प्रथा भी प्रारम्भ हो गई । स्त्रीका नाम मात्र की रह गई । "मध्ययुग के उत्तरार्द्ध को ऐतिहासिक दृष्टि से काला-युग कहना चाहिए । स्त्रियों पर समाज के अत्याचार और अन्याय ने इस युग को इतना काला कर दिया कि इस समय के इतिहास के पन्ने समाज की संकीर्णतावादिता की कालिमा से सदा काले रहेंगे । इस समय भारतीय स्त्री को मनुष्य की कोटि में नहीं गिना जाता था । उसके सब अधिकारी छीन लिये गये थे । उसका स्वतंत्र अस्तित्व सब प्रकार से नष्ट हो चुका था । समाज में तो उसकी स्थिति थी नहीं, परिवार में भी उसकी स्थिति गिर चुकी थी । एक स्त्री के होते पति अनेकों शादियाँ कर सकता था । स्त्रियाँ पैर की जूती के समान समझी जाती थी ।"1. अतः इस समय घर के अन्दर स्त्री की स्थिति पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी । स्त्री मनुष्य है, यह लोगों ने समझना ही छोड़ दिया था । सब पुरुष के लिये सिर्फ भोग्य की वस्तु रह गई थी । उसे मृत पति के साथ जलना पड़ता था । स्त्री उपभोग की वस्तु क्रमशः शोषण की वस्तु बन गई । पहले जो कुन्दवासिनी दिखाई देती थी वही अब विषधर प्रतीत होने लगी ।

स्तनौ मांस ग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ।।2.

परिवारों में एक उपयोगी, किन्तु विचारविहीन, भावनाहीन इकाई के रूप में रहने लगा ।

मुगलकाल के बाद 19वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति में और गिरावट आ गई थी । रीतिकालीन कवियों की मांस पूजा

---

1. स्त्रियों की स्थिति : चन्द्रावती लखनपाल : पृ. 32.
2. वैराग्यशतक : भर्तृहरि : अनु. हरिदास वैद : पृ.

ने स्त्री की मर्यादा को सूक्ष्मता से उठाकर कटु धरातल पर ला पटका । पश्चिम में स्त्री मुक्ति आन्दोलन और स्त्री स्वतंत्रता तथा समानता के लिये 18वीं शताब्दी में ही क्रान्ति शुरू हो गई थी । पाश्चात्य जागृति और चेतना ने भारतीय समाज को भी प्रभावित और आकृष्ट किया । पाश्चात्य राजनीति, सभ्यता, शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज को जैसे अपनी दुरावस्था का भान हुआ तथा समाज सुधारकों ने भारतीय नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन को आगे बढ़ाने में काफी सहयोग किया । नवजागरण और नारी मुक्ति आन्दोलन का विस्तृत वर्णन हमने अगले अध्याय में किया है । जिसे हमने विभिन्न चरणों में बाँटा है । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मोड़ पर पहुँच कर भारतीय नारी में नया आत्मविश्वास और आत्म सम्मान जगा । वह स्वावलम्बन, स्वार्जन और स्वविकास की ओर उन्मुख हुई । बीसवीं शताब्दी में स्त्री ने गौरव का अनुभव किया कि देश के विकास में वह भी पुरुषों की तरह ही योगदान दे सकती है । बीसवीं शताब्दी की नारी ने समाज को एक तरह से झकझोर दिया है । वह किसी भी स्थिति और किसी भी परिस्थिति में पुरुष से अपने को हीनतर मानने को तैयार नहीं है । उसने पुरुष, पति, परिवार और प्रेमी सबको अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है ।

अतः निष्कर्ष रूप से यही कह सकते हैं कि जिस प्रकार समाज में परिवर्तन आता जाता है, उसी प्रकार स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन आता जाता है । जहाँ पहले मातृसत्तात्मक राज्य था, वहाँ अब पितृसत्तात्मक राज्य हो गया । आज नारी जागृत हो गई है, उसने समाज में अपने अस्तित्व को पहचाना है । मातृत्व का नया रूप सामने रखा है । नैतिकता एवं मान्यताओं को चुनौती दी है । "काम" जो पाप और अपराध की श्रेणी में पड़ा कराह रहा था उसके प्रति भी एक चुनौती पूर्ण कदम स्त्रियों ने उठाया है ।

निष्कर्ष

इन चारों सन्दर्भों पर विवेचन करने के पश्चात्, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नारी मानस की संरचना में इनका महत्वपूर्ण स्थान है । क्योंकि नारी की शारीरिक बनावट के कारण पुरुष और नारी में एक तरह से अन्तर आ जाता है । शारीरिक अन्तर के कारण नारी में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है । यह हीन भावना ही नारी की मानसिकता को परिवर्तित कर देती है । नारी एवं पुरुष में शरीर-रचना की दृष्टि से भेद है ही साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ से उनके व्यक्तित्व में भी अन्तर पाया है । शारीरिक अन्तर मनोवैज्ञानिक स्थितियों में अन्तर लाता है । नारी की मानसिकता के परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ के साथ-साथ आर्थिक सन्दर्भ भी महत्वपूर्ण कार्य करता है क्योंकि आर्थिक विभाजन के कारण ही नारी के मानस में विशेष परिवर्तन हुआ । इस आर्थिक विभाजन के कारण ही नारी की स्थिति में परिवर्तन हुआ । जहाँ पहले वह साम्राज्ञी थी, वह अब दासी हो गयी है । नारी मानस की संरचना में यह दोनों कारण ही नहीं, वरन् सामाजिक कारणों से भी है क्योंकि भारतीय नारी का अब तक जीवन उसके घर के अन्दर था । जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा उसके की जाती थी उसी अनुसार उसको उपर्युक्त गुणों के अनुकूल ही व्यवहार करना होता था । आज जब नारी घर की चहारदीवारी से बाहर आ चुकी है, तब उसका व्यवहार भी बहुत सीमा तक बदल रहा है ।

अतः नारी मानस की संरचना के मुख्य पक्ष का उत्तरदायित्व उसकी शारीरिक रचना-विधान पर है । साथ ही मनोवैज्ञानिक, आर्थिक एवं सामाजिक मान्यताएं भी बहुत कुछ उसके मानस की संरचना को प्रभावित करती है । इन्हीं सबके परिणाम स्वरूप समाज की गति के साथ-साथ उसके कार्यों में भी परिवर्तन होता रहता है ।

--00--

सामाजिक विकास-क्रम में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण

मानव समाज परिवर्तनशील है, परिवर्तन के साथ-साथ समाज विकासमान भी है । समाज-निर्माण में स्त्री और पुरुष दो परस्पर पूरक तत्व है । नारी शोषण के पीछे कई सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ है । समय-समय पर सामाजिक विकासक्रम के साथ-साथ इनके रूप भी बदलते गये हैं । अतीत से वर्तमान विकास-क्रम की यात्रा में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे । विभिन्न युगों में सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के क्रमशः अध्ययन से हम एक निष्कर्ष तो निकाल ही सकते हैं कि मानवीय व मानसिक क्षमता के स्तर पर नारी पुरुष से भिन्न या निम्न नहीं है । प्रकृतिदत्त शारीरिक भिन्नता के अलावा उसमें जो कुछ भिन्न या दुर्बल या निचले स्तर का रहा है, वह विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों एवं परिवेश की उपज है, जो अधिकांशतः पुरुष द्वारा निर्मित है ।

सामाजिक विकास-क्रममें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण हम निम्न रूप में विभाजित करेंगे ।

1·2·1 आदिम सहयोगी सम्बन्ध

स्त्री और पुरुष समाज-निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं । नर-नारी दो है, पर दो नहीं है । अदम्य चेष्टा है उनमें एक हो जाने की । इस प्रयास में नाना प्रकार की परम्पराओं को जन्म मिलता है इन सीढ़ियों में अौंधियारीयों का पार नहीं । समाज के परिवर्तन के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन होता रहता है ।

आदिम युग को एक तरह से स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों का "स्वर्णयुग" भी कहा जा सकता है क्योंकि इनके सम्बन्ध एक दूसरे के सहयोग पर

आधारित है । इस युग में उच्च-नीच वर्ग नहीं है, इमें नहीं यहां तक कि युग से व्यक्ति के अलग अस्तित्व का ख्याल भी नहीं था । सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते है, साथ मिलकर खाद्य संग्रह करते है साथ भोजन करते है, साथ ही श्रम-परिश्रम करते है । स्त्री पुरुष छोटे-छोटे सामाजिक समूहों में रहते हुए प्रकृति से संघर्ष करते है । एक दूसरे के कार्य में सहयोग पर ही आधारित है । पुरुष लड़ाई करते है, मछली और जानवर का शिकार करने जाते है, खाद्य सामग्री और औषधि हथियार प्रस्तुत करते है, स्त्रियाँ घर का काम देखती थी, खाना कपड़े का इन्तजाम रसोई बुनाई, का काम करती थी । यह सब कार्य आपसी सहयोग से होता था । क्योंकि अपने-अपने क्षेत्र पर स्त्री और पुरुष का समान अधिकार था । यहां नहीं जीत का स्वामी पुरुष था, और घर की मालकिन स्त्री थी । पिछले पृष्ठों पर हम चर्चा कर चुके हैं कि किस प्रकार उत्पादन के साधनों पर अधिकार के स्थानान्तरित होने के साथ-साथ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में परिवर्तन आया है । मानव समाज में एक समय था जब स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध सहयोगी है । मातृ सत्तात्मक समाज व्यवस्था में तो स्त्री का वर्चस्व ही प्रधान था । इसकी चर्चा करते हुये Jofreeman लिखते है कि मातृसत्तात्मक समाजों में सम्पत्ति पर अधिकार समूहों की सदस्यता और वंश माता से निर्धारित होते है, इस कारण स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी ।[1]

यह आदिम सहयोगी उस समय और भी दृढ़ हुए जब सन्तान का आगमन पुरुष के लिये एक आश्चर्य था । स्त्री की इस रहस्यमयता के प्रति वह पराभूत हो गया । "स्त्री और पुरुष के इसी स्वभावजनित भेद ने उन्हें एक दूसरे के निकट परिचय प्राप्त करने योग्य बना दिया । स्त्री का जो आकुल यौवन पुरुष को पराभूत करने के

- -

1. Woman : A Feminist Perspective : Jofreeman :p.45.

लिये हुआ था वह सन्तान के आगमन से और भी दृढ़ हो गया । उसने देखा कि उसे एक मात्र पुरुष पर शासन ही नहीं करना है, वरन् अनेक पीढ़ियों को भी उसी समान सबल बनाना है । उसके इस कर्तव्यबोध के साथ ही युग की नींव पड़ी जब उसने अपने शिशु को सामने रखकर कहा कि इसे तुम्हारे समान बनाने के लिये मुझे निरन्तर धूप-शीत से बचाने वाली छाया, निश्चिन्त स्थल से मिलने वाला भोजन और निवास् स्थल से हिंसक पशु, शत्रु आदि से रक्षा करने वाले प्रहरी के रूप में तुम्हारी आवश्यकता है, तब पुरुष पत्तों की कुटी बनाकर आखेट द्वारा भोजन का प्रबन्ध करके अपनी सारी शक्ति से उस नये संसार की रक्षा करने में उद्यत हुआ ।"1.

भारतीय सन्दर्भ से इस प्रकार स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आदिम सहयोगी सम्बन्ध को देखें तो यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वैदिककालीन युग इस युग से बहुत ही विकसित हुआ था, क्योंकि इस युग में स्त्री का दर्जा पुरुष से भी ऊँचा था । " आदिम विकास की स्थितियों हमें प्रायः सभी मानव समूहों में आश्चर्यजनक समानता मिलती है । विवाह संस्था की प्रतिष्ठा के पूर्व अधिकांश कुटुम्बों का विधायक मानव मातृ सत्तात्मक ही रहा होगा और संतान का परिचय माता के नाम से ही दिया जाता होगा । इसके अतिरिक्त सृजन की रहस्यात्मकता के कारण मातृत्व के सम्बन्ध में आश्चर्य जनक शक्तियों और रहस्य की कल्पना स्वाभाविक रही होगी । मिस्र, ग्रीस, यूनान, मेसोपोटामिया ईसर आदि की पूजा के मूल में आदिम आतंक और आश्चर्य की भावना ही गतिशील रही है ।2. वैदिक कालीन भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष का आपसी सहयोगी सम्बन्ध सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । धार्मिक कर्म पति-पत्नी आपसी सहयोग से करते थे । स्त्री और पुरुष का परिवार के सभी कार्यों में समान अधिकार था ।

---

1. संभाषण : महादेवी वर्मा : पृ. 184.
2. संभाषण: महादेवी वर्मा : पृ. 112.

सिर्फ पुरुष ही वैदिक शिक्षा एवं यज्ञ आदि नहीं करते थे, बल्कि स्त्री भी वैदिक शिक्षा एवं यज्ञ आदि करती थी । यही नहीं उनका पुरुषों के समान " उपनयन संस्कार" होता था । लड़के और लड़की दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी । वैदिक समाज रचना में पत्नी सहधर्म चारिणी थी । उसके बिना न कोई धर्मकाण्ड सम्पन्न हो सकता था न सामाजिक कर्म सफल हो सकता था ।इसलिए निकट सहयोग से एक ओर समाज को पुरुष का संरक्षण मिला और दूसरी ओर नारी को कोमल और मधुर सिद्धान्तों की सफलता । अल्तेकर के अनुसार वैदिक काल में स्त्री की इस संतोषजनक स्थिति के होने के दो प्रमुख कारण थे । राजनीति और धार्मिक । पुरुष प्राय: सैनिक गतिविधियों में व्यस्त रहते थे अत: उनको पारिवारिक कार्यों में स्त्रियों की सहायता की आवश्यकता रहती थी और स्त्रियों को भी इस बात का गर्व था कि वे समाज की महत्वपूर्ण सदस्याएं हैं । महाभारत में [12/45/61] स्त्री और पुरुषों के आपसी सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए पत्नी के महत्व को बताया गया है कि " घर घर नहीं किन्तु गृहिणी ही घर है, गृहिणीविहीन घर अरण्य सदृश्य है वृक्ष के नीचे भी यदि पत्नी हो तो वह घर है, उसके बिना महल भी बीहड़ जंगल है । संसार में भार्या के समान कोई बन्धु अथवा धर्म-कार्य में सहायक नहीं है । जिसके घर में साध्वी और प्रियवादिनी भार्या न हो उसे वन में चले जाना चाहिए ।

स्त्री-पुरुष शासन की व्यवस्था, सभा, समिति आदि में आपसी सहयोग देते थे । स्त्री पुरुष के समान ही भाषण एवं विवादों में भाग लेती थी । विश्पला का युद्ध में जाना या मुद्गलानी का शत्रुओं से युद्ध करके सौ गायें छीन लाना प्रमाणित करता है कि पुरुष के साथ-साथ स्त्री का कार्यक्षेत्र राष्ट्र की सेवा तक फैला हुआ था । ऋग्वेद [5/7-36] में पत्नी से सम्भाषण करता हुआ पति कहता है कि " हम दोनों को आयु मधुमय हो, हमारे मुख तेज समान हो, मुझे अपने हृदय में स्थापित करें । हमारे मन एक साथ हो, दाम्पत्य

की यह भावना पुरुष और स्त्री के पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाती है जिसके समकक्ष संसार की अन्य किसी जाति के साहित्य में ऐसी सुन्दर कल्पना नहीं मिलेगी।"1" अर्द्ध नारीश्वर का रूप भी स्त्री और पुरुष के सहयोगी सम्बन्धों को देखकर ही किया गया है। वैदिक काल के समाप्त होते-होते मध्ययुग तक यह आदिम सहयोगी सम्बन्ध पूर्ण रूप से शोषक-शोषित सम्बन्धों में परिवर्तित हो गये।

इस प्रकार आदिम सहयोगी सम्बन्धों को विवेचित करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सामाजिक विकास क्रम में स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों का पहला युग आपसी सहयोग का युग था। जिसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता है। स्त्री और पुरुष आपसी सहयोग से अपना जीवन यापन करते थे पर जैसे-जैसे पुरुष में यह भावना घर करती गई कि वह स्त्री से सबल है, और आर्थिक एवं सामाजिक रूप से जब स्त्री उसे अपने ऊपर आश्रित दिखाई देने लगी। जिसे पहले "शक्ति" माना जाता था वही अब दासी एवं भोग्या बन गई तथा यह आदिम सहयोगी सम्बन्ध शोषक और शोषित सम्बन्धों में परिणत हो गये।

1·2 2 <u>शोषक-शोषित सम्बन्ध</u>

समाज के विकास के साथ-साथ स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों में परिवर्तन भी स्वाभाविक है। जैसे ही मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था समाप्त हुई और उसके स्थान पर पितृसत्तात्मक समाज स्थापित हुआ वैसे ही समाज में पुरुष का प्राधान्य होने लगा। इसे स्पष्ट करते हुये एंगेल्स ने अपनी पुस्तक " Origin of Family " में लिखा है कि "मातृअधिकार की समाप्ति संसार में नारी जाति की ऐतिहासिक पराजय थी। इसके बाद से पुरुष ने घर में भी अधिकार स्थापित कर लिया। स्त्री उसकी वासना की दासी और शिशु उत्पादन के लिये साधन-मात्र में परिवर्तित होती चली गई।

- -

1· भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास : चन्द्रकली त्रिपाठी, पृ· 19·

इस तरह आदिम युग के सहयोगी सम्बन्ध शोषक-शोषित सम्बन्धों में परिवर्तित हो गये । आज संसार के अधिकांश भागों में नर और नारी का पारस्परिक पूरक-सम्बन्ध आज अपनी वह स्वाभाविकता कायम नहीं रखा है । सृष्टि के उषाकाल में जो नर और नारी दो स्वतंत्र, उन्मुक्त स्वच्छगामी एवं स्वच्छंद झरनों के रूप में एक होकर सृष्टि की धारा बनी थे, आज मानों उन्हें दो अलग-अलग टबों में भरकर एक नाली में बहा दिया जाता है । यही आज के समाज का क्रम है । स्त्री और पुरुष के शोषक-शोषित सम्बन्ध उस समय शुरू होने लगे जबकि जीविका के अर्जन में पुरुष अपने को प्रधान मानित करने लगा, साथ ही वह समाज अपनी वैधानिक विशेषता दिखाने में सफल हुआ । यहाँ अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए समाज को उसने अनेक देशों, जातियों, धर्मों और रक्त-श्रेणियों में बाँट दिया है । उसने न जाने कितने विभाजक पर्दे और दीवारें भी खड़ी कर दी उनमें से कुछ का किसी हद तक , औचित्य एवं आवश्यकता स्वीकार भी की जा सकती है । पर इस संकीर्णता की भावना ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को काफी कटु, अस्वाभाविक एवं पाशविक बना दिया । परिवार की स्थापना के साथ ही व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना जागृत हुई । इस स्थापना के साथ ही स्त्री भी व्यक्तिगत सम्पत्ति बनी । स्त्री इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय के साथ पदच्युत कर दी गई । उसके बाद से उसका इतिहास अधिकांशतः व्यक्तिगत सम्पत्ति और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ ही जुड़ा हुआ है ।[1]

समय के व्यतीत होने के साथ-साथ ऊँची विचारधारायें और पवित्र आदर्श इतने बदले कि युग ही बदल गया । पुरुष स्त्री पर शोषक के रूप में हावी होता गया । स्त्री को न अब कोई स्वतंत्रता थी, और न पहले से अधिकार । पुरुष ने शारीरिक एवं धार्मिक दृष्टि से स्त्री को अपने ऊपर आश्रित पाकर उसके सारे अधिकार छीन लिये । स्त्री की यही कमजोरी पुरुष के शोषक होने का साधन बन गई थी । जब एक जाति किसी आदर्श से एक बार गिर जाती है तो वह गिरती ही जाती है । पुरुष के साथ भी इसी प्रकार हुआ । शक्ति का

- -

1. The Second Sex : S.D.Beauvoir : p.113.

लोभ उस पर इतना बढ़ा कि एक समय ऐसा आया कि उसने स्त्री पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लिया ।

वैदिक युग के आदर्श दम्पत्ति धीरे-धीरे शोषक-शोषिका दम्पत्ति की ओर अग्रसर हो रहे थे । भारतीय नारी के जो अधिकार थे, वह धीरे-धीरे पुरुष छीनता जा रहा था । पहले जो "साम्राज्ञी" थी वही अब एक साधारण सी आश्रिता पत्नी के रूप में स्थापित की गई थी । वैदिक युग का दृष्टिकोण, जो स्त्री के प्रति दिव्य कल्पनाओं तथा पुनीत भावनाओं से परिवेष्ठित था, अब पूर्णतया बदल चुका था । [1] उसे अब पुरुष से हीन माने जाने लगा, उसे सार्वजनिक क्षेत्रों में भाग न लेने के लिये अयोग्य ठहराया गया । यही नहीं पुरुष ने उसे उपनयन संस्कार से भी वंचित कर दिया। पुरुष उसके विरुद्ध नये नये विधान रचने लगा । शास्त्र कहे जाने वाले यह ग्रन्थ मानवता के कलंक तो है ही साथ ही पुरुष की नीचता, स्वार्थपरता और बुद्धि-भ्रष्टता के सबसे बड़े प्रमाण भी है । स्त्रियों को श्रुति का पाठ तक करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया । "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" - ऐसे वाक्यों की मनगढ़ंत रचना करके स्त्रियों को मानवता के क्षेत्र से निकाल फेंका गया ।

यही नहीं जहाँ पुरुष के लिए 16 संस्कार माने जाते है वहीं स्त्री के लिये केवल एक ही संस्कार रह गया " वैवाहिको विधि: स्त्रीणां संस्कारो वैदिक: स्मृत: स्त्री के लिये विवाह ही एक संस्कार है यह माना जाने लगा । यही नहीं मनु ने उसके विरुद्ध यह सिद्धांत रचा कि स्त्री स्वतंत्र नहीं है, बचपन में पिता उसकी रक्षा करता है, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र, स्त्री कभी स्वतंत्र होने के योग्य नहीं है । हर रूप में पुरुष शोषक के रूप में ही उसके सामने आया । पिता के रूप में कहे जाने वाले पुरुष ने

---

1. स्त्रियों की स्थिति : चन्द्रावती लखनपाल : पृ. 25.

जिससे चाहा, उसको ब्याह दिया, चाहे भले ही वह जन्म भर सिसकती रहे । उसने वर ढूंढते समय सदा अपनी प्रतिष्ठा और हित का ख्याल पहले रखा और कन्या के सुख-स्वास्थ्य का बाद में । यह भी कहा गया कि जो पत्नी पति की आज्ञा का पालन करेगी वही स्वर्ग लोक को प्राप्त करेगी । सम्पत्ति पर जितना ही पुरुष का अधिकार बढ़ता जा रहा था, स्त्री उतनी ही पुरुष की सम्पत्ति बनती जा रही थी । विवाह जैसी संस्था भी स्त्री शोषण का नया उपकरण बनी । "सिमोन द बउवा" इसका विश्लेषण करते हुये लिखती है कि विवाह के द्वारा स्त्री को एक वंश से दूसरे वंश को दे दिया जाने लगा । वह जिस परिवार में उत्पन्न हुई थी वहाँ से उसे उन्मूलित कर दूसरे परिवार और दूसरे वंश में प्रत्यारोपित किया जाने लगा । इस संस्था के द्वारा पुरुष स्त्री को एक पशु या दास के रूप में खरीदता है । वह उस पर अपने घर के कार्यों का दायित्व लाद देता है और उससे जो बच्चे उत्पन्न होते हैं वे उसके पति के परिवार के ही समझे जाते हैं । पिता के घर की सम्पत्ति से भी उसे बड़ी चतुराई से वंचित कर दिया जाता है और पति के यहाँ वह स्वयं एक सम्पत्ति बनी हुई है । इस प्रकार स्त्री एक "व्यक्ति" के रूप में कहीं सम्मानित नहीं होती । वह पुरुष की सम्पत्ति ही बनी रहती है । पहले अपने पिता की, फिर अपने पति की । यह दूषित मनोवृत्ति छोटे बच्चों तक में भेद-भाव कराती है । लड़कों को जहाँ जीने के सारे अधिकार दिये जाते हैं, वहाँ लड़कियों को जन्मते ही हत्या कर देने की प्रथा इस समाज में रही है ।

सामंत युग तक आते-आते यह शोषक और शोषित सम्बन्ध और भी जटिल हो जाते हैं । पुरुष स्त्री पर मन-माना अत्याचार करने लगा । इस युग में स्त्री व्यक्तिगत सम्पत्ति के साथ-साथ उपभोग्य की वस्तु भी बन गई । यहीं से स्त्री का आँसू भरा जीवन प्रारम्भ होता है, जो सदियों उसे खून के आँसू रुलाता रहा । वह असहाय की तरह पुरुष की कृपापात्र बन कर रह गई । वेदों के प्रसार

के साथ ही सामन्ती व्यवस्था का प्रसार हुआ । दासता के रूप में भी इस युग में नारी शोषण का शिकार होती गई । दासियाँ भी राजाओं के अन्तःपुर में जाने लगी । इन पर पुरुष मनमाना शोषण करते थे । राजा-महाराजा जब चाहे उनका उपभोग करते थे । यही नहीं सामन्त लोग राजा-महाराजाओं को खुश करने हेतु सड़कों आदि पर जो खूबसूरत स्त्रियाँ मिलती थी, उनको बलपूर्वक उठाकर, उनका उपभोग करते थे । स्त्री शोषण का यह दायरा बढ़ता हुआ समाज के अन्य वर्गों में भी फैलने लगा । इस युग में स्त्रियों को छिपा कर रखने की प्रवृत्ति जागृत हुई । जैसे "गाय-बैलों की स्वतंत्र स्थिति नहीं थी उसी प्रकार स्त्री की भी स्वतंत्र स्थिति नहीं थी । अपनी सम्पत्ति को जिस प्रकार प्रयत्न से सुरक्षित रखा जाता था, सुका छिपा कर रखा जाता है, उसी प्रकार स्त्री को भी छिपाकर रखने का प्रयत्न होता था, उसे सब किसी की आँखों से बचाने की कोशिश होती थी । स्त्री की दासता का यही भाव पर्दे के रूप में हमारे समाज में अब तक बना हुआ है ।[1]"

सामन्त युग के पुरुषों ने ही स्त्री-पुरुष वेश्यावृत्ति को प्रारम्भ किया । गरीबी के कारण स्त्रियों को पैसे की खातिर शरीर बेचना पड़ा । स्त्री को यह कार्य करने पर मजबूर करने वाला पुरुष ही था । वह स्त्री को विलास-सामग्री से अधिक नहीं समझता था । सामन्त युग में स्त्री की कदर क्या थी, यह इस नीति वाक्य से मालूम होता है -

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥"

इसके अलावा पुरुष के शोषण का क्रूर रूप यहाँ भी दिखाई देता है, सती प्रथा और सहमरण अर्थात स्त्री को बलपूर्वक पति के साथ जला दिया जाता था और स्त्री की सुविधा के विचार से उन्होंने अपनी

- -

1. स्त्रियों की स्थिति : चन्द्रावती लखनपाल : पृ. 111.

पत्नी के अलावा दासियों को भी वहाँ साथ ले जाना आवश्यक समझा और सहमरण समाज की अत्यावश्यक प्रथा बन गई । सामन्ती युग में जितनी कड़ाई स्त्री के लिये थी उतनी पुरुष के लिये नहीं । अनेक सामन्ती पुरुष ब्याह पद और धन को देखकर करता था और उसे यह भी अधिकार था कि अगर उसे अपनी पत्नी पर यदि सन्देह है तो वह उसकी हत्या तक कर सकता था । इसके विपरीत पत्नी को पति की स्वेच्छाचारिता चुपचाप जहर की घूँट की तरह पीनी पड़ती थी । क्योंकि पुरुष की स्वेच्छाचारिता तो हँस कर उड़ा देने वाली होती थी और स्त्री की समाज में नाक कटने वाली बात थी । यह सब ढोंग की तह में रहा है, पुरुष का स्वार्थ । पुरुष की यह प्रवृत्ति अपने अधिकार लिप्सा के बल पर स्त्री अपने पाँव की जूती या ढोर, गँवार और पशु की श्रेणी में रखने की अमानुषिक प्रवृत्ति है । इस युग के पुरुष ने स्त्री की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक- सब प्रकार की उन्नति को रोक कर उसकी स्थिति घर में परिसीमित कर दी गई । पति की सेवा करना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य निर्धारित कर दिया गया । " पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।"

महापुरुषों के विचारों के कारण भी स्त्री शोषण को बढ़ावा ही मिला । जैसे मनु ने यह लिखा कि स्त्रियाँ विश्वास करने योग्य नहीं, स्वतंत्र करने लायक नहीं है । यह ही नहीं मनु ने स्त्रियों की स्वतंत्रता ही छीन ली । मनुस्मृति में उन्होंने लिखा है -

" अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ;
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ।
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ;
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।।"1"

तुलसीदास जैसे कवियों ने "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी जैसे पदों की रचना की । कबीर भी इनसे कम

- -

1. मनुस्मृति : 9/2-3.

कहीं है उन्होंने भी स्त्री के विरुद्ध में अनेक दोहों की रचनायें की है ।

नारी की झांईपरत, अन्धा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी संग ।।
नारी तो हम भी करी, जाना नहीं विचार ।
जब जाना तब परिहरि, नारी बड़ा विकार ।।

इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विचारकों ने भी स्त्री के विरुद्ध अनेक बातें कहीं है, और पुरुष की श्रेष्ठता का गुणगान किया है । एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है कि स्त्री के न चरित्र होता है न आत्मा" ।[1] (Most women have no character at all) बाइबिल में तो स्त्री को roof of all evil अर्थात् सारे अनर्थों या अहितों का मूल कहा है । क्रिश्चियन सेन्टपाल ने लिखा है कि स्त्री पराधीन रहकर ही खामोशी से सीखती है ।[2] यूरोप के प्रसिद्ध लैटिन धर्मोपदेशक टारटुलियन ने नारी के सम्बन्ध में लिखा है कि Thou art the devil's gate the betrayer of the tree, the first desert of the divine Law

"अर्थात स्त्रियाँ शैतान का दरवाजा है और तू दैवी नियम या धर्म का सबसे पहले परित्याग करने वाली है । अतः जब देश में कोई विशेष नियम प्रतिष्ठित होता है, तब एक ही दिन में नहीं, बल्कि बहुत धीरे-धीरे सम्पन्न हुआ करता है । जो लोग उसे सम्पन्न करते हैं, वे पुरुषों के अधिकारों की व्यवस्था करते हैं । उस समय वे लोग पिता नहीं होते, भाई नहीं होते, पति नहीं होते है केवल पुरुष । जिन लोगों के सम्बन्ध में वे नियम बनाये जाते हैं वे भी आत्मीय नहीं होती, बल्कि होती है केवल नारियाँ । पुरुष उस सम

---

1. Ane hence is La Bruyere : Les Femmes sent extrems clles sont meilleyresou pires queles homes.

2. Let the woman learn in silence with all subjection : Saint Paul : (The Woman Movement : Burbara Simdir Deckard :

पिता बनकर कन्या के दुःख का विचार नहीं करता । वह उस समय केवल पुरुष रहकर पुरुषों के स्वार्थ का ही विचार करता है । वह केवल इसी प्रकार के उपायों की उद्भावना करता रहता है कि स्त्रियों से किस प्रकार और कितना अधिक वसूल किया जा सकता है । इसके बाद मनु आते हैं, पराशर आते है, कृष्ण आते है, पाल आते हैं, और वे लोग श्लोक पर श्लोक बनाते जाते और शास्त्रों की रचना करते जाते है । स्वार्थ उस समय धर्म बनकर मजबूत हाथों से समाज का शासन करने का अधिकार प्राप्त करता है । देश का पुरुष समाज व्यवस्थित होता है और शास्त्रकार केवल उस समाज के बनाये हुये नियमों के लिखने वाले मशीन्जी ।"1.

औद्योगिक विकास के कारण पूँजीवादी युग प्रारम्भ होता है । इस युग तक आते-आते स्त्री के शोषण की सीमा चरम तक पहुँच चुकी थी । स्त्री मनुष्य है यह पुरुषों ने समझना ही छोड़ दिया था । पूँजीवाद ने स्त्रियों के शोषण को खासतौर से बढ़ाया था । पूँजीवादी युग में स्त्री का इतना शोषण किया जाने लगा था कि वह मात्र उपभोग्य वस्तु ही रह नहीं गई बल्कि साथ ही व्यावसायिकता के क्षेत्र में क्रय-विक्रय का भी साधन बन गई । उसे पैसों से खरीदा भी जाने लगा । पूँजीपति वर्ग वेश्यावृत्ति का क्रय-विक्रय करने लगा । इस व्यापार को उन्होंने अपने हाथ में लिया । स्त्रियाँ आर्थिक कारणों से ही इस क्षेत्र में आई थी, परन्तु पूँजीपति वर्ग ने छिपाते हुये अपने व्यवसाय का एक साधन ही बना लिया । यहाँ नहीं वेश्या व्यापार के लिए खरीदे और बेचे भी जाते है । "वेश्या-व्यापार पूँजीपति के लिये बड़े मजे की चीज है । उसके बारे में कुमारी हमीन का कहना है कि वह फौलाद, तेल, कोयला, मोटर निर्माण से भी ज्यादा है । उसका प्रबन्ध दूसरे बड़े औद्योगिक व्यवसाय जैसा होता है । दूसरे उद्योगों की तरह इसे सिर्फ पूँजीपति के फायदे के लिये चलाया जाता है ?.

1. नारी का मूल्य : शरत चन्द्र : पृ 21.

2. मानव समाज : राहुल सांकृत्यायन : पृ. 235.

अतः पूँजीवादी समाज में स्त्रियों का शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों से शोषण होता था । इस पूँजीवादी समाज-व्यवस्था में स्त्री के तन और मस्तिष्क पैसे से खरीदे जाते हैं । पुरुष के इस दूषित दृष्टिकोण ने स्त्री को निरक्षर एवं अज्ञानग्रस्त रख कर आज ऐसा निर्जीव जीव ना समझ बना दिया है कि वह अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं पृथक अस्तित्व भूल सी गई है । कभी भूमि, गाई और अज्ञान ग्रस्त स्त्री को पुरुष ने वन्दनीया, पूजनीया, आत्मत्याग की प्रतीक और न जाने क्या-क्या काव्यात्मक संज्ञाएं देकर अपनी चिर दासी बना लिया । दासी बनाकर पुरुष ने अपने विलास और सभ्यता के लिये मनचाहे ढंग से बेचा, खरीदा और रखा, निकाला - गुड़िया की तरह सजाया या भिखारिन बनाकर घर से बाहर निकाल दिया ।

"दिनकर" जी का कहना है कि वेश्या प्रथा का प्रचलन नैतिकता की असफलता का सबसे बड़ा प्रमाण है और उससे इस बात का भी पता चलता है कि पुरुष ने नारी को दबा रखने के लिए कितना बड़ा षड्यन्त्र किया है । पुरुष ने अपने आनंद के लिये नारियों का वेश्यालय खड़ा किया ।[1] पुरुष ने उसे नौकरानी से लेकर वेश्या तक बना डाला । अपने इस शोषण में उसने स्त्री को उठने का अवसर तक नहीं दिया । समाज के नियमों और पद्धतियों का जाल उसने कुछ ऐसा बिछाया है कि वह उसमें नहीं निकल सकी । "समाज में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जहाँ अपनी स्वेच्छाचारिता के आधार पर पुरुष ने स्त्री को प्रताड़ित किया है । वह अपमानित की गयी है, उसे लांछित किया गया है । न सह पाने की असमर्थता ने आत्महत्या करवायी है या फिर नारी जीवन भर घुट-घुट कर रोयी है और पुरुष सदाचारी बनकर सिर ऊँचा किये समाज में घूमा है । समाज, धर्म और राजनीति उसके किए को भूल गये हैं, उसके जघन्य कुकृत्यों

- -

1. विवाह की मुसीबतें : रामधारी सिंह दिनकर : पृ० 31.

की ओर आँखें बंद कर ली है । वह लड़की के साथ समाज में उठता बैठता है, तथा सोसाइटियों में दिखता फिरता है । यह स्थिति नारी के सम्बन्ध में है । यदि किसी कारण वह समाज में एक बार भी लांछित हो गई तो जीवन भर के लिये कहने को हो गया । फिर तो वहशत तो छेद जाती अपनी भी उसके विरोध में बोलेगी ।[1]

किन्तु यह मानना पड़ेगा कि आर्थिक विकास ने स्त्री को अपने अस्तित्व का मूल्य समझना और वसूल करना सिखाया है । यह यांत्रिक सभ्यता ही थी जिसने स्त्री को उसकी आर्थिक मुक्तता दिलाई । "सिमन द बउवा" 19वीं शती के इस परिवर्तन को रेखांकित करते हुये लिखती है यंत्रों के आगे स्त्री और पुरुष के मध्य शारीरिक वैषम्य बहुत सीमा तक उपेक्षित हो गया । उद्योगों के तीव्र विकास ने अधिक से अधिक श्रम शक्ति की मांग की । जिसे पूरा करने में पुरुष अकेले समर्थ नहीं थे । इसलिये स्त्रियों का सहयोग आवश्यक हो गया । इस प्रकार 19वीं सदी में एक महान् क्रान्ति थी जिसने स्त्री के अस्तित्व को रूपान्तरित किया और एक नये युग का द्वार उसके लिये खोल दिया ।[2]

किन्तु एक वर्ग विभक्त समाज में हर स्थिति का शोषण किया जाना सम्भव है । स्त्री के नियोजित आर्थिक मूल्य के सम्बन्ध में भी यही हुआ । 19वीं शती के आरम्भ में स्त्री का शोषण श्रम के स्तर पर भी होता था । उन्हें उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था । अब यद्यपि कानूनी अधिकारों के द्वारा स्त्री को आर्थिक समानता प्रदान कर दी गई है, फिर भी समाज और परिवार में अनेक प्रकार से उसका शोषण और उसकी आर्थिक क्षमताओं का भी शोषण जारी है ।

- -

1. नारी : जैनेन्द्र कुमार : पृ. 6.

2. The Second Sex : S.D. Beauvoir :p143-144.

3. The -do- -do- p.147.

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि जहाँ आदिम युग में स्त्री-पुरुष के सहयोगी सम्बन्ध थे वहीं बाद में समाज के परिवर्तन के साथ-साथ पुरुष का स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानने के साथ-साथ ही शोषक-शोषित सम्बन्ध स्थापित हुए यह सम्बन्ध सिर्फ व्यक्तिगत सम्पत्ति तक ही नहीं बल्कि स्त्री को उपभोग्य वस्तु एवं क्रय-विक्रय का साधन भी बनाया है । इस प्रकार "प्राचीन भारत की ब्रह्मवादिनी नारी शूद्र स्तर और नारी किस तरह घोड़े से उतरकर पालकी और पर्दे में आई । शास्त्रार्थ करने वाली विदुषी महिला धीरे-धीरे अशिक्षा के अन्धकार में डुबोती चली गई । आज स्त्री स्वतन्त्र प्रेम व चुनाव का अपना अधिकार खोकर मानसिक गुलामी और शारीरिक शोषण का शिकार हुई ।"1.

<u>1.2.3 मानवीय सम्बन्ध</u> स्त्री पुरुष सम्बन्धों की पिछली तीन स्थितियों के बाद की चौथी स्थिति है - सहज मानवीय सम्बन्धों की, यह स्थिति अधिकांशतः अभी कल्पना तक ही सीमित है । सहज मानवीय सम्बन्धों से तात्पर्य है स्त्री और पुरुष का अपने लिंग मूलक मानसिकता के शिकंजों से ऊपर उठकर सहज सम्बन्ध स्थापित करना । इसका अर्थ है कि स्त्री स्त्री तो रहेगी लेकिन पुरुष की भोग वासना और आर्थिक शोषण की वस्तु नहीं बल्कि एक मानवी के रूप में, और पुरुष पुरुष रहेगा किन्तु स्त्री का भोक्ता स्वामी या शोषक बनकर नहीं बल्कि एक मानव बनकर जीवन संघर्ष में दोनों का समान भाग होगा । जैसा कि सम्भवतः के आदिम युग में था । यह ठीक है कि आदिम समाज की उस अवस्था की तुलना में आज की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियाँ कई गुना अधिक जटिल और बहुस्तरीय हो गई हैं । अब वहाँ लौटने का प्रश्न नहीं । लेकिन लौटना तो होगा ही । यह लौटना आदिम, जंगली और जाहिल युग में लौटना नहीं बल्कि स्त्री पुरुष सम्बन्धों के उस

- -

1. नारी शोषण : आइने और आयाम : आशारानी व्होरा :पृ.18.

सहयोगी और समान स्तर पर लौटना होगा जिसके कारण उस युग का मानव जीवन में संघर्ष कर रहा था । संघर्ष अब भी है और पहले से कई गुना अधिक है । किन्तु अब तो यह संघर्ष एक ओर स्त्री पुरुष का सहअस्तित्व से है तो दूसरी ओर स्त्री पुरुष का आपसी भी है । कोई भी प्रगति दोनों पक्षों में से है । एक को दबा कर या पूरी तरह से दमित करके सम्भव नहीं । मानव समाज की नई सभ्यता और नई संस्कृति तभी होगी जिसमें स्त्री और पुरुष में सहज मानवीय सम्बन्ध स्थापित होगा । फिर प्रश्न उठता है कि यह कैसे सम्भव होगा ? स्त्री की दैहिकी और मनोविज्ञान, आर्थिक तथा उसके सामाजिक विकास के अध्ययन से हम देख चुके हैं कि अपने पिछड़ेपन के लिये कुछ सीमा तक स्त्री खुद भी उत्तरदायी है । उसे अपनी उन सारी ग्रन्थियों से उबरना होगा जो कि उसे एक स्त्री योनि के रूप में सीमित रखने के लिये प्रतिबद्ध है । यह किसी पुरुष ने ठीक ही प्रश्न उठाया है कि स्त्रियों को यदि पुरुष की बराबरी करनी हो तो उसे अपना "मेकअप" और "फैशनपरस्ती" छोड़नी होगी । बात हास्यास्पद लगती है, किन्तु इसमें तथ्य है । प्रसाधन से विमुख होना अपने स्त्रीत्व से विमुख होना नहीं है । उक्त पुरुष के कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जब तक स्त्रियाँ अनेक प्रकार के प्रसाधनों से अपने आप को पुरुष के आकर्षण की वस्तु बनाये रखेंगी तब तक पुरुष भी उपभोक्ता बना रहेगा । स्त्री को अपने व्यक्तित्व का ऐसा विकास करना है कि पुरुष उसके प्रति उपभोग की नहीं बल्कि एक साथी बनने की आकांक्षा रखे । यह प्रसाधन विरोधवादी दृष्टिकोण वस्तुतः स्त्री के उस यौन-चेतना का निराकरण करना चाहता है जिससे प्रेरित होकर वह अपने यौन आकर्षण के द्वारा पुरुष को लुभाने और विजित करने में गर्व अनुभव करती है । जबकि वास्तविकता तो यह है कि इस क्रम में वह स्वयं उपभोग की "वस्तु" बन जाती है । और यही उसके मानवीयत्व की पराजय है ।

आर्थिक स्वाधीनता भी स्त्री के उत्थान के लिये आवश्यक है । आज स्त्री देश और विदेश सभी जगह अपनी आर्थिक क्षमता प्राप्त

करने में निश्चय ही सक्षम है किन्तु इसके साथ कुछ मानसिक दुविधायें भी जुड़ी हुई है । विशेषकर विवाहित स्त्रियों के सम्बन्ध में । पुरुष का मनोविज्ञान अपनी पत्नी को घर की स्वामिनी और श्रमिक दोनों रूपों में देखना होता है । वह अपनी पत्नी से यही अपेक्षा करता है कि वह नौकरी करते हुये भी घर के क्षेत्र में सभी तरह की व्यवस्था रखे । घर बाहर के इस द्वन्द्व में स्त्री का व्यक्तित्व विघटित हो जाता है । जैसा कि "सिमन द बउवा" लिखती है कि आज की स्वाधीन स्त्री अपनी आजीविका और अपने यौन जीवन के बीच विभक्त हो गई है । दोनों में सन्तुलन स्थापित करना उसके लिये कठिन है यदि वह कर भी लेती है तो उसे इतनी सहिष्णुता और त्यागशीलता का परिचय देना होता है कि वह मानसिक रूप से निरन्तर तनाव की स्थिति में रहती है । 1.

भारतीय नवजागरण के आरम्भ से स्त्री और पुरुष में सहज और समान सम्बन्धों की कल्पना भी दिखाई देती है । राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गाँधी तक का हर पुरुष स्त्री-स्वातंत्र्य , स्त्री-शक्ति और स्त्री-पुरुष समानता की बात करता है । वे लोग इतने आदर्शवादी है कि लगता है कि इनके द्वारा जैसे भारत का पुरुष सदियों से चली आ रही स्त्री के प्रति अन्याय पूर्ण व्यवहार का पाप-शोधन कर रहा हो । गाँधी जी ने स्वीकार किया था कि शारीरिक बल में पुरुष भले ही स्त्री से अधिक बलवान हो किन्तु आत्मिक बल में स्त्री ही पुरुष की अपेक्षा अधिक शक्तिशालिनी है । महात्मा गाँधी ने इस बात को अच्छी तरह जान लिया था कि जहाँ एक बार स्त्री ने अपने हीन होने की भावना को परे फेंक दिया वहीं उसके पाँव दृढ़ भूमि पर जम जायेंगे और वह सक्रिय होकर कार्य क्षेत्र में डट जायेगी । विवेकानन्द ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की मान्यता

---

1. The Second Sex : S.D.Beauvoir : p. 705.

देते हुये लिखा था कि पुरुष से भिन्नता में ही नारी का आकर्षण है । वे कहते हैं कि नारीत्व जिसका अपना एक पृथक अस्तित्व हो अपना एक अहम हो, गौरव हो अपना स्वाभिमान अपनी उपयोगिता और अपनी सार्थकता हो । और जो न पुरुष से हीन मानी जाय न पुरुष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करें । प्रेमचन्द ने अपनी अन्तिम कृति गोदान में लिखा था कि पुरुष के गुण यदि स्त्री में आ जाये तो वह कुलटा हो जाती है किन्तु स्त्री के गुण यदि पुरुष में आ जायें तो वह देवता बन जाता है । ऐसे अन्यान्य विद्वानों ने स्त्री शक्ति का महत्व आध्यात्मिकता पर पहुंच कर किया । उन लोगों ने स्त्री को देवी आलोक में देखा । हम जानते हैं कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का जो आतंकवादिता पक्ष था वह भारत को भारत माता के रूप में लेकर मातृभक्ति की उपासना से प्रेरित होकर चला था । यह दूसरी अतिवादिता की स्थिति है । स्त्री को न तो देवी बनना है न ही दासी । यह दोनों ही स्थितियां उसे सहज मनुष्यत्व से विमुख करती है । इन्हीं विद्वानों ने कहीं-कहीं स्त्री के सहज मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा की है । प्रेमचन्द ने गोदान में मालती और मेहता को विवाह के बन्धन में बन्धने नहीं दिया बल्कि उन्हें सहज मैत्री के धरातल पर रखा । यह एक आदर्श स्थिति है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य विशेषकर हमारे आलोच्य महिला उपन्यास-कारों ने भी इस सहज आदर्श स्थिति की भी कल्पना को भी चरितार्थ किया है । वस्तुतः कला एवं लेखन के माध्यम से स्त्री ने अपनी सहज मुक्त स्थिति को प्राप्त करने में सफलता पाई है । कला एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य को उसकी व्यक्तिगत कुंठाओं और बाधाओं से मुक्त करता है । कला के स्तर पर जाकर व्यक्ति व्यक्ति मात्र नहीं रह जाता वह उससे परे कुछ हो जाता है ।"सिमन द बउआ" भी स्त्री मुक्ति की बात करते हुये और सभी तरह की स्थितियों में व्यस्त स्त्रियों की चर्चा करते हुये उन स्त्रियों को इस

सारे द्वन्द्व से परे रखती है जो किसी न किसी प्रकार से कला क्षेत्र से जुड़ी हुई है। वे कहती हैं कि वे स्त्रियाँ अपनी कला के द्वारा अपने आपको प्रदत्त स्थितियों और मूल्यों से अतिक्रमित करने में निश्चित रूप से सफल हैं। लेखन के द्वारा भी हमारे आलोच्य उपन्यासकारों ने न केवल अपनी भूमिका को प्रतिबिम्बित किया है बल्कि स्त्री-पुरुष के बीच सहज मानवीय सम्बन्ध की कल्पना भी दी है। किन्तु यह परिकल्पना तब तक सम्पूर्ण नहीं होगी जब तक कि पुरुष चेतना में भी ऐसा स्फुरण न हो। स्त्री और पुरुष के बीच जैसे सम्बन्ध हैं उसके लिये व्यवस्था उत्तरदायी है। पूँजीवादी व्यवस्था स्त्री और पुरुष तो क्या मनुष्य और मनुष्य के बीच मनुष्यत्व के सम्बन्ध का विघटन कर देती है तब उनकी जगह विनिमय, उपभोग और प्रतिस्पर्धा का सम्बन्ध स्थापित करती है। इस कारण स्त्री और पुरुष के सहज सम्बन्ध अपने आप में अकेला नहीं है। यह सम्पूर्ण मानव सम्बन्धों का प्रश्न है। व्यवस्था अपरिवर्तनशील नहीं होती। मार्क्स जहाँ कहते हैं कि चेतना सामाजिक अस्तित्व के द्वारा निर्धारित होती है तो सामाजिक अस्तित्व में परिवर्तन लाने को उत्तरदायी भी चेतना ही है। इस कारण स्त्री पुरुष का सहज सम्बन्ध समूची मानवीय चेतना के परिवर्तन से जुड़ा है। यह सहज मानवीय सम्बन्धों की स्थिति तभी सम्भव होगी जब मूल्य केवल आर्थिक मूल्य नहीं रह जायेंगे, विचार केवल उपभोग की व्यवस्था को पुष्ट करने के लिये नहीं रह जायेंगे और मानवीय अर्थवत्ता जब शोषण और असमानता के अभिशाप से मुक्त होगी। वैसी स्थिति में ही सहज मानवीय सम्बन्धों का अवतरण सम्भव है और अन्य कलारूपों के साथ-साथ उपन्यास भी इस दिशा में प्रयत्नशील है।

1·3 निष्कर्ष : नारी मानस की संरचना एवं सामाजिक विकास क्रम में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विश्लेषण करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं। नारी मानस की संरचना को जैविक मनोवैज्ञानिक आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों के निर्धारण में केन्द्रीय स्थान रखती

इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये प्रमुख व मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष दिया है कि स्त्री की पराधीनता उसकी अपनी विशिष्ट जाति के कारण है । फ्रायड ने तो कहा ही था कि 'Anotony is destiny' स्त्री के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से सत्य लगती है । स्त्री की शारीरिक संरचना उससे जुड़ी हुई प्रजनन व्यवस्था के कारण वह शारीरिक स्तर पर काफी असहाय परमुखापेक्षी तथा कमजोर दिखाई देती है । इसका प्रभाव उसके मनोविज्ञान पर पड़ता है । मनोवैज्ञानिकों ने स्त्री में पुरुष की तुलना में अपने आपको हीन समझने की ग्रन्थि का विश्लेषण इस जैविक आधार पर ही किया है । फ्रायड के अनुसार यह हीन भाव लिंग ईर्ष्या के कारण है । एडलर का कथन है कि स्त्री के मन में अपनी स्त्रीत्व को अस्वीकार कर दिये जाने की लज्जा ही इस हीन भाव का मूल है । किन्तु स्त्री के मनोविज्ञान के निर्माण में जैविकी को ही एक मात्र निर्णायक तत्व मान कर नहीं चला जा सकता । जैसा कि सिमन द बउआ लिखती हैं कि स्त्री को उसकी जैविकी और उससे उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित करके नहीं देखना चाहिये । उनके अनुसार स्त्री एक मानवीय अस्तित्व है जो मूल्यों के संसार की खोज में रत् है । एक ऐसे संसार में वह संघर्ष कर रही है जो आर्थिक एवं सामाजिक संरचनाओं से बना हुआ है । सभी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि अपने तथाकथित जैविक पिछड़ेपन के बावजूद स्त्री में जीवनी शक्ति की कमी नहीं है ।

किन्तु स्त्री जाति का इतिहास निरन्तर शोषण का ही इतिहास रहा है ऐसा क्यों ? इसके लिये यह कारण है कि उत्पादन की प्रक्रिया एवं इस क्रम में निर्मित सामाजिक सम्बन्ध । मनुष्य सभ्यता के विकास के उत्तरोत्तर क्रम में स्त्री शोषण का अधिक से अधिक शिकार बनती गई है । मनुष्य सभ्यता के आदिम युग में स्त्री और पुरुष समान अधिकारों का उपभोग करते थे । घरतथा बाहर के जीवन में उनका समभाग था । किन्तु उत्पादन और आजीविका के साधनों में विकास के साथ-साथ इन पर पुरुष का स्वामित्व बढ़ता गया।

शिकार, कृषि और पशुपालन आदि में पुरुष प्रधान होता गया और चूंकि इन साधनों पर उसका अधिकार था इसीलिये वह स्वामी और स्त्री दासी के रूप में परिवर्तित होती चली गई । स्त्री को पूरी तरह से पीछे ढकेल देने में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की भारी भूमिका रही । सामन्ती युग में स्त्री पूरी तरह से व्यक्तिगत सम्पत्ति में परिणत हो गई । पूंजीवादी युग में वह कामोडोटी या वस्तु मात्र बन कर रह गई । किन्तु आज के औद्योगिक पूंजीवाद ने स्त्री का एक बड़ा कल्याण भी किया और वह था उसके श्रम को आर्थिक मूल्य देना । इसी कारण स्त्री में अपने अस्तित्व को समझने और उसका मूल्यांकन करने की चेतना आई । स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्धों के विश्लेषण में इस दृष्टि से तीन स्थितियां है । आदिम सहयोगी सम्बन्ध, जिसमें सभ्यता का आरम्भ स्त्री-पुरुष के सहभावी जीवन यापन से हुआ था । इस युग एक तरह से "स्वर्णयुग" कहा जा सकता है । संतानोत्पत्ति की क्षमता के कारण स्त्री का महत्व और अधिक दृढ़ हुआ । पुरुष इस मातृशक्ति के आगे पराजित हो गया । इसीलिये विश्व के अधिकांश भागों में इस समय मातृसत्तात्मक व्यवस्था का स्वरूप दिखाई देता है । भारत के वैदिक युग के आरम्भ की व्यवस्था भी स्त्री-पुरुष के समान अधिकार तथा स्त्री के विशेष महत्व की स्थिति को बतलाती है । किन्तु उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ-साथ यह सहयोगी सम्बन्ध शोषक-शोषित सम्बन्ध में परिणत हो गये । एंगेल्स के अनुसार मातृ अधिकार को समाप्ति संसार में नारी जाति की ऐतिहासिक पराजय थी । वर्ग विभक्त समाज में स्त्री की चेतना भी विभक्त होती चली गई । वह धीरे-धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति में परिणत हो गई । विवाह की संस्था भी स्त्री शोषण का नया उपकरण बनी । सिमोन द बउवा इसका विश्लेषण करती हुई लिखती है कि विवाह के द्वारा स्त्री को एक वंश से उन्मुक्त कर दूसरे वंश में प्रत्यारोपित किया जाने लगा । स्त्री एक मानवीय नहीं बल्कि लेन-देन की वस्तु बन गई । सामन्ती

व्यवस्था ने स्त्री की इस स्थिति का भरपूर शोषण किया । वह भोग की वस्तु बनी । औद्योगिक विकास के साथ-साथ स्त्री का आर्थिक शोषण एक नये आयाम में पहुँच गया वह व्यावसायिक महत्व की वस्तु बनी । उसके शरीर और श्रम दोनों के शोषण का द्वार पूँजीवादी युग ने खोल दिया । तीसरी स्थिति मानवीय सम्बन्धों की सहजता की है जो अभी तक पूरी तरह से यथार्थ नहीं बन सकी है । साम्यवादी व्यवस्था में अवश्य यह सपना साकार हुआ है । भारत के सन्दर्भ में अभी भी स्त्री और पुरुष के सहज मानवीय सम्बन्धों की कल्पना ही बनी हुई है ।

--00--

अध्याय दो

नारी : अस्मिता की खोज

2.1 नारी-मुक्ति का पहला आयाम : भारतीय नवजागरण

उन्नीसवीं शताब्दी पूरे विश्व के लिए क्रान्ति की शताब्दी रही है । विज्ञान एवं बुद्धिवाद ने मनुष्य जाति, सामाजिक संदर्भ तथा धर्म-दर्शन को अभिनव-दृष्टि से मूल्यांकित किया है । सन् 1857 से लेकर सन् 1885 तक का काल नवजागरण का काल माना जाता है । "यद्यपि भारत में संस्कृति के बड़े-से-बड़े नवोत्थान हुए हैं, किन्तु वर्तमान नवोत्थान उन सबसे अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ है । इसने वैदिक धर्म की प्रवृत्तिमार्गी धारा को पुनरावर्तित किया है, इसने संसार की सत्यता में मनुष्य के विश्वास को बढ़ाया है । इसने मनुष्य-मनुष्य के बीच एकता में वृद्धि की है, इसने शूद्रों को गौरव का मार्ग बताया है और नारियों को शताब्दियों की कारा से विमुक्त किया है ।".1.

शताब्दियों से नारी पर असंख्य अत्याचार किये गये, उसे "अबला" कहकर उसमें यह भावना कूट-कूट कर भर दी गई है कि वह निर्बल तथा असहाय है । उस समय नारी कई शृंखलाओं में जकड़ी हुई थी, एक तरफ वह बहु-विवाह से तथा दूसरी तरफ बाल-विवाह एवं सती-प्रथा आदि कुरीतियों से जकड़ी हुई थी । समाज में उसकी स्थिति बड़ी ही दीन एवं हीन थी । वह घर की चार दीवारी में कैद थी । नारी की इस दीन-हीन अवस्था की ओर ध्यान किसी का भी नहीं गया था ।

पाश्चात्य देशों में नारी-मुक्ति के आयाम आरम्भ हो चुके थे । 16वीं शताब्दी में ही जान नॉक्स के पत्र "मौन्स्ट्रस रेजीमेंट आफ

- -

1.संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ.445.

वोमैन", और रार्ट लाम्स के "ए डायलाग इन डिफेन्स आफ वोमैन एगैन्स्ट मैलिशस डिट्रैक्टर्स" में स्त्री की समानता का जोरदार समर्थन किया गया" । "कुछ लोग यह भी मानते हैं कि मैरी वूल स्टोन क्रैफ्टस की पुस्तक "ए विन्डीकेशन आफ द राइटस आफ वोमैन" के साथ ही स्त्री ही स्त्री मुक्ति आन्दोलन का शुरुआत हुआ ।"1.

पश्चिम की इस प्रकार का प्रभाव अनिवार्य रूप से भारत पर भी पड़ा । परन्तु इस प्रकार का प्रभाव पाश्चात्य प्रभाव से भिन्न था । "भारतीय संस्कृति व भारतीय महिलाओं की स्थिति पश्चिम से कई मायनों में बहुत भिन्न है । यहाँ स्त्रियों को अपनी मुक्ति व समानता के लिए पश्चिमी स्त्रियों की तरह संघर्ष नहीं करना पड़ा, बल्कि अतीत की समृद्ध परंपरा देख, भारतीय पुरुषों, मनीषियों व समाज सुधारकों ने ही पहले पहल स्त्री की वर्तमान अधोमुखी दशा के बारे में सोचा और उसे इस स्थिति से निकालने के लिए प्रेरित किया ।"2. सर्वप्रथम समाज-सुधारकों का ध्यान नारी के विकुण्ठित जीवन की ओर गया, और उनके जीवन को उच्च स्तर की ओर ले जाने के लिए वे अग्रसर हुए । भारत में नारी मुक्ति का यह प्रथम आयाम (चरण) था । इन समाज सुधारकों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय नारी को नवजीवन दान मिला । डा० विमल सहस्त्रबुद्धे का कहना है कि " भारत में एक और महत्वपूर्ण जागृति हुई, वह थी समाज-सुधारकों का जन्म, जिनके कारण समाज की, व्यक्ति की, उनके विचारों की प्रगति हुई । इन सुधारकों ने संकुचित दृष्टिकोण को दूर करने का प्रयत्न किया, और क्रूर रूढ़ियों को दूर करने तथा बदलने के लिये उन्होंने कैसी सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आन्दोलन भी किये । इस प्रकार इन्होंने समाज के सामने एक प्रगतिशील एवं स्वस्थ दृष्टिकोण रखा ।"3. भारतीय नारी की विदेशी दासता, पुरुष समाज की

- -

1. All histories of Feminism Property begin with the appearance of Mary woll stone crafts's Avindication of the Right of Women in 1972.
2. भारतीय नारी : दशा दिशा : आशारानी व्होरा : पृ. 11 (अपनी बात)
3. हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : डा. विमल सहस्त्रबुद्धे : पृ. 40.

दासता और सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध एक साथ तीन-तीन मोर्चों पर लड़ना पड़ा ।

नारी मुक्ति का पहला भारतीय नवजागरण आन्दोलन "ब्रह्म समाज" [1828] के नाम से प्रसिद्ध है । संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान, अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न नवजागरण के अग्रगण्य प्रतिनिधि राजा राममोहन-राय [1774-1833] इसके प्रवर्तक हैं । राजा साहब विचारों में अत्यधिक प्रगतिशील थे ।

राजा राममोहन राय का नारी के प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण था । नारी की स्थिति की शोचनीयता से वे बहुत असन्तुष्ट थे, और अपने समाचार पत्रों द्वारा वे बराबर लोगों को नारियों की स्थिति सुधारने की आवश्यकता पर बल देते रहते थे । "तत्कालीन सामाजिक जीवन में प्रचलित निर्मम सती प्रथा, जिसने नारी जाति को वस्तुतः सत्ता एवं बलिदान का उपकरण बना दिया था, उन्हें अत्यन्त निष्ठुर लगी । उन्होंने स्मृतियां, पुराणों एवं अनेक शास्त्रों का अध्ययन एवं चिंतन कर बताया कि कोई भी ग्रंथ इस प्रथा को सामाजिक बंधन के रूप में स्वीकृति नहीं देता ।... राजा साहब ने इस प्रथा का जोरदार विरोध किया और उनका विरोध सफल भी हुआ । सन् 1829 ई. में लार्ड विलियम बैंटिंक ने "सतीप्रथा" को अवैधानिक घोषित किया ।"[1] राजा राममोहन राय ने बहु-विवाह पर भी कठोर आक्षेप किया । वे भारत की नारी को शिक्षित करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया । इसके अतिरिक्त वे विधवा-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते थे । 1892 ई. में ब्रह्म मैरिज" एक्ट पास करवाया । राजा राममोहन राय सर्वप्रथम समाज सुधारक हैं, जिनका ध्यान नारी की दयनीय स्थिति पर गया । रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ठीक ही कहा है "राजा राममोहन राय ' Inaugarated the modern age in India' और उन्हें नवजागरण के जनक के रूप में माना है ।

- -

1. नवजागरण और छायावाद : महेन्द्रनाथ राय : पृ.28.

केशव चन्द्र सेन प्रथम "ब्रह्म समाज" के सदस्य थे, परन्तु बाद में इन्होंने "प्रार्थना समाज" की स्थापना की, अन्य सामाजिक सुधारों के साथ-साथ इन्होंने नारी मुक्ति संबंधी सुधारों की तरफ भी ध्यान दिया। उनके मुख्य उद्देश्यों में विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री-शिक्षा का प्रचार और बाल विवाह का अवरोध है । सेन ने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हुए सन् 1872 में "सिविल मैरेज एक्ट" पास करने के लिये बहुत प्रयत्न किये । लड़कियों के विवाह की आयु 14 वर्ष की रखने के लिये सन् 1872 में बिल पास करवाया । नारियों के कल्याण हेतु विधवा-आश्रम तथा नारी-शिक्षा के लिये "महिला स्कूल" खोले गये । अतः केशवचन्द्र सेन उन्मुक्त विचारों एवं विरोधी प्रवृत्ति से पूर्ण थे ।

इस नवजागरण काल में अनेक समाज सुधारकों का उदय हुआ, जिनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी है, जिन्होंने नारी की दयनीय स्थिति को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । उन्होंने "शास्त्रीय प्रमाणों से अकाट्य तर्क लेकर विधवा विवाह को शास्त्र सम्मत बताया । विधवा-विवाह की चर्चा मात्र से जहाँ पुराण पंथियों में त्राहि-त्राहि मच जाती थी, वहीं उन्होंने अपने पुत्र का विवाह विधवा से रचाया । 7 दिसम्बर सन् 1856 ई॰ के दिन विधवा विवाह को व्यवहार में ढालने का श्रेय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को मिला और अपने संरक्षण में उन्होंने विधवा-विवाह कराया ।"[1] नारी की स्थिति को सुधारने के लिये सिर्फ उपदेश ही नहीं दिया बल्कि उसे कार्यान्वित भी किया, " उन्होंने संकल्प किया कि वे अपनी पुत्रियों के लिये उच्च शिक्षा की व्यवस्था करेंगे एवं ग्यारह वर्ष पूर्व अपनी पुत्रियों का विवाह नहीं करेंगे । उनकी सभी पुत्रियों का विवाह 16 वर्ष के उपरान्त ही हुआ ।"[2]

नारी-शिक्षा प्रसार के लिये 1819 में बेथून कालेज की स्थापना की । आपके सद्प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही सन् 1855 से सन्

- -

1. नवजागरण और छायावाद : महेन्द्रनाथ राय : पृ॰32॰

2. वीमैन इन माडर्न इण्डिया : मीरा देसाई : पृ॰73॰

1858 तक लगभग 40 कन्या -विद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी । "सन् 1853 में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने "विडोरी मैरिज" पुस्तक प्रकाशित की तो पुरातन पंथियों ने उनकी हत्या तक करने के प्रयास किये ।"1. अत: उनके अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप ही सन् 1856 में विधवा पुनर्विवाह विधेयक पारित हो गया ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1857 में आर्य समाज की स्थापना की । "शंकराचार्य के बाद से भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निर्भीक रहा हो ।" 2. सारे भारत में उनके समान हिन्दी और संस्कृत का वक्ता दूसरा कोई नहीं था । "आर्य समाज ने नारियों की मर्यादा में वृद्धि की एवं उनको शिक्षा-संस्कृति का प्रचार करते हुए, विधवा-विवाह का भी प्रचलन किया । कन्या शिक्षा और ब्रह्मचर्य का आर्य-समाज ने इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी के कवि कामिनी नारी की कल्पना मात्र से घबराने लगे । पुरुष शिक्षित और स्वस्थ हों, नारियां शिक्षिता और सबला हों ।"3. स्वामी जी ने "स्वयं कहा है - जहां स्त्री सुखी है, वहां सारा कुल सुखमय होता है । इसलिए स्त्री को सुखी रखने के लिये तथा उसकी मानसिक और बौद्धिक प्रगति के लिये शिक्षा पर विशेष जोर दिया ।.... उन्होंने नारी के विवाह की आयु 16 वर्ष तथा पुरुष के विवाह की आयु 25 वर्ष बतायी है।"4. चत्वारिंशतः: शरीर रस वृद्धि-यौवन सम्पूर्णता किञ्चित् परिहा-णिश्चेति ।। अर्वाक्षोडशः । आविंशतो यौवनम् । आचत्वा-रिंशतः सम्पूर्णता । ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ।। पंच विंशति वर्षेपुमान् नारी तु षोडशे ।। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक ।।5.

- -

1. विधवा विवाह :एस.एन.त्रिवेदी :पृ.9.
2. रिनासां आव हिन्दुइज्म :
3. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ.468.
4. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ 468
5. सुश्रुत - सूत्र संहिता :35.

विधवा विवाह में वे नियोजन पद्धति उचित मानते थे । अतः "देवर" जिसका द्वितीय वर है ।[1] स्वामीजी ने "पर्दा प्रथा" का भी विरोध किया, एवं नारियों के सम्मुख सीता और सावित्री के आदर्श रखे । उन्होंने विधवा स्त्री के लिये विधवा आश्रम भी खोले थे । यही नहीं आश्रमों में नारी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया और जिसके द्वारा विधवाओं के मन में आत्म-विश्वास और आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न की ।

नवजागरण "ब्रह्मसमाज" के प्रत्यक्ष प्रभाव के पूर्व ही महाराष्ट्र में भी प्रारम्भ हो गया था । नवजागरण को तीव्र गति देने वालों में "जस्टिस माधव गोविन्द रानाडे" थे । यह सुप्रसिद्ध समाज सुधारक अर्थशास्त्र, राष्ट्रीय जागृति के जन्मदाता एवं स्वतंत्र भारत के दृष्टा थे । उन्नीसवीं शताब्दी में महाराष्ट्र का सांस्कृतिक नवोत्थान मूलतः समाज-सुधार से सम्बन्ध था ।

रानाडे का ध्यान भी स्त्रियों की दयनीय स्थिति की ओर गया । स्त्री-शिक्षा तथा नर-नारी की समानता का वह पोषण करना चाहते थे । "इन्दुप्रकाश" पत्रिका में उन्होंने विधवा-विवाह पर बराबर लेख प्रकाशित करने का काम किया । 1861 में इनके प्रयास के फलस्वरूप "विधवा पुनर्विवाह समिति" की स्थापना हुई तथा महाराष्ट्र में 1869 से विधवा पुर्नविवाह होने लगे । "रानाडे के सहयोग से ही नेशनल सोशल कान्फ्रेंस की स्थापना 1887 ई॰ में हुई । इस सभा के द्वारा स्त्रियों की समस्याओं को देश के सामने रखा गया । उन्होंने अपनी पत्नी रमा बाई को इस कार्य हेतु प्रशिक्षित किया । रमा बाई के साथ और भी स्त्रियों ने जागरूक कदम उठाए और स्त्री मुक्ति आन्दोलन की रफ्तार तेज हुई ।"[2]

1· देवर: कस्मात द्वितीयों वर उच्यतेनिरु 3 / 15 ।।

2· सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान : डा॰शंकरप्रसाद : पृ॰ 34॰

रामकृष्ण परमहंस मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द जी का नारियों के प्रति उदार दृष्टिकोण था । वे कहते थे "ऐसा क्यों थे क्योंकि जिन बातों में उनका विश्वास था, उन्हें वे अपने जीवन में नहीं उतार सके । उनकी अपूर्णता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने नारियों को नरों के समकक्ष नहीं माना ।"1. स्वामी जी प्रत्येक स्त्री में चाहे वह कुमारी हो या बाल-विधवा हो, उनमें मातृत्व का रूप देखते थे । उनका मत था कि " जब तक स्त्रियों को हालात नहीं सुधारी जायेंगी, तब तक संसार में समृद्धि की कोई संभावना नहीं है । पक्षी एक पंख पर कभी नहीं उड़ पाता ।"2. वे भी स्त्री शिक्षा के सच्चे समर्थक थे । उनकी धारणा थी कि शिक्षित नारी अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं निकाल सकती है, तथा अपनी स्थिति सुधारने में सफल हो सकती है । विवाह के सम्बन्ध में स्वामीजी के विचार आदर्शवादी थे, तथा बाल-विवाह के विरोधी थे । स्वामी ने हिन्दू और स्त्री स्वतंत्रता आन्दोलन को सन् 1893 ई. में शिकागो के सर्वप्रथम सम्मेलन में अंतराष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित किया । "उन्होंने अमरीका की नारी जाति का बौद्धिक विकास देखा था तथा वहाँ की नारियों के स्वाभिमानी एवं उन्मुक्त व्यक्तित्व से वे आकर्षित भी हुए थे । भारतीय नारी-जीवन की तुलना जब उन्होंने अमेरिका के नारी जीवन से की तब उनके प्राण भारतीय नारी की विवशता को देखकर व्यथित हो गए थे । भारतीय स्त्रियों का एकांतवास, अशिक्षित तथा अज्ञानता भरा जीवन उन्हें बड़ा ही हृदय-विदारक लगा ।"3 वे विस्मित हो उठे और उन्होंने कहा "पता नहीं, इस देश में नारियों और नरों में इतना भेद क्यों किया जाता है । वेदान्त तो यही सिखाता है कि सबमें एक आत्मा निवास करती है, तुम लोग नारियों को सदा निन्दा ही करते रहते हो, किन्तु कह सकते हो कि उनकी

---

1. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ.503.
2. थाट्स आव पावर : स्वामी विवेकानन्द : अद्वैत आश्रम छठाँ संस्करण
3. नवजागरण और छायावाद : महेन्द्रनाथ राय : पृ.45.

उन्नति के लिये अब तक सुना क्या गया है ? अशुद्धता रखकर तथा गुलामी की बेड़ियाँ गढ़कर पुरुषों ने नारियों को सन्तानजननी की मशीन बनाकर छोड़ दिया। नारियाँ महाकाली की साकार प्रतिमाएं हैं ....। नारी के आँसुओं से यूरोप, अमेरिका और भारत सभी उन्हें सिक्त दिखाई पड़े थे। स्वामीजी ने कहा था कि विपत्तियाँ भारत में भी है, और पश्चिम देशों में भी। यहाँ विधवाएँ रोती है, वहाँ कुमारियाँ।"[1]

नारी मुक्ति के कार्य में सहभागी होना गोखले अपना सहज-धर्म मानते थे। वे स्त्री-शिक्षा को अनिवार्य मानते थे। "सिविल मैरेज" के सम्बन्ध में 1912 ई० में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि भारतीय नारियों में उच्च-शिक्षा के फैलाव के साथ ही प्रौढ़ विवाह का कायदा हो जाये। प्रौढ़ विवाह का अर्थ है - परस्पर संमति स्वीकार। वे व्यक्ति स्वातंत्र्य को मानते थे।

भण्डारकर ने भी 1837 -1922 में महिला शिक्षा, बाल-विवाह प्रतिबन्ध, विधवा-विवाह प्रसार, तथा जाति-भेद निर्मूलन आदि सामाजिक सुधार कार्यों में अथक परिश्रम किया है। यही नहीं उन्होंने अपनी एक विधवा लड़की का पुनर्विवाह कराया तथा साथ ही अपनी लड़कियों और पौत्रियों को उच्च शिक्षा दी।"[2]

महाराष्ट्र में जिनको "जीवन ज्योति जलाने वाला ज्योतिबा" कहा जाता है, उन्हीं महात्मा फुले का सामाजिक कार्य स्त्री शिक्षा से प्रारंभ हुआ। उन्होंने पूना में "प्रथम महिला पाठशाला" खोली।

नारी मुक्ति के प्रयास में जी०के० देवधर का स्थान सबसे उच्च है। उन्होंने श्रीमती रानाडे के साथ "सेवा सदन" संस्था खोली। जिसमें न केवल हिन्दू स्त्रियों को बल्कि मुसलमान तथा पारसी स्त्रियों को भी समान भाव से आश्रय मिला। जी०के० देवधर वह प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने यह प्रयास किया कि नारी को शिक्षा

---

1. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ०504.
2. भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास : सुख सम्पत्ति राय भण्डारी पृ०323.

के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए । उनका विचार था कि शिक्षिका, परिचारिका, डाक्टरनी, आदि शिक्षित स्त्री वर्ग की आवश्यकता समाज को है, इसलिये उन्हें अधिक वर्ग से स्वयं शिक्षित एवं स्वावलम्बी बन जाने का प्रयत्न किया । क्योंकि प्लेग, अकाल, अग्निप्रलय आदि आपत्तियों के प्रसंग में संकटनात्मक दुःख निवारण कार्य में पुरुष की अपेक्षा स्त्री ही सम्पूर्ण योग्यता से सहायता कर सकती है । जोशी जी के अनुसार " इस आश्रम ने महिलाओं के आर्थिक जीवन में भी एक नया पृष्ठ खोला । इसके पूर्व भारतीय महिलाओं का डाक्टरी तथा नर्स का पेशा अपनाना घृणा की दृष्टि से देखा जाता था । सेवा सदन ने प्रथम बार स्त्रियों के लिये इस पेशे का गौरव बढ़ाया था ।"[1]

स्वाधीनता आन्दोलन के पिता महात्मा गांधी ने "भारतीय संस्कृति में इतने अधिक विषयों में प्रकाश डाला है कि उनके समस्त अवदानका सम्यक मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए भी संभव नहीं दिखता ।"[2] नारी की पतित अवस्था की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था । गांधी जी स्त्री और पुरुष की एकता के समर्थक थे । वे दोनों का एक ही क्षेत्र मानते थे, उनका विचार था कि प्रकृति ने नर और नारी की रचना एक ही तत्व से की है अतएव एक के लिये जो सहज है , वह दूसरे के लिए भी संभव है ।"नारी-जाति में उन्होंने सहिष्णुता, नैतिकता और आत्मबल की असाधारण शक्ति देखी थी । असहयोग और कष्ट सहन की सीख गांधी जी को अपनी धर्मपत्नी कस्तूरबा से मिली थी ।"[3] उन्होंने नारीत्व को भौतिक एवं आध्यात्मिक मुक्ति का प्रेरणा स्रोत बतलाया । पुरुष प्रधान समाज को उन्होंने नारी की मर्यादा के प्रति सचेत किया । "उनका कहना था कि नारी को अबला कहना, उसके प्रति पुरुष का

---

1. हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन : चण्डीप्रसाद जोशी : पृ. 36.
2. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर : पृ. 629.
3. महात्मा गांधी की संक्षिप्त आत्मकथा : संपादक : महादेव देसाई हरिभाऊ उपाध्याय : पृ. 17.

अन्याय है । यदि अहिंसा हमारे मूल्यांकन की कसौटी है तो निश्चय ही भविष्य का निर्माण स्त्रियों के हाथ में है । (To call the women the weaker Sex is a lible, it is man's in Justice to women, if by strength is meant brute strength then indeed is women less brute than man, If by strength is meant moral power, then women is immeasnrably man's superior. If non-violence is the law of our being, the Future is with women) .[1]

इसके अतिरिक्त उन्होंने "नारी की परंपरित पराश्रित मनोवृत्ति को उसके आत्मविकास के लिए बाधक समझा और नारी जीवन के लिये शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मुक्ति के द्वार उन्होंने खोले । .... नारी जीवन की विविध उच्चतर भूमिकाओं की ओर उनका ध्यान गया था, जिसमें वह आदर्श पत्नी होने के साथ बहन, मित्र तथा शिक्षक भी होती है ।"[2]

नवजागरण के इन सामाजिक सुधारकों की दौड़ में सिर्फ भारतीय ही नहीं पाश्चात्य सुधारकों ने भी भाग लिया । जिनमें प्रमुख "एनी-बेसेन्ट" है । श्रीमती एनी बेसेन्ट 16 नवम्बर 1893 में भारत आयी। आपने हिन्दुत्व के नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिये इतना कुछ किया कि उनकी सेवा भुलायी नहीं जा सकती । "वह व्यक्तित्व श्रीमती एनी बेसेन्ट का था जिन्होंने उन्निद्र भारतीय जनता को जागरण का संदेश दिया तथा उसकी स्वप्निल पलकों की खुमारी को दूर करने का प्रयास किया ।"[3]

भारत में नारी की दर्दनाक स्थिति को एनीबेसेन्ट ने देखा तो उन्हें सुधारने के लिये उन्होंने दृढ़ संकल्प किया । इस संकल्प में वे सफल भी हुई । कहने को तो वे विदेशी महिला थीं, पर हृदय उनका

- -

1. Young India : 10-4-1930.

2. नवजागरण और छायावाद : महेन्द्रनाथ राय : पृ. 82-83.

3. -वही- -वही- पृ. 48.

भारतीय था । आपने " कौलोनल आल्काट" के साथ "थियोसाफिकल सोसायटी" की स्थापना की । नारी शिक्षा के सम्बन्ध में आपका मत था " The national movement for the education of girls must be one which meets the national needs, and India needs nobly trained wives and mothers, wise and tender rulers of the house hold educatfed teachers of the young helpful can counsellers of thefir husbands, skilled , nurses of the sick, Thas girls graduates, educated to the learned professions'.[1]

एनी बेसेन्ट ने आरोग्य शिक्षा पर विशेष बल दिया । उनका मत था कि प्रत्येक भारतीय नारी को आरोग्यकर सिद्धान्त सम्बन्धी शिक्षा लेना आवश्यक है ।

श्रीमती एनीबेसेन्ट 1917 में नेशनल कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष चुनी गयी थी । आपने मद्रास में "इण्डियन वुमन्स एसोसियेशन" की स्थापना की ।

इस प्रकार श्रीमती एनी बेसेन्ट ने जो कुछ संकल्प भारतीय नारी मुक्ति के लिए किया उसको वह पूरी तरह से निभाया । इन सुधारों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

जब हिन्दू जाति में नारी सुधार की भावना तीव्र गति से प्रारम्भ हो गई तो मुसलमानों के प्रतिनिधि सर सैयद अहमद की भी आंखें खुली । उन्होंने "पर्दा प्रथा" का विरोध एवं स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया ।

नवजागरण काल में सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्तियों एवं उपलब्धियों की समीक्षा करने से जो महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते है उनमें प्रमुख है नारी जाति के प्रति परम्परित मानसिकता में तीव्र परिवर्तन । राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, विवेकानन्द, दयानन्द, गोखले, एनी बेसेन्ट, गांधी जी, सर सैयद अहमद आदि सभी ने नवीन जीवन

---

1. For Indias : up life : Annie Besant : p.73.

मूल्यों की सृष्टि की तथा नारी जाति में एक नयी चेतना उभरी । कुल मिलाकर भारतीय पुनर्जागरण का पहला चरण किसी क्रान्तिकारी विचारधारा को लेकर नहीं आया । वह एक सुधारवादी तथा पुनरुत्थानवादी आन्दोलन था ।.... (He Never contempleted any radical change in Hindu religion or any radical reconstruction of Hindus society. He only wanted to purge - certain manifest evils.' 1-

लेकिन इस नवजागरण ने किसी न किसी रूप में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सुधारने का प्रयास जरूर किया ।

2·2 नारी मुक्ति और राष्ट्रीय स्वाधीनता - आन्दोलन

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी का अन्तराल वास्तविक अर्थों में मुक्ति आन्दोलन का युग था । ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, थियोसोफिकल सोसायटी एवं अन्य महापुरुषों के निरन्तर प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप समाज में नारी की स्थिति में कुछ सुधार आ गया । देश की कुछ नारियाँ शिक्षित हो अपने अन्दर आत्मविश्वास एवं शक्ति का अनुभव करने लगी थीं । जब सम्पूर्ण देश में समाज-सुधार की स्वर्णिम रश्मियाँ बिखरी हो रही थी, तब नारी समाज ही उनके संस्पर्श से कैसे अछूता रह सकता है, और " पढ़ना अनिवार्य था जिस प्रकार शरीर के किसी अंग में हुई थोड़ी सी भी हलचल का असर समूचे शरीर में थोड़ा बहुत हुए बिना नहीं रहता, पैर की उंगली में छोटा सा काँटा चुभता है तो माथा झनझना उठता है, पेट में जरा सा दर्द हुआ कि सिर से पैर तक ऐंठन शुरू हुई । इस प्रकार समाज के किसी भी अंग में जो हलचल होगी, उसका प्रभाव समाज के हर व्यक्ति पर कुछ न कुछ पड़ेगा । फिर स्त्रियाँ समाज का आधा अंग ठहरी ।"2" समाज सुधारकों ने जिस समय नारी की उसकी स्थिति

1· स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि : डा· स्वर्णलता, पृ· 106·

2· नई नारी : श्री रामवृक्ष बेनीपुरी : पृ·72

से अवगत कराया, उस समय का युग परतंत्रता का युग था । "शासन की बागडोर जिन विदेशियों के हाथों में थी वे भारतीय जनता की सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं के प्रति सर्वथा उदासीन थे । ईसाई मिशनरियों का देश में जाल सा बिछ रहा था । इन सब कारणों से जनता के सभी वर्ग असंतुष्ट थे ।"1.

नारी मुक्ति आन्दोलन मूलतः पश्चिम में प्रारम्भ हुआ था, और जिसमें स्त्री-पुरुष की समानता प्रतिपादित की जा चुकी थी । "यों तो उसका सूत्रपात फ्रांस की राज्य क्रान्ति के दिनों में हो गया था, जब " Lesdroits dela temme' " ने स्त्री-पुरुष की समानता के लिये आवाज उठाई थी, किन्तु विशेष शक्ति और व्यापकता इसने 19वीं शताब्दी में पाई, जब इंग्लैण्ड में विलियम थॉमसन ने "एपील आव दि प्रिटेन्शन्स हाफ मेन Apple of the pretensions of of the one half of the one half of the Human Race Women against the pretensions of the other half men.'(1825) और "जान स्टुअर्ट मिल" ने "दि सब्जेक्शन आव विमन [1861] की रचना करके स्त्रियों के हकों की वकालत की ।"2.

भारत में नारी-मुक्ति आंदोलन का प्रभाव कुछ दूसरे संदर्भ में हुआ । पश्चिमी आन्दोलन के समान यह आंदोलन पुरुष जाति के विरुद्ध न होकर, भारतीय नारी की खोई हुई प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता, समानाधिकार की प्राप्ति के लिए था । श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय के शब्दों में "यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनःप्राप्त करने और अमल में लाने का प्रयत्न है ।" प्रारम्भ में तो स्त्रियों की निजी समस्यायें पर्दा, विवाह आदि शिक्षा स्त्रियों के ध्यान का केन्द्र रही, किन्तु शीघ्र ही स्वाधीनता संग्राम उनका प्रमुख ध्येय हो गया ।

- -

1. स्वतंत्रता की पूर्व संध्या : लीलाधर शर्मा पर्वतीय : पृ.
2. आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना : डा. शैल कुमारी: पृ. 40.

"अबलाएं अब सबल हो गई
उनमें भी उत्साह था
अत्याचारों के विरोध में
पृथ्वी का आकाश गरम था ।[1]"

अत: "महात्मागांधी ने स्वाधीनता आंदोलनों में भाग लेने के लिए नारियों को उत्साहित किया, भारतीय नारी समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझने लगी थी, अत: परिस्थिति से लाभ उठाकर अनेक भारतीय नारियां पूर्ण उत्साह के साथ राष्ट्रीय यज्ञ में अपना योगदान प्रदान करने लगी ।"[2]

जब पाश्चात्य देशों में नारी पुरूष की सहयोगिनी एवं प्रेरणी बनकर जी रही है, तो फिर भारतीय नारी ही घर की कैदी एवं दासी बनकर क्यों रहें । भारतीय नारी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए पुरूषों के साथ परिश्रम करने को निकल आई । साथ ही भारतीय नारी को पुरूष नेताओं का पूर्ण सहयोग मिला । "कोमलांगिनी युवतियां वर्षों की लोक लाज छोड़कर अन्त:पुर की दीवारों की मर्यादा को तोड़ती हुई राष्ट्रीय संग्राम -सेनानियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगी ।"[3]

वस्तुत: भारतीय नारी के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन स्वयं अपनी मुक्ति का भी आंदोलन था । अपने ही त्याग से उसने समानाधिकार प्राप्त किया ।

सन् 1857 की क्रान्ति के पश्चात्, अंग्रेजों की कठोर शासन व्यवस्था, पुलिस के अत्याचारों, भीषण अकाल तथा सरकारी करों से त्रस्त जनता में असंतोष की अग्नि सुलग रही थी । आपस के भेद-भाव को भूलकर हिन्दू -मुसलमान, पारसी-सिक्ख, सब ही अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति करने के लिये प्रस्तुत थे । इसी समय सन् 1885

- -

1. नारी तीर्थ : डा. पार्थसारथि डबराल पृ.43.
2. आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकायें : उमेश माथुर : पृ.36-37.
3. नवजागरण और छायावाद : महेन्द्रनाथ राय : पृ.162.

में "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना हुई । " जो हयूम ने ब्रिटिश शासन को संकट से बचाने के लिए जिस संगठन को जन्म दिया था, कालान्तर में वही संगठन ब्रिटेन की प्रभुसत्ता को समाप्त करके भारतीय जनता के प्रतिनिधि के रूप में विदेशी शासकों के हाथ से शासन की बागडोर छीन लेने में समर्थ हुआ ।"[1]

1857 में ही नारियों ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लेना आरंभ कर दिया था । जिनमें अधिकांश उच्चवर्ग की ही नारियाँ थीं । इस स्वाधीनता संग्राम को प्रथम मुक्ति आंदोलन भी कह सकते हैं । "1857 के स्वतंत्रता सेनानियों में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरतमहल, रानी तपस्विनी , रानी कुम्भीपुर, रानी रामगढ़, रानी जिंदा, मुत्थमिना अवोजन, जीनतमहल, नाना की पालिता बेटी मैना, जिसे फिरंगियों ने पकड़ कर जीवित जला दिया था, फीरोजशाह की पत्नी जमानी बेगम आदि ज्ञात-अज्ञात कितने ही नाम हैं, जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलंद किया, जान पर खेल कर लड़ीं, शहीद हुईं या अंत में देश से बाहर निर्वासित जीवन बिताने का निर्णय लिया, पर शत्रु के सामने हार नहीं मानी । सन् 1857 के इस बड़े संगठित विद्रोह के पूर्व भी जगह-जगह विदेशी शासकों के साथ जो युद्ध ठने, उनमें देवी चौधरानी, रानी शिरोमणि, कित्तूर की रानी चेनम्मा जैसी बहादुर महिला सेनानियों के वीरतापूर्ण युद्ध कौशल भी इतिहास की धरोहर हैं । उत्तर भारत में जैसे लक्ष्मीबाई का नाम इस स्वतंत्रता सेनानियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है, वैसे ही दक्षिण में रानी चेनम्मा का, जिनकी याद में दक्षिण में 23 अक्टूबर का दिन "महिला दिवस" के रूप में मनाया जाता है ।"[2]

सन् 1920 से गांधी जी की प्रेरणा से देश में उच्च वर्ग की महिलाओं के साथ-साथ अन्य वर्गों की महिलाएँ भी स्वाधीनता संग्राम

- -

1. स्वतंत्रता की पूर्व सन्ध्या : लीलाधर शर्मा पर्वतीय : पृ.5.
2. भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा : पृ.10-11.

में भाग लेने के लिए आगे आई । "भारत वर्ष की स्त्रियों ने पर्दे को फाड़ फेंका और राष्ट्र के लिये लड़ने को मैदान में आ गयी । उन्होंने देखा कि देश उनसे गृहस्थी के कार्यों के अतिरिक्त कुछ और मांग रहा था ।"1"

यूं तो इस स्वाधीनता संग्राम में कई हजारों नारियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया । परन्तु उनमें प्रमुख सरोजिनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रुक्मणी-लक्ष्मीपति, हंसा मेहता, कस्तूरबा गांधी, नेलीसेन गुप्त, सत्यवती देवी, तथा आसफ अली । राजकुमारी अमृत-कौर, विजयलक्ष्मी पंडित, एनी बेसेन्ट ,मीरा बेन, अनसूया बेन मार्गरेट कजिन, भीकामाजी एवं कई अन्य प्रमुख महिलाओं ने स्वाधीनता संग्राम में अपना जीवन अर्पित कर दिया ।

उत्तर प्रदेश की प्रथम नारी गवर्नर होने का श्रेय भारत कोकिला, श्रीमती सरोजिनी नायडू को मिला । भारत में आज के नारी-आन्दोलन के नारे "हमारा अधिकार" की जन्मदायी नायडू ही थी । "नारी स्वातंत्र्य के लिये सर्वप्रथम बिगुल फूंकने वाली आप ही थी । आपने अपने कर्तव्यों के भार के प्रति जो जिम्मेदारी निभाने का परिचय दिया था, उसका यह प्रमाण है कि भारतीय नारी जो केवल पर्दे के पीछे ही अपना अस्तित्व समेटे बैठी थी, वह आज बाहर है, सभा में है, साहित्य के क्षेत्र में है, राजनीति में है, सरकार में है ।"2"

नारी के अधिकारों के लिए जिस साहस और धैर्य के साथ वे लड़ी, जिस निर्भीक कुशलता से उन्होंने नारी का पक्ष लिया वह एक ऐतिहासिक घटना बन गई । उन्होंने गांधी के साथ सहयोग कर आन्दोलनों में भाग लिया । जब्त की गई किताबों को बम्बई में बेचकर कानून को तोड़ा । सन् 1925 को कानपुर -कांग्रेस में आप कांग्रेस की अध्यक्षा बनी । सरोजिनी नायडू के सार्वजनिक कार्यों

- -

1. महिलाओं से : महात्मा गांधी : पृ.

2. देश-देश के रत्न : ओंकार शरद : पृ.270.

से सारा राष्ट्र सजग था । कुछ विद्यार्थियों के बीच बोलती हुये आपने कहा था कि " इस संग्राम की घड़ी में जब भारत के लिए विजय प्राप्त करना तुम्हारे अधीन है, मैं एक निर्बल नारी अपने गृह से बाहर निकल आई हूँ, मैं सपूतों की दर्शिनी आज इस कोलाहल के बाजार में खड़ी होकर तुमसे कहती हूँ - बन्धुओं, जाओ और विजय प्राप्त करो ।"[1] वे हमेशा गर्व से कहा करती थी " मैं उस जाति की बेटी हूँ जिसकी माताओं के समक्ष सीता की पवित्रता, सावित्री के साहस और दमयन्ती के विश्वास का आदर्श है । वे भारतीय नारी की शक्ति से पूर्ण अवगत थी और उसकी महत्ता को स्वीकार करती थी ।"[2]

उसी समय कमलादेवी चट्टोपाध्याय भी नारी मुक्ति आन्दोलन के साथ ही स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने लगी, वे क्रियाशील, आशावादी एवं विद्रोहिणी नारी थी । गांधी जी के साथ उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया । घरों की छाया को त्याग कर वे बिल्कुल आगे आ गई और उन्होंने सहज रीति से आन्दोलन को अपना लिया ।

श्रीमती हंसा मेहता का नाम स्वाधीनता संग्राम में उल्लेखनीय है । मेहता ने इस युद्ध में बढ़-चढ़ कर भाग लिया । कई जुलूसों का नेतृत्व किया और कई बार जेल गई "अगस्त सन् 1930 को बम्बई में लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई थी, और श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में एक जुलूस निकाला गया । परन्तु जुलूस को आगे बढ़ने से रोक दिया गया । कई गिरफ्तारियां की गईं, कईयों महिलायें थी, उनमें हंसा मेहता भी थी ।"[3]

गांधी जी स्वाधीनता संग्राम के पिता थे, उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी स्वातन्त्र्य संग्राम में बापू की सहधर्मिणी बनकर जितनी त्यागमयी भूमिका उन्होंने निभायी वह सारे भारतीय नारी का परमोज्ज्वल प्रस्तुत किया है ।"[4] आपने भी कई जुलूसों में भाग

---

1. देश देश के रत्न : ओंकार शरद् : पृ.275.
2. विश्व की महान् महिला : श्योरानी गुर्टू : पृ. 17.
3. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारामैय्या : हरिभाऊ उपाध्याय : पृ. 329.
4. नारी तीर्थ : डा. पार्थसारथि डबराल : पृ.5 (दो शब्द)

लिया और कई संवैधानिक कानूनों को तोड़ा, जिसके कारण उन्हें जेल में भी जाना पड़ा । अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक वा ने इस स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया ।

नेलीसेन गुप्त, श्रीमती जाफर अली, विजयलक्ष्मी पण्डित, राजकुमारी अमृतकौर, मुत्थुलक्ष्मी जी रेड्डी, मादाम कामा जी का नाम भी उल्लेखनीय है । विजय लक्ष्मी पण्डित ने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया है । उन्होंने भारत में ही नहीं बल्कि अमेरिका में भी स्वाधीनता संग्राम का नारा बुलन्द किया । 1947 को विजय लक्ष्मी पण्डित को सोवियत-यूनियन में राजदूत बना कर भेज दिया गया । "सन् 1946 के बाद से सन् 1953 तक उन्होंने राष्ट्र संघ की महासभा में भारतीय प्रतिनिधित्व का नेतृत्व बड़ी सफलता के साथ किया । 1953 में राष्ट्र संघ की महासभा की अध्यक्ष चुनी गयी ।"[1]

राजकुमारी अमृत कौर ने गांधी जी के साथ मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया । वे "इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस" में भाग बहुत रूचि से लेती थी । उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा नयी दिल्ली में "लेडी इरविन कालेज" की स्थापना की । "भारत छोड़ो आन्दोलन" में उन्हें पंजाब की जेल में रखा गया ।

सन् 1921-23 के असहयोग आन्दोलन में मुत्थु लक्ष्मी रेड्डी ने भाग लिया । व्यवस्थापक मैडम [लेजिस्लेटिव कौंसिल] की प्रथम महिला सदस्य होने का गौरव मुत्थुलक्ष्मी रेड्डी को है । सन् 1929-32 के अविनय आन्दोलन में भी रेड्डी ने सक्रिय भाग लिया ।

बेगम जाफर अली [सावित्री देवी] ने स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया । इस स्वाधीनता संग्राम के दौरान उन्होंने यशपाल को अपने यहाँ आश्रय दिया था । जिसके कारण " श्रीमती सावित्री देवी को एक प्रकार की आजन्म कैद के बराबर पांच साल की सजा दी गई।[2]

1. मैत्रक युग : जानी अनजानी बातें : एम.बी. अवाई : पृ.129.
2. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त, पृ. 333.

स्वाधीनता संग्राम के इस सारे संदर्भ में अहिंसक आन्दोलन से हटकर जिन साहसी महिलाओं ने भारी खतरों का सामना कर, अपनी जान पर खेलकर, क्रान्तिकारी के रूप में देश को आजाद कराने युद्ध किया, उनकी याद के बिना भी यह विवरण अधूरा रहेगा। इन सब हिंसक या अहिंसक तरीकों से लड़ने वाली महिलाओं की संयुक्त प्रेरणा थी मैडम भीकाजी कामा, जिन्होंने जीवन के समस्त सुखों को तिलांजलि देकर कठोर साधना और कष्टमय जीवन अपनाया। "भारतीयों की अपमान जनक जिन्दगी उनके लिए असह्य थी। उनकी गरीबी उनसे देखी नहीं जाती थी, यह वह जमाना था जब स्त्रियों का, घरों से निकलकर समाजसेवा के क्षेत्र में आना एक बड़े साहस का कार्य था..। कामाजी ने 1907 में यूरोप की यात्रा की वहाँ पर उन्होंने स्वराज्य का नारा बुलन्द किया। "श्री श्यामजी वर्मा के साथ वे भी हाइड पार्क में अपने जोशीले भाषणों से स्वतंत्रता का नारा बुलन्द करने लगीं, अंग्रेज आश्चर्यचकित हो गए। भारत जैसे गुलाम और पिछड़े देश की एक महिला अपने शासकों के देश में इस तरह खुल्लम-खुल्ला विद्रोह और प्रचार कर सकती है।"1. भारतीय स्वतंत्रता का झण्डा कामाजी ने ही भारत से बाहर तैयार किया था। अतः इन्हें राष्ट्रीय ध्वजनिर्मात्री एवं प्रथम महिला क्रान्तिकारी कहलाने का गौरव प्राप्त है। एक नारी का इतना महान् एवं साहसी कार्य सचमुच अद्भुत प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता है, जबकि भारतीय पुरुष ऐसे क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भाग लेने से भयभीत होते थे। अन्य क्रान्तिकारी महिलाओं में 17 वर्षीय कुमारी प्रीतिलता यूरोपियन क्लब पर हमले में शहीद हो गईं। अन्य उल्लेखनीय नाम हैं; बरसती गोलियों में तीर की तरह निकल जाने वाली बेथून कालेज की छात्रा व प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सूर्यसेन की साथिन कल्पना दत्त, कुमिल्ला में जिला मजिस्ट्रेट पर छोटी से गोली चलाने वाली दो कच्ची उम्र की लड़कियाँ - सुनीति चौधरी और शान्ती घोष, कलकत्ता के एक कालेज

- -

1. भारत की अग्रणी महिलाएँ : आशारानी व्होरा : पृ 18.

के दीक्षांत समारोह में गवर्नर स्टैनली जैक्सन पर गोली दागने वाली छात्रा बीनादास, लेबांग के घुड़दौड़ के मैदान में गवर्नर सर जान ऐंडर्सन पर गोलियों की बौछार करने वाली टोली में शामिल 20 वर्षीय युवती उज्ज्वला मजूमदार, अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली 17 वर्षीय नागारानी गिडालू और क्रान्तिकारियों की हर संभव मदद करने वाली दुर्गा भाभी।[1] आदि क्रान्तिकारी महिलाएँ हैं। एक चौदह वर्षीय बालिका जिसका नाम कनकलता था, दारांग जिला में 1942 में जुलूस के आगे-आगे थी "जब जुलूस बिल्कुल थाने के सामने पहुँचा तो कनकलता ने पुलिस वालों से यह कहा कि वे अपने ही भाई हैं, उन्हें चाहिए कि विदेशी शासन की नौकरी से अलग हो जाएँ। थानेदार एक बच्ची के मुँह से ऐसी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं था। उसने कनकलता तथा जुलूस वालों को भी थाने के अहाते से निकल जाने को कहा। कनकलता एक क्षण नहीं हिचकिचाई और आगे बढ़ी। थानेदार ने फौरन गोली चलाई और वीरांगना कनकलता वहीं पर चिरनिद्रा में सो गई।"[2] इस तरह इन क्रान्तिकारी महिलाओं को आजीवन जेल की सजा मिली। जो बाद में देश के स्वतन्त्र होने के बाद ही रिहा हो सकी।

इसके अतिरिक्त अन्य महिलाओं ने भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया। गाँधी के आह्वान को सुनकर गर्भवती माताएँ, देवदासियाँ, स्टेज डेकीवाली माताएँ और कट्टरवादिनी ब्राह्मणियाँ भारत की स्वतंत्रता के लिए खड़ी हुईं। "श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने वृद्धावस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन में भाग लेने का निश्चय किया। सन् 1932 के कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें गिरफ्तार किया और आसनसोल की जेल में ले जाया गया।"[3] इसके अतिरिक्त कई वृद्धाएँ जुलूस में आया करती थीं जिनमें बंगाल की मातंगिनी हाजरा भी थी जिन्होंने 1942 में क्रान्तिकारियों के जुलूस का नेतृत्व किया था। जिनकी आयु 73 वर्ष की थी। "1911 में 'भारत स्त्री समाज' की स्थापना हुई, जिसकी संस्थापिका "सरलादेवी" एवं कृष्णा कामिनीराय

---

1. भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा : पृ. 17.
2. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास : मन्मथनाथ गुप्त : 401.
3. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारामैया : पृ. 439.

ने स्त्रियों में विशेष प्रकार का कार्य किया ।"[1] 1941 में राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों के स्थान की दृष्टि से भारत का स्थान तीसरा था । "इस पृष्ठ में कर्नल लक्ष्मी का नाम इतिहास में अंकित रहेगा जिसने आगे चलकर " नेताजी सुभाष चन्द्र बोस" की आई॰एन॰ए॰[भारतीय राष्ट्रीय सेना] के लिए भारत की स्वतन्त्रता हेतु विदेश में एक स्त्री सैन्य का संगठन करके भारतीय नारी के सैन्य संचालन की परम्परा को उजागर किया ।"[2]

इस स्वाधीनता संग्राम में भारतीय नारियों के अतिरिक्त विदेशी नारियों का योगदान भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है । जिनमें एनीबेसेन्ट मार्गरेट इ॰कजिन्स, मेडलीन स्लेड जो बाद में मीरा बेन के नाम से प्रसिद्ध हुई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

श्रीमती ऐनीबेसेंट एक आयरिश महिला होकर भी भारत को अपना घर और धर्म रखकर नारी जागृति व प्रगति का बीड़ा उठाया । मद्रास में 1917 में इन्हीं ने अखिल भारतीय स्त्री सभा की स्थापना की । वे इसकी सभानेत्री थी । "1919 ई॰ में कलकत्ता कांग्रेस की सभापति ऐनीबेसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन की शक्ति का मुख्य कारण स्त्रियों की वीरता बतलाते हुये कहा था कि " स्त्रियों के उसमें एक बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण दस गुनी अधिक बढ़ गई थी । हमारी लीग के सबसे अच्छे रंगरूट, और सबसे अच्छी रंगरूट बनाने वाली स्त्रियाँ ही थी ।"[3] सन् 1916 में जब आपको गिरफ्तार किया गया था तब आपने जो भाषण दिया था, उस भाषण में आपके भारत प्रेम को आंका जा सकता है। "मैं आज चुपचाप जेलखाने में जा रही हूँ क्योंकि मुझे भारत से प्रेम है । मैंने उसे बहुत देरी होने के पूर्व ही जगाने का निश्चय कर लिया है॰॰॰।

1॰ भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्य समाज आन्दोलन : विजेन्द्रपाल सिंह, पृ॰78॰

2॰ भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास : चन्द्रबली त्रिपाठी : 269॰

3॰ कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीतारामैय्या : पृ॰139॰

मैं तो बूढ़ी हूँ, परन्तु मरने से पूर्व यह देख लूँगी कि होमरूल आन्दोलन में भारत की ही विजय होती है ।"1. उनकी अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पास कर कांग्रेस ने मांग की कि स्त्रियों को भी पुरुषों के बराबर मताधिकार दिया जाय और उनकी क्षमताओं का परीक्षण किया जाय । भारतीय राजनीति और महिला सुधार कार्यक्रमों पर श्रीमती एनी बेसेंट का प्रभाव काफी समय तक बना रहा ।

एनी बेसेन्ट के समान ही मार्गरेट कज़िन्स ने भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया, एवं भारतीय स्त्रियों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया । वे भारत में महिला मताधिकार आन्दोलन की सूत्रधार है । वे भारत की पहली महिला मजिस्ट्रेट भी है । विदेशी महिला होकर भी आपने भारतीय राष्ट्रीयता ग्रहण की और अपना आधे से अधिक जीवन भारतीय महिलाओं के उत्थान के लिए व्यतीत किया ।

स्वामी विवेकानन्द की शिष्या मार्गरेट नोबल (भगिनी निवेदिता) ने भारतीय स्त्रियों में शिक्षा के माध्यम से जागृति लाने का बीड़ा उठाया । "महात्मागांधी की अनुयायिनी "मेडलीन स्लेड" जो बाद में मीरा बेन के नाम से प्रसिद्ध हुई, सामने आई । "सविनय अवज्ञा आंदोलन" के समय वह दोबारा जेल गईं ।" 2.

इस प्रकार नारी मुक्ति आन्दोलन के साथ-साथ स्त्रियों ने स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लिया " उन्होंने गैर कानूनी नमक बनाये, विदेशी कपड़े और नशीली वस्तुओं की दुकान पर धरने दिये और गृहस्थों तथा दुकानदारों दोनों को रोकने की चेष्टा की । रात में पौने लाठीके साथ बड़े साहस और उदारता के साथ उनके लट्ठों पर गयी । उन्होंने जेल की सजाएँ काटी और कोड़ों की चोटें खायी ।"3. सामान्य नारी ने निरक्षर होते हुए भी इस सारे संघर्ष में जिस मानसिक प्रौढ़ता का परिचय दिया, वह भारतीय

---

1. देश-देश के रत्न : ओंकार शरद : पृ.81.
2. भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा : पृ.13.
3. महिलाओं से : महात्मा गांधी : पृ.49.

इतिहास में सदा अविस्मरणीय रहेगा । कई महिलाएँ ऐसी भी थीं कि उन्हें यह नहीं पता था कि स्वराज्य क्या है । " न है कुछ जानती है न समझती है, फिर भी हमारे साथ मरने को तैयार रहती है...। दिन भर कांग्रेस का काम करती है । रात को बैठकर पीसती है ।"[1] इसमें छोटे बच्चे बच्चियाँ भी पीछे न रहे । इन्दिरा नेहरू की आयु उस समय केवल 12 वर्ष की थी, उसने भी 6 हजार बालकों की एक "वानर सेना" का नेतृत्व किया । महिलाओं को हर तरह से डराया धमकाया गया । जेलों में यातनाएँ दी गईं पर उन्होंने सभी कष्टों का मुस्करा कर सामना किया । इस दमन चक्र में कहीं को नारीत्व पर आँच से कुछ अपेक्षित कष्ट भी सहन करने पड़े : निरक्षर, पिछड़ी हुई अशिक्षित और असंगठित भारतीय नारी का यह साहस ब्रिटिश सरकार को चौंका गया ।

आधुनिकता की स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने वाली महिलाओं ने राष्ट्रीय जागृति के रूप में देखा और उसी जागृति की ओर अग्रसर होने के अपने सारे प्रयत्न लगा दिये । यह उनकी शक्ति का भी प्रमाण था । " इस क्रान्ति द्वारा सार्वजनिक रूप से स्त्री समाज को भी लाभ हुआ । उसके चारों ओर फैली हुई दुर्बलताएँ नष्ट हो गईं और उसके मस्तिष्क से शक्ति-हीनता का लांछन दूर हो गया । पुरुष ने अपनी आवश्यकतावश ही उसे साथ आने की आज्ञा दी, परन्तु स्त्री ने उसके पग मिलाकर, यह कर प्रमाणित किया कि पुरुष ने उसकी गति पर बन्धन लगा कर अन्याय ही नहीं अत्याचार भी किया ।"[2] इस तरह भारतीय नारी मुक्ति स्वाधीनता संग्राम के साथ ही जुड़ा हुआ है क्योंकि इस स्वाधीनता संग्राम से एक लाभ यह भी हुआ कि भारतीय नारी जो दासता की जंजीरों में जकड़ी हुई थी खुलकर सामने आई । उन्होंने अपनी मुक्ति के साथ-साथ देश

---

1. प्रेमचन्द घर में : शिवरानी देवी प्रेमचन्द : पृ. 120-21.
2. शृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा : पृ. 53.

देश को भी परतंत्रता की जंजीरों से मुक्त करने में सहयोग दिया । अतः अवसर और सुविधा पाने पर नारी ने राजनीति और शासन जैसे जटिल क्षेत्रों में पुरुष से अधिक दक्षता, कुशलता और सफलता का परिचय दिया है ।

2·3 नारी अस्मिता की खोज : लेखन के माध्यम से

नवजागरण एवं स्वाधीनता संग्राम में अपना परिचय देने वाली यह नारी अब लेखन में अपनी अस्मिता को खोजने लगी । इतना सब कुछ होते हुये भी उसका अपना अलग व्यक्तित्व नहीं था, तथा अपनी अलग पहचान नहीं थी । नारी की दृष्टि केवल घर तक ही सीमित थी ।[1] वह या तो किसी की पत्नी, किसी की बहन, किसी की माँ इन्हीं नामों से उसका परिचय प्राप्त होता है । यह एक नारी की अस्मिता का प्रश्न है । ' The Feminine mystique permits even encourages women to ignore the questions of their identity. The mystique says they can answer the questions 'who am I ?'[2]

अतः नारी का अपना भी कोई अस्तित्व है, कोई व्यक्तित्व है, जहाँ व्यक्ति का कार्य उसके व्यक्तित्व की सर्वोत्तम पहचान है, वहीं उसका नाम भी उसके व्यक्तित्व की पहचान है । आज की नारी लेखन के माध्यम से अपनी अलग पहचान बना रही है । "नारी दीन-हीन अथवा अबला नहीं, वह नारीत्व की कोमलता एवं प्रकाश से पूर्ण है । किसी भी देश अथवा राष्ट्र की सुदृढ़ नींव नारी की कर्मोत्कृति की द्योतक है । नारी जिसने संदेश देना ही देना सीखा है, रात हो या दिन, अपने स्नेह राग से प्राणों की बत्ती जलाए जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ को आलोकित करती रहती है ।"[3] पुरुषों ने सदैव नारी को

---

1. They're not interested in the bóroad public issues of the day. They are not interested in national or international affairs. They are only interested in the family and the home. They are n't interested in Politics unders 8t's related to an immediatate need in the home life. The price of coffee : The Feminine mystique : Betty Friedan : p.33.
2. The Feminine mystique : Betty Friedan : p.33.
3. शिक्षा की महान् महिलाएँ : शांतिरानी गुप्त : पृ.

को दीन-हीन ही समझा है, उसके लिये सारे विकास के द्वार बंद कर दिये, लेकिन नारी अपने मन के उद्गार लेखन के द्वारा प्रकट करने लगी। "युग की परिस्थिति से समझौता करने वाली आत्मबल से रहने वाली नारियाँ है, जहाँ परिस्थितियाँ बदली, वहीं पुरुष नारी का दृष्टिकोण भी बदला है ।"[1]

बीसवीं शताब्दी की नारी में नवजागरण तथा भौतिक उन्मेष के कारण वैयक्तिक चेतना दिखाई देने लगी, [illegible] नारी का यह स्वरूप समाज के लिये सर्वदा नवीन था । क्योंकि सदियों से पुरुष की बैसाखियों पर चलने वाली नारी आज अपने अस्तित्व के लिये संघर्षशील है । "इन सबके बीच हर प्रबुद्ध नारी सोचती है, मैं कौन हूँ ?... समाज में मेरी स्थिति क्या है ? ..... मेरी स्वतंत्र सत्ता कहाँ है ? भीतर-भीतर सुलगते इन प्रश्न, निजी अस्तित्व, निजी अस्तित्व की इस छिपी कामना, जो उन्हें अक्सर कुंठित कर असामान्य व्यवहारों के लिए प्रेरित करती है, को कोई नाम नहीं दिया जा सकता ।"[2] जीवन की परिस्थितियाँ ही प्रतिभा के प्रस्फुटन में बाधक अथवा सहायक बनती है । नारी की लेखन प्रतिभा का विकास नारी की सामाजिक अवस्था पर निर्भर करता है । "लेखन में सक्रिय स्त्री, चाहे सामाजिक स्तर पर पूरे स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करती है, परन्तु उपलब्धि के स्तर पर वह सामान्य नारी की अपेक्षा अपनी अस्मिता के एहसास का समर्थन पाने की भूमिका तैयार करना उसके जीवन संघर्ष का ही भाग नहीं, उसके लेखन-संघर्ष का भी भाग है ।"[3]

नारी ने जीवन का एक नया रूप देखा, चेतना के स्पंदन का अनुभव किया । जागृति आयी और लगा कि जैसे वह किसी एक नवीन लोक में आ गयी है, जहाँ वह सोच भी सकती थी और अपनी इच्छानुसार मन की बात कह भी सकती थी, उसके विचार उद्दीप्त

- -

1. बदलता युग, बदलती परिस्थितियाँ और उनसे समझौता करने वाली नारी : संचेतना अंक 57 : मीना भट्ट : पृ.41.
2. नारी शोषण : आईने और आयाम : आशारानी व्होरा:पृ.242.
3. संचेतना : अंक 57 : आज की नारी लेखन स्थिति एवं परिस्थिति राजी सेठ : पृ.20.

होने लगी, किसी अपरिचित किन्तु आह्लादक पथ की ओर बढ़ने के लिये आकुल हो उठे । हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं एवं विभिन्न क्षेत्रों में नारी ने अपना योगदान देकर अपना विशिष्ट स्थान बनाया है "युग-युगों से इतिहास अपने किसी न किसी अंश में नारी के गौरव को प्रतिष्ठित करता रहा है ।.. यदि पुरुषों ने अपने कार्यों द्वारा युग के प्रवाहों को मोड़ा है, तो ऐसे भी उदाहरण है जहाँ नारियों ने भी महान इतिहासों का निर्माण किया है ।.... साहित्य के क्षेत्र में नारी पुरुषों के पीछे नहीं रही ।"1"

प्राचीन काल से ही नारी अपने योगदान से काव्य-क्षेत्र को समृद्ध बनाती आई है । " नारी ने अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति करके आरम्भ से ही काव्य-रचना में सहयोग दिया है । यह उसके लिये स्वाभाविक था । पुरुष की अपेक्षा नारी में कल्पना, भावना, अनुभूति, सूक्ष्म निरीक्षण एवं अभिव्यंजना-शक्ति की प्रधानता रहती ही है, परिस्थितियों की जटिलता ने भावाभिव्यक्ति के लिये भूमि को अधिक प्रशस्त बना दिया ।

वैदिक युग से ही नारी ने काव्य में योग दिया है, वे वेदों का ही अध्ययन करती थीं, बल्कि उनमें कई इतनी मेधाविनी तथा सत्यनिष्ठा थी, कि उन्होंने वेद मन्त्रों की रचना की । उस युग की नारी अपनी अस्मिता के प्रति सजग थी । घोषा, लोपामुद्रा, वड़ावो, सिकतनिवावरी, शशिप्रभा, रोमशा, सूर्या, जुहू, श्रद्धा, वाचा, कामायनी, शची, यमी, माक्षी, अपाला, रैशा, गोधा आदि नाम उल्लेखनीय है । "आश्वलायन गृह्यसूत्र" में गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा के नाम कवयित्रियों के रूप में भी उद्धृत है । बौद्धकाल में पाली भाषा में लिखा गया पाँच सौ से अधिक कविताओं का काव्य-ग्रंथ "थेरी गाथा" भिक्षुणियों ने मिलकर लिखा था । कन्नड़ भाषा की कवयित्रियाँ अक्का-देवी और भद्रा ने जैन काल में जैन-भिक्षुणियों के रूप में समर्पित भाव

---

1. आजकल : 1982 फरवरी : महिला साहित्यकारों से परिचर्चा : संयुक्त प्रस्तुति कृष्णा शील , राधिका : पृ. 3.

के भक्ति गीत लिखे ।

दक्षिण भारत की कई नारियों ने काव्य रचना की, जिनमें रैना, माधवी, अनुलक्ष्मी, हरिपुत्री इत्यादि उल्लेखनीय है जिन्होंने प्राकृत में उत्तम कोटि की कविताएं रची ।

धीरे-धीरे नारी की स्थिति में परिवर्तन आता गया, वैदिक काल की नारी जिस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक हर क्षेत्र में भाग लेती थी, अब उसमें बन्धन लग गये । उसके हर क्षेत्रों के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया। निर्वासन की पराकाष्ठा तथा परिस्थत के अनिवार्य आरोपण की प्रतिक्रिया स्वरूप, समाज के विभिन्न वर्गों की स्त्रियों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली··। अनेक स्त्रियों ने सांसारिक जीवन की दुःखमय घटनाओं से प्रभावित होकर भी बौद्ध-धर्म ग्रहण किया । वैधव्य, संतान की मृत्यु, पति का दुर्व्यवहार, गार्हस्थिक जीवन के दुःख और चोट इसके कारणों में मुख्य थे ······ । निर्वाण की प्राप्ति में उनका नारीत्व बाधक नहीं बना । दमन तथा निर्वाण में वह भिक्षुओं से किसी प्रकार भी पीछे न रही। मानसिक शान्ति की प्राप्ति की शिक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्ति के लिए जितनी भी साधना आवश्यक थी, सभी क्षेत्रों में नारी ने पूर्ण सफलता से कार्य किया । ·1·

मध्यकाल तक आते-आते नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय एवं हीन हो गई । उसे केवल विलास की वस्तु ही माना जाने लगा । ऐसे समय में हमें "मीरा" जैसी कवयित्री के दर्शन होते है, जिसने उस युग में अपनी स्वतंत्रता को छोड़ दी । उस युग में नारी के सामाजिक अधिकार नहीं के बराबर थे, उसके लिए अध्यात्म के द्वार भी बन्द थे । पंत के शब्दों में वह केवल योनि मात्र रह गई थी । उसकी आत्मा के सभी धरोहरें बंद हो गये थे । वह न तो अर्द्धांगिनी रह गई थी और न सहचरी, वह थी केवल अनुचरी और पुरुष की दासी । इस वातावरण को मीरा की स्वाधीन आत्मा स्वीकार न कर सकी ।

1· मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : सावित्री सिन्हा : पृ·17-18·

उनका काव्य उस व्यवस्था के प्रति मीरा का जीवंत दस्तावेज है । उनके आध्यात्मिक भावाकुल गीतों के समक्ष सूर और तुलसी के गीत भी नहीं ठहरते । " जब तक संसार में काव्य की रचना होती रहेगी, कविगण मीरा के नाम से श्रद्धा से सिर झुकाते रहेंगे और नारी जाति गौरवा-न्वित होती रहेगी ।"[1] मीरा कृष्ण काव्य धारा की श्रेष्ठ कवयित्री थी ।

कोदाई आंडाल और अक्काई तमिल की महान कवयित्री थी । प्राकृत तथा संस्कृत में प्रभुदेवी, मदालसा, शीला, कुब्जा, अवन्ती देवी, कन्या आदि, मराठी में संत महदम्बा, जनाबाई और क मुक्ताबाई कश्मीरी में संत कवयित्री ललद्यद आदि के भक्ति गीत बहुत लोकप्रिय हुए ।

निर्गुण-काव्य में सहजोबाई और दयाबाई के सहज मीठे स्वर मुखरित हैं, जिनका अपना एक अलग अस्तित्व है । शृंगार काव्य में रंगरेजिन का मांसल योगदान और नीति तथा स्फुट काव्य में रत्नावली और राई के पद विशेष महत्व रखते हैं " मुक्तक के क्षेत्र में मीरा का सा अमृत स्वर तो नहीं, फिर भी सहजोबाई, दयाबाई, गंगाबाई, सुन्दरकुंवरि शेख रंगरेजिन आदि कवयित्रियों का काव्य साधारण कोटि के काव्य से उच्च स्तर पर आता है ।"[2]

अतः मध्यकाल में भी नारियों ने काव्य के द्वारा अपने उद्गार प्रकट किये । यद्यपि उस समय की कवयित्रियों ने अपना सारा ध्यान एकाग्र होकर ईश्वराधीन की ओर लगाया, परन्तु फिर भी उनके पदों में उस समय की नारी स्थिति के प्रति कटु आक्रोश है ।

आधुनिक युग की कवयित्रियाँ अपनी अस्मिता के प्रति विशेष रूप से जागृत हैं । "मध्यकालीन मूर्छना के बाद समाज में नई चेतना आई तो आधुनिक काल के साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों से अतीतोप् ,

- -

1. देश-देश के रत्न : ओंकार शरद : पृ. 20.
2. धुआं और तारे : शान्तिकी सिन्हा : पृ. 79.

सामाजिक व राष्ट्रीय भावनाएं, विद्रोह के स्वर, मानसिक ग्रंथियों का कुप्रभाव नारी-साहित्य में भी दिखाई देने लगा ।"1" इस युग की कवयित्रियों ने किसी बन्धन को स्वीकार नहीं किया, काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों में अपना पूर्ण योग दिया है । इस युग के प्रारंभ में जुगलप्रिया, रघुवीर कुमारी, हेमन्त कुमारी चौधरानी, राजरानीदेवी आदि है । सुभद्राकुमारी चौहान, तोरनदेवी शुक्ल, रामेश्वरी चकोरी आदि ने इस समय प्रचलित राष्ट्रीय जागरण और नारी मुक्ति को अपने काव्य का विषय बनाया था । इसी युग की कवयित्रियों में महादेवी वर्माजी का नाम हमेशा सूर्य के समान नित्य आलोकित रहेगा । महादेवीजी के रूप में छायावाद ने इस विभूति को दिया है । अतः इलाचन्द्र जोशी ने ठीक ही कहा है कि " किसी भी सीप को मोती बनने की प्रक्रिया साधारण नहीं होती, फिर महादेवी मानस के मोती तो साहित्य संसार में दुर्लभतम और अमूल्य निधि है - उनकी प्रक्रिया और भी जटिल है - उनके लिए स्वाति - नक्षत्र के भी कुछ विशिष्ट ही दुर्लभ क्षणों या सुदुर्लभ संयोग की अत्यन्त आवश्यकता है और तब एक-एक क्षण भी अपने भीतर जन्मजीवन की जिन रहस्यानुभूतियों का अधिष्ठान संजोए है, उसका ठीक-ठीक हिसाब लगा सकना आज किसी विद्वत्तम साहित्यिक के लिए भी सहज संभव नहीं रह गया ।"2" महादेवी जी रहस्यवाद की कवयित्री है । एक आलोचक ने महादेवी वर्मा के बारे में सत्य ही कहा है कि "महादेवी नहीं, वेदना मानो साकार हो गई है, ज्ञान मूर्ति मानो रसपूर्ण होकर अवतीर्ण हुई है, रूढ़ि की उज्ज्वल आत्मा मानो पृथ्वी के आंसुओं की मन्दाकिनी में स्नान करने आई है ।

सुमित्राकुमारी सिन्हा, तारा पांडे, हीरादेवी चतुर्वेदी, शकुन्तला सिरोठिया, हीरादेवी चतुर्वेदी, पद्मा गुप्त आदि ऐसी अनेक कवयित्रियाँ हैं, जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से नारी जागृति की अभिव्यक्ति की है ।

- -

1. भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा : पृ.51.
2. ——— महादेवी : गंगा प्रसाद पाण्डेय : पृ.7 [प्रस्तावना]

नई चेतना की आधुनिक कवयित्रियों में इन्दु जैन, ममता अग्रवाल, शकुन्ता भारती, प्रेमलता वर्मा, सुनीता जैन, माया गोविन्द, कान्ता आदि । "आधुनिक भाव-बोध के नाम पर उनके पास केवल कराह, कुण्ठा और कृत्रिम पीड़ा नहीं है । उनकी समष्टि-दृष्टि आशात्मक मानवीय धरातल की है, जो कमर झुकाकर बोझ उठाने का सन्देश देती है । उनकी वैयक्तिक दृष्टि भी हीन-कुण्ठा और अवसाद में मुक्ति खोज लेती है ।"1.

आधुनिक काल में नारियों ने काव्य के साथ-साथ कहानी में भी अपनी विद्वता का परिचय दिया । हिन्दी कहानियों का वास्तविक प्रारम्भ प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक पत्र "सरस्वती" से होता है, जिसे 1900 ई. में इण्डियन प्रेस ने चलाया ।2. इसके साथ ही अन्य कई पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरम्भ हो गया । "आरम्भ काल में स्त्रियों द्वारा रचित गद्य-साहित्य का रूप अधिकतर उपदेशात्मक और प्रचारात्मक हो रहा है । आर्य-समाज के मंच से बोलने के लिए विविध प्रकार के उपदेश और लेखावलियाँ लिखी गईं । इस प्रसंग में रमाबाई "सरस्वती" हरदेवीशर्मा और चन्द्रावती लखनपाल के नाम उल्लेखनीय हैं ।"3. पुरुषों के प्रभुत्व, समाज की अवनति, राजनीतिक और सामाजिक बन्धन आदि के कारण अभी तक नारी को स्वतंत्र रूप से कहानी के रूप में अभिव्यंजना का अवसर नहीं प्रदान हो सका था । परन्तु सामाजिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण भारतीय नारी के व्यक्तित्व में परिवर्तन हुआ । नारी में इसके कारण समानाधिकार की भावना बढ़ रही थी, और इस तरह अनेकों कहानी लेखिकाओं ने प्रचलित सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक परिस्थितियों एवं नारी की स्थिति के प्रति विशद विवेचन करने लगी ।

कहानी लेखिकाओं ने युगीन परिस्थितियों का भी चित्रण अपने कहानी साहित्य में किया । चन्द्रलता ने असहयोग आन्दोलन को,

---

1. तुला और तारे : सावित्री सिन्हा : पृ. 83.
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा. श्री कृष्ण लाल, पृ. 322.
3. तुला और तारे : सावित्री सिन्हा : पृ. 82.

वर्णन की, नारी वर्ग की चरित्र महिमा की अभिव्यक्ति भी इन लेखिकाओं की कहानी-साहित्य में हुई ।

प्रारम्भ काल से कहानी साहित्य के विकास में बंग महिलाका नाम विशेष उल्लेखनीय है । रायकृष्णदास के शब्दों में इनकी "दुलाई वाली" कहानी हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है, उन के समान कहानी की लेखिका भी नारी ही रही है । "माधुरी" "चाँद" आदि पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही कई कहानी लेखिकाओं का भी परिचय प्राप्त होता है, जिनमें मुन्नी देवी भार्गव, चन्द्रप्रभा देवी मेहरोत्रा, श्रीमती विद्या देवी चौधरानी, विद्यावति, शारदा कुमारी, राजरानी देवी आदि कई महिला-कहानीकारों का उदय हुआ । जिन्होंने अपनी कहानियों में नारी के प्रति समाज की क्रूरता, विधवा समस्या आदि कई समस्याओं को अपने कहानी साहित्य का विषय बनाया

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द ने नारी को केन्द्र मानकर उसकी स्थिति एवं समस्याओं को लिया । पुरुषों के कारण नारी को परिवार एवं समाज में जितनी यातनाओं को सहन करना पड़ा, उसका यथार्थ वर्णन उनकी कहानियों में मिलता है । इस काल की कहानी लेखिकाओं ने "पुरुष कहानीकारों का प्रायः अनुकरण किया है, किन्तु उनमें प्रायः स्त्री-समस्या पर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति मिलती है । लगभग सभी स्त्री कहानीकारों ने इस विशेष समस्या की ओर ध्यान दिया है । जीवन की विविधता उनमें से कुछ में ही दृष्टिगोचर होती है ।[1]"

बीसवी शताब्दी की कहानी-लेखिकाओं में उषादेवी मित्रा, महादेवी वर्मा, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, श्रीमती होमवती देवी आदि है । रजनी-पनिकर ने उषा-प्रियंवदा की आधुनिक नारी की ओढ़ी हुई आधुनिकता पर प्रहार करने के साथ कामकाजी नारी की पीड़ा व शिकायत को स्वर दिया । मन्नू भंडारी ने पुरानी भावभूमि से हटकर साहित्य को नये मुहावरे से सम्पन्न किया । उषा प्रियंवदा, सुनीता, ममता कालिया, मृदुला गर्ग ने भी नारी अन्तर्मन में झांककर

---

1. गल्प गगन की तारिकाएँ : श्री कामता प्रसाद गुप्त :पृ०। (प्रस्तावना)

उसके अछूते रहस्यों को उद्घाटित किया, साथ ही नये विषय भी उठाए। इसके अतिरिक्त अन्य कहानी लेखिकाओं में मेहरुन्निसा परवेज, कृष्णा सोबती, सूर्यबाला, मणिका मोहिनी, कुसुम अंसल, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, सुधा अरोड़ा, शुभा वर्मा, निर्मला वाजपेयी आदि अन्य कई लेखिकाओं ने अपनी अलग पहचान बनाई है ।

"भारतीय परम्पराओं एवं संस्कार और नारी स्वातंत्र्य के प्रभाव से नारी-जीवन में विभिन्न कुण्ठाएँ उत्पन्न हो गई है मनोविश्लेष-णात्मक कहानियों में इन गुत्थियों को विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया।[1] इस युग की कहानियों में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ चित्रण के प्रति प्रबल आग्रह रहा । सामाजिक विकृतियों के प्रति वैयक्तिक असन्तोष एवं कुंठाओं का चित्रण करती समय लेखिकाओं ने प्राय: व्यक्ति के धरातल से परिचालित किया है । वे समाज और जीवन की विस्तृत परिधि में घुस गई है । इन कहानी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों द्वारा नारी अस्मिता को प्रतिष्ठित किया है ।

कहानी लेखन के साथ-साथ महिलाओं ने उपन्यासों में भी अपना सिक्का जमाया है । परन्तु वे काव्य एवं कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अपने कदम बड़े ही विलम्ब से रखे है । सामाजिक प्रतिबन्धों में आबद्ध महिलाओं के पास इतनी जागरूक प्रतिभा तथा समय कहाँ था कि अपने अनुभवों तथा कल्पनाजन्य भावों को उपन्यास के विस्तृत कलेवर में लिपिबद्ध कर पाती । तथापि जिन्होंने इस ओर अपनी प्रतिभा का उन्मेष किया है उनका प्रयास सराहनीय है ।

हिन्दी की प्रारम्भिक उपन्यास लेखिकाओं में शैलकुमारी देवी, रुक्मणी देवी, प्रियम्वदा देवी आदि उल्लेखनीय है । इन्होंने सर्वप्रथम उपदेशात्मक उपन्यासों की रचना की । उपदेश द्वारा ही नारी में सुधार लाना चाहती थी । नारी-जीवन की कहानी को सीधे-सादे शब्दों में रख देना ही इनका उद्देश्य था ।

---

1. आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ : उमेश माथुर : पृ.212.

इसी बीच "उषादेवी मित्रा" का आगमन वैसे ही हुआ जैसे प्रेमचन्द का आगमन हुआ था । इन्होंने अपने उपन्यासों में नारी-अस्मिता के प्रश्न को मुखरित किया । नारी को देवी नहीं, अपितु मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा । इस संबंध में एक आलोचक कहते हैं "वंग महिला की सम्पूर्ण सुकुमारता लेकर उषादेवी हिन्दी उपन्यास साहित्य की ओर आई और नारी की भावनाओं का बड़ा ही सजीव एवं कोमल चित्रण किया है ।"[1] नारी स्वातंत्र्य पर जोर दिया । यदि पुरुष प्रत्येक प्रकार से स्वतंत्र रह सकता है तो नारी को भी स्वतंत्र रहने का उतना ही अधिकार है ।

कंचनलता सब्बरवाल ने भी अपने उपन्यास साहित्य में नारी के आदर्श, एवं नारी की मनःस्थितियों का उल्लेख किया । इसके अतिरिक्त श्रीमती लक्ष्मी देवी, गिरिजा देवी, शैलकुमारी देवी, शिवरानी दीक्षित आदि अनेक महिला उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा अस्मिता को मुखरित किया है ।

नीति तथा उपदेश प्रधान उपन्यास-परम्परा से आगे बढ़कर इस युग की लेखिकाओं ने घटना प्रधान एवं उद्देश्य प्रधान उपन्यासों की रचना की । स्त्री और पुरुषों के सम्बन्धों पर ही विशेष रूप से प्रकाश डाला गया । उपन्यास-लेखिकाओं ने सामाजिक-कुरीतियों पर विशेष प्रहार किया ।

बीसवीं शताब्दी तक आते-आते उपन्यास का दृष्टिकोण कितना बदल गया है । वह पहले की तरह एकदम कुतूहल की पुड़िया अथवा रहस्यमय तिलस्मी अजूबा नहीं है और न ही मूल संस्कार एवं प्रभावाभिव्यक्ति की दृष्टि से रंग-रेखाओं के इक्के-दुक्के "स्ट्रोक" या इधर-उधर कुछ छिड़क देने से ही काम चलता है ।[2] मन्नू भण्डारी उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, सुधा वर्मा, दीप्ति खण्डेलवाल आदि अन्य अनेक उपन्यासकार अपना अलग सिक्का जमाये

- -

1. हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य : प्रेम भटनागर : पृ. 284.
2. वैचारिकी : शचीरानी गुर्टू : पृ. 81.

हुये है । नारी-जीवन के वर्तमान संकटों का चित्रण उनके उपन्यासों का प्रिय विषय है । कार्यशील महिलाओं की संघर्षपूर्ण जीवन-स्थिति के युगानुरूप चित्रण में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई । कृष्णा सोबती ने विशिष्ट कलात्मक शैली में आंचलिक उपन्यास की रचना करके हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक खटकने वाले अभाव की पूर्ति की है । नारी मनोविज्ञान को वाणी देने में अनेक लेखिकाएं पुरुषों से भी आगे रही है ।

काव्य, कहानी एवं उपन्यास के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, नाटक एवं आलोचना के क्षेत्र में भी स्त्रियों ने अपना योगदान दिया है । श्रीमती महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र, "पथ के साथी," "अतीत के चलचित्र" और स्मृति की रेखाएं हिन्दी के गौरव ग्रन्थ है । यह उनके व्यक्तित्व के परिचायक है, और "श्रृंखला की कड़ियाँ" नारी-हृदय की व्यथा तथा नारी-जीवन की करुण गाथा का बौद्धिक विवेचन है । श्रीमती व उमराव, सौहिनीराव, शान्ति भटनागर और गार्गीगुप्ता के नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है । व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में शचीरानी गुर्टू का नाम लिया जा सकता है । "पारिवारिक क्षेत्र में महिलाओं, बच्चों युवाओं की समस्याओं पर सावित्री-देवी वर्मा ने बहुत लिखा है, जो बहुत पढ़ा भी गया । व्यावहारिक समाजशास्त्र, गृहोपयोगी तकनीकी विषयों, महिला, बाल, किशोर समस्याओं पर और विशेष रूप से "महिला उपलब्धियाँ " के क्षेत्र में आशारानी व्होरा ने पर्याप्त लेखन कार्य किया है, जो बहुपठित भी रहा । महिलाओं पर समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण डा० प्रमिला कपूर ने प्रस्तुत किये ।"[1]

पत्रकारिता में भी सौहिनीराव, शान्ति भटनागर, शीला झुनझुनवाला, सुषमा रूद्र, सुषमा पाराशर, माया शर्मा आदि के नाम प्रसिद्ध है । इसके साथ ही सावित्री परमार, व चित्रा मुद्गल की रिपोर्ताज रचनाएं विशेष पसन्द की गईं ।

इतना होते हुये भी प्रायः नारी-लेखन पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह सीमित दायरों को लेकर चलता है, या चारदीवारियों

- -

1. भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा : पृ 93.

से बीच ही धुंधलका रहता है । प्रतिभा के उन्मेष के लिए अपेक्षित समाज-दर्शन के अभाव में उसके समक्ष वैयक्तिक और पारिवारिक समस्याओं का ऐसा जाल रहता है कि वह अपनी रचनाओं में प्रायः इन्हीं को अभिव्यक्ति कर पाती है । "पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में इस स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है फिर भी अभी तक स्वतन्त्र जिज्ञासु आत्म विश्वास से भरी पूर्ण स्त्री की तस्वीर न उभरकर एक ऐसी संघर्षशील नारी की तस्वीर उभरती है जिसके हिस्से दायित्व रही है रही है ।"[1] नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकास से भिन्न होता है, परन्तु अधिक पुरुष स्वभाव अधिक कोमल और प्रेम प्रभृति भाव अधिक तीव्र तथा स्थायी होते हैं । "भारतीय जीवन व्यवस्था में जिस प्रकार पौरुष बल के समक्ष नारी की सहजता और सरलता का महत्त्व बिल्कुल लुप्त हो गया, उसी प्रकार पुरुषों द्वारा रचित साहित्य की विशालता में स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य छिप गया ।"[2] पुरुष कथाकारों की अपेक्षा ये कम सफल भी हुई हैं । इसका कारण उनमें शिक्षा का अपेक्षाकृत अभाव है ।

यह एक निष्कृष्ट प्रश्न है कि लेखन के क्षेत्र में स्त्री एवं पुरुष में भेद किया जाय, क्योंकि सृजन जिस प्रकार की मानसिक सक्रियता का परिणाम है, वह दोनों में एक सी है और सृजन परिणाम भी रचना में निहित कलात्मकता के अनुपात से नापा जाता है -जातिगत विशिष्टताओं से नहीं । " इस धारणा की ... कि इतिहास या परंपरा ने नारी को कुंठा के सिवा कुछ नहीं दिया । एक विद्रोहात्मक आक्रोश के रूप में अपने व्यक्तित्व में दोहरी रहने के आत्मपीड़क दबाव से जितनी जल्दी मुक्ति मिले अच्छा ही है । इस पीड़ा से उबरने के बाद ही एक तटस्थ दृष्टि, बौद्धिक सजगतापूर्ण रवैये का निर्माण हो सकता है जिसके तहत अपने आस-पास की हर सामाजिक समस्या को अपने ही दायित्व के रूप में देखा जा सके ।"[3]

---

1. संचेतना : राजी सेठ : अंक 57 : पृ. 19.
2. तुला और तारे : सावित्री सिन्हा : पृ. 78.
3. संचेतना : अंक 57 : राजी सेठ : पृ. 22.

अतएव यह जरूरी है कि अपनी अस्मिता को पाने के लिए नारी को स्त्री की चुनौती को छोड़कर पुरुष के समीकरण को पाना नहीं बल्कि अपने सत्य में से वृहत सत्य की परिधि की ओर जाना है। अगर "हमें स्वतंत्र भारत की स्वतंत्र-चेतना नारी की पहचान बनानी है, अपनी खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करनी है तो जरूरी है कि मध्यकालीन नियमों को तोड़ें और सती सीमाओं को समर्पित न हों।"[1]

2.4 साठ-पूर्व महिला उपन्यासकार और उनके उपन्यासों का कथ्यगत विश्लेषण - पुरुष छवि के विशेष सन्दर्भ में

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। कारण यह है कि उपन्यास में मनोरंजन का तत्व तो अधिक रहता ही है, साथ ही साथ जीवन की उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की समस्त सर्जनात्मक विधाओं में उपर्युक्त दोनों गुण विद्यमान रहते हैं, किन्तु अन्य विधाएँ अपने-अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्वों का प्रस्फुटन उतना नहीं कर पाती जितना उपन्यास कर पाता है।"[2]

विश्व के साहित्य में उपन्यास का आरम्भ योरोप के पुनर्जागरण के पश्चात् हुआ। इटली से आरम्भ होकर जागरण की लहर एक के बाद दूसरे देश में प्रसार पाती गई। अतः पूँजीवादी सभ्यता ने संसार की कल्पना प्रधान संस्कृति को जो भेंट दी है, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है उपन्यास। ' Novel is the most important gift of bourgeois or capitalist civilization to world's imaginative culture."[2.A.]

अतएव उपन्यास आधुनिक युग की एक व्यापक विधा है जिसमें यथार्थ का चित्रण होता है। इसीलिए फील्डिंग ने उपन्यास की तुलना किसी

- -

1. नारी शोषण : आइने और आयाम : आशारानी व्होरा : पृ. 252.
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा : रामदरश मिश्र : पृ. 15.
3. The Novel and the People : Rolph Fox . p.53.

राजमार्ग पर स्वतः अग्रसर होते हुए विशाल दर्पण से की है । जिसमें प्रतिबिम्ब यथार्थ जीवन की छाया पड़ती रहती है ।"1"

अतः आधुनिक युग में उपन्यास साहित्य का प्रसार बड़ी तेजी से हुआ । "हिन्दी में आधुनिकता का सूत्रपात वास्तव में इसी समय से होता है । गत सौ वर्षों में उसने आश्चर्यजनक तीव्रगति से उन्नति की है । उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से देश की तत्कालीन परिवर्तित परिस्थितियों के प्रभावानुसार गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से होने लगा था, अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों की रचना हुई । 1857 की राज्य क्रान्ति के बाद हिन्दी साहित्य ने विशेष उन्नति की ।"2"

हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से ही माना जाता है । विदेशी उपन्यास के प्रभाव के साथ ही बंगला के उपन्यासों का प्रभाव भी इस युग के उपन्यासों पर मिलता है । इस युग के उपन्यास साहित्य का उद्देश्य सुधारवादिता, उपदेशात्मक एवं मनोरंजक तत्वों से परिपूर्ण था । इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी लेखकों के साथ सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक , जासूसी आदि प्रवृत्तियों के उपन्यासों की रचना की । परन्तु अनेक वर्षों तक हिन्दी उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट न हो सका । लेखक अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार उपन्यास रचना का कार्य कर रहे थे । यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि हिन्दी में उपन्यास लेखन की कोई पूर्व परम्परा न थी ।"3" हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासकार स्वयं को अभी तक रीतिकालीन परंपरा से मुक्त नहीं कर पाए थे । धार्मिक भावना का रूढ़िगत प्रभाव छूट नहीं पाया था । चरित्रों की अलौकिकता का दृढ़ सम्बन्ध अब भी शेष था । यथार्थ जीवन चित्रण की अपेक्षा घटना के चमत्कार और उसके नाटकीय भावात्मक वैचित्र्य का लाभ उठाया जा रहा था । उस समय के उपन्यास साहित्य के

- -

1. लेखक और परिवेश : सम्पा. बच्चनदेव कुमार : परिवेश और हिन्दी उपन्यास : जयनारायण मण्डल : पृ. 100.
2. हिन्दी कहानी उद्भव और विकास : सुरेश सिन्हा : पृ. 166.
3. आधुनिक साहित्य : नंददुलारे वाजपेयी : पृ. 17.

के दो ही मुख्य उद्देश्य समझे जाते थे, एक तो मनोरंजन करना और दूसरे कोई उच्च भाव या आदर्श प्रदर्शित करना । हर कथा का अन्त सुखान्त होता था । उपन्यासकारों का पाठक से निकट सम्पर्क था, अर्थात् उपन्यास लिखते-लिखते वे पाठक से बात करते जाते थे और अपनी कला से उसे ऐसी चीज दिखाते थे जिससे उसका मन लगा रहे । उपन्यासकारों ने प्राचीन कथा-परम्परा से ऐसे कथा सूत्रों को लिया जिनकी सहायता से ऐसे कथानक बन सकते, जिनका आधार तिलस्मी, प्रेम, समाज-सुधार आदि अलौकिक तत्वों को ही बनाया जा सकता था ।"[1] पात्रों के शील-स्वभाव की सूचना अधिकतर लेखक के ही मुख से मिलती है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के उपन्यास सुधारवादी तथा उपदेशवादी है । आरम्भिक उपन्यासकार संकुचित और अप्रौढ़ था, धीरे-धीरे उपन्यास साहित्य विविध दृष्टि कोणों का सहयोग पाकर फलने-फूलने लगा । धीरे-धीरे उपन्यासकारों ने उसे संकीर्ण परिधि से निकालकर यथार्थ जीवनचित्रण का माध्यम बनाया और उसे अपूर्व साहित्यिक गरिमा प्रदान की । उपन्यास साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति होने लगी । वह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके, कुछ नवीन मूल्यों की स्थापना करने लगा । वह परम्परागत समाज व्यवस्था और नैतिकता के प्रति आक्रोश प्रकट करने लगा ।

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधाराओं के प्रभाव स्वरूप उपन्यास विकास की ओर अग्रसर होने लगा । यौरोप के साहित्यकारों के सृजन का अनुकरण एवं विभिन्न वादों का विवाद इसी युग से प्रारम्भ हुआ था । इस युग के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "हमारा यह तात्पर्य नहीं कि यौरोप के साहित्य क्षेत्र में उठी हुई बातों की चर्चा हमारे यहाँ न हो । यदि हमें वर्तमान जगत् के बीच से अपना रास्ता निकालना है तो वहाँ के अनेक वादों और

- -

1. हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास : प्रतापनारायण टंडन : पृ. 102.

प्रवृत्तियों तथा उन्हें उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का पूरा परिचय होना चाहिए ।"1" ऐसे युग में जब उपन्यास पूरे आदर्शवाद को अपना लोक बनाये हुये था, उसी समय प्रेमचन्द का आगमन हुआ । "प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम उपन्यास के क्षेत्र से अनावश्यक आदर्शवादिता का बहिष्कार किया, जो अब तक के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है । हिन्दी उपन्यासों में नया मोड़ देने वाले प्रेमचन्द अपने युग के ही नहीं, हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार है ।"2" प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में व्यक्तिगत समस्यायें न उठाकर समाज व्यापी समस्याओं को उठाया है । इस युग के उपन्यासों में चारित्रिक विशेषतायें उत्पन्न करके उसे अधिक कलात्मक बना दिया गया । उपन्यासकार अपनी दृष्टि कथानक एवं पात्रों के विकास में एक प्रकार सन्तुलन रखने लगा । इस युग के उपन्यासों में यदि कथानक को घटना-वैचित्र्य से किसी सीमा तक बोझिल बनाते हुए भी उसका विकास किया है, तब भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि उपन्यास में जो भी पात्र आये हैं, चारित्रिक विकास की दृष्टि से उनमें भी अपूर्णता न रह जाय । कथानक में नाटकीय तत्वों के समावेश की दृष्टि से प्रेमचंद युग का उपन्यास-साहित्य अपेक्षाकृत बेहतर कहा जायेगा । कथा को विभिन्न खण्डों में विभाजित करने की प्रवृत्ति भी इस युग में दिखाई देती है ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में एक नई धारा का उन्मेष हुआ । इनमें से प्रथम विकास-धारा है मनोविश्लेषणात्मक और द्वितीय आंचलिक की । "नये जीवन-मूल्यों की स्थापना दिनानुदिन हो रही है । उसकी गतिशीलता ने आधुनिकता की चरम परिणति आस्तिक-चेतना को क्षीणीकृत में परिवर्तन कर दिया है । आज इसी प्रभावान्विति ने मानव-संबंधों और पारिवारिक सम्बन्धों में आशातीत बदलाव ला दिया ।"3" अब तक के उपन्यास साहित्य में व्यक्ति एवं व्यक्ति

- -

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल : पृ॰468॰
2. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास : डॉ॰ प्रतापनारायण टंडन : पृ॰113॰
3. आधुनिक युग के वातायन से : अशोक कुमार गुप्त : पृ॰21॰

का अथवा व्यक्ति एवं समाज का मूलत: बाह्य संघर्ष ही चित्रित होता रहा है, परन्तु मनोविज्ञान से प्रभावित होने के कारण आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में व्यक्ति के अन्तर के संघर्षों, कीचड़ों एवं कुण्ठाओं पर बल दिया जाने लगा। मनोविश्लेषणात्मक जीवन दृष्टि को समन्वित कर, यथार्थ जीवन के सीमित पक्ष को समय के कटे हुए धरातल पर चित्रित करने की प्रवृत्ति लक्षित हुई है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ की विषमता को प्रत्यक्ष कर मानवीय दु:ख वेदना एवं आचरण की असंगति के कारणों का अन्वेषण करने की प्रवृत्ति प्रकट हुई और मनुष्य के मानवीय पक्षों का अधिकाधिक उद्घाटन हुआ।"[1] व्यक्तिवादी उपन्यासों की भी रचना हुई। अधिकांश उपन्यास साधारण से विशेष, समूह से व्यक्ति, आदर्श से यथार्थ, परम्परा से प्रयोग, आस्था से अनास्था की ओर उन्मुख है। वैज्ञानिक विचारधारा की प्रमुखता ने वस्तुओं को देखने परखने की नवीन दृष्टि दी। प्रेमचन्द युग का आध्यात्मिक स्वप्न-विभ्रम धीरे-धीरे टूटता ही चला गया और स्वतंत्रता के बाद तो एकदम टूट ही गया और लेखक ठोस यथार्थ पर उतर आया, आध्यात्मिक प्रभाव विकासवाद की चेतना में बदला गया।

प्रयोगवादी उपन्यासों की भी रचना आरम्भ हुई। प्रयोगवादी उपन्यासों में मुख्यत: समय एवं स्थान संबंधी चेतना को लेकर प्रयोग किये गए।

इसी युग में आंचलिक उपन्यासों की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। "आंचलिक उपन्यासों को जनतांत्रिक भावना की सच्ची अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् गांवों या पिछड़े इलाकों तथा जनसामान्य को जो महत्व अनुभूत हुआ है उसी का परिणाम है कि लेखकों ने किसी पात्र या मुख्य या जीवन परिपाटी को विशेष महत्व न देकर सुख-दु:ख का सच्चा भोगने वाले यथार्थ लोगों की ओर देखा और उनके माध्यम से एक भूभाग की समूची

- -

1. हिन्दी उपन्यास : शिवनारायण श्रीवास्तव : पृ.204.

जिन्दगी को उसकी समस्त जटिलता और संश्लिष्टता के साथ उद्घाटित किया ।[1]" अतः हिन्दी उपन्यास साहित्य अपने ऊपर पड़े अनेक प्रभावों को लेकर आगे बढ़ रहा है । अतः "प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासका स्वरूप विविधात्मक है । इस युग के उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक आदि औपन्यासिक प्रवृत्तियों के विकास में विशेष रूप से योग दिया है ।"[2]

हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से ही हुआ । परन्तु महिला-उपन्यासकारों ने अपनी प्रतिभा का परिचय विलंब से दिया । इसके भी कई कारण है एक तो उस युग की नारी अशिक्षित थी, दूसरे उसका कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित था । सामाजिक सुधारों, नवजागरण एवं स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों के कारण स्त्रियों में जागृति आई । जिसके फलस्वरूप नारी शिक्षित होने लगी, घर की चारदीवारी से हट कर उसका अनुभव संसार विस्तृत होने लगा । अतः ज्यों-ज्यों उपन्यास साहित्य प्रगति की दिशा में उन्मुख हुआ त्यों-त्यों लेखिकाएं भी इस ओर अपनी जागरूकता का परिचय देती रही ।

महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में अध्ययन विश्लेषण करने के बाद हम यह पाते है, कि साठ-पूर्व महिलाउपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विभिन्न पुरुष चरित्रों को स्थान दिया है । उन्होंने आदर्श एवं यथार्थ के साथ-साथ, कहीं मनोविश्लेषणात्मक एवं व्यक्ति चरित्र को भी लिया है । 1960 के पूर्व महिला उपन्यासकारों के विकास काल को देखते हुये हम उनके समय को दो कालों में विभक्त करते हैं आरम्भिक काल और विकास काल।

2·4·1 <u>आरम्भिक काल</u> : 1890 से महिला उपन्यासकार उपन्यास लिखने आरम्भ कर दिये । सर्वप्रथम महिला उपन्यासकार "साध्वी सती पति प्राण अबला" है । इसके बाद कई महिला उपन्यासकारों

- -

1· हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा :रामदरश मिश्र : पृ·64·
2 हिन्दी उपन्यास सृजन और प्रक्रिया : शिव बहादुर सिंह भदौरिया : पृ·17·

ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया । महिला उपन्यासकारों ने जिस युग में पदार्पण किया था, वह युग तिलिस्मी एवं घटना प्रधान उपन्यासों का था । अतः उनमें के चरित्र आदर्श ही होते थे ।

2·4·1·1 आदर्श पुरुष चरित्र : आरम्भिक काल के महिला उपन्यासकारों के लगभग सभी पुरुष चरित्र चाहे राजनीतिक, ऐतिहासिक, हो अथवा सामाजिक किसी न किसी शिक्षा, उपदेश या आदर्श की प्रतिष्ठापना करते हैं । "सती साध्वी अबला" ने अपने उपन्यास "सुहासिनी" में देवीप्रसाद को एक आदर्श पति के रूप में प्रतिष्ठित किया है । श्रीमती प्रियम्वदा देवी, हेमन्त कुमारी चौधरी, ब्रजकुमारी भगवान देवी दुबे, श्रीमती रुक्मिणी देवी, श्रीमती मालावती देवी ने अपने उपन्यासों में आदर्श पात्रों को लिया है । यह आदर्श चरित्र वाले पुरुष पात्र अपने कर्मों द्वारा बुरे चरित्र वाले पुरुष को भी आदर्श की ओर ले जाते है । "आदर्श माता" में लाला राजनारायण ऐसेही है । वे बिहारी बाबू के दुर्गुणों को दूर करके आदर्श बना देते है । इन महिला उपन्यासकारों ने आदर्श पति ही नहीं, आदर्श प्रेमी, आदर्श पिता, आदर्श भाई को भी अपने उपन्यासों में स्थान दिया है । ये सभी पुरुष पात्र देवोचित गुणों को लिये हुये है ।[1]

2·4·1·2 यथार्थ पुरुष चरित्र : आदर्श पुरुष पात्रों के साथ भारतेन्दु-पूर्व महिला उपन्यासकारों ने यथार्थ पुरुष चरित्रों को भी लिया है । इन उपन्यासों में यथार्थ चरित्र से तात्पर्य दुष्ट प्रकृति के चरित्र । ये दुष्ट प्रकृति के पुरुष चरित्र आदर्श चरित्र वाले पुरुषों के मार्ग में रोड़े अटकाते हैं । दुष्ट चरित्र के पुरुषों को अपने उपन्यासों में स्थान देकर भारतेन्दु-पूर्व महिला उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य यह था कि समाज को इनकी बुराईयों की ओर इशारा करना था । कुछ पात्र तो अन्त तक सुधर जाते हैं, किन्तु कुछ नहीं सुधरते हैं । "सुहासिनी" उपन्यास का ब्राह्मण एक दुष्ट प्रकृति का पुरुष पात्र है । इसी उपन्यास में एक पाखण्डी साधु का भी उल्लेख किया गया है ।[2]

- -

1· आदर्श माता : श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी :

2· सुहासिनी :

"कम्पुनी परिवार" का एक पुत्र है रामचन्द्र, गोपालचन्द्र और हरिशचन्द्र निकम्मे एवं विलासी प्रकृति के हैं। इनका चरित्र-चित्रण यथार्थ रूप से किया गया है। "सौन्दर्य कुमारी" उपन्यास का गंगाराम भी शराबी एवं जुआरी है।"

2·4·1·3 यथार्थोन्मुख आदर्शवादी पुरुष पात्र

कुछ महिला उपन्यासकारों ने यथार्थोन्मुख आदर्शवादी चरित्रों को लिया है। "श्रीमती प्रियम्वदा देवी" कृत "लक्ष्मी" उपन्यास में रामसेवक ऐसा ही पुरुष पात्र है जो पहले लक्ष्मी के साथ सम्बंध विवाह करता है, और उसे छोड़ कर चला जाता है, परन्तु बाद में फिर लक्ष्मी के स्वभाव एवं गुणों से प्रभावित होकर वह लक्ष्मी को अपना लेता है।

2·4·1·4 पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुष-चरित्र

आदर्शवादी, यथार्थवादी पुरुष पात्रों के अतिरिक्त पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुरुष चरित्रों को भी स्वातंत्र्य-पूर्व महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में लिया है। श्रीमती लीलावती देवी कृत सती दमयन्ती भी पौराणिक उपन्यास है। जिसमें "नल" पौराणिक चरित्र है।

अतः आरम्भिक काल की उपन्यास लेखिकाओं ने अधिकतर आदर्श पुरुष पात्रों को ही लिया है। चरित्रों में आदर्श की स्थापना करना इनका मुख्य उद्देश्य है। अपने उपन्यासों में यथार्थ चरित्रों की स्थापना करने का मुख्य उद्देश्य सिर्फ यही था कि समाज में सुधार लाना। स्वातंत्र्य-पूर्व महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में सभी वर्गों के पुरुष पात्रों को लिया है, परन्तु मध्यवर्ग के पुरुष पात्र दूसरे वर्ग के पुरुष पात्रों से ज्यादा की संख्या में आये हैं।

महिला उपन्यासकारों ने पुरुष के सौन्दर्य का चित्र भी उनके बाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूपों से किया है।

2·4·2 <u>विकास काल</u> विकास कालीन स्वातंत्र्य-पूर्व महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की रचना (सन् 1924 के बाद) ~~सन् 1904~~ से ~~2000 तक~~ हुई थी । विभिन्न वादों के प्रभाव स्वरूप उपन्यास साहित्य में एक मोड़ आया । इन उपन्यासों में सभी वर्गों को लिया जाने लगा, जैसे पूँजीपति, मध्यवर्ग, किसान, मजदूर आदि । राष्ट्रीय भावना के उदय के कारण राजनीतिक पात्रों को भी स्वातंत्र्य-पूर्व महिला उपन्यासकार लेने लगी । व्यक्ति की विकृति के लिये समाज को उत्तरदायी ठहराया गया । उपदेश प्रधान उपन्यासों से आगे बढ़कर उद्देश्य प्रधान उपन्यास रचे जाने लगे । सामाजिक उद्देश्यों की परिपूर्ति के लिये ही पात्रों के व्यक्तित्व का अथवा उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है । पात्रों के मनोजगत् की अपेक्षा लेखिकाओं ने उनकी आकृति, वेशभूषा, बाह्य परिवेश के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाओं आदि के माध्यम से उनके बहिरंग व्यक्तित्व का चित्रण किया है । इस युग के पात्र आरम्भकालीन पात्रों की भाँति केवल सद्गुणों के ही पुतले नहीं है, अपितु उनमें मानवोचित दुर्बलताएँ भी है । इसी कारण से अधिक मानवी एवं स्वाभाविक है । इन उपन्यासों में किसी न किसी रूप में तुलनात्मक चरित्र-चित्रण का विकास हुआ ।[1]

2·4·2·1 <u>आदर्श पुरुष चरित्र</u> स्वातंत्र्य-पूर्व विकासकालीन महिला उपन्यासकारों ने यद्यपि आदर्श पुरुष चरित्रों को लिया है, फिर भी उनमें कुछ मानवोचित दुर्बलताएँ भी है । ये आरम्भिक कालीन महिला उपन्यासों के आदर्श पुरुष पात्रों की तरह केवल सद्गुणों के पुतले नहीं हैं । "जीवन की मुस्कान" का प्रभास ललिता से प्रेम करता है, परन्तु उसका यह प्रेम मूक है, वह ललिता के सामने अपना प्रेम व्यक्त नहीं कर पाता ।[2] श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल का उपन्यास "संकल्प" का देवेन्द्र भी एक आदर्शवादी एवं दृढ़ संकल्पवादी पुरुष है । अपने भाई सुरेन्द्र के अनुचित कार्यों के कारण उससे अलग हो जाता है ।

1· हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में महिलाओं का योग :
   उर्मिला गुप्ता
2· जीवन की मुस्कान :

अशक भी अहिंसात्मक विचारों वाला पुरुष है । कंचनलता सब्बरवाल के अन्य उपन्यासों में निशिथ, रविदत्त, रमाशंकर, पंडित कार्तिकेय त्रिवेदी आदि आदि आदर्श पुरुष पात्र है । श्रीमती उषा रानी के उपन्यास " करनी ऐसी " का विपिन भी आदर्श पुरुष पात्र है ।

साठ-पूर्व विकासकालीन उपन्यास लेखिकाओं में रजनी पनिकर के उपन्यास "ठोकर" का अटल उदार एवं कोमल हृदय का व्यक्ति है । वह आधुनिक युवकों की भांति बाह्य सौन्दर्य अथवा धन को महत्व नहीं देता, अपितु आन्तरिक गुणों का आदर करता है । वह एक मध्यवर्गीय पुरुष पात्र है ।[1] "प्यासे बादल" उपन्यास का जयन्त भी उक्त मध्यवर्गीय पात्र है । जिसमें अकृत्रिम गुण है, जो कर्तव्य भावना को महत्व देता है । इसके अतिरिक्त शीत लीला की प्रेरणा से भी उसकी आत्मा में बीज रूप में निहित गुणों का विकास होता है ।[2] लीला अवस्थी का उपन्यास " दो राहें" का हिन्दी अध्यापक कुंजीलाल भी सहृदय पुरुष है । रत्नी को सुधारने के लिये उससे विवाह कर लेता है ।[3] "नारायणी कुलश्रेष्ठ" कृत " पराये बस में" का शम्भु आकृति से कुरूप होते हुए भी हृदय से उदार एवं परदुःखकातर युवक था ।[4]

अतः साठ-पूर्व विकासकालीन महिला लेखिकाओं ने पूर्णतः आदर्श चरित्र को नहीं लिया । उनमें कुछ मानवोचित दुर्बलतायें भी होती है । जिसका निर्वाह उन्होंने अपने उपन्यासों में बखूबी किया है ।

2·4·2·2 <u>यथार्थ पुरुष चरित्र</u> विकासकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ चरित्र वाले पुरुष पात्र अधिकतर तुलनात्मक रूप में आये है । "जलन के मोल"का शैलेश" पाश्चात्य भौतिकता की चकाचौंध में विलासिता और कुण्ठा को लक्ष्य मानते हैं ।

1· ठोकर : रजनी पनिकर

2 प्यासे बादल : रजनी पनिकर

3· दो राहें : लीला अवस्थी

4· पराये बस में : नारायणी कुलश्रेष्ठ

"उषा देवी मित्रा" के उपन्यास नष्ट नीड़ में रवीन्द्र व सूर्यप्रकाश स्वार्थवादी है। रवीन्द्र अपनी पत्नी को जो पाकिस्तानी दंगों की शिकार हो गई थी, समाज के डर से नहीं अपनाता है।[1] "अनचाहा" में वीरेश्वर प्रताप विलासी एवं दोगली नीति का पुरुष है। इसका सम्बन्ध अभिजात वर्ग से है। "उमा सुन्दरी" का सतीश परस्त्री गमन एवं विलासी व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त "कली कैसे" का प्रकाश बुरे चरित्र का व्यक्ति है जो वासना एवं स्वार्थ के लिए भोली नारियों का जीवन भ्रष्ट करके अन्त में दूध की मक्खी की तरह निकाल देता है। "लगन" का प्रेमेश भौतिकवादी है जो भावनाओं को उपेक्षा बाह्य सौन्दर्य की ओर ध्यान देता है।

"रजनी पनिकर" कृत "मोम के मोती" का सेठ धनपति पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है। पत्नी तथा बच्चों के होते हुये भी अपने सम्पर्क में आने वाली मतलबी नारियों के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी उपन्यास के मेजर क्वात्रा भी अपनी पत्नी कौशल्या को अपढ़ कह कर त्याग देते हैं " क्वात्रा पुरुषों की उस नीच श्रेणी का कीटाणु है, जो रोग फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ती।"[2] "जाड़े की धूप" में अजय एक कपट पूर्ण व्यक्तित्व का पुरुष है। राजू के माध्यम से लेखिका ने युवकों की स्वार्थ परक भावनाओं पर करारा व्यंग्य किया है।[3] 6 "गेटकीपर" उपन्यास में नीरज के माध्यम से विश्वास-घाती मित्र का चित्रण किया गया है जो अपने मित्र देवेन्द्र को षड्यन्त्र द्वारा जेल भिजवाकर उसकी प्रेमिका नयना से विवाह कर लेता है। यह वेश्या-गामी भी है और कुल-कुल का शोषण भी भी करता है। इसके अतिरिक्त यथार्थ चरित्र वाले पुरुष पात्रों में कुछ राजनीतिक पात्रों को भी लिया गया है। "महाकार"[4] उपन्यास रायसाहब मेहरचन्द के माध्यम से उस पूँजीपति वर्ग का चित्रण किया है, जिसमें अनेक दुर्गुणों के होते हुये भी वे समाज में सर्वपूज्य हैं, क्योंकि वे सफल व्यापारी हैं।

---

1. नष्टनीड़ : उषा देवी मित्रा :
2. मोम के मोती : रजनी पनिकर : पृ. 150.
3. गेटकीपर : सुषमा भाटी

चुनाव में भाग लेने पर उन्होंने प्रतिपक्षी को परास्त करने के लिए मदिरा धन बल, छल, प्रपंच व्यभिचार आदि सभी हथकण्डों का प्रयोग करके और अपने मैनेजरों की सहायता से मतदाताओं को धन द्वारा वश में करके विजय प्राप्त करता है । इसी उपन्यास में रामनारायण भी कांग्रेसी कार्यकर्ता है । वह भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए जनता को धोखा देते हैं ।[1] लेखिका इन दोनों चरित्रों के माध्यम से प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है । "श्रीमती नारायणी कुशवाहा "कृत "पराये वश में" का जग्गू एक दुष्ट प्रकृति का पुरुष है । उसका बाह्य वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है । "जग्गू नाटे कद का था । रंग काला, बाहें भूरी दांत पीले और बड़े बालों पर गोली मिट्टी ।"[2]

अतएव साठ-पूर्व महिला उपन्यासकारों ने यथार्थ चरित्र में विभिन्न पुरुष छवियों को अपने उपन्यासों में अंकित किया है । अभिजात वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग तीनों ही वर्ग के पात्र है । जिसमें प्रेमी, पति, भाई सेठ, राजनीतिज्ञ जैसे विभिन्न विभिन्न पुरुष पात्रों को अपने उपन्यासों में लिया है ।

2.4.2.3 <u>आदर्शोन्मुख यथार्थ पुरुष चरित्र</u>

आदर्शोन्मुख यथार्थ वादी चरित्र उसे कहते हैं जो पहले यथार्थवादी होते है परन्तु बाद में ऐसे चरित्रों में परिवर्तन आ जाता है और वह आदर्शवादी हो जाते है । उनमें आदर्श और यथार्थ दोनों ही गुणों का समावेश रहता है । साठ के पूर्व महिला उपन्यासकारों ने चरित्रों के पूर्व पक्ष में तो उसे नितान्त यथार्थ रूप में उसकी सत्-असत् वृत्तियों समस्त दुर्बलताओं - सबलताओं स्वाभाविक मानवीय सुलभ इच्छा -आकांक्षाओं के चरित्र चित्रित किया है, किन्तु अन्त में उनका आदर्शात्मक दृष्टिकोण आगे आ जाता है ।

---

1. मँझधार : माया मन्मथनाथ गुप्त : पृ.20,34,58,60.
2. पराये वश में : श्रीमती नारायणी कुशवाहा

उषा देवी मित्रा द्वारा रचित "पिया" का विभूति इसी प्रकार का पुरुष है। पहले वह दुष्ट प्रवृत्ति का पुरुष है परन्तु बाद में उसके चरित्र में परिवर्तन होता है और वह आदर्श जीवन को अपना लेता है। इसी प्रकार "सम्मोहिता" उपन्यास में रमेश चौधरी भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्र है। एवं "अनचाहा" का अरुण भी एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी पुरुष पात्र है।

"जाड़े की धूप" उपन्यास में पवन अपनी दुर्बलताओं को गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं समझता है। उसके व्यक्तित्व में कोई दुराव नहीं है। उसकी पत्नी भारती जब अजय की ओर आकर्षित होती है और बाद में अजय भारती को छोड़कर चला जाता है तो वह अपनी पत्नी को क्षमा कर देता है।[1] "जीवनदान" उपन्यास में मनहर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पुरुष पात्र है। वह सुरमा से प्रेम करता है परन्तु सुरमा उससे नहीं प्रभात से प्रेम करती है। इसी ईर्ष्या वश वह प्रभात को सुरमा के विवाह की सूचना नहीं देता, परन्तु बाद में जब प्रभात को सुरमा के विवाह का पता चलता है तो वह विक्षिप्त सा हो जाता है। यह देखकर मनहर अपनी पीड़ा को भुलाने के लिये उन्मत्तता का क्रियात्मक मार्ग अपनाता। अपने एकमात्र अपराध के लिए उसे जीवनभर पश्चाताप रहता है। उदाहरणार्थ महाश्वेता द्वारा अपनी प्रति उसके भगिनी जैसे प्रेम को देखिये - "यही वह शराबी, जुआरी, आवारा मनहर है। अपने को मिटा कर दूसरों को बनाने वाला। लोग कहते हैं माँ जाया भाई ही इतनी ममता प्यार कर सकता है। मनहर बेगा तो उससे भी बढ़ गये है।"[2] "हृदय की ताप" का विनोद पाश्चात्य उच्छृंखलता एवं भारतीय क्षमा एवं सहृदयता के प्रतीक है। गौरी के प्रभाव में आकर उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है।

2.4.2.4 <u>मनोवैज्ञानिक पुरुष चरित्र</u> फ्रायड की मनोविश्लेषणवादी, स्वप्न विश्लेषण, सम्मोहन विश्लेषण आदि पद्धतियों का प्रयोग अभी नहीं हुआ था। वस्तुतः इस काल में प्रयुक्त मनोविज्ञान फ्रायड के मनोविश्लेषण से भिन्न व्यावहारिक मनोविज्ञान है। महिला <u>उपन्यासकारों के उपन्यासों में अन्तर्द्वन्द्व, चरित्र के भावावेग, मनोभाव</u>

1. जाड़े की धूप : रजनी पनिकर 2. जीवनदान : कुमारी तारादेवी,

अस्त-व्यस्त मनःस्थिति आदि का चित्रण अवश्य मिलता है । जो चरित्र को मनोवैज्ञानिक का पुट "रजनी पनिकर" का उपन्यास "पानी की दीवार" एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें दिलीप के मन में सीमा से सम्पर्क में आने के बाद द्वन्द्व का आविर्भाव होता है । "पानी की दीवार" की भूमिका में भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं कि "मुझे इस स्वस्थ और सुन्दर मनोवैज्ञानिक उपन्यास को पढ़कर प्रसन्नता के साथ-साथ संतोष भी हुआ कि हिन्दी साहित्य की चेतना वास्तविक साहित्यिक सृजन के प्रति सजग है ।"1"

सार रूप में हम कह सकते हैं कि साठ पूर्व की महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में अंकित पुरुष छवियाँ विभिन्न विशेषताओं को लिये हुये हैं । आरम्भिक कालीन महिला उपन्यासकारों में सुधार भावना से प्रेरित होकर आदर्श पुरुष को अपने उपन्यासों में स्थान दिया । अधिकांश रूप से उनके पुरुष पात्र उच्च वर्ग एवं मध्यवर्ग से आये हैं । औपन्यासिक पुरुषों का बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के दोनों रूपों का चित्रण किया गया । इस युग की महिला उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य पात्रों के माध्यम से पाठकों को उपदेश देना था ।

थोड़ा आगे चलकर महिला उपन्यासकारों ने नीति एवं उपदेश प्रधान परम्परा से हटकर घटना प्रधान एवं उद्देश्य प्रधान उपन्यासों की रचना की । स्त्री और पुरुषों के सम्बन्धों पर ही विशेष रूप से प्रकाश डाला गया । प्रेम में असफल होने के कारण विरह में परिणति तो कहीं घटनाओं के विभिन्न घात-प्रतिघातों के कारण हृदय परिवर्तन को लेकर पुरुष पात्रों को लिया । सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही पुरुष छवियों के स्वरूप या अथवा उनकी बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है । पुरुषों के मनोजगत की अपेक्षा उनकी आकृति, वेशभूषा चतुर्दिक परिवेश के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाओं आदि से उनके बहिरंग व्यक्तित्व का निरूपण किया है । पुरुषों की वर्ग भावना

---

1. पानी की दीवार : रजनी पनिकर : भूमिका 7-7.

के अतिरिक्त व्यक्तिगत विशेषताओं को भी अंकित किया है ।

विकासकालीन लेखिकाओं ने समाज एवं परिवार को केन्द्र मानकर प्रेममूलक उपन्यासों की रचना की । जहाँ पूर्ववर्ती महिला उपन्यासकारों ने पुरुष दृष्टि की अनुभूतियों को समाज का केन्द्र मानकर चित्रण किया था वहीं इस युग की महिला उपन्यासकार ने पुरुषों के वर्ग गत प्रवृत्तियों के साथ-साथ व्यक्ति-वैचित्र्य की भी स्थापना की, तथा पात्रों के मनोविज्ञान सम्मत कुण्ठाओं का विश्लेषण करने का भी लक्ष्य रहा ।

<u>निष्कर्ष</u>

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय नवजागरण के कारण भारतीय स्त्रियों में जो चेतना आई, जिसके द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय स्वाधीनता में अपना मोर्चा मनवा लिया । फिर भी उनकी स्थिति में उतना सुधार नहीं हुआ जितना की होना चाहिये । उनका यह संघर्ष प्रतिद्वंद्वी का नहीं सहयोगी का है । इस सब के लिये जरूरत है पहले अपनी पहचान की । मध्यकालीन स्थितियों की देन तथाकथित "नारी सुलभ कमजोरियों पर विजय पाने की । अपनी कुंठाओं के निवारण की पुरुष की बराबरी में आने के लिए अपनी ऊँचाई से गिरने की नहीं, अपने खोए सम्मान को पुनः प्राप्त करने की। ऐसी मांगें उठाने की अधिकार अर्जित किए जाएं, और नारी की गृहिणी, माँ की भूमिका के साथ ही समाज निर्माता की भूमिका जोड़ी जाए ।[1]" अतः अपनी पहचान को स्थापित करने के लिये नारी ने साहित्य को अपना क्षेत्र चुना और इस क्षेत्र के द्वारा उन्होंने अपनी योग्यता को स्थापित कर दिया । अपने उपन्यासों के द्वारा जिस प्रकार पुरुष उपन्यासकारों ने नारी का सूक्ष्म चित्रण किया उसी प्रकार स्वात पूर्व महिला उपन्यासकारों ने पुरुष चरित्रों की बाह्य एवं मानसिक प्रवृत्तियों का चित्रण किया है जिसके द्वारा हिन्दी साहित्य को उनकी बहुत बड़ी देन माना जायेगा । अतः हम कह सकते

- -

1-भारतीय नारी : दशा, दिशा : आशारानी व्होरा

है कि -

"मानव जीवन की उत्पत्ति में
नारी का कितना योगदान
"उत्पत्ति" - यह शब्द स्वयं नारी
है शब्द, प्रश्न का समाधान
जीवन -सरिता की संगम में
रहती स्त्री है तट के समान ।
जीवन की गतिमय रहने में
स्त्री, सर्वोत्तम विधि का विधान ।[1]"

---

1. नारीतीर्थ : डा॰ पार्थसारथि डबराल : पृ॰11॰

अध्याय - तीन

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष पात्र

अध्याय तीसरा

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में पुरुष - पात्र

3·1 पात्रों का वर्गीकरण

उपन्यास का केन्द्र बिन्दु पात्र है, उपन्यास के सभी तत्वों का अस्तित्व पात्र के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ रहता है। पात्रों के अभाव में चरित्र -सृष्टि की कल्पना असंभव है। "पात्र" शब्द का अर्थ है " भाजन", "किसी वस्तु आधार" अथवा "कोई वस्तु पाने का अधिकारी व्यक्ति। [1] पात्र का एक निश्चित व्यक्तित्व होता है। उपन्यासों में पात्रों की संख्या, सीमा, परिधि उपन्यासकार के कथानक और उपन्यासकार के दृष्टिकोण और कला पर निर्भर है। उपन्यास के पात्रों के सम्बन्ध में ई·म·फॉस्टर ने कहा है कि "उपन्यास-कार मानव-जीवन की प्रक्रियाओं का वर्णन करता है जिसके लिए उसे कुछ पात्रों का निर्माण करना पड़ता है। उपन्यासकार अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये अनेक शब्द मूर्तियों की रचना करता है। इनके साथ वह नाम तथा लिंग जोड़ता है। उन्हें अनुचित प्रदान करता है। उनसे उचित चिन्हों में बात करवाता है और कदाचित् उनसे एक-सा व्यवहार भी करवाता है। ये शब्द मूर्तियाँ ही उपन्यास के पात्र है।[2] डा: खण्डेलवाल जी के अनुसार "साहित्य सृष्टि भी एक मानव सृष्टि है। उसके उस अंग [गीतिकाव्य] में तो, जिसमें भावव्यंजना ही प्रमुख उपकरण है, पात्रों की विशेष आवश्यकता नहीं होती, पर प्रबन्ध काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में पात्र अनिवार्यतः निबद्ध रहते हैं। क्योंकि समस्त कथा व्यापार पात्रों के द्वारा ही सम्पादित होता है।"[3] औपन्यासिक पात्र वस्तु-जगत के आधार पर निर्मित किये जाते हैं। औपन्यासिक जगत् में उसके अन्तर्मन का भी स्पष्ट चित्र होता है। कथानक के आधार का प्रभाव पात्रों पर

- -

1· आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम : डॉ·लक्ष्मीराय: पृ·40·

2· E.M. Forster : Aspects of the Novel : P. 44

3· जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला :रामेश्वरलाल खण्डेलवाल :पृ·140·

पड़ता है । आधुनिक उपन्यासों में कम पात्रों से जीवन के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है । अतः पात्र उपन्यास का प्राण है । उपन्यास में पात्र के महत्व पर बल देते हुए डा॰बेचैन का कथन है – " एकमात्र पात्र ही उपन्यास का मेरुदण्ड है । पात्र और चरित्र के चारों ओर फैला हुआ वातावरण, परिस्थितियाँ और वातावरण ही लेखक या कलाकार के लिए कच्चा माल है, जिसे पका कर वह उपन्यास का कलेवर तैयार करता है और उसे सजाता है ।"1.

अतएव प्रत्येक साहित्यिक विधा में "पात्र" अवश्य ही रहता है । ये पात्र विभिन्न आकृतियाँ धारण करके कलाकार की सृष्टि (रचना) में विचरण करते हैं । पात्रों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है ।

3.1.1 <u>शास्त्रीय दृष्टि से पात्रों का वर्गीकरण</u>

3.1.1.1 <u>कथानक की दृष्टि से</u> : उपन्यास की कथा पात्रों के आधार पर ही चलती है । इस दृष्टि से पात्रों के दो भेद किये जाते हैं । प्रधान पात्र तथा गौण पात्र । प्रधानपात्र में उपन्यास का मूल अभिप्राय केन्द्रित होता है । प्रधान पात्रों में नायक-नायिकाओं को लिया जाता है । जो कथानक को गति देते है, तथा उसमें विकास पाते रहते है । गौण पात्रों में वे पात्र आते हैं जो प्रधान पात्रों के सहायक होते हैं और कथानक को बढ़ावा देते है । यह पात्र अपनी इच्छा से नहीं बल्कि उपन्यासकार की इच्छा से आवश्यकता-पूर्ति के लिये होता है । इनके चरित्रों के प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं । कथानक की दृष्टि से प्रधान पात्र के भी चार भेद किये जाते हैं । नायक-नायिका, प्रतिनायक, प्रतिनायिका – पताका नायक – पताकानायिका तथा चौथा विदूषक ।

3.1.1.1.1 <u>नायक</u> उपन्यास का प्रधान पात्र नायक होता है । आचार्य विश्वनाथ ने "साहित्य दर्पण में नायक के लक्षण इस प्रकार दिये

- -

1. आधुनिक कथा साहित्य (हिन्दी) और चरित्र विकास :डॉ॰बेचन: पृ॰26.

है ।

"त्यागी कृति कुलीन: सुश्री को रूप यौवनोत्साही ।
दक्षो अनुरक्त लोक तेजो वैदग्ध्यशील वान्नेता ।।"1.

संस्कृत के आचार्यों ने नाटकों का विवेचन करते हुये नायक के शील और शक्ति के आधार पर चार भेद किये हैं । [अ] धीरोदात्त [आ] धीरोद्धत्त [इ] धीर ललित तथा [ई] धीर प्रशान्त ।2.
और इनको भी चार श्रेणियों में विभक्त किया है ।
[अ] दक्षिण [आ] धृष्ट [इ] शठ और [ई] अनुकूल ।3.

परन्तु उपन्यासों में आज इस प्रकार का वर्गीकरण मान्य नहीं है । "विशेषत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के नायकों को इस प्रकार के वर्गों में बाँटना तो और भी अस्वाभाविक प्रतीत होगा, क्योंकि उनके पात्र निरंतर विकासमान रहते हैं और उनका चरित्र नवीन दिशाएँ ग्रहण करता है, जबकि इस वर्गीकरण की नींव में ही यह भाव निहित है कि नायक का विकास कुछ-एक बंधी हुयी दिशाओं में ही हो सकता है ।"4.

3.1.1.1.2 <u>प्रति नायक</u> प्रतिनायक वह पात्र होता है जो नायक को लक्ष्य प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करता है । प्रतिनायक के लक्षण देते हुये विश्वनाथ ने "साहित्य दर्पण" में लिखा है कि वह धीरोद्धत्त, पापासक्त तथा व्यसनी होता है ।"5. उन्होंने धीरोद्धत्त नायक के सभी गुण प्रतिनायक में कपटता, प्रचण्डता, चंचलता, अहंकार, आत्मगौरव, आत्मश्लाघा,6. तो है ही और इसके अतिरिक्त उसका पापी और व्यसनी होना भी माना है ।

- -

1. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ : तृतीय परिच्छेद, 66वाँ श्लोक
2. साहित्यदर्पण : - वही - 67वाँ श्लोक
3. साहित्यदर्पण : - वही - 73वाँ श्लोक
4. हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण का विकास : रणवीर रांग्रा : पृ. 56
5. साहित्य दर्पण : विश्वनाथ : तृतीय परिच्छेद : 163वाँ श्लोक
6. -वही- - वही- -वही- : 63वाँ श्लोक

प्रतिनायक माह धीरोद्धत इति । धीरोद्धत:
मायापर: प्रमादोन्मा नायक लब्धगोमुका । [1]

प्रतिनायक स्वार्थ सिद्धि के लिये सत्य और असत्य के तथा पाप और पुण्य के भेद को मिटा देता है । यह नायक को टक्कर का पात्र होता है ।

3.1.1.1.3 <u>पताका नायक</u> "पताका नायक को पीठमर्द भी कहते हैं, क्योंकि यह नायक की पीठ ठोंकता रहता है । यह नायक की सी प्रकृति वाला होता है, परन्तु गुणों में उससे कम होता है ।

3.1.1.1.4 <u>विदूषक</u> इसका समावेश उपन्यासों में मसखरे के रूप में होता है । ऐसे पात्र उपन्यास को केवल नीरस होने से नहीं बचाते बल्कि अपने तीक्ष्ण व्यंग्यों द्वारा अन्य पात्रों पर टीका-टिप्पणी करने नायक-नायिका को उद्देश्य पूर्ति में परोक्ष रूप से योग देने, समय-समय पर कथानक के टूटे हुए अंशों को मिलाने आदि का काम भी करते रहते हैं ।"[2]

यह शास्त्रीय वर्गीकरण आधुनिक काल में मान्यता प्राप्त नहीं कर सका । व्यक्तिवाद, समाजवाद, मनोविज्ञान, मार्क्सवाद आदि के आ जाने से पात्रों के वर्गीकरण में परिवर्तन आया है ।

3.1.2 <u>पात्रों के गुणों के आधार पर</u> : पात्रों के गुणों के आधार पर दो भेद किये गये हैं [अ] वर्गगत पात्र और [आ] व्यक्तिगत पात्र

3.1.2.1 <u>वर्गगत पात्र</u> वस्तुतः उपन्यास अपने समग्र रूप में सम्पूर्ण मानव-जाति या समाज का चित्र कहा जाता है । इस दृष्टि से प्रत्येक उपन्यास के पात्र अनिवार्य रूप से समाज के किसी-न-किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं । पात्रों के सर्वप्रथम भेद इसी वर्गगत भिन्नता के आधार पर किया जाता है ।[3] इसे अंग्रेजी में " टाइप कैरेक्टर " कहते हैं ।

---

1. 177 के फुटनोट्स में दी गई 163 वें श्लोक की टीका
2. हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास : डा. रणवीर रांग्रा, पृ.
3. हिन्दी उपन्यास कला : प्रतापनारायण टंडन : पृ. 180.

जो पात्र अपनी जाति के प्रतिनिधि होते हैं, वे टाइप या सामान्य, वर्गगत या प्रतिनिधि पात्र कहे जायेंगे ।"[1] वे सामान्य मनुष्य होते हैं और मुक्तिबोध के अनुसार सामान्य वह है, जिसमें अपने भीतर के असामान्य के उग्र आवेश का पालन करने का मनोबल न हो ।[2] वर्गगत पात्र में वे अन्तर्वर्ती उपन्यासकार उस वर्ग के सम्पूर्ण परिवेश को अपने उपन्यास के अन्तर्गत रखता है । जैनेन्द्र ने वर्गगत पात्र की पहचान कराते हुए लिखा है - "दुरुस्त कपड़े, दुरुस्त नीति, दुरुस्त सब कुछ । जैसे ज्यामिति के चतुर्भुज । सब समकोण, त्रिभुजकोण कहीं भी नहीं । वह खुद अपने नहीं जीने की औसत है । अपने वर्ग के दूसरे आदमी जैसे काट के कपड़े, उसी तर्ज के विचार, उसी नाप की नीति, एकदम सही राय । शंका उन्हें नहीं छूती । सदा राजमार्ग पर वे चलते हैं । वे वही मानते हैं जो मानना चाहिए . .. । अपने पूर्वज चल-चल कर जिस रास्ते को पक्का कर गये हैं, चलने के लिए वही रास्ता है । बस हमारे टाइप (वर्गगत) बेखटके उस पर चले जाते हैं ।"[3] इन वर्गगत पात्रों में वैशिष्ट्य एवं जटिलता नहीं होती है क्योंकि पात्रों की रचना में लेखक का समाज व परिस्थितियों का व्यापक अनुभव सम्मिलित होता है, क्योंकि वे पात्र उन्हीं के प्रतीक, उपलक्षण, प्रतिनिधि या सन्देश वाहक होते हैं, अपनी कोई बहुत महत्वपूर्ण निजी विशेषता नहीं रखते ।[4]

3.1.2.2 <u>व्यक्तिगत पात्र</u> व्यक्तिगत पात्र अपनी वैयक्तिक व्यवहार, विशेषताओं, अवस्थाओं के साथ इस प्रकार चित्रित किये जाते हैं कि वे एक समूह या वर्ग विशेष से भिन्न प्रतीत होते हैं । सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा व्यक्तिगत पात्र यथार्थ को प्राथमिकता देते हैं । "व्यक्ति पात्रों में मानव-प्रकृति के स्थूल ढांचे में आने वाली समस्त विशेषताओं से कुछ भिन्न कुछ ऐसे गुण या विशेषता होती है, जो प्रायः देखने सुनने

---

1. काव्य के रूप : डा॰ गुलाब राय : पृ॰ 163.
2. एक साहित्यिक की डायरी : गजानन माधव मुक्तिबोध : पृ॰ 77.
3. साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र कुमार : पृ॰ 176-177.
4. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : पृ॰ 156.

नहीं के बराबर होती है । अत्यन्त अन्तर्मुख, आत्मरत, विद्रोही, सनकी, व जटिल मनोविज्ञान वाले असाधारण पात्र इस वर्ग में आते हैं ।"1" ये साधारण लोगों से कुछ विलक्षण होते हैं ।

वर्ग और व्यक्ति के आधार पर उक्त विभाजन का तात्पर्य यह नहीं कि दो पात्रों के मध्य एक रेखा खींच दी जाए कि अमुक पात्र टाइप है, और अमुक व्यक्ति । " प्रत्येक व्यक्ति एक टाइप है, लेकिन साथ ही वह विशिष्ट रूप से एक व्यक्तित्व भी ... जिसे टिबैल कहता है " यही एक विशेष" और हैरिस के अनुसार " इसे केवल यही होना चाहिए था"। एक कल्पनाशील लेखक किसी विशेष सामाजिक समूह के टिपिकल चारित्रिक तत्वों में भी इतने सूक्ष्म रंगों की खोज सकता है कि एक समूह से एकदम भिन्न-भिन्न चरित्र वालों की अलग दुनिया ही बन जाए ।[2] केवल एक पक्ष विशेष के अधिक के कारण ही हम कह दिया करते हैं कि अमुक के पात्र टाइप है , तो अमुक के पात्र व्यक्ति पात्र है ।

3.1.3 <u>चरित्र विकास की दृष्टि से</u> :

चरित्र विकास की दृष्टि से भी पात्रों के दो भेद किये जा सकते हैं - एक स्थिर पात्र और दूसरे गतिशील पात्र ।

3.1.3.1 <u>स्थिर पात्र</u> यह पात्र वह होते हैं, जो आदि से अन्त तक एक ही रूप में विद्यमान रहते हैं । इन्हें स्थिर या " स्टैटिक" पात्र कहते हैं । स्थिर पात्रों को " फारेस्टर" ने " फ्लैट कैरेक्टर" के नाम से अभिहित किया है । ऐसे पात्र स्वयं नहीं बदलते, मानो वे आरम्भ से ही अपने आप में पूर्ण हो, केवल उनके विषय में हमारा ज्ञान ही बदलता है । [3] जिन व्यक्तियों के प्रति वे उदार और सहानुभूतियुक्त होते हैं, अन्त तक उनके प्रति वैसा ही भाव रखते हैं, और जिनके प्रति आरम्भ से ही घृणा एवं शत्रुता की भावना रखते हैं, वह अन्त तक

- -

1. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : रामेश्वर खण्डेलवाल पृ.156.
2. प्रेमचन्द के पात्र : कोमल कोठारी : विजयदान : पृ 240.
3. 'The passes from the beginning and never loss to the end , and what actually does change is not these, but knowledge of them : The structure of Novel Edwin Muir : p.24-25.

वैसी ही विद्यमान रहती है । सीमाओं को तोड़ना यह जानते ही नहीं । ई.एम. फोर्स्टर ने " फ्लैट कैरेक्टर " के सम्पूर्ण चरित्र को एक वाक्य में अभिव्यक्त किया है । " The realy Flat Character can be expressed in one sentence. Such as ' I never will desert Mrs. Micawber".[1]

अतः ऐसे पात्रों के चरित्र को उपन्यासकार उनके गुणों, दोषों को एक-एक कर प्रकाश में लाता है ।" "ऐसे पात्र प्रायः किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं । लेखक उनमें उनके वर्ग की कुछ उभरी हुई विशेषताएँ भर देता है, पर कथानक के विकास के साथ-साथ उन पात्रों की उन विशेषताओं का विकास नहीं करता है । लेखक पूर्वनिश्चित रूपरेखा के अनुसार उनमें उनकी रुचि-अरुचि, प्रवृत्ति-निवृत्ति, आचार-विचार में ऐसे ढालता है कि वह उन पूर्वनिर्धारित सीमा रेखाओं के पार जाने का दुस्साहस ही नहीं करता । स्थिर-चरित्रों की स्थिति लघु प्रकाश पुंजों की भांति नक्षत्रों के मध्य इधर-उधर घूम सकने की है, दौड़ने अथवा भागने की नहीं ।"

3·1·3·2 <u>गतिशील पात्र</u> ऐसे पात्र जो अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित न रहते हुए भी घटनाओं के साथ विकसित होते रहते हैं, उन्हें विकासशील अथवा गतिशील पात्र कहते हैं । "कथानक के विकास के साथ ही उनके स्वभाव तथा आचरण के नये रूप सामने आते हैं· ···। कभी-कभी तो उनके सम्बन्ध में प्रारम्भ में बनी हुई धारणा सर्वथा निराधार सिद्ध होती है ।"[2] कथानक की आवश्यकता के अनुसार उनका निर्माण क्रमों में होता चलता है । पाश्चात्य विद्वानों ने गतिशील पात्रों को राउण्ड कैरेक्टर की संज्ञा दी है । Forster के अनुसार " The Test of round characteris whether it's capable of surprising in a convincing way. It is surprises, it is Flat."[3]

- -

1· Aspects of the Novel : E.M.Forster : p.65.

2· हिन्दी कहानियों में चरित्र चित्रण : राजेन्द्रकुमार शर्मा : पृ· 56·

3· Aspects of the Novel : E.M.Forster : p. 106.

गतिशील पात्रों की परिस्थितियाँ चाहे न परिवर्तित हों, एक दूसरे की क्रिया - प्रतिक्रियाओं से ही उनका क्रमशः विकास होता रहता है। ऐसे चरित्र पाठकों की रुचि और उत्सुकता को निरन्तर बनाये रखते हैं। " उपन्यासकार ऐसे पात्रों को उनके जीवन की मार्मिक अवस्था की ओर निरन्तर लिए बढ़ता है और विभिन्न देश काल और परिस्थितियों के कारण उनके चरित्र में होने वाले परिवर्तनों को प्रकाश में लाकर उनके आन्तरिक कारणों पर प्रकाश डालता है।"[1]

3.1.4 मोटे रूप में पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार भी किया जाता है।

3.1.4.1 <u>सामाजिक पात्र</u> सामाजिक पात्रों की संरचना में समाज के किसी न किसी पक्ष का आयोजन रहता है। उपन्यास में यह अपने समाज या वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में आते हैं। ऐसे पात्र मध्यवर्ग और निम्नवर्ग, ग्रामीण और नागरिक जैसे पक्षों का प्रतिनिधित्व तो करते हैं, किन्तु किसी विचार-दर्शन अथवा आदर्श की प्रतिष्ठापना इनका उद्देश्य नहीं होता। " नगर-समाज से लिये गये चरित्रों में बुद्धिजीवी पात्रों पर इधर काफी ध्यान दिया गया है। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय आदि की कृतियों में नये शिक्षित समाज से लिये गये पात्रों का नया दृष्टिकोण प्रखरता से व्यक्त हुआ।"[2]

3.1.4.2 <u>ऐतिहासिक पात्र</u> इतिहास के विशिष्टयुगीन कथावस्तुओं पर आधारित कहानियों में जिन पात्रों की योजना होती है वे ऐतिहासिक पात्र होते हैं। समकालीन नहीं बल्कि अतीतकालीन पात्रों को लेकर ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना होती है। "ऐतिहासिक पात्रों का वर्गीकरण भी व्यक्ति-प्रधान और सामान्य चरित्रों के रूप में किया जा सकता है। उपन्यासकार किसी विशेष इतिहास

---

1. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास : पृ.61.
   डा. रणवीर रांग्रा

2. हिन्दी उपन्यास कला : प्रतापनारायण टंडन : पृ. 194.

काल की शैली समग्र कथानक को किसी एक या दो प्रमुख पात्रों पर केन्द्रित रख कर अन्य पात्रों का सामान्य चित्रण भर ही प्रस्तुत कर सकता है ।[1] कभी-कभी ऐसे पात्र लेखक की कल्पना द्वारा भी चित्रित होते हैं ।

3.1.4.3 पौराणिक पात्र पौराणिक कथानकों को आधारित बनाकर जिन पात्रों का उल्लेख किया जाता है उन्हें पौराणिक पात्र कहते हैं । पौराणिक कथाओं पर आधारित उपन्यास बहुत कम है । लेकिन ऐसे अनेक उपन्यास है, जिनमें पौराणिक या पुराकथात्मक प्रसंग आये है । साधारण तौर पर " सती सीता", "वीर कर्ण", " एक लव्य", "परशुराम" , "कुब्जा" , " सती सावित्री" आदि चरित्र कथाओं में आते हैं ।

3.1.4.4 धार्मिक पात्र : भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही धर्म को श्रेष्ठ माना जाता रहा है । अतः किसी भी उपन्यासकार के लिए उसकी अवहेलना कर सकना संभव नहीं हो सका है । "भारतीय संस्कार के दो मुख्य रूप है जो चरित्र-चित्रण द्वारा उपन्यास में अभिव्यक्त हुए हैं । एक तो, धर्म का ढोंग और पाखण्डवाला रूप, दूसरा उसका उदात्त सच्चा और गंभीर पक्ष । हिन्दी उपन्यासों में दोनों ही रूपों का बाहुल्य मिलेगा ।[2] परन्तु बीसवीं शताब्दी में धार्मिक पात्रों के बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक नैतिक मर्यादाओं पर ध्यान दिया जा रहा है ।

3.1.4.5 राजनैतिक पात्र देश की विभिन्न राजनैतिक विचार-धाराओं, आन्दोलनों, समस्याओं एवं नेताओं की दर्शन-संस्कृति आदि के आधार पर जिन पात्रों का चित्रण किया है वे पात्र "राजनैतिक पात्र" कहलाते है । अतः उपन्यासकारों ने जनता पर राजनीति का व्यापक

- -

1. हिन्दी उपन्यास कला : प्रतापनारायण टंडन : पृ.81
2. हिन्दी उपन्यास कला : -वही- : पृ.194.

प्रभाव डालने के लिये साथ ही कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को प्रकाश में लाने के लिये राजनीतिक पात्रों को लिया है ।

3·1·4·6 <u>आदर्शवादी और यथार्थवादी पात्र</u> "आदर्शपात्र" किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न तथा महान् उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । ये चरित्र अपने पूर्ववर्ती महापुरुषों द्वारा स्थापित नैतिकता के आदर्शों पर चलते हुए वीरतापूर्वक उच्च सामन्तवादी संस्कृति की स्थापना करता है ।"[1] आदर्शवादी पात्र एक आदर्श स्थापित करता है । उपन्यासकार आदर्श पात्र के द्वारा बुराई पर आदर्श की जीत दिखलाता है । "आदर्श चरित्रों की दृष्टि सदा कर्तव्या-कर्तव्य पर रहती है । यह एक ऐसा चरित्र है जिसमें जीवन के प्रति पूर्ण सजगता रहती है । वह अपने धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक अनुभवों से तद्विषयक सम्बन्धी उतना ज्ञान कर लेता है, जितना उसके लिए सफल जीवन कला का क्रियात्मक अभ्यास करने में पूर्ण सहायक होता है ।[2] अत: आदर्शवादी पात्र उपन्यासों में आदर्शवादी दृष्टिकोण लेकर ही आते हैं और अंतत: वैसे ही बने रहते हैं ।

यथार्थ पात्र उन पात्रों को कहा जाता है जिनको वास्तविक रूप में ज्यों का त्यों चित्रित किया जाता है । यथार्थ पात्रों का ध्यान किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति, किसी कल्याणकारी मत की स्थापना अथवा किसी नैतिक, धार्मिक या आध्यात्मिक अनुष्ठान की योजना की ओर नहीं रहता । यथार्थवादी चरित्र-चित्रण की दिशा में उन्नीसवीं शताब्दी के फ्लोबेयर, बालजक, जोला आदि का प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण रहा । प्रेमचन्द ने यथार्थवादी पात्र के बारे में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं कि " यथार्थवादी चरित्र को इसमें कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा - ये चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ

1· समीक्षा शास्त्र : सीताराम चतुर्वेदी : पृ·701·

2· उपन्यास तत्व एवं रूप विधान : अग्निहोत्री : पृ·73·

दिखाते हुये अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं ।"[1] यह पात्र अपनी समस्त मानवीय दुर्बलताओं - सबलताओं से युक्त रहते हैं ।

3.1.4.6 <u>व्यक्तिवादी पात्र</u> डार्विन मार्क्स तथा फ्रायड के सिद्धान्तों के प्रभाव से तथा वैज्ञानिक उन्नति और औद्योगिक विकास के फलस्वरूप सभी पुरातन नैतिक और सामाजिक मूल्यों के प्रति अस्वीकारना के भाव से तथा नये मूल्यों के अभाव में व्यक्ति स्वातंत्र्य का सूत्रपात हुआ । मनुष्य की आस्था अपने परिवेश -समाज वर्ग तथा परिवार से हटकर अपने में ही केन्द्रित होती गई ।[2] इससे व्यक्तिवादी पात्रों का उन्मेष हुआ । व्यक्तिवादी पात्र समाज सापेक्ष एवं समाज निरपेक्ष दोनों ही होता है । अहं से प्रेरित होता है । " आज व्यक्ति का संघर्ष समाज से ही नहीं अपने से है । व्यक्तित्व के विभिन्न रूप परस्पर टकराते हैं - संघर्ष को जन्म देते हैं । व्यक्ति संघर्ष में टूटता है, टूट कर जुड़ने का प्रयास करता है ।[3]

3.1.4.7 <u>मनोवैज्ञानिक पात्र</u> फ्रायड, युंग और एडलर के दृष्टिकोण से एक नया रूप सामने आया । अब तक पात्रों का बाह्य रूप से ही वर्णन होता था, अपने पात्रों के मन में हो रहे संघर्ष के यथार्थ रूप से वह अनभिज्ञ हो रहा था । अब उसे पता चला बाह्य संघर्ष ही कुछ नहीं है । आन्तरिक संघर्ष का भी अपना महत्त्व है । इसलिए उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक पात्रों की सृष्टि हुई । "समष्टि केन्द्रित उपन्यास व्यष्टि केन्द्रित हो गया और व्यक्ति चरित्र की प्रतिष्ठा हुई । समाज उपेक्षित नहीं हुआ, किन्तु वह नियामक भी नहीं रहा और व्यक्ति बाह्य-समाज से नहीं, अपने भीतर से संचालित होने लगा ।"[4] मनोवैज्ञानिक पात्र में उसके सार्वजनिक जीवन के स्थान पर उसके वैयक्तिक

---

1. प्रेमचन्द कुछ विचार : पृ.39.
2. हिन्दी उपन्यास चरित्र-चित्रण का विकास : रणवीर रांग्रा : पृ.367.
3. हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग : डा. सुषमा पृ.127.
4. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि : डा. सत्यपाल चुघ, पृ.94.

निजी जीवन का अंत हुआ । उसके मानस तल का, उसकी चेतन प्रेरणाओं, अचेतन प्रेरणाओं का विकास प्रधान हो गया ।

3·1·4·8 <u>प्रतीकात्मक पात्र</u> "उपन्यास में लेखक ऐसे पात्रों को भी सम्मिलित करता है, जिनका प्रतीकात्मक महत्त्व रहता है । ऐसे पात्र वर्गात्मक पात्र भी हो सकते हैं और व्यक्त पात्र भी ।[1] जो अपने व्यक्तात्मक रूप में चित्रित न होकर किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु, मन आदि को ध्वनित करें वे प्रतीकात्मक पात्र कहलाते हैं ।

3·1·4·9 <u>बुद्धिजीवी पात्र</u> : उपन्यासकार स्वयं बुद्धिजीवी वर्ग का होता है । अत: अपने उपन्यासों में भी वह बुद्धिजीवी पात्रों का समावेश करता है । बुद्धिजीवी पात्रों में पत्रकार, पत्रिका संपादक, वैज्ञानिक, डाक्टर, शिक्षकों आदि पात्रों का समावेश होता है ।

विभिन्न विद्वानों ने भी पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "स्वभाव" के आधार पर चरित्रों को चार भागों में विभाजित किया है यथा :-

[अ] आदर्श स्वभाव के आधार पर ।

[ब] जाति स्वभाव के आधार पर ।

[स] व्यक्ति स्वभाव के आधार पर ।

[द] सामान्य स्वभाव के आधार पर । [2]

शुक्लजी का उक्त विभाजन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

रामेश्वरलाल खण्डेलवाल जी ने निम्नलिखित रूप से पात्रों का वर्गीकरण किया है ।

पात्रों के वर्ग	---	आधार
[अ] स्त्री व पुरुष		प्राकृतिक रचना
[ब] यथार्थवादी व आदर्शवादी		जगत् व जीवन को देखने की मूल दृष्टि ।

1· हिन्दी उपन्यास कला : प्रतापनारायण टंडन : 191·

2· जायसी ग्रन्थावली : रामचन्द्र शुक्ल : पृ· 149·

(इ) उच्चवर्गीय व निम्नवर्गीय	-	समाज-व्यवस्था व आर्थिक दृष्टि।
(ई) नागरिक व आदिवासी-ग्रामीण	-	समूह जीवन, शासन व्यवस्था
(उ) व्यक्तिवादी व सामाजिक	-	अहंवृत्ति का न्यूनाधिक्य।
(ऊ) बौद्धिक व भावुक-कल्पनाशील	-	अंतःकरण की मूल वृत्ति।
(ए) अनुगामी व कुबुद्धि या सज्जन व दुष्ट	-	जीवन व्यवहार।
(ऐ) गृही व विरक्त सन्यासी	-	आश्रम व्यवस्था।
(ओ) भारतीय व विदेशी	-	संस्कृति।
(औ) विद्रोही व नियतिवादी	-	सृष्टि विधान की स्वीकृति। अस्वीकृति
(अं) बाल, युवा, प्रौढ़ व वृद्ध जर्जर	-	कार्य क्षमता शारीरिक बल
(अः) पौराणिक, ऐतिहासिक व आधुनिक वर्तमान	-	काल
(क) पहाड़ी, मैदानी, समुद्रतटवासी	-	जलवायु व भूगोल
(ख) शोषक व शोषित या सैन्य व सैनिक	-	अधिकार वृत्ति या, - शासन वृत्ति
(ग) ब्राह्मण क्षत्रिय आदि	-	वर्ण व्यवस्था
(घ) असाधारण शक्ति सिद्धि आदि	-	अतिप्राकृतिक, अशरीरी, ऐन्द्रजालिक या मायावी, वृत्ति के पात्र।[1]

परंपरावादी आचार्यों की दृष्टि से पात्रों की निम्नलिखित कोटियाँ निर्धारित की जा सकती है।

(अ) प्रधान पात्र (आ) गौण पात्र (इ) सामान्य पात्र।

प्रधान पात्रों के अन्तर्गत नायक और नायिका आते है। सहनायक और सहनायिका तथा खल-नायक आदि पढ़ने वाले सैकड़ सामान्य पात्र

---

1. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : रामेश्वर खण्डेलवाल, पृ.140.

होते हैं, जिनकी उपयोगिता कथा को विकसित करने में अथवा प्रमुख और गौण पात्रों के चारित्रिक विकास में योग देने में दिखाई देती है ।"1.

पात्रों के विकास के आधार पर भी कुछ अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किया गया है । विकसन पात्र, विकृत पात्र, सत्पात्र, तथा दुष्पात्र , अलौकिक पात्र ।2. जैनेन्द्र ने विकसन पात्रों को महान पात्र कहा है ।3.

अतः पात्रों का यह वैशिष्ट्य पात्र सृष्टि की उत्कृष्टता का कोई अंतिम आधार मानदंड नहीं माना जा सकता है । पात्रों का सर्वांगपूर्ण कलात्मक विन्यास ही चरम निकष है ।

3.2 चरित्र – प्रकृति का विश्लेषण

चारित्र्य सम्पूर्ण गुणों का एक ऐसा जगमगाता हुआ पुंज है, जो दानव को मानव एवं मानव को देवत्व की श्रेणी में ला खड़ा कर देता है । "पाश्चात्य मनीषियों ने चरित्र की विशेषताओं और विलक्षणताओं पर बड़ा ही गम्भीर विवेचन किया है । चरित्र की परिभाषा करते हुए प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक "अरस्तू" ने कहा है । "चरित्र हमारे आचरण से उद्भूत जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है"4. अतः सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखक ने चरित्र के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि "चरित्र मानव जीवन का मुकुटमणि है ।"

सामान्य रूप से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दो रूपों में उपन्यास के पात्रों का चारित्रिक -विश्लेषण किया जाता है । पात्रों के व्यक्तित्व के विधायक गुणावगुणों का उल्लेख या परिगणन मात्र ही चरित्रांकन नहीं है । आवश्यक सूक्ष्म-दृष्टि खड़ी करके, पात्रों के जीवन-व्यवहार के माध्यम से इन गुणावगुणों को प्रकट कर पात्रों के अधिकाधिक सजीव

- -

1. मनुष्य के रूप : अध्ययन की सीमाएं: डा. त्रिभुवन पृ. 45.
2. समीक्षा शास्त्र : सीताराम चतुर्वेदी : पृ. 701.
3. साहित्य का श्रेय और प्रेय : जैनेन्द्र : पृ. 81.
4. पाश्चात्य मनीषियों की दृष्टि में चरित्र : डा. भुवनेश्वर प्रसाद शर्मा, [कल्याण] पत्रिका के 57 अंक के एक लेख से उद्धृत : पृ. 265.

मानस का मैं प्रस्तुत करना ही चरित्र-चित्रण कला का प्राण है ।[1] अतएव चरित्र-प्रकृति का विश्लेषण अपने आप में एक कला है ।

चरित्र-प्रकृति के विश्लेषण के लिए विभिन्न विधियों का आश्रय लेना पड़ता है । अतः इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । बहिरंग चरित्र प्रकृति (ऑब्जेक्टिव), अन्तरंग चरित्र प्रकृति (सब्जेक्टिव) तथा नाटकीय चरित्र प्रकृति (ड्रामेटिक) ।

3.2.1 <u>बहिरंग चरित्र प्रकृति विश्लेषण (ऑब्जेक्टिव)</u>

इस चरित्र प्रकृति विश्लेषण में पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व का उद्घाटन किया जाता है । लेखक पात्र का परिचय कभी उसके नामकरण द्वारा तो कभी आकृति, वेशभूषा द्वारा दिया करता है । किन्तु इस प्रकार के चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता तो आ ही जाती है, साथ ही आवश्यकता से पहले पात्रों के चारित्रिक विशिष्टताओं के प्रकट हो जाने से उनके चरित्र-विकास के प्रति पाठकों की उत्सुकता भी मन्द पड़ जाती है ।[2] कुछ उपन्यासकार पात्र के प्रथम परिचय में ही उसके गुण आदि का वर्णन कर देता है । इस विश्लेषण के द्वारा पात्र का शारीरिक वर्णन भी करता है । चरित्र-प्रकृति विश्लेषण की यह शैली प्राचीन है । डॉ० गंगा प्रसाद विमल ने चरित्र-चित्रण की इस विधि को कहानी तथा चरित्र के अन्तर्जगत् में प्रवेश करने की प्रकार की रागात्मक सीढ़ी माना है ।[3] पात्रों का स्रष्टा होने के कारण उपन्यासकार के लिए पात्रों के चरित्र के चरित्र का कोई भी पक्ष छिपा नहीं रहता है । प्रत्येक लेखक का अपने पात्र के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण रहता है । उसकी हार्दिक इच्छा रहती है कि उसके मनोनुकूल पात्र-विशेष के चरित्र का प्रभाव पाठकों पर पड़ना चाहिये । वह पात्र का नामकरण संस्कार करते समय पात्र के

- -

1. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : रामेश्वर लाल खंडेलवाल : पृ०150
2. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास : रणवीर रांग्रा : पृ०66
3. प्रेमचंद (आज के संदर्भ में) : गंगा प्रसाद विमल : पृ०33

चरित्र के अनुकूल हो उसका नाम रखकर, पाठकों को पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का संकेत दे देता है ।[1]

3.2.2 अन्तरंग चरित्र प्रस्तुति विश्लेषण [सब्जेक्टिव]

पात्रों के आन्तरिक चरित्र को उद्घाटित करने के लिए विशेष रूप से अन्तरंग चरित्र प्रस्तुति विश्लेषण की पद्धति प्रयोग में लाई जाती है । इस पद्धति को मनोविश्लेषणात्मक चरित्र प्रस्तुति विश्लेषण कह सकते हैं । पात्रों के व्यक्त व्यवहार के पीछे उनकी आन्तरिक गूढ़ प्रेरक शक्तियाँ छिपी रहती हैं । आन्तरिक चरित्र वाले पात्रों के संबंध में रूच महोदय का कहना है कि " किसी व्यक्ति की काल-विशेष की परिस्थिति को , उस परिस्थिति के प्रति उसकी व्यक्त क्रिया-प्रतिक्रिया को तथा उसके समूचे व्यक्त व्यवहार को जान लेने पर भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि हम उसे पूर्णतया समझ गए ।"[2] चरित्र को उसके सच्चे तथा वास्तविक रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उसके अन्तरंग पक्ष की अभिव्यक्ति अनिवार्य है, क्योंकि व्यक्ति के निर्माण में चेतन की अपेक्षा अचेतन तथा बहिरंग की अपेक्षा अंतरंग पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है ।" इसलिए वह अपने पात्रों की क्रिया- प्रतिक्रिया, उसके अनुभाव आदि के चित्रण के साथ-साथ उनको प्रेरित करने वाली अंत: प्रेरणाओं को भी प्रकाश में लाता रहता है । ऐसा किये बिना उसके पात्रों का चरित्र-चित्रण अधूरा और अस्पष्ट रह जाता है । पात्रों की अंत:प्रेरणाओं के चित्रण [मोटिवेशन] द्वारा ही उपन्यासकार अपने पात्रों के बहुरूपी और परस्पर विरोधी आचरण में एक सूत्र लाकर उन्हें युक्ति युक्त ठहराता है, और उनमें संगति बैठाता है ।[3] उपन्यासों में चरित्र-चित्रण में सर्वाधिक प्रयोग की स्थिति अंतरंग चित्रण-पद्धति में मिलती है । इसके पीछे कई कारण हैं । आज व्यक्ति

- -

1. उपन्यास जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ॰ बलराज सिंह राणा : पृ॰ 138॰
2 साइकोलाजी ऐंड लाइफ : रूच : पृ॰ 122॰
3. 'The assigning of Motives and the reactions which they cause is called Motivation'.
The Enjoyment of Literature : Boas, p223

समाज -सापेक्ष कम समाज-निरपेक्ष अधिक है। फ्रायड के कथानुसार व्यक्ति के कार्य-व्यापार के पीछे उसका अचेतन सक्रिय रहता है। इसी कारण पात्र के बाह्य द्वन्द्व के अतिरिक्त उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का भी चित्रण किया जाने लगा। अन्तरंग चरित्र प्रवृत्ति विश्लेषण के द्वारा अनेक प्रणालियाँ प्रयुक्त में लाई जाती है। जो निम्न है। अन्तर्द्वन्द्व, अन्तर्विवाद, मनोविश्लेषण, स्वप्न विश्लेषण, सम्मोह विश्लेषण, प्रत्यावलोक विश्लेषण, पूर्वस्मृति प्रणाली, शब्द साह स्मृति परीक्षण, पूर्व-दीप्ति एवं चेतना प्रवाह पद्धति आदि है।

3·2·2·1· <u>अन्तर्द्वन्द्व</u> पात्र के मन में अनेक विचार एवं भावनाएं निवास करती है। इनमें कुछ विचार और भावनाएं परस्पर विरोधी भी होते हैं। जिन पात्रों के समक्ष सामाजिक मूल्य अस्पष्ट रहते हैं और जिनमें निर्णयात्मक बुद्धि का अभाव रहता है, वे पात्र ही साधारणत: अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित रहते हैं।·1·यह अंतर्द्वन्द्व जब उभर कर आता है तब पात्र कर्तव्य-अकर्तव्य, हृदय-बुद्धि, प्रेम-त्याग और भावना एवं कर्तव्य के द्वन्द्व से पीड़ित रहता है तथा उसकी स्थिति विषम हो जाती है। "फलत: वह यही सोचता रह जाता है कि अमुक मार्ग अपनाने में उसे यह क्षति उठानी पड़े और दूसरे को अपनाने में उसे यह हानि होगी और वह दोनों में से किसी प्रकार की क्षति उठाने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाता। ऐसा पात्र भीतर ही भीतर घुलता रहता है और यदि किसी निश्चय पर पहुँचता भी है तो बड़ी देर के बाद और वह भी अनमने भाव से।·2· पात्रों के मन में होने वाले इस अन्तर्द्वन्द्वों को प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार को विशेष आयास करना पड़ता है।

3·2 2·2· <u>अंतर्विवाद</u> [इन्टीरीयर मनोलाग]

अंतर्विवाद प्राय: अंतर्मुखी पात्रों में मिलता है। "यह एक ऐसा मूक भाषण होता है, जिसमें पात्र छोटे-छोटे, सरल और सीधे

- -

1·2· उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विवेचन : धनराज सिंह राजा : पृ·41·

वाक्यों में अपने उन विचारों को व्यक्त करता है जो उसके अचेतन के निकटतम हों, मानो वह क्षण उसके उन भावों की पुनरावृत्ति हो, जो उसके मन में उस समय उठ रहे हों ।" [1] अंतर्विवाद में लेखक पात्र और पाठकों के बीच में से निकल जाता है और पाठक को अवसर प्रदान करता है कि वह पात्र के मन में पैठे और उसमें चल रही उथल-पुथल को लेखक की नहीं, अपनी आँखों से देखे ।[2] लेखक न स्वयं कहता है न पात्र से कहलवाता है ।

3.2.2.3 <u>मनोविश्लेषण</u> (साइको-ऐनेलिसिस) यह विधि आधुनिक युग में उपन्यास के क्षेत्र में आई । फ्रायडवादियों का कहना है कि बचपन के दुःखद संघर्ष अचेतन में घुस जाते हैं बाद में वही प्रभावित रहते हैं, और आवेग, दुःख, तनावों को जन्म देकर स्थिति के साथ उसका मानसिक संतुलन नहीं बैठने देते । " इस विधि का महत्व इसकी विशेषता के कारण और भी अधिक बढ़ गया है क्योंकि इसके माध्यम से पात्रों की न केवल शारीरिक विकृति हो जाती है, वरन् उनके मानस के एक-एक तंतु का सम्यक् विश्लेषण भी संभव हो पाता है ।[3]

3.2.2.4 <u>मुक्त आसंग प्रणाली (फ्री एसोसिएशन)</u>

मुक्त आसंग प्रणाली का प्रयोग मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने किया है । इसमें व्यक्ति की अतृप्त वासनाओं एवं कुंठाओं के मूल कारणों को प्रकाश में लाया जा सकता है । Berney Karen के अनुसार " मुक्त आसंग में पात्र आराम से लेट जाता है और उसे इस

---

1. The Psychological Novel : Edel : p.80.

2. The internal monologue, like every monologue, is the speech of given character designed to introduce as directly in to the internal life of this character, without explanation or comments.
   The Psychological Novel : Edel. p.80.

3. हिन्दी उपन्यास कला : प्रतापनारायण टंडन : पृ.202.

स्थिति में ला दिया जाता है कि वह अपने मन में आने वाले सभी विचार, इच्छा, द्वन्द्व आदि कह देता है । उस समय वह अचेतन में पड़ी बातें और कारण भी बता जाता है । जिससे उसके असंतुलित मन: स्थिति के कारण का ज्ञान हो जाता है ।[1] उसके विचारों को सुनने वाला पात्र सौजन्यपूर्ण प्रश्नों द्वारा उसको और अधिक सुनने के लिए प्रेरित करता रहता है । "कृष्णा सोबती" ने अपने उपन्यास "सूरजमुखी अँधेरे के" उपन्यास में मुक्त आसंग प्रणाली का प्रयोग किया है ।

3.2.2.5 <u>बाधकता-विश्लेषण</u> (एनेलेसिस आफ रेजिस-टैंस) बाधकता विश्लेषण प्रणाली मुक्त आसंग प्रणाली का एक अंग है । "मुक्त-आसंग में मनोविश्लेषक पात्र को पहले ही समझा देता है कि जो भी मन में आए, वह पूरा का पूरा कहता चले, तथापि पात्र संकोच वश कुछ भावनाओं तथा स्मृतियों को छोड़ देता है या उन्हें बताते हुये हिचकिचाता है । ऐसी स्थिति में मनोविश्लेषक का कर्तव्य होता है कि वह स्वयं प्रयास कर उन दुःखद स्मृतियों एवं महत्वाकांक्षाओं को अचेतन से सचेतन में लाए, तभी पात्र को स्वस्थ करने में वह सफल हो सकेगा ।"[2] इन उपलब्ध तथ्यों के आधार पर ही वह पात्र के यथार्थ रूप को प्रकट करने में सफल होता है ।

3 2.2.6 <u>स्वप्न-विश्लेषण</u> (ड्रीम एनेलेसिस) उपन्यास के पात्रों की क्रियाओं का अपना एक उद्देश्य होता है । उनका सोचना भी किसी अभिप्राय की पूर्ति के लिये होता है । फ्रायड के विचार से स्वप्न विश्लेषण व्यक्ति के वास्तविक जीवन तक पहुँचने के लिये पुल का कार्य करता है ।[3] स्वप्न संगठन द्वारा पात्रों के असामाजिक कार्यों की मूल प्रेरणा पर प्रकाश डाला जाता है । हिन्दी उपन्यास साहित्य में इस पद्धति का प्रारम्भ वास्तविक अर्थों में " अज्ञेय" के

- -

1. Self Analysis : Berney Karen , p.101.

2. हिन्दी कहानी : चरित्र-चित्रण का विकास : उषा गोयल :पृ.40.

3. New Introductory Lectures on Psyco-Analysis: Freud , p.21.

उपन्यास "शेखर एक जीवनी" में होता है । उपन्यासकार स्वप्न के माध्यम से इन अचेतन प्रेरणाओं को चित्रित करके पात्र के बाह्य व्यवहार में संगति बैठाता है ।

3·2·2·7 <u>सम्मोह-विश्लेषण</u> (हिप्नो ऐनेलेसिस) सम्मोह की प्रक्रिया में पात्र या रोगी को सम्मोह-निद्रा की अवस्था में मनोविश्लेषक ले जाता है, और धीरे-धीरे उससे प्रश्न करता हुआ उसके गत् जीवन की घटनाओं और तज्जनित अनुभूतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेता है । उपन्यासकार अपने पात्रों को सम्मोह-निद्रा में ले उनके अचेतन में पड़ी ग्रन्थियों का उद्घाटन कराकर उनके चरित्र-विकास की टूटी कड़ियों को जोड़ लेते हैं ।[1]

3·2·2·8 <u>प्रत्यावलोकन-विश्लेषण</u> (एनेलेसिस अव रिकोलेक्शन्स) बाल्यकालीन घटनाओं और स्मृतियों के विश्लेषण की पद्धति मनोवैज्ञानिक शब्दावली में " प्रत्यावलोकन - विश्लेषण के नाम से अभिहित की जाती है । असामाजिक व्यवहार के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य निहित रहता है । इन्हीं कारणों की खोज के लिए व्यक्ति की स्मृतियों को कुरेदा जाता है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों के अचेतन को उघाड़ने के लिए प्रत्यावलोकन विश्लेषण का खूब प्रयोग किया है । फ्रायड के अनुसार "व्यक्ति की अभिवृत्तियों एवं विकृतियों का मूल बाल्यकाल की उन स्मृतियों में होता है, जो दमित हो और अचेतन में पड़ जाती है ।"[2] अन्य विद्वान एडलर की धारणा यह है कि चार-पाँच वर्ष की अवस्था में बच्चे का जीवन के प्रति एक बार जो दृष्टिकोण बन जाता है । वही बाद में सम्पूर्ण जीवन को सदा प्रभावित करता रहता है ।"[3] इस प्रणाली का प्रयोग "कृष्णा सोबती" ने अपने उपन्यास " सूरजमुखी अन्धेरे के" में इस पद्धति का सुन्दर प्रयोग किया है । आधुनिक उपन्यासों में सर्वाधिक इसी प्रणाली का प्रयोग हुआ है ।

1· हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास : रणवीर रांग्रा : पृ॰ 83·

2· New Introductory Lectures on Psyco-Analysis:Freud:p.21.

3· The Science of Living : Alder : p.118.

3.2.2.9 <u>पूर्वानुसारात्मक प्रणाली</u> (केस हिस्ट्री मेथड) "केस हिस्ट्री मेथड" में पात्र के माता-पिता, मित्र अथवा सम्बन्धियों से भी उसके विषय में जानकारी ली जाती है। उसके बाद मनोविश्लेषक पात्र की विगत अनुभूतियों तथा वर्तमान मानसिक अवस्था का विश्लेषण कर उसकी असंगतियों के मूल कारण तक पहुँचता है। "पूर्ववृत्त इतने अधिक "साधारणीकृत होते हैं कि वे मनोवैज्ञानिक पात्र के अन्तर्मन की गहराइयों तक नहीं पहुँच पाते।"[1]

3.2.2.10 <u>शब्द-सहस्मृति परीक्षण</u> (वर्ड-एसोसिएशन टेस्ट) शब्द-सहस्मृति परीक्षण में कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिन्हें सुनते ही मानसिक रोगी सहसा कोई न कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। पात्र द्वारा बताए गए शब्द के विश्लेषण से वह उसकी मानसिक ग्रन्थियों को पकड़ने का प्रयत्न करता है।[2]

3.2.2.11 पूर्वदीप्ति प्रणाली (फ्लैश-बैक) पूर्व-दीप्ति व्यक्ति की मनोव्यथाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने की नवीन एवं कलात्मक विधि है। हिन्दी साहित्य कोश में पूर्व दीप्ति के बारे में इस प्रकार कहा गया है कि "किसी पात्र के द्वारा विगत जीवन का जो दृश्य प्रस्तुत किया जाता है उसे फ्लैश-बैक कहते हैं।"[3] पूर्वदीप्ति में वर्तमान का ही विश्लेषण हुआ करता, वे स्मृतियाँ नई भी हो सकती हैं।

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने इन पद्धतियों का विशेष प्रयोग अपने चरित्रों के विश्लेषण में किया है।

3.2.3 <u>नाटकीय चरित्र प्रकृति विश्लेषण (ड्रामेटिक)</u> उपन्यासों में प्रयुक्त नाटकीय चरित्र प्रकृति विश्लेषण की प्रणाली अपनी महत्ता के

---

1. Psychology of Personality : Stagner : p.35.
2. The Psychological methods of world Association and Reaction time and test of Deception : University of oregon Publications : Psychological series : 1929 p.
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ.505.

के लिये प्रचलित है । इसमें भी विभिन्न पद्धतियाँ पाई जाती है । इसके प्रयोग से उपन्यास में पाठक को चल-चित्र एवं नाटक जैसा आनन्द मिलता है ।

3.2.3.1. <u>घटनाओं के माध्यम से चरित्र प्रस्तुति</u> घटनायें मानव जीवन में घटित होती रहती है । उपन्यासों में घटनाओं का बाहुल्य रहता है । घटनाओं के द्वारा ही पात्रों के व्यक्तित्व में विकास होता है । हेनरी जेम्स अपने लेख " द आर्ट आफ फिक्शन" में लिखता है " चरित्र यदि घटनाओं का परिणाम नहीं तो और क्या है , तथा घटना-चरित्र की व्याख्या के अतिरिक्त और क्या है ।"[1] चरित्र और घटना को अलग करके देखना असम्भव है । कभी पात्र घटनाओं को गति देते हैं, तो कभी घटनायें पात्र के चरित्र को निखारती है । वस्तुतः पात्र की परिस्थितियों और उसके चरित्र में अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध है ।[2]

3.2.3.2. <u>कथोपकथन के माध्यम से चरित्र-प्रस्तुति</u> उपन्यास में कथोपकथन का समावेश प्रायः पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिये ही होता है । संवाद पात्र की प्रकृति और अवसर के अनुकूल होने चाहिये । शायद ही ऐसा कोई उपन्यासकार मिलेगा जिसने अपने चरित्र-चित्रण के लिए उसके कथोपकथनों को माध्यम न बनाया है । कथोपकथन चरित्र का प्राण होता है जिसके बिना चरित्र एक बेजान पुतला दिखाई देता है ।

3.2.3.3. <u>पत्र या डायरी के माध्यम से चरित्र प्रस्तुति</u>

व्यक्ति अपने जीवन की निजी बातें हर एक को नहीं बताना चाहता, वह अपने घनिष्ठ सम्बन्धी या अंतरंग मित्र को पत्र द्वारा अभिव्यक्त करता है । इन पत्रों के माध्यम से उपन्यासकार उस चरित्र-विशेष के गुप्त एवं नितान्त व्यक्तिगत पक्ष को उद्घाटित कर देता है, जो चरित्र प्रस्तुति में बहुत सहायक होते हैं । पात्रों के एक दूसरे के प्रति बदलते रहने वाले दृष्टिकोण के लिए भी उपन्यासकार

- -

1. " What is character, but the determination of incident ? What is incident but the illustration of Character : The Art of Fiction : Henry James p.34.

2. साहित्यालोचन : श्यामसुन्दरदास : पृ. 187.

पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया करता है ।

बहुत से पात्र अपनी गोपनीय बातों को डायरी में अभिव्यक्त करते हैं । "उपन्यासकार भी अपने पात्र के चरित्र-विकास की टूटी कड़ियाँ जोड़ने के लिये उसकी डायरी पाठकों के सामने खोल देता है ।"1. डायरी के माध्यम से पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों को सूचित करता है ।

चरित्र-प्रस्तुति के विश्लेषण की विभिन्न प्रणालियों को देखते हुये यह निष्कर्ष निकलता है कि आज जो उपन्यासों की रचना हो रही है, उन उपन्यासों में इन प्रणालियों का सम्मिश्रण सा देखने को मिलता है । मनोवैज्ञानिक पद्धति के साथ-साथ उपन्यासकार बहिरंग तथा नाटकीय प्रणाली का भी खुलकर प्रयोग कर रहे हैं।

3.2.1 आदर्शात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित पूर्व-परम्परा की विकसित चरित्र-प्रस्तुति

साठोत्तरी महिला लेखिकाओं के औपन्यासिक पुरुषों का अध्ययन पर्यालोचन करने से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने आदर्शात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित पुरुषों के पूर्व-परम्परा की विकसित चरित्रप्रस्तुति का विश्लेषण किया है । इस चरित्र-प्रस्तुति द्वारा महिला उपन्यासकारों ने पुरुष पात्र के आंतरिक गुणों को गुप्त अंधकार से जगत के प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है । वह पुरुष की कुछ प्रवृत्तियों, शैलियों तथा स्थायी भावों को मिटाती नहीं, वरन् ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती है कि जिससे पात्र का संघर्ष होने पर दबे - ढके गुण स्वत: स्वाभाविक रूप से बाहर उभर कर आते हैं । समाज सापेक्ष आदर्शवादी पुरुष पात्र और समाज निरपेक्ष आदर्शवादी पुरुष पात्र भी इन उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं । कुछ पुरुषपात्र आरम्भ से अन्त तक आदर्श का निर्वाह करते हैं किन्तु दुर्बल पुरुष पात्र आरम्भ में आदर्श विरोधी होते हुए भी आदर्श के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं ।

---

1. हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास : डॉ. रणवीर रांग्रा : पृ.88.

यह पुरुष पात्र कई रूपों में हमारे सम्मुख आये हैं । प्रेमी, भाई, पिता, पति, मित्र एवं अन्य है । अधिकांशतः वैयक्तिक स्तर पर पुरुष-पात्र प्रेम के संदर्भ में आदर्श स्थापन करते हैं ।

व्यक्तिगत प्रेम के लिये कितना ही बड़ा आत्मत्याग करना पड़े तथा अपनी इच्छा आकांक्षाओं को बलि देनी पड़े, वे सदा तत्पर रहते हैं । "सुरंगमा" उपन्यास का वार्ष्णेयपुरी एक सच्चे अर्थ में आदर्श प्रेमी है । वह लक्ष्मी से प्रेम करता है, परन्तु कभी भी उसके सामने प्रकट नहीं करता है । निःस्वार्थ भाव से ही लक्ष्मी को प्रथम आत्महत्या से बचाता है, उसे अपनी बहिन के पास आश्रय देता है । इतना ही नहीं बहिन के कहने पर लक्ष्मी की सन्तान को अवैध कहलाने से बचाने के लिए लक्ष्मी के साथ विवाह भी करता है । उसके बदले में वह किसी चीज की आशा नहीं करता । वह मूक प्रेमी का आदर्श प्रस्तुत करता है । उसके प्रेम में वासना की दुर्गन्ध नहीं है । वासना से ऊपर उठकर किया जाने वाला प्रेम ही तो सच्चा प्रेम है । वह प्रेमियों का आदर्श प्रतीक है । गजानन जब लक्ष्मी को ले जाता है तब वह खामोश रहता है, और यही उसका सबसे बड़ा त्याग है ।1. "चाँद अमावस का" उपन्यास का रमाकान्त भी एक आदर्श प्रेमी है । जो अपनी प्रेमिका का इन्तजार आजन्म करने को तत्पर रहता है । परन्तु सुनीता उससे प्रेम नहीं करती है । हवाई जहाज दुर्घटना में उसके पति की मृत्यु हो जाती है । वह नित्य इसी दुःख में डूबी रहती है किसी से मिलना-जुलना भी बन्द कर देती है । रमाकान्त चाहता है कि वह दुर्घटना को भूल कर फिर से नई जिन्दगी शुरू करे । वह उसकी प्रतीक्षा करने को तैयार है । "प्रतीक्षा" अन्तहीन प्रतीक्षा । जिस दिन जीवन की लड़ाई अकेले लड़ते - लड़ते हार जाओगी और मुझे पुकारोगी, उसी दिन दौड़ा-दौड़ा चला आऊँगा । उससे पहले नहीं ।"2.

यह आदर्श पुरुष प्रेमी पात्र कर्तव्य और प्रेम के उच्चादर्शों की स्थापना करते हैं । यह पात्र किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न तथा महान्

- -

1. सुरंगमा : शिवानी : पृ.

2. चाँद अमावस का : मालती जोशी : पृ. 102.

उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । संवेदनशील होते हुये भी आत्मकेन्द्रित एवं दृढ़ होते हैं । "बिन्दु" उपन्यास का शमुन भी इसी तरह का प्रेमी है । वह बिन्दु से प्रेम करता है । परन्तु जब उसे बिन्दु द्वारा यह मालूम होता है कि उसका विवाह अन्यत्र हो रहा है तो वह लौट आकर भी खामोश रहता है । बिन्दु के एक बार प्यार कर लेने के लिये कहने पर भी वह बिन्दु से कहता है कि " यह हाथ पराई मेंहदी रचाए हैं । इन्हें कीचड़ से नहीं सानते, ... तेरा सामीप्य मैं चाहता है, तेरी भावना भी समझता रहा हूँ और फिर भी दूरी बनाए रहा हूँ, तू नहीं जानती । पर वह चाहना भी जो फलीभूत नहीं हुई । देख बिन्दु, किसी के लिए निकाली गई वस्तु लेना पाप है । देना भी चोरी है,[1]"इस तरह वह अपने प्रेम की दृढ़ता का परिचय देता है ।

"सूना कैलाश" का अक्षय भी चारित्रिक उदारता, निर्मलता एवं वैचारिक दृढ़ता उसे आदर्शवादी प्रेमी के रूप में प्रतिष्ठित करती है । वह ममता से प्रेम करता है परन्तु जब ममता का विवाह कैलाश से हो जाता है तो वह आजीवन कुँआरा रहने का निश्चय करता है । जब वह देखता है उसकी प्रेमिका फूट-फूट (पड़ी) रो रही है तो वह उसे समझाता है "सुना था कि नारी ही इस तरह का प्यार करती है कि पूरी की पूरी जिन्दगी ही किसी की याद में काट दे । तुम भी सब समझकर उसकी अपनी आदत बना ले । प्रेम एक निष्ठा होती है जो दिखाई नहीं पड़ती जिस दिन वह दिखाई पड़ जाती है, वह प्रदर्शन के अतिरिक्त कुछ नहीं रह जाती ।"[2]... "काश नारी की पवित्रता पर लगे अपरिमित दाग और काँटों को तुम पोंछ देते । नारीत्व के सब आनन्द, आदर, मुस्काएँ और पुण्य तुमको मिल जाते, तुम पुरुष की लोलुप आँखों में विराटता बनकर कौंधती रहती ।"[3]

---

1. बिन्दु : सुनीता जैन : 53.
2. सूना कैलाश : निर्मला वाजपेयी : पृ. 82.
3. सूना कैलाश : निर्मला वाजपेयी : पृ.82.

"सूखी नदी का पुल" उपन्यास का डा॰स्वामी आदर्श चरित्र प्रस्तुत करता है । अपने प्रेम के असफल होने पर वह आजीवन कुँवारा रहकर मरीजों की सेवा करने का व्रत लेता है । उसकी प्रेमिका तारा जब उससे शादी न करके अन्यत्र विवाह कर लेती है जिसे कहने पर वह कहता है कि " शादी होने से ही तो मन का मीत मिल नहीं जाया करता ।"1.

"टपरेवाले" उपन्यास का रामभरोसे निम्नवर्गी का होने पर भी वह आदर्श प्रेमी चरित्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है । उसकी प्रेमिका लीला उससे प्रेम न करके पन्ना से प्रेम करती है । जब रामभरोसे को यह मालूम होता है कि लीला पन्ना के बच्चे की माँ बनने वाली है, और पन्ना उसे अपने पिता के कारण नहीं अपना रहा है, तो वह लीला की इज्जत बचाने की खातिर उससे विवाह करने को भी तैयार हो जाता है । वह तारा से कहता है " भगवान काहे का रो : जानता तो हूँ कि पन्ना बाबू का ही यह सब है ... और यह भी समझता हूँ कि जाने कितने दाव लेकर उन्होंने तुझे नहीं अपनाया होगा: सीता को वनवास देकर रामचन्द्र जी सुखी तो नहीं हुए होंगे । कभी शराब पीने वाला शराबी जरूर हूँ । पर कभी अकल का इन्सान नहीं हूँ ।"2

"कोरजा" उपन्यास में पहलवान का चरित्र-परिवर्तन आदर्शोन्मुख है । पहलवान पूर्व पक्ष में रज्जी का पूर्ण प्रेमी दिखाई देता है, जो उसे गर्भवती भी बनाता है और विवाह करने से इन्कार कर देता है । परन्तु अन्त में वही अपना खर्चा उठाकर रज्जी का विवाह करवाता है ।3. रज्जी से विवाह न करने का भी एक कारण था वह स्वयं कहता है " तुम तो जानती हो रज्जी, मेरी मरी-मरी नौकरी है, कब छुट्टी कर दिया जाऊँ... । "ऊपर से अपने परिवार का इतना बड़ा बोझ दो दो बहनें शादी के लिये बैठी हैं ..। इन्सान की जिम्मेदारियाँ भी तो कुछ होती हैं न ।"4.

---

1. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ.170.
2. टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.161.
3. कोरजा : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.268.
4. कोरजा : - वही - : पृ.233.

"टेसू की टहनियाँ"[1] का अशोक एक आदर्श प्रेमी है, जो अपनी प्रेमिका की नजरों से गिरना नहीं चाहता । पिता के कहने पर अपनी आस्था के विरुद्ध रिश्वत लेना पड़ता है, बाद में वह पकड़ा जाता है और इसी आत्म-ग्लानि एवं अपनी प्रेमिका की नजरों से गिर जाने के कारण आत्महत्या कर लेता है ।

"इन्नो" उपन्यास का राम बिहारी इन्नो से प्रगाढ़ प्रेम करता है । यद्यपि वह विवाहित है और इन्नो से विवाह भी नहीं कर सकता क्योंकि उसने आपरेशन करवा लिया है । मृत्यु के पूर्व वह इन्नो से वचन ले लेता है कि वह मरने के बाद उसका बेटा बन कर आयेगा, वह इन्नो से कहता है तेरी गोद में शिशु बनकर आऊं तो तू ठेलेगी तो नहीं ? धोटेगी तो नहीं ? ।"[2] इस प्रकार राम बिहारी प्रेम की दीवानगी का एक आदर्श प्रस्तुत करता है ।

"टपरे वाले" उपन्यास का पन्ना यद्यपि निम्न मध्यवर्गीय युवक है । परन्तु टपरों में उत्पन्न हुई लीला पर विश्वास करके उसे अपनाता है । उससे प्रेम करता है, यद्यपि अपने रोगी पिता का हृदय भी नहीं तोड़ना चाहता । वह विवाह न करने का निश्चय कर लेता है । "विवाह प्यार से अलग वस्तु है । विवाह हम सामाजिकता का निर्वाह करने के लिए ही करते हैं न । यह भी हो सकता था कि तुम किसी बहुत ऊँचे कुल की होती और मेरा विवाह तुमसे न भी हो पाता । मैं निश्चल सोचता हूँ कि तुम्हें मैं पत्नी की तरह रखूँगा और जीवन-पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा ।"[3] जब उसके पिता की आशा नहीं रहती और लीला उसे दोबारा मिलती है तो वह तुरन्त स्वीकार कर लेता है ।[4]

अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के कारण चरित्रों में भी परिवर्तन आ

---

1. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.
2. इन्नो : मालती परुलकर : पृ. 173.
3. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 148.
4. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.

गया है, अब बहुत कम चरित्र आदर्शवादी रह गये हैं । आधुनिक आर्थिक ढांचे के बदलाव स्वरूप भाई के चरित्र में परिवर्तन आ गया है । भाई के आदर्शवादी रूप समाप्त हो चले हैं, फिर भी साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में भाई के आदर्श रूप को भी लिया है । "निर्मलता का अभिशाप" का अनुज एक सज्जन, त्यागमय एवं सेवा का जीवन व्यतीत करता है । अपनी बहिन के विवाह न करने पर स्वयं भी विवाह नहीं करने का निश्चय करता है । वह अपनी बहिन से कहता है कि " मेरी बहन, छोटी बहन तपस्विनी का जीवन व्यतीत करे, और मैं भोगों में रत रहूं : यह असम्भव है । नारी होकर तू ग्राम की सेवा में लगी है, और मैं युवक होते हुए भी सेवा कर अपना जीवन-यापन नहीं कर सकता । हम दोनों को तो प्रसन्न होना चाहिए कि एक अपनी ही जननी को नहीं, अपितु इस ग्राम के प्रत्येक युवक की जननी की सेवा करेंगे । "माँ" ग्राम के हित मुझे समर्पित कर क्या तू सुखी न होगी ?"1" " सूरज के इन्तजार का" कुनू के आदर्श भाई का प्रतीक है । कुनू को पढ़ने की बहुत इच्छा है । पर गरीबी के कारण वह नहीं पढ़ सकता, उसके पिता उसे गैराज में नौकरी दिला देते हैं । कुनू की बहिन को यह देखा नहीं जाता वह उसे पढ़ाने का निश्चय करती है । दोनों घर से भाग जाते हैं । वहाँ पर कुनू की बहिन मेहनत मजूरी करके पढ़ाती है । कुनू अपनी बहन की इज्जत करता है ।समाज में उस पर हुये जुल्म के विरुद्ध वह लड़ता है । वह अपनी बहन से कहता है " मैं अब उतना छोटा, अबोध बच्चा नहीं रहा हूं जितना तुम समझती हो । गैराज की नौकरी में मेरी उम्र में अनुभव के कई साल जोड़ दिये हैं । तुम देखना मैं किस दिलेरी से सब कुछ स्वीकारता हूं - तुम नहीं जानती ।"2"

"एक और बात" उपन्यास का अमित आदर्श का दूसरा रूप प्रस्तुत करता है । वह एक उच्चवर्गीय पूँजीपति का बेटा है । परन्तु उच्चवर्गीय विचार-आचार उसमें छू तक नहीं गये हैं । वह एक संवेदनशील एवं आदर्शवादी युवक है । उसे यह पसन्द नहीं है कि उसकी बहिन

- -

1. निर्मलता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तांगड़ी : पृ. 262.
2. सूरज के इन्तजार में : सूर्यबाला : पृ. 39.

पाश्चात्य विचारों में इतना लीन हो जाये कि भारतीय संस्कृति को ही भूल जायें । "उसका सहज स्वभाव, भावना की सच्चाई, और प्रेम की निश्छलता ।"[1] यह सब गुण उसमें है ।

अर्थ-व्यवस्था के बदलाव के कारण पुरानी परम्पराओं के ढाँचे में भी परिवर्तन आया है । इसके साथ ही पुराने आदर्शों में भी परिवर्तन आया है । "टेसू की टहनियाँ" उपन्यास में शोभा का पिता नैतिक एवं उच्चादर्शों की स्थापना करता है । वह अपनी पुत्री से यह नहीं चाहता है कि चाहे ससुराल में कितना ही कष्ट एवं उस पर अन्याय हो वहाँ की देहरी न छोड़े । वह अपनी पुत्री से साफ कहता है कि "मैं वह रूढ़िवादी पिता नहीं हूँ जो बेटी को हर कष्ट में वही घिसा पिटा उपदेश दें कि बेटी पति के घर से अर्थी ही निकलना ...यदि पति की बुराईयों की अर्थी नहीं निकलती तो पत्नी की अर्थी क्यों निकलेगी ? तुम्हारी हर लड़ाई व समझौते में मैं व सुशील साथ है... रहेंगे ।[2]

"टपरेवाले" उपन्यास का गौरेलाल अन्य टपरेवालों से भिन्न है । वह अपनी पत्नी एवं संतान से बेहद प्रेम करता है । अन्य टपरेवालों की भाँति कभी वह उन्हें मारता-पीटता नहीं । जब उसे अपनी पुत्री लोला के गर्भवती होने का समाचार मिलता है तो वह बहुत दुःखी होता है । वह उसे पन्ना के पास ले जाता है । जब पन्ना अपनी मजबूरी बतलाता है तो वह बहुत दुःखी होता है और वह पन्ना से कहता है कि " कोई और होता तो मैं सिर तोड़ देता, पर आपसे इतनी कहूँगा कि भाषणबाजी और बात होती है, जिन्दगी में भाषणों को उतारना दूसरी बात है । जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन हम गरीब अछूत जी सकेंगे । मुझे दुःख है पन्ना बाबू लोला जैसी नेक लड़की का अंजाम भी हर बस्तियों में पैदा हुई लड़कियों-सा होगा " वह जिस यथार्थ जन्मजात छूत की बात से घृणा पैदा करके आपके विचारों से प्रभावित होकर आप तक पहुँची है विचार थोथे बने-से है, वह टूटा हुआ था।"[3]

---

1. एक और बात : शान्ति जोशी : पृ. 102.
2. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.
3. टपरेवाले :कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 159.

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने पुरुष के पति रूप का आदर्श चरित्र-चित्रण भी किया है । इन पात्रों में दृढ़ आत्म संकल्प- चारित्रिक स्थिरता और आत्मत्याग की सम्पन्नता के दर्शन होते हैं । उपन्यास-कारों ने नारी-पुरुष के स्वस्थ सम्बन्धों को स्थापित करने के उपक्रम में जिन पुरुष पात्रों की सृष्टि की है, वे अपने आदर्श चारित्र्य को उभारते दिखाई देते हैं । वे पुरुष पात्र नारी का शोषण करने वाले पुरुष पात्रों से भिन्न नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखते हुए अपने-अपने परिवेश में नारी को विषम परिस्थितियों से उबारते दिखायी देते हैं । "नारी" उपन्यास का विवेक इसी प्रकार का आदर्श चरित्र पात्र है । वह पुरानी मान्यताओं को नहीं मानता । वह मालती के बारे में सब कुछ जानकर भी वह उससे शादी कर लेता है, और उसकी बेटी को अपना लेता है ।[1]

"प्रेम कहानी" उपन्यास का डा॰ मिलिंद आदर्शवादी डाक्टर है, उसमें नैतिकता एवं सेवा भाव की भावना है । वह मरीजों की सेवा करना अपना प्रथम कर्तव्य मानता है जिससे उसकी पत्नी उषा को अधिकांश समय अकेले काटना पड़ता था । फिर भी वह उषा से प्रेम करता था । "मिलिंद के लिए डाक्टरी की पढ़ाई एक आदर्श थी । वह सोचता था कि चिकित्सा भी राष्ट्रीय सेवा का एक अंग होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत जाति-धर्म वर्ग से परे हर किसी को हर किस्म का उपचार सुलभ हो ।"[2]

आज उपन्यासों में एक नये प्रकार के पति उभरे हैं । वे अपनी पत्नियों को पूर्ण स्वतंत्रता दे देते हैं वे जो चाहे वही करें । वे पत्नी की अनैतिकता को भी बड़े उदार हृदय से क्षमा कर देते हैं ।[3] मृदुला गर्ग के " उसके हिस्से की धूप में" जितेन मनीषा के मधुकर के साथ के सम्बन्ध को सहजता के साथ स्वीकार कर लेता है । वह मनीषा से साफ कहता है कि " किसी भी स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का महत्व

- -

1. नारी : शशि प्रभा शास्त्री : पृ॰ 43.

2. प्रेमकहानी : शशि प्रभा शास्त्री : पृ॰ 62.

3. हिन्दी उपन्यास परम्परा और प्रयोग : डा॰ सुषमा : पृ॰ 433.

यह नहीं होता कि वह विवाह करें ही करे । आजकल ऐसी सोच है जो वक्त के साथ टिकती नहीं । तुम जानती हो मैं उतने तंग ख्यालों का आदमी नहीं हूँ । मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ भी गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है । इसमें तलाक की जरूरत नहीं ।"[1] "मुक्ता" उपन्यास का मोहित जो एक भावनावादी और आदर्शवादी है वह भी यह जानता है कि उसकी पत्नी मुक्ता का सम्बन्ध जितेन्द्र से हुआ था । वह इस सम्बन्धों को क्षणिक आवेश मानता है । वह अपनी पत्नी को दृढ़ रहने के लिये कहता है ।[2] इसी प्रकार "टूटा हुआ इन्द्र धनुष"[3] का प्रभात "गौरा" का वेद आदि भी है ।

" अनित्य" उपन्यास का सुरेश एक अनोखा आदर्श चरित्र है । वह एक संवेदनशील एवं भावुक पति है । वह संगीता से बेहद प्रेम करता है । परन्तु संगीता उससे प्रेम नहीं करती है । वह संगीता को तब तक छूने के लिये तैयार नहीं जब तक संगीता स्वयं आत्म समर्पण नहीं करेगी ।" बलात्कार वह करेगा नहीं, झूठा आत्म-समर्पण लेगा नहीं ।"[4]

निम्न वर्ग का होते हुये भी चरित्र में "कुमारिकाएं" उपन्यास का अनोखेलाल और "प्रतिध्वनियाँ" का भीमसिंह आदर्शभाव है । इनका हृदय विशालता से भरा हुआ है । "कुमारिकाएं" उपन्यास का अनोखेलाल अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करता है । उसकी पत्नी की पहले पति से एक पुत्री है, वह उसे भी बेहद प्रेम करता है । "शान्ता की बच्ची अब मेरी हुई न"[5] । "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का भीमसिंह अपनी पत्नी चन्दा से बेहद प्रेम करता है । दोनों ने समाज से छुपकर विवाह किया था । समाज को मालूम हो जाने से चन्दा आत्म हत्या कर लेती है । भीमसिंह जीवन भर उसकी याद में विवाह न करने का निश्चय कर लेता है । मालिक के कहने पर कि वह तनख्वाह उठने पर वह क्या करता है तो वह कहता "तनख्वाह काहे नाही उठत मालिक ।

---

1. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 145.
2. मुक्ता : मालती परूलकर :
3. टूटा हुआ इन्द्रधनुष : मंजुल भगत :
4. अनित्य : मृदुला गर्ग : 207.
5. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 78.

हमने कहा न, मुदा हम मालुम है, न जिनावर । न देवता । सबेरे उठत है तो आधी रात को उठ के ठंडे पानी से नहाय लेत है... ।"[1] अन्त तक वह दूसरा विवाह नहीं करता है ।

इसके साथ ही साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने दूसरे प्रकार के आदर्श चरित्रों को भी लिया है । "टूटे मनके" उपन्यास का पुरुषोत्तम एक आदर्शवादी युवक है । वह अपनी भाभी को माँ के समान पूजता है । पर उसका भाई उस पर शक करता है । घर में कलह न होने के लिये वह सेना में भर्ती हो जाता है ।[2] और देश की सेवा में अपनी जान दे देता है ।

"महाभोज" उपन्यास का ए.पी.सक्सेना कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार पुलिस आफिसर है । ईमानदारी से अपना कर्तव्य पूरा करने के उपलक्ष्य में मिलता है सस्पेन्शन आर्डर । उसे अपना कर्तव्य पूरा करने में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से गुजरना पड़ता है । " उन्हें डी.आई.जी. के आदेश पर चलना है या अपनी रिपोर्ट खुद तैयार करनी है ? ... काफी देर तक अपने को कुरेदते रहने के बाद उन्होंने भीतर ही भीतर निर्णय किया – निर्णय नहीं, संकल्प किया कि जो भी हो, जैसा भी हो, वे इस मामले को तह तक जाएँगे और इस वारदात का रेशा–रेशा उधेड़ कर रख देंगे ।"[3] परन्तु बदले में बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी ।

"मिट्टी के देव" उपन्यास का पुजारी भी एक आदर्श पात्र है । जो निःस्वार्थ भाव से मन्दिर में प्रभु की सेवा करता है । वह भिक्खु को अपने बेटे के समान प्रेम करता है । बाद में मालूम होने पर कि भिक्खु हरिजन का पुत्र है तब भी वह उससे घृणा नहीं करता है अतः एक आदर्श पुजारी के रूप में हमें मिलता है ।[4] "मिट्टी के देव" उपन्यास का एक और पात्र छम्मूराज है । जो धनिक वर्ग के व्यक्ति

---

1. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.61.
2. टूटे मनके : इन्दु बाली : पृ.43.
3. महाभोज : मन्नू भण्डारी :
4. मिट्टी के देव : त्रिवेदी :

हैं, जो ऊँच-नीच के भेद-भाव को नहीं मानते । उनके ही अथक प्रयत्न से हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश मिलता है ।[1]

"बेगाने घर में" के अधिकांश पात्र नौकर हैं । यह पात्र अपने मालिक की ईमानदारी से सेवा करते हैं । इनमें प्रमुख गनपत, जौहर आदि हैं । "जब से मालकिन गुजरी है गनपत ही मालिक की देख-रेख करता आया है । एक [illegible] तोते की तरह किताब की तरह मालिक का चेहरा पढ़ लेता है ।"[2] ये सभी कर्तव्यनिष्ठ हैं । मालिक के मरने के बाद उनकी वसीयत से सब नौकरों को कुछ न कुछ मिलता है ।

इसलिए हम यह कह सकते हैं कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने यत्र-तत्र अपने उपन्यासों में आदर्शात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित पूर्व-परम्परा के पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है । ये पात्र यथार्थ जगत् के पंकिल वातावरण से उठकर सर्वदा आदर्शवादी हो जाते हैं ।

3.2.2 मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्ति परक संवेदनशील चरित्र-प्रकृति

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मनोविश्लेषण पद्धति द्वारा पुरुष पात्रों का उनके व्यावहारिक मनोविज्ञान अर्थात् पात्रों के हृदयगत विविध भाव, मानसिक तनाव -कसक, अन्तर्द्वन्द्व आदि का चित्रण किया है । "चरित्र को उसके सच्चे तथा वास्तविक रूप में पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये उसके अंतरंग पक्ष की अभिव्यक्ति अनिवार्य है क्योंकि व्यक्ति के निर्माण में चेतन की अपेक्षा अचेतन तथा बहिरंग की अपेक्षा अंतरंग पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है ।[3] व्यक्ति चरित्र किसी जाति-वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते । बल्कि उनमें कुछ पृथक व्यक्तित्व लिये हुये आते हैं । व्यक्ति का चरित्र कोई निश्चित

- -

1. मिट्टी के देव : त्रिवेदी
2. बेगाने घर में : मंजुल भगत : पृ.15.
3. हिन्दी कहानी चरित्र-चित्रण का विकास : उषा गोयल : पृ.38.

और स्थिर सत्ता नहीं है । यह एक विकसन-शील प्रक्रिया है ।

स्वयं को उच्च सिद्ध करने के लिये पुरुषों में अहं भाव की प्रधानता होती है । उनका अहं इतना तीव्र होता है कि वे नहीं सह सकते कि कोई उनकी इच्छा पूर्ति में बाधा हो । घर हो या बाहर, व्यक्तिगत प्रश्न हो या सामाजिक हर स्थल पर वे तभी तक रम पाते हैं, जब तक उनके अहं की पुष्टि होती है । जब और जहां उनके अहं पर चोट पड़ती है, वे उस स्थिति से अलग, अपने को साधारण से भिन्न असाधारण घोषित कर अपने अहं को पुष्ट करने का प्रयास करते हैं । इस प्रकार साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने पुरुष पात्रों की मूल संवेदना अहं को लिया है । कहीं अहं के दमन की प्रक्रिया में चरित्र विकास हुआ है, कहीं अहं के पोषण में तो कहीं अहं के प्रसार में । अहं भाव से व्यक्तिवाद का बोध होता है ।

"वह तीसरा" उपन्यास में संदीप दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट है । इसके मूल में पुरुष का अहं भाव है । वह अपनी पत्नी से प्यार करते हुये भी स्वयं से ज्यादा प्यार करता था ।" हमारा अहं... हमारा ईगो... हमारा स्वयं से प्यार । हम एक दूसरे से प्यार करते थे, यह सच था, लेकिन हम स्वयं से अधिक प्यार करते थे । यह उससे भी बड़ा सच था ।"[1] यही नहीं इसी अहं भाव के कारण "आपका बंटी" का अजय शकुन से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है । "अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी । अपने आप को पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सको तो पा सको , अपने को बचाये रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा ।[2]

"मछली और मरा जल" उपन्यास के कमल में अहं भाव इतना प्रबल है कि वह यह बिल्कुल सहन नहीं करता है कि उसकी पत्नी किसी से बात करे या मायके जाये । इसी अहं भावना के कारण वह उस

- -

1. वह तीसरा : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 16.

2. आपका बंटी : मन्नू भंडारी : पृ. 123.

पर शक करने लगता है । "एक दूसरे के प्रति अगाध प्रेम होने पर भी कटघरे के कैदी की तरह तड़पना ।"1. इसी अहं भाव की पुष्टि न होने के कारण वह बार-बार उलझता है । वह चाहता है कि उसकी पत्नी प्रेमिका के रूप में रहे जो सवेरे से शाम तक , शाम से सवेरे तक, अहर्निश उसकी सेवा में समर्पित रहे ।2.

"कोहरे" उपन्यास का सुनील शिप्रा से तब तक ही रमता है जब तक कि उसके अहं की पुष्टि होती है । उसका अहं इतना तीव्र है कि वह नहीं सह सकता कि उसकी इच्छा -पूर्ति में बाधा हो । वह यह नहीं चाहता है कि उसकी पत्नी किसी से मिले जुले, रेडियो आदि पर गाये । वह शिप्रा से कहता है । "आप कविता लिखेंगी तो सिर्फ मेरे लिए ...छपने-छपाने के लिये नहीं ।3. वह अपनी पत्नी को एक सम्पत्ति की तरह मानता है । "सुनील का वह प्रबल "अहम" "अहं" बना प्रबलतम होता, मुझे जैसे किसी मजबूत किन्तु अमानवीय पाश में जकड़ने लगा था । सुनील मुझ पर हावी बने रहते । क्लब और पार्टियों में ले जाते, घर में भी मित्रों को आमन्त्रित करते तो एक "पोजेशन केस में" जैसे मैं उनकी "सम्पत्ति" ए ड्राइंग रूम में सजे खूबसूरत देश-विदेश की चीजों जैसी ही एक चीज । मैं ओंठ भी खोलती तो झट् से मेरी बात काट देते । डांस-फ्लोर पर भी उतरते तो स्वयं तो पार्टनर बदलते रहते, किन्तु यदि मुझे"डांस" के लिए कोई आफर करता, तो झट से कोई न कोई बहाना बना देते । क्लब और पार्टियों में मुझे कन्धों से सटे रहते या कमर पर बांह से घेरे रहते ·· ।4. जहां उसके अहं की पुष्टि नहीं होती वहां वह शिप्रा को तलाक ही दे देता है ।

- -

1. माझी और मरा जल : शान्ति जोशी : पृ. 77.
2. माझी और मरा जल : शान्ति जोशी : पृ. 18.
3. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 16.
4. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 21.

"एक इंच मुस्कान" का अमर भी अहं भावना से ग्रस्त है । वह एक उपन्यासकार है, भावुक एवं संवेदनशील है । पर उसे यह पसन्द नहीं है कि रंजना कमाये और वह बैठ कर खाये । वह कहता है "तुम कमाओगी, काम करोगी और मैं बैठा-बैठा खाऊँगा ...इसे मेरा अहं कैसे स्वीकार करेगा ? और जितने मधुर सपने तुम आज अपने घर के, अपने भविष्य के देख रही हो .. गर्वाएँ को आँच दो दिन में ही वे मुरझा जायेंगी और तुम्हारी यह उन्मुक्त हँसी, यह उच्छलता, यह मस्ती सब सदा-सदा के लिए समाप्त हो जाएगी ।"1.

"डर मेरा है" का पति, "यारू ने कहा था" का पति भी ऐसे ही पात्र हैं । "उसके हिस्से की धूप" उपन्यास का मधुकर भी अहं भावना से ग्रस्त है । वह मनीषा से साफ कहता है " मैं न तो "खोमन लिव" में विश्वास करता हूँ और न " फ्री लव में ।"2.....। कोई दूसरा पुरुष तुम्हारे करीब आये मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता ।3.

"सूखी नदी का पुल" उपन्यास में शेष का चरित्र-विकास अहं के कारण ही हुआ है । उसका अहं यह स्वीकार नहीं कर सकता है कि उसकी पत्नी उससे अधिक बुद्धिमान हो। वह यह नहीं चाहता है कि उसकी पत्नी आधुनिक हो । जहाँ अहं की तुष्टि नहीं होती वहाँ वह अर्चना के प्रति उदासीन हो जाता है । अंत में अर्चना उसकी इसी अहं भावना के कारण उसे छोड़कर चली जाती है । 4.

हीन-भावना की ग्रन्थि व्यक्ति में जन्म से या अपने से कम या सम उम्र के व्यक्ति के गुणों के कारण उत्पन्न हो जाती है । यह भावना कभी कभी इतनी प्रबल हो जाती है कि प्रतिहिंसा की भावना को धारण कर लेती है ।

- -

1. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भंडारी : पृ. 55.
2. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 53.
3. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 145.
4. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ. 185.

"टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" में निरोष हीन ग्रन्थि से युक्त पात्र है। निरोष देखने में आकर्षक है किन्तु उसका बौद्धिक स्तर शोध अधिकारी पत्नी हरिता से हीनतर है। पत्नी की यह उच्चता उसमें हीन भावना जगा देती है। आर्थिक स्थितियों ने उसमें ऐसी हीनता का भाव भर दिया था कि शारीरिक दृष्टि से कोई कमी न होते हुए भी वह नीतू को सन्तुष्ट नहीं कर पाता।[1] परन्तु यही हीन ग्रन्थि बाद में उसमें आधिपत्य का अहंकार जगा देती है। वह हरिता के मना करने पर भी उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध करता है। "नहीं क्यों," उसके स्वर में पहले की सी करुण गिड़गिड़ाहट नहीं, आधिपत्य का अहंकार था।[2]

"टेसू की टहनियाँ" का प्रकाश भी हीन ग्रन्थि से युक्त पात्र है। हालांकि वह इंजीनियर है फिर भी वह अंधविश्वासी है। अपनी पत्नी सीता के गुण उसे अभिभूत करने के बजाय उसमें हीनता का भाव पैदा कर देते हैं। निरोष की हीन भावना जहाँ आधिपत्य में बदल जाती है वहाँ प्रकाश की हीन भावना चिड़चिड़ेपन में बदल जाती है। "सीता के गुणों ने प्रकाश को बहुत आहत कर दिया और उसकी हीन ग्रन्थि रह-रहकर उसे सताने लगी और वह भी अन्दर से कहीं टूटने लगा। इस टूटन के साथ उसकी झुंझलाहट बढ़ जाती।[3]

"समर्पण का सुख" में राजू और "उसकी पीढ़ियाँ" में प्रवीण अपने भाइयों के कारण हीन भावना से ग्रस्त है। राजू के भाई उच्च कार्यालयों में कार्यरत थे। वह राजू को निरन्तर प्रताड़ित किया करते थे। जिससे राजू में हीन भावना ग्रस्त हो गई थी। परन्तु विवाह के बाद उसकी हीन भावना उसकी पत्नी हटाती है। "आप नहीं

---

1. टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : प्रभा सक्सेना : पृ. 104.
2. -वही- -वही- : पृ. 106.
3. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 36.

जानती दीदी, कितने हीन-बोध से ग्रस्त था वह व्यक्ति । कितनी मुश्किलों से उसके मन की गांठें खोल पायी हूँ मैं । कितनी तपस्या करनी पड़ी है मुझे उसका आत्म-विश्वास लौटाने के लिए ।[1] यतीन अपने भाई के विशाल व्यक्तित्व के आगे अपने को हीन समझता है । वह अपने भाई के आगे एक इन्फीरियोरिटी कौम्पलैक्स से जकड़ा हुआ था । अपने भाई द्वारा पसन्द की गई लड़की से विवाह करने के बाद भी वह उससे दूर भागता है । उसकी पत्नी उससे कहती है कि "तुम्हारे भाई का व्यक्तित्व हिप्नोटिक है । जहाँ से वह गुजरते हैं । आस-पास के लोगों पर अपना असर छोड़ते जाते हैं । मैं तुम्हें और अपने को उससे अलग ले जाना चाहती थी । अगर ऐसा हो जाता तो हम बच जाते यतीन, पर तुमने मुझे गलत समझा । उस समय नहीं कह सकी आज कहती हूँ तुम्हें एक कौम्पलैक्स है । अपने भाई के आगे एक इन्फीरियोरिटी कौम्प्लेक्स ।"[2]

"वंश" उपन्यास में सुधीर में भी हीन भावना है । माँ उसकी बचपन से ही नहीं थी और पिता केवल अभिभावक के रूप में ही रहें । उसके पिता उससे ज्यादा प्यार नहीं करते थे बल्कि वे अपनी पुत्री को ज्यादा पसन्द करते थे । जिसके कारण सुधीर में हीन भावना का जन्म हुआ । इसी हीन भावना के कारण वह पिता की किसी भी बात को नहीं मानता था । उनकी इच्छा के विरुद्ध सेना में शामिल हो जाता है । इसी हीन भावना के कारण बाद में वह विद्रोही हो जाता है । वह कहता है " मैं चाहता हूँ संसार के हाहाकार को एक झटके से दूर कर दूँ, दुनिया में जहाँ कहीं भी जो भी दुःखी है उसके दुःख को हर लूँ । पर कर कुछ नहीं पाता । लगता है बुराई के दलदल से मैं किसी को बाहर नहीं खींच रहा, खुद उस तरफ खिंचा जा रहा हूँ ।[3]

- -

1. समर्पण का सुख : मालती जोशी : पृ. 119.

2. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ. 123.

3. वंश : मृदुला गर्ग : पृ. 156.

"सूखी नदी का पुल" में दिनेश में भी एक प्रकार से हीन भावना है । यह हीन भावना उसमें जन्म से ही है । क्योंकि माँ उसे जो मिली केवल अभिभाविका के रूप में और पिता व्यक्तित्वात्मक चिन्ह बोध से कम नहीं थे । जिसके कारण वह किसी से खुलकर बात नहीं करता है । किसी के पास आता जाता भी नहीं । "माँ से बातें करने में ही उसे इतनी कठिनाई पड़ती है कि बोलना क्या कान तक लाल हो जाते हैं । न जाने दिन भर क्या पढ़ता रहता है, क्या सोचता रहता है अपने उस कमरे में । न कभी कोई मित्र उसके घर आता है, न वह किसी के यहाँ जाता है ।[1]"

"उन शाखों पर" उपन्यास का आनन्द कुंठाग्रस्त है । कारण उसे यह सहन नहीं होता है कि उसकी माँ पिता के अत्याचारों को सहन करती रहे । धीरे-धीरे उसमें आक्रोश की भावना पनपती है । जब वह अपनी माँ के लिये कुछ नहीं कर पाता है तो वह सारा आक्रोश अपनी पत्नी पर निकालता है । यद्यपि वह अपनी पत्नी से प्रेम भी करता है । वह नहीं चाहता है कि उसकी माँ की तरह उसकी पत्नी चुपचाप उसके अत्याचारों को सहे । " मैं तो कर लेता । एक नहीं, बहुत बार मैंने ऐसी योजना बनायी, मगर मैं जानता था कि मम्मी नहीं जाती । शी लव्ड हिम टू ... डियर डैडी ! और यह जो तुम्हारी भाभी है ना, वह भी मुझसे प्रेम करती है... हाँ, मैं जानता हूँ । शी लव्स मी । चाहे जितना भी उसे मारूँ-पीटूँ, मुझे छोड़कर यह कहीं नहीं जायेगी ... कभी भी नहीं जायगी । इसी प्रेम को लेकर तो औरत मारी जाती है ।.. शी इज वीक और हर वीकनेस फार अदर्सेल्फ, मोस्ट सो फोर द पति -देवता ।।"[2]

बाहर घटनाओं के घटित होने से पूर्व ही व्यक्ति मानस में कई घटनाएँ घटित हो जाती है और कभी बाहर के बहुत संघर्षों में पड़ने से पूर्व उसे आंतरिक संघर्षों के साथ जूझना पड़ता है । फलतः वह

---

1. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ.22.
2. उन शाखों पर : प्रतिमा वर्मा : पृ. 22.

मनोविकार-ग्रस्त, कुंठाग्रस्त तथा आत्मक्षोभ हो जाता है ।"1.

"अनित्य" उपन्यास का अविजित द्वन्द्व, दुविधा तथा अपराध बोध से ग्रस्त रहता है । मकड़ी का जाला उसकी मानसिक परेशानी का द्योतक है । वह अकेलेपन और कुण्ठा बोध से ग्रस्त रहता है, क्योंकि उसने जो रास्ता चुनाया अन्त में उसे अकेलेपन की ओर ले जाता है । अन्त में वह एकदम बावला, धीरा-धीरा कटा हुआ आहत और बूढ़ा लगने लगता है । उसके यह शब्द उसकी व्याकुलता के द्योतक है । "मैं रात के अँधेरे में उठा .... चुप ! तीन अँगुल चौड़ा अँधेरा...गले में भिनकती भिनभिनियों जैसी चीखें .... डाक्टर जिस तरफ था मैं ठीक उसकी उल्टी तरफ चला ... शुक्ल जी बोले, नहीं - नहीं, भाई साहब, रहम मत खाइए, यह फैशन नहीं है . . कहो मत ..सिर्फ सोचो ... एक बार कह दिया तो बवाल है सब रास्ते बन्द ! मैंने नहीं कहा ... एक बार भी नहीं कहा, सोचो, कब कहा !"2. इस प्रकार एकाकीपन से ग्रस्त मनोवैज्ञानिक पात्र है ।

एक यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब बिन्दु उपन्यास में कृष्णकान्त को यह मालूम होता है कि उसकी पत्नी बिन्दु का विवाह पूर्व शगुन से प्रेम था, तो वह उन्मादित सा हो जाता है । क्योंकि पुरुष यह कभी सहन नहीं करता है कि उसकी पत्नी किसी से प्यार करती हो । विवाह पूर्व उसकी अपनी ही धारणा थी । "मैं चाहता था कि मुझे कोई ऐसी मिले जो वाकई में प्यार करे, जिसका मैं सब कुछ होऊँ ।"3.

"मेरा नरक अपना है" उपन्यास में हरेन्द्र में भी अन्तर्द्वन्द्व चलता है । जब उसे यह जानकारी मिलती है कि उसकी पत्नी शीला सुनिता

1. हिन्दी कहानी : चरित्र-चित्रण का विकास : पृ. 30-37.
2. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ.259.
3. बिन्दु : सुनीता जैन : पृ.61.

से प्रेम करने लगी है । यह एक दब्बू चरित्र के रूप में हमारे सामने आता है । जो पत्नी से कुछ नहीं कह सकता और भीतर ही भीतर सोचविचार रहता है । "शोभा क्या किया तुमने । क्या किया यह । अब भी तोड़ दो उस हरामी को । मैं सब भूल जाऊँगा । किसी के तो क्या अपने सामने भी नहीं जताऊँगा कभी कि कोई समय ऐसा भी आया था जब तुम अपने प्रेमी में डूब गयी थीं । जब तुम्हें पति के साथ सोना जहर लगने लगा था । तुमने महीनों तक उसे उपेक्षा दी थी । भूल जाऊँगा सब और तुम्हें भी भुलवा दूँगा । पर अब बंद करो यह सिलसिला । वरना मैं पागल हो जाऊँगा ।.... घर परिवार की इज्जत तुम्हें स्त्री होकर उतनी नहीं महसूस हो रही कमाल है । तो क्या मुझसे ज्यादा सामाजिक जीवन है ।"[1] इस प्रकार वह मानसिक अन्तःग्रंथि से जूझता रहता है, और अपनी पत्नी से कुछ नहीं कह पाता ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सत्य है कि जीवन की पहली मांग प्रकृति की ओर से ही होती है - प्रेम की, और जिन अभागों की वह मांग अपूर्ण रह जाती है उनका जीवन किस प्रकार घुट कर रह जाता है । प्रेम समानों में होता है । कोई भी मन अपने समान व्यक्तित्व वाले मन की ओर खिंचता है नैसर्गिक रूप से - उस खिंचाव को जाति - आयु शिक्षा -समाज आदि सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता । विक्रम के मन की वह प्यास उसकी पत्नी नहीं बुझा पाई - अतः तीन-तीन बच्चों का पिता हो जाने पर भी, एक अत्यन्त कुशल गृहपति - उद्योगपति होने पर भी उसका प्यासा मन हाहाकार करता था। सूने अन्तर के हाहाकार को वह भौतिक सफलताओं की चकाचौंध से ढकता है । परन्तु बाद में वह साधवी को देखने के बाद वह उससे प्रेम करने लगता है । साधवी भी उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होती है । यद्यपि यह जानते हुए कि सामाजिक दृष्टि से यह प्रेम मान्य नहीं है क्योंकि साधवी उसके भाई की पत्नी है । फिर भी दोनों में

---

1. मेरा नरक अपना है : निरुपमा सेवती : पृ. 75.

सम्पन्न हो जाता है । विक्रम के सूने अन्तर की जब प्यास बुझ जाती है तो वह बाहरी साज-सज्जा के प्रति उदासीन हो जाता है । "बहुत फीकापन-सा आ गया था उस घर के चमचमाते रूप में । जैसे पीतल के कलश पर मिट्टी की परत चढ़ गई हो । एक बार लॉन अच्छी तरह नहीं संवारा गया था । क्यारियों की क्यारियाँ सूनी पड़ी थीं घास भी बढ़ कर ऊँचा हो आया था ·· । सीढ़ियों पर रखे क्रोटन के रंगीन पत्तों वाले गमले बेतरतीब पड़े हैं । दूसरी ओर के कभी न सूखने वाले कैक्टस भी जैसे सूख गये हैं'।·1·

"प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का नीलकान्त मेहता पूर्व दीप्ति द्वारा आत्म-विश्लेषण करता है । चित्रों की भाँति स्मृतियाँ उसके मानस-पटल पर आती-जाती हैं । इन स्मृतियों द्वारा वह अपराध-बोध से ग्रस्त हो जाता है । उसने अपने जीवन में कभी किसी को सुख नहीं दिया । ऊपर उठने की चाह में वह दूसरों की उपेक्षा करता रहा । "इतना सब कुछ पाकर, इतना जी कर भी तुम्हारा मन नहीं भरा···· । मुझसे पूछता है··· तो वह विराट "मैं" अट्टहास कर उठता है । जैसे मेरे नन्हें "मैं" ने कोई शिशुवत अबोध प्रश्न पूछा हो जिस पर केवल हँसा जा सकता है, कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया जा सकता ।·2·

जो मनुष्य अपने परिवेश से कटा हुआ तथा अपने आप में लीन रहने का अभ्यस्त है वह आत्मकेन्द्रित है । "कोई एक" उपन्यास में इन्द्रजीत एक ऐसा ही पुरुष पात्र है जो अपने में ही लीन रहता है "वह किसी से बोलना नहीं चाहता । उसको जिन्दगी उसके अपने ही साथ में अच्छी मालूम पड़ती है । वह अपने लिए जीना चाहता है । दूसरों के लिए जिन्दगी जीने वाली भावुकता से उसका कोई वास्ता नहीं । एक लक्ष्मण रेखा उसके चारों ओर देखी जा सकती है । जिसे पार करने की इजाजत वह किसी को नहीं देता ।·3·

1· उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ· 114·
2· प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ·7·
3· कोई एक : शुभा वर्मा : पृ·7·

वितृष्णा भी एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है । "कोहरे" उपन्यास में मेजर सिन्हा अपनी पत्नी के प्रति वितृष्णा के भाव से भर उठता है । क्योंकि उसकी अपनी विशिष्ट अभिजात्य सोच है । उसकी यह वितृष्णा उस समय मुखरित हो उठती है, जब वे यह कहते हैं " क्यों घर में कोई टाक्स नहीं : यह कम्पनी के साहब की सी हनुमानजी के सिन्दूर की बिंदी - अरे भई, जरा चेहरा देखने लायक रखा करो ... तुम्हें क्या मालूम आजकल ज़माना कितना बदल गया है, .. तुम्हारी तरह व्रत-उपवास रखकर, चौके चूल्हे में सिर देकर क्या मेरी बेटी भी ज़िन्दगी काटेगी ... या मेरा बेटा, तुम जैसी ढोल को गले से लटका कर ज़िन्दगी भर बजाता रहेगा ।"1.

"घटता हुआ आदमी" का शरद गुप्ता एक ऐसा चरित्र है जो संत्रास और असुरक्षा की भावना से जकड़ा हुआ रहता है, भीतर ही भीतर इस भाव से "सहमा" रहता है कि कहीं उसकी नौकरी न छिन जाए । इस आशंका से वह कभी छुट्टी पर नहीं जाता है कि कहीं उसकी अनुपस्थिति में कोई अन्य व्यक्ति उसके "पद" पर पदासीन न हो जाए । 2.

मनोवैज्ञानिक पात्र अपने अपमान एवं अवहेलनाओं को मानसिक रूप से भीतर ही भीतर संचित करके अवसर पड़ने पर गिन गिन कर बदला लेते हैं । "वंशज" उपन्यास का श्रीवास्तव इसी प्रकार का पात्र है । वह अपने अंग्रेज तथा हिन्दू अफसरों की डाँट फटकार, मार-कूटी तथा गाली-गलौज से उत्पन्न मानसिक शारीरिक पीड़ा को भीतर-ही-भीतर संचित करता रहता है । लेकिन अवसर मिलने पर वह अपने अपमान का गिन गिन कर बदला लेता है । 3.

कभी भी अपने "स्व" को स्थापित न कर पाने के क्षोभ में विक्षुब्ध रहता है तथा अपने आन्तरिक असन्तोष के कारण, कहीं भी कोई

1. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.
2. घटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : पृ. 110.
3. वंशज : मृदुला गर्ग : पृ. 19,20.

लगाव महसूस न कर पाने की स्थिति में विक्षुब्धता में जीता है । "मुक्ता" उपन्यास में जीतेन्द्र इसी प्रकार का पात्र है । अपने आन्तरिक अवरोध के कारण वह अपनी पत्नी से लगाव महसूस नहीं करता । वह अपनी पत्नी के लिये एक नपुंसक ही सिद्ध होता है । इसके विपरीत रूपाली में लगाव के कारण वह उसकी दृष्टि में आदिम पुरुष है । वह स्वयं इसी प्रकार स्वीकार करता है कि " मुझ में निराले किस्म की संवेदना है । बिना मानसिक आकर्षण के मुझ में शारीरिक प्यास जागती ही नहीं ।"[1]

"वंशज" उपन्यास में जज शुक्ला (आत्म रति मोह (Narcissism) तथा श्रेष्ठता भाव (Superiority Complex) की ग्रन्थियों से ग्रस्त है । वह सुधीर में अपराध-बोध और हीनता-बोध की भावनाएँ भर देते हैं । वह सुधीर से ज्यादा रेवा को प्यार करते हैं । सुधीर को प्रताड़ित करते रहते हैं । रेवा की किसी भी गलती की सजा वे सुधीर को ही देते हैं । अपनी इस मनोग्रन्थि के कारण वे सुधीर से सामंजस्य नहीं निभा पाते हैं ।[2]

कुछ चरित्र मनोवैज्ञानिक होते हुए भी अपना अलग व्यक्तित्व रखते हैं । यह पात्र समूह या वर्ग विशेष से भिन्न होता है । उनकी क्रियाएँ - प्रतिक्रियाएँ उनका वातावरण और घटनाएँ सभी मानसिक है । वे साधारण वर्ग-चरित्र न रहकर व्यक्ति-विशिष्ट पात्रों के रूप में ही अवतरित हुए हैं ।

"कोई नहीं राधिका" के तीनों पुरुष पात्र व्यक्ति पात्र है । यह तीनों पात्र अपनी-अपनी भिन्नता को लिये हुए हैं । राधिका के पापा के चरित्र में एक विशेष प्रकार का गाम्भीर्य है । वे उत्तेजित कम ही होते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार और सुलझा हुआ है । आम पिताओं की तरह उनका व्यक्तित्व नहीं है । बचपन में राधिका को बड़े लाड़ से पालते और उसके रूठने पर उसे मनाते थे,

- -

1. मुक्ता : मालती परुलकर : पृ. 159.

2. वंशज : मृदुला गर्ग : पृ.

वहाँ उसके बड़े हो जाने पर उसे अमेरिका जाने से नहीं रोकते और अन्त में स्वयं अकेले असहाय रह जाने पर भी उसे अपने पास ठहरने के लिए विवश नहीं करते । विरक्त भाव से केवल इतना ही कहते हैं "चाहता हूँ तुम यहाँ रहो राधिका पहले की तरह ।"[1] लेकिन राधिका जब कहती है - "नहीं पापा मैं जाना चाहती हूँ ।"[2] तो पापा उसके कंधे से अपना हाथ हटा लेते हैं और कुर्सी का सहारा लेकर बैठ जाते हैं । और पिताओं की तरह न विरोध, न वात्सल्य भरी मनुहार करते हैं और न उपेक्षा भरा तिरस्कार । इस तरह उनका यह चरित्र एक व्यक्ति विशेष चरित्र है ।

"रुकोगी नहीं राधिका" में दूसरा पुरुष पात्र अक्षय है । जो अपने में ही सिमटा हुआ है । स्त्रियों के विषय में बहुत लजालु है । उसके चरित्र में शालीनता दायित्व-बोध और संयम है । वह राधिका की ओर आकर्षित होता है, और उससे प्रेम भी करने लगता है । परन्तु उसके परम्परागत संस्कार उसमें कुंठाएँ उत्पन्न करते हैं । इस तरह यह पात्र अपने ही निजता में सिमटा हुआ रहता है ।

"मनीष" " रुकोगी नहीं राधिका" का तीसरा पुरुष पात्र है । जिसका अपना अलग ही व्यक्तित्व है । युवतियों को आकर्षित करने की कला में वह पारंगत है । वह कई युवतियों को अपने झूठे प्रेम में फँसाता है । जब वह देखता है राधिका उसके प्रति उदासीन है तो वह उसकी तरफ बढ़ता है । परन्तु वह अपने हृदय को निरावरण करके उसके पास सामने नहीं आता है । वह राधिका को अपनाने का निश्चय कर लेता है । वह उससे कहता है " तुम यहाँ नहीं रह सकी, न तुम्हें यहाँ ही स्वीकारा गया । मैं भी अपने को प्रथम, अलग कटा हुआ पाता हूँ । सोचा कि हम दोनों इकट्ठे रह सकेंगे क्योंकि हम एक दूसरे को बहुत अरसे से जानते हैं, बहुत सारे सन्दर्भों में ।"[3]

---

1. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा :
2. - वही - -वही-
3. - वही - -वही- : पृ. 152.

इस तरह से तीनों पात्र अपने-अपने निजी व्यक्तित्व में लिपटे हुये और एक तरह का परायापन, एक नैतिक व्यावहारिकता और तटस्थता है । सब पर सम्भ्रान्तता और अभिजात्यता का मुखौटा लगा है । कोई भी हृदय को निरावरण करके सामने नहीं आता ।[1]

इसी तरह "नारी" उपन्यास के " सोमधी ""पतझड़ की आवाजें" हीरेन वर्मा आदि अनेक पात्रों का वैयक्तिक विशेषताओं का ही विश्लेषण हुआ है ।

कुल मिलाकर साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्तिवादी चरित्रों के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है । उनका पुरुष पात्रों के प्रति न तो रूमानी दृष्टिकोण मिलता है न सुधारवादी । इसका परिणाम यह हुआ कि वे पुरुष पात्रों को मनोविज्ञान के सही परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण संवेदना के साथ देख पायी । अतः अपनी सम्पूर्ण सजीवता के साथ यह पुरुष पात्र मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि में उभर कर सामने आते हैं ।

3·2·3 वैयक्तिक यौन-चेतना से जुड़े चरित्र

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने जहां आदर्शवादी पुरुष पात्रों को लिया है तो दूसरी ओर वैयक्तिक-यौन चेतना से जुड़े पुरुष-चरित्रों को भी लिया है । मनोविज्ञान में फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से व्यक्ति का मूल केन्द्र " सेक्स" माना जाने लगा । इसीलिए प्राचीन यौन सम्बन्धी मान्यताओं में परिवर्तन हुआ, सतीत्व की परिभाषा बदली तथा प्रेम के आदर्शवादी स्वरूप में पर्याप्त अन्तर आया ।[2] सन् 60 के बाद यौन-चेतना से जुड़े चरित्रों का खुल कर प्रयोग होने लगा । इस युग के एक लेखक ने लिखा है "आज से 20-25 वर्ष पूर्व संभोग एक रहस्य था । आज के हिन्दी कथा-

---

1· हिन्दी उपन्यास के पदचिन्ह : डा·मनमोहन सहगल : पृ·305·

2· हिन्दी कहानी चरित्र-चित्रण का विकास : पृ· 204·

साहित्य में संभोग से अधिक रहस्यहीन चीज दूसरी नहीं .. आगे उनका और कहना है कि सबके लिए साथ एक अत्यन्त सहज धर्म है, जिस पर न विचार करना जरूरी है न अधिक सोचना । यह समाज के दैनिक जीवन का अंग है । औरत की देह भी इतनी ही सहज और सुलभ कमोडिटी होनी चाहिए । फिर चाहे वह पत्नी से या दुनिया की किसी भी औरत से । इस सिलसिले में समाज, धर्म या सरकार को क्यों बीच में आना चाहिए । सेक्स जैसी चीज़ पर सामाजिक संस्थाएं प्रतिबंध लगाती है ।1.

इस अवधारणा का परिणाम यह हुआ कि उपन्यास साहित्य में कामुक तथा यौन क्रियारत पुरुष पात्रों का उदय हुआ । महिला उपन्यासकारों ने भी इन पुरुष पात्रों का यौन चित्रण किया है । पर उन्होंने इसे पुरुष पात्रों को अच्छाई और बुराई के संदर्भ में किया है ।

"अकलास" उपन्यास का हरदेवलाल भोगवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । शराब और शबाब इसके दो मुख्य कार्य हैं । वह अपनी पत्नी की उपेक्षा करके अन्य भौंरों पर मंडराया हुआ फिरता है । अपने यौन भावना की पूर्ति वह अन्य स्त्रियों से खुलकर करता है । वह अपनी पत्नी से कहता भी है कि " तुम एक जन्मजात बेगम बनी बैठी हो । असली मर्द कभी एक बेगम से संतुष्ट कर नहीं रहता । उसे तो हर पल नया चाहिए, एकदम नया निकोट और फिर दिल्ली में एक थोड़ी सेकड़ों जन्नत बिखरे पड़े हैं जिसे चाहे खरीद लो ।

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यास " बात एक औरत की " का संजय यौन-चेतना से जुड़ा हुआ एक कामुक व्यक्ति है । अपनी पत्नी के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए इसका उसे कभी ध्यान नहीं है । वह उसे दुःख सुख के दो शब्द नहीं बोलता था । बस उसे मात्र अपनी यौन भावना का साधन समझता है । संजय उसके आराम, थकावट

- -

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज : पृ. 172.
   इन डिफेंस आफ द सेक्स : परेश , आर्गन 1968.
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : -वही- पृ.173.

सुख-दुःख आदि के बारे में कुछ न पूछकर उसे सारी रात बाहों में थामे हुए शयन करता रहता है ।1.

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने ऐसे पुरुष पात्रों का निर्माण किया है, जो कामुक प्रवृत्ति के हैं । स्त्री इनके लिए खिलवाड़ तथा कोरी वासना तृप्ति का साधन है । एक लोलुप भौंरों की भांति पुष्प दर पुष्प भ्रमण करते हैं । " एक और बात" उपन्यास का प्रधान एक विलासी प्रवृत्ति का पुरुष है । वह स्त्री को खिलवाड़ तथा कोरी वासना तृप्ति का साधन मानता है । वह गाँव की सभी स्त्रियों को अपने पद एवं रुपयों के बल पर अपनी वासना का शिकार बनाता है । उसका यही धर्म है - वह कहता है अपनी जिन्दगी देखो, अपना पेट देखो, मौका मिले तो भोग करलो, यही धर्म कहता है ।2.

"उसका घर" उपन्यास के मि॰ आहूजा को हर रात एक नई लड़की चाहिए । वह अपने पैसों व पद के बल पर हर रात के लिये एक लड़की खरीदता है । अपनी वासना की पूर्ति के लिए वह रेशमा को भी खरीदता है । परन्तु रेशमा स्वयं नहीं बिकी , बल्कि उसके भाई ने उसे बेचा था, स्वयं आहूजा भी इस बात को स्वीकारता है । " रेशमा आहूजा के लिए पहली लड़की नहीं, उसे आधार बनाया है, उसे रात को सोने के लिए लड़की चाहिए । रेशमा का प्रेम तब उधार खाते में नहीं लिखता, बल्कि भड़ुआ का बैंक बैलेन्स काफी बढ़ रहा है ।"3.

सन्त और योगी दिखने वाले कितने कामुक और ढोंगी होते हैं इसका चरित्र चित्रण "भैरवी", "सोलह फेरे" और "खिड़की का डाट" के साधुओं द्वारा किया गया है । "भैरवी" का अघोरी साधु और "सोलह फेरे " का साधु स्त्री की कामना करते हैं । "मरद का मन, चाहे वह लाख साधुई औकात में होता है, एकदम देसी कुत्ता । सामने

- -

1. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ॰ 51.

2. एक और बात : शांति जोशी : पृ॰ 14.

3. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ॰ 58.

लड़की रख दो, तो कितना ही सिखाया पढ़ाया हो, कभी लार टपकाए बिना नहीं रह सकता है ।"1. अपनी धूर्तता एवं कामुकता का परिचय देते हुये बाबा कहता है " अबे जा रे मूर्ख है, यहां कहां दीवारें धरी है । पर बच्चा, आज उन दो-दो परियों ने हमारी तबियत बिगाड़ दी - एक भी मिल जाती ....।" और फिर बाबा की वात्सल्य भरी कल्पना जैसी हिरनी-सी कुमारि जैसी मूर्त हो उठी ।"2. "किशनुली का ठाट" के शास्त्री जी धर्मानुरागी में प्रसिद्ध होते हुये भी वे अपनी काम-भावना को दबा नहीं सके । किशनुली जो एक पागल लड़की थी, उसके साथ में वे यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।3.

कभी-कभी पुरुष अपनी कामुक प्रवृत्ति एवं यौन भावना के कारण रिश्ते नाते को भी भूल जाते हैं । "कोरजा" उपन्यास का रहमान खाँ अपनी बेटी पर ही बुरी नजर रखता है, उससे अपनी वासना की पूर्ति करना चाहता है । "आदमी की लालची आँखों का पानी था जो घर में फुदकती नयी परों को फड़फड़ाती चिड़ियों को एक ही बार में दबोच लेना चाहते थे ।"4. "बात एक औरत की" और "प्रेमकहानी" उपन्यास के दो पुरुष पात्र अपनी काम भावनाओं की पूर्ति अपनी भतीजियों द्वारा करवाना चाहते हैं । यह कामुक प्रवृत्ति के पुरुष-पात्र हैं । नरेश अपनी भतीजी शालो से शारीरिक सम्बन्ध रखता है । इतना ही नहीं वह रिश्ते की अन्य स्त्रियों से भी अपनी वासना की पूर्ति करता है ।"5. " टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" का डा.वर्मा अपनी पत्नी के सामने ही अपनी साली से सम्बन्ध रखता है । वह

1. भैरवी : शिवानी : पृ. 121.
2. चौदह फेरे : शिवानी : पृ. 105.
3. किशनुली : शिवानी : पृ. 31.
4. कोरजा : मेहरुन्निसा परवेज : पृ. 22.
5 बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ 42, 126.

अपनी वासना की भूख को बड़ी-बड़ी बातों से ढकता है । "मैं वैज्ञानिक हूँ हर तथ्य को बिल्कुल वस्तुगत रूप में देखना चाहता हूँ । चाहे वे हमारे सम्बन्ध ही क्यों न हों ।"1.

कुछ पुरुष ऐसे भी होते हैं, अगर उनकी वासना की पूर्ति घर पर नहीं होती तो वह नाजायज तरीकों से अपनी वासना पूर्ति करते हैं । किसी आफिस में अगर ऊँचे पद पर आसीन है तो अपने से नीचे काम करने वाली सैक्रेटरी को बहला-फुसलाकर अपनी वासना का शिकार बनाते हैं । " उस तक" उपन्यास में सत्यपाल निगम अग्रवाल पुरुष है । वह कंपनी का बॉस है । वह अपनी सेक्रेटरियों से ही अपनी वासना की भूख मिटाता है । उन्हें अपनी दुःख भरी कहानी सुनाकर अपने जाल में फँसाता है । तरक्की एवं वस्तुएं भेंट स्वरूप देता है, और बाद में जब वासना की पूर्ति हो जाती है तो उनका स्थानांतरण करवा देता है । वह मुक्ता के साथ भी इसी तरह करता है । पहले तो वह उसे तरक्की एवं विदेशी तोहफे देता है ।2. पर बाद में जब उसकी वासना की पूर्ति हो जाती है तो वह मुक्ता का ट्रांसफर दूसरी जगह कर देता है । "सत्यपाल बाबू के चेहरे के चेचक के दाग कीचड़-भरे गड्ढे की तरह लग रहे थे । उनके चेहरे पर फैली दरारों में कितनी मासूम लड़कियों के सपनों का खून बह रहा था ।"3. "टूटती सीमाएँ" का प्रताप कौल भी इसी तरह का पुरुष है । उसकी पत्नी हमेशा बीमार रहती है । जिसके कारण वह अपने काम भावनाओं की पूर्ति बाहर करता है । वह भावना को अपने जाल में फँसाता है । उसे उसके पति की तरक्की की बात कहता है, और बाद में धोखे से वह शराब में नींद की दवा मिला कर उसे पिला देता है और अपनी वासना की पूर्ति करता है ।4. प्रताप कौल अपने जीवन में पत्नी के

---

1. टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : प्रभा सक्सैना : पृ. 36.
2. उस तक : कुसुम अंसल : पृ. 34.
3. -वही- -वही- पृ. 57.
4. टूटती सीमाएँ : राजरानी पारिक : पृ. 113.

अभाव को मानसिक रूप से उसके द्वारा पूरा कर रहा था । विवाह के पश्चात् ही वह रुग्ण हो गई थी, शक्ल पर ज़र्दी छाई हुई थी । प्रताप कौल का विलासहीन जीवन असफल था । फिर भी उसका भावना को छोड़कर अपने घर से जाने का अप्रत्यक्ष एक घटिया किस्म की हरकत थी ।"1.

सारे पुरुष नारी को मात्र एक खिलौना समझते हैं । उनका प्रेम भी दैहिक प्रेम है आत्मिक नहीं । "प्रिया" उपन्यास में मनजित चौधरी इसी प्रकार का पुरुष पात्र है । वह प्रिया से प्रेम करता है ।परन्तु वह और इन्तजार नहीं कर सकता है वह जल्द से जल्द प्रिया को पा लेना चाहता है । बाद में वह प्रिया से जबर्दस्ती शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है । वह सेक्स को एक बायलाजिकल नैसेसरी मानता है । वह कहता है " क्या करता, बहुत इन्तजार किया... तुम शायद, मुझे मन से देह की ओर ले जाना चाहती थी ... और इतना तड़पा रही थी कि मैं होश खो बैठा... सोचा क्यों न पहले तुम्हारी देह को पा लूँ - शायद फिर तुम और प्रतीक्षा न करवाओ ।2.

प्रेम में असफल होने पर "कैजा" उपन्यास का "सुरेश" हीनता भाव का शिकार होकर अवांछित परिस्थितियों से जूझता, टकराता उन्मादी प्रवृत्ति का बन जाता है । प्रेम में पाई असफलता के आक्रोश को वह अत्यधिक काम-पिपासु बनकर शान्त करने की चेष्टा करता है । मानसिक सन्तुलन खोकर वह एक भयानक सेक्स मैनियक बन गया था । उसकी पाशविकता उसकी कामुकता बढ़ती-बढ़ती इतनी प्रखर हो उठी थी कि वह अपने गाँव की बहू-बेटियों की इज्जत को भी नहीं छोड़ता है ।3.

"रेत की मछली" का शोभन अत्यधिक पाशविक प्रवृत्ति का है । वह अत्यधिक कामुक, लम्पट, दुराचारी और प्रपंची व्यक्ति है ।

---

1. टूटती सीमाएं: राजरानी पारिक : पृ 117.
2. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 140.
3. कैजा : शिवानी : पृ. 59.

वह अपनी पत्नी कुन्तल के प्रति विश्वासघात करता है । वह शोभन जिसे अपनी बहन कहता था । पर बाद में वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । अपनी पत्नी की एकनिष्ठ सेवा और प्यार की उपेक्षा करता है । अपनी पत्नी की भावनाओं से खेलकर शीघ्र अपनी प्रेमिका के दुःख सुख का अधिक ध्यान रखता है । वह बड़ी बेबाकी से कुन्तल के सम्मुख शोभन से प्रेम-व्यवहार करता है । उसके सामने वह बड़ी निर्लज्जता से कामुक चेष्टाएँ करता है । वह कुन्तल के पत्नीत्व अधिकार को ठोकर मारकर अपनी प्रेमिका शोभन से संभोग करता है और उसे पत्नीत्व का अधिकार दे देता है । शोभन की कामुकता के क्षण यहाँ पर देखे जा सकते हैं । " मैंने और उन्होंने भी देखा । उनकी आँखों में निर्लज्ज कामुकता की चिनगी चढ़ी हुई थी । वे शायद मुस्कराहट किसी सीमा तक वीभत्स हो उठी थी । मदान्ध उत्तेजना ने उन्हें लपेट लिया था ।[1] . . . एकात्म हो जाने दो । कुन्तल, हम सब आओ एकात्म हो जायें । मैं, शोभन, तुम । हम सब में उस सुख को बहने दो ।[2]

पुरुष कुकर्म करके भी समाज में प्रतिष्ठित कहलाता है । पर - पुरुष से काम-सम्बन्ध स्थापित करने की कल्पना करना भी नारी के लिए वर्जित था, जबकि पुरुष बेलगाम घोड़े की भाँति किसीभी चारागाह में मुँह मारने के लिए स्वतन्त्र था । "मेरा मन बनवास दिया था" उपन्यास में इन्दु का पति पाशविक वृत्ति वाला है । वह एक कामुक लम्पट एवं वासना का कीड़ा होते हुये भी सारे परिवार की सहानुभूति उसे प्राप्त है । और निर्दोष इन्दु पति के समस्त अवगुणों के लिए उत्तरदायी समझी जाती है जो वह रात-रात भर घर से गायब रहता है । " वेश्यागामी शराबी पति जो शादी के दिन तक अपनी दुर्भिसार लड़ा पर अंकुश किये रहा था - अर्थ: दुल्हन था ··· हा और चारपाई पर गिर कर खर्राटे लेने लगा ।[3]

- -

1. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ. 150.

2. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ. 156

3. मेरा मन बनवास दिया था : शान्ति जोशी : पृ. 16.

"सुरंगमा" उपन्यास का गजानन पण्डित भी इसी प्रकार का पुरुष है । यह भी एक लम्पट, दुराचारी, शराबी एवं कामुक प्रवृत्ति का पुरुष है । वह लक्ष्मी से बहला-फुसला कर भगा कर विवाह किया था और उसे कभी भी सुख नहीं दिया । उसकी इच्छा के विपरीत जब तब लक्ष्मी से जबरदस्ती करता था । " जब कभी मैं पशु बन गया पति उसे किसी-किसी दिन अपने उग्र पुरुष-निपीड़न से मसल कर देता तो वह आतंकित होकर चीख उठती , किन्तु ग्राम की बस्ती से दूर , उस देवालय की कोठरी की जीर्ण दिवारों से टकराकर उसकी चीख उसी तक लौट आती - "बाब ... गो, हा अल्लाय, भीरू , कहां जाय में गाय सी रम्भाती रहती और उसका वह पति, जिसके सुदर्शन चेहरे, लम्बी काठी की कंचन काया पर रीझ वह बिना आगा-पीछा सोचे, पितृगृह से निकल आई थी । उसे घृणा से देख कमरे में ही पच्च से थूक देता - " थुह, ऐसी बारे, ऐसे मुंह के दांत गई - उत सब बेकामी ।" ! एकदम बच्ची है जैसे मुंह में दांत ही नहीं है - म्हारे देसी हमके ! फिर पति की परितृप्त उच्छ्वसित वीभत्स अट्टहास की गूंज, उसे चेतनाहीन कर देती ।"[1] यही नहीं वह इतना निर्लज्ज है जब लक्ष्मी उसे पांच साल बाद मिलती है तो भी वह उसे बात करने के बजाय सीधा उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है । रौबर्ट के डांटने पर वह निर्लज्जता से उससे कहता है " अपने इस लंगूरी चेहरे से हमें न डराओ साहब, गजानन जोशी ने ऐसे बीसियों साहब देखे हैं - तुम तुम गोरे साहब लोग तो प्रेम-प्रेम खूब समझते हो, अब तुम्हीं बताओ पूरे पांच साल बाद हमारी प् मेम साहब हमको मिली तो प्यार नहीं करते तो क्या चौखट चढ़ा कर टांग देते ।[2]

"कैंजा" उपन्यास का परमजीत यौन कुण्ठा से ग्रस्त पात्र है । उसकी सारी चेतना यौन   से ग्रस्त है । इसका कारण उसके संस्कार है । क्योंकि यह संस्कार उसमें बहुत गहराई तक जमे हुए हैं ।

---

1. सुरंगमा : शिवानी : पृ. 17.

2. सुरंगमा :शिवानी : पृ. 93.

जब वह एक वातावरण से हटकर दूसरे भिन्न वातावरण में जाता है तो ऊपरी तौर पर तो उसमें परिवर्तन होता है परन्तु भीतरी स्तर पर परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि वह जिस स्थान में पहले रहता था वह सुरुचि पूर्ण नहीं था । बम्बई में आकर उसकी यौन-कुण्ठा और भी बलवती होती है । परन्तु उसके कट्टर संस्कार के कारण उसे धक्का लगता है जब उसे लगता है कि वह संगीतज्ञों के जीवन में आने वाला वह प्रथम पुरुष नहीं है । फिर वह रमा से विवाह कर लेता है,और उसी पुरातनता की ओर लौट आता है । परन्तु रमा से तालमेल न बिठा पाने के कारण वह कुण्ठित हो जाता है । इस तरह वह अंत तक यौन कुण्ठित रहता है । इसी अतृप्त यौन-भावना के कारण वह रात में समाप्त भी हो जाता है । अपनी अतृप्त यौन कुण्ठा को वह सिगरेट और शराब एवं नशीली दवाओं द्वारा पूरा करता है । " उसे ऐसा लगने लगता है कि सिगरेट उसके जीने का पर्याय है, सिगरेट पीते समय बौद्धिक वक्ता लेखी से निखर जाता है और उसका अकेलापन हृदय को कचोटता नहीं है ।" [1]

उच्च-वर्ग के समान निम्न-वर्ग के पुरुषों में भी काम-भावना पाई जाती है । यह जब-तब अपनी काम-वासना की पूर्ति आसानी से कर लेते हैं । अपनी यौन-भावना को मिटाने के लिये यह आयु का भी ध्यान नहीं रखते हैं । "टपरे वाले" उपन्यास का किशोरी पंगु एक वयोवृद्ध व्यक्ति है । वह एक कामुक प्रवृत्ति का पुरुष है । वह पविता को उधार देकर बदले में वह उससे सम्बन्ध स्थापित करता है । यद्यपि पविता कम उम्र की लड़की है फिर भी वह उससे सम्बन्ध करने से हिचकता नहीं है । उधार के साथ-साथ वह उसे रुपये भी देता है । " अब महीने में और अच्छी हो गई । अब देख चिल्लाना मत । बीस रुपये ऐसे नहीं मिलते और अपनी सफेद मूछों को हिलाकर उसे पुचकारते हुए दिलासा देने लगा - हर बात चुप रहोगी तो बीस रुपये दूंगा --हाँ" ।[2]

- -

1. बेघर : ममता कालिया : पृ. 206.

2 टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 36.

"अनारो" उपन्यास का नंदलाल अपनी पत्नी से ही बँध कर नहीं रहता। वह लोलुप भौंरे की भाँति इधर-उधर फिरते रहता है। पत्नी अनारो के होते हुए वह छबीली से भी सम्बन्ध रखता है।[1]

"परछाइयों के पीछे" का मनिपाल एक दुराचार एवं वासना का पुजारी है। "कहाँ तो कई स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है परन्तु अपनी पत्नी पर कड़ी नजर रखता है।" पुरुष शायद इसी में अपना बड़प्पन समझता है, अपने काले-कारनामों - कुकृत्यों का बखान करने में भी उसे कोई झिझक या सकुचाहट नहीं होती। "पुरुष के लिए कैसे का कुछ माफ हो, स्वाभाविक हो और नारी के लिए लीक से हट कर एक सेंटीमीटर भी बाहर चले जाना दंडनीय - अक्षम्य महापाप।"[2] अपनी आदत को वह क्या कर ले, एक औरत से तृप्त न हो पा सकने की अपनी जन्मजात प्रकृति से वह कैसे छुटकारा पाए।[3]

जिसे पहले बेटी कहते हैं, समय आने पर उसी से अपनी यौन-भावना को मिटाते हैं। "रथ्या" उपन्यास का मुत्थुस्वामी बसन्ती को पहले बेटी की तरह मानता था। परन्तु बाद में जब सर्कस में शेर उसकी पत्नी को खा जाता है और उसकी पुत्रियाँ भी उसे छोड़ कर चली जाती हैं तो वह क्रोध एवं आवेश में बसन्ती से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है। "उसी रात को मुझे बेटी-बेटी कहने वाला वह काला भुजंग-सा मेरा रक्षक मेरा भक्षक बन गया। मैं जब सो रही थी तब वह न जाने किस कुघड़ी में ताला खोल भीतर चला आया।"[3]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकार ने पुरुष पात्रों की कामुकता के विविध रूप प्रकट किये हैं। "शिवानी" के उपन्यास "श्मशान चम्पा" में तनवीर बेग के माध्यम से समलैंगिक काम संबंध में लीन पुरुष पात्र को उभारती है। अपनी इस समलैंगिकता को भुलाने के लिए जूही से विवाह करता है। परन्तु फिर भी वह दूर नहीं होती है।

- -

1. परछाइयों के पीछे : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 103.
2. -वही- -वही- : पृ. 156.
3. रथ्या : शिवानी : पृ.32.

वह जूही से माफी माँग लेता है । "मुझे माफ करना जूही, सोचा था तुमसे शादी कर, अपनी पिछली जिन्दगी को भूल जाऊँगा पर अब देखता हूँ कि जहाँ पहुँच गया हूँ, वहाँ से चाहने पर भी अब मैं नहीं लौट सकता। उसकी जिन्दगी केवल पुरुषों तक सीमित थी दीदी, उसके उन्हीं मित्रों को लिखे गये कुत्सित पत्रों की भाषा पढ़कर मैं घृणा से सिहर उठी । जो पुरुष किसी दूसरे पुरुष की प्रेयसी बनकर सम्मोहित कर सकता है वह क्या कभी स्त्री से प्रेम कर सकता है ।"[1]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने वैयक्तिक यौन-चेतना से जुड़े चरित्रों को लिया । इन पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में इन्होंने एकांगी दृष्टिकोण को नहीं अपनाया है । उन्होंने इन पात्रों की अच्छाईयों और बुराईयों को सामने रखते हुये चरित्र-चित्रण में सफलता पाई है ।

3.2.4. समष्टिपरक मूल्यों के लिये संघर्षरत चरित्र

1960 तक मूल्यों में परिवर्तन आ चुका था । परम्परागत और नए मूल्यों का संघर्ष इस युग में उभर कर आया । आज का व्यक्ति इस संघर्ष को झेल ही नहीं रहा, इसमें से राह पाने का प्रयत्न कर रहा है । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने भी इस तथ्य को स्वीकारा है और उन्होंने अपने उपन्यासों में समष्टि परक मूल्यों के लिए संघर्षरत पुरुष चरित्रों को लिया है ।

समाज के पिछड़े वर्ग में भी राजनीतिक चेतना का उदय हो चुका है । यह वर्ग अब अपने अधिकारों के प्रति सजग है । "महाभोज" उपन्यास में बिन्दा और बिसेसर के माध्यम से यह जागृति दिखाई दी गई है । समष्टि परक मूल्यों के लिये वे संघर्ष करते हैं ।"बिसू" गाँव में जागृति लाना चाहता है । वह सत्तारूढ़ दल का विरोध करता है जिससे सत्तारूढ़ दल उसके विरोधी हो जाते हैं । उसे निरपराध होने पर भी अकारण चार वर्ष के लिए जेल भेज देते हैं और वहाँ से

- -

टूटा-फूटा घायल शरीर लेकर निकलता है । फिर भी वह अपने मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहता है । परन्तु उसकी हत्या यही सत्तारूढ़ दल कर देते हैं । बिसू उसके इस काम को आगे बढ़ाता है । परन्तु उसे ही बिसू का हत्यारा घोषित किया जाता है । वह पुलिस की बेंतों और ठोकरों के बीच चीखता है और अपनी सफाई देता है तो कोई भी उस पर यकीन नहीं करता है " मैंने बिसू को नहीं मारा ......मैं बिसू को मार नहीं सकता । मुझे तो उसकी आखिरी इच्छा पूरी करनी है । मैं उसे पूरी करके ही रहूँगा । चाहे जैसे भी हो, जो भी हो ।"[1] वह अंत तक संघर्ष करता है और कहता है "तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता ।[2]

"अनित्य" उपन्यास का अविजित किसी एक मूल्य में बँध कर जीना नहीं चाहता है । वह मूल्यों की परिधि से बाहर जीता है । वह मूलतः गांधी विरोधी व्यक्ति है । उसमें शहीद भगतसिंह के सिद्धान्त ज्यादा रास करते हैं । भगतसिंह के अनुसार "भारत की वर्तमान लड़ाई ज्यादातर मध्यम वर्ग के लोगों के बलबूते पर लड़ी जा रही है । जिसका लक्ष्य बहुत सीमित है । यदि देश की लड़ाई लड़ना है तो मजदूर किसानों और सामान्य जनता को आगे लाना होगा । उन्हें लड़ाई के लिए संगठित करना होगा ।"[3] उसकी अक्खड़ता, दुस्साहस, नैतिकता का विरोध सभी मिलकर उसे विशुद्ध आलोचक बनाते हैं । वह सब कहता है " गरीबी झेलना और गरीबी से सहानुभूति रखना दो अलग चीजें हैं । जान बूझकर तीसरे दर्जे में सफर करना और लंगोट पहनना एक बात है और न चाहते हुए भी ऐसा करने पर मजबूर होना दूसरी बात है ।"[4] मन ही मन

- -

1. महाभोज : मन्नू भण्डारी : पृ. 183.
2. -वही- -वही- : पृ.
3. अनित्य : मृदुला गर्ग :
4. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ.87.

भगतसिंह के तेवर का समर्थक होने पर भी मौका आने पर अभिनव गांधी-वाद की ओट में अपने को बचाता-फिरता है । एक मामूली सी सजा से बचने के लिए सत्याग्रहियों की भीड़ में शामिल होकर जेल चला जाता है । जेल के अन्दर दूसरों की गांधी-आराधना से खिन्न करता है, पर वह अपना सारा विद्रोह बड़े मौके से प्रकट करता है ।"[1]

"मेरा मन वनवास दिया था" का विमल स्वतंत्रता सेनानी है । वह देश को स्वतन्त्र कराने के लिये जी जान से संघर्षरत है । वह तब तक विवाह नहीं करना चाहता है जब तक कि देश आजाद न हो जायें । वह अपनी माँ के साथ-साथ धरती माँ को भी महत्व देता है ।[2]

"सागरपाखी" उपन्यास का रूपम देश को स्वतन्त्र कराने के लिये अपने जीवन की सारी खुशियों को न्यौछावर कर देता है । उस समय उसके सामने सिर्फ एक ही उद्देश्य था, किसी भी कीमत पर आजादी हासिल करना । आजादी मिली पर रूपम ने जो सपने देखे थे वह क्या पूरे हुए । आजादी मिलने के बाद उनका नाम तक स्वतंत्रता सेनानियों में नहीं था । "रिपोर्ट आफ द सिक्स्थ नेशनल कांग्रेस", "रिपोर्ट आफ द सेवन्थ नेशनल कांग्रेस" कहीं भी उनका उल्लेख नहीं था, यद्यपि काम उन्होंने किसी नेता से अधिक ही किया था ।[3] यहाँ तक कि उसकी पत्नी ने भी उसका साथ दिया । वह उससे साफ कह देती है कि "देखो रूपम, नियति ने हमें शायद इसीलिये एकसूत्र में बांधा है कि हम दोनों नदी के दो छोरों पर रहें ; हमारे बीच सूत्र की लम्बाई का एहसास होना ही चाहिए । तुम्हारी राजनीति और मेरी सेवा-भावना के बीच सामंजस्य तभी हो सकता है, जब हम एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करें । तुमने सक्रिय राजनीति में भाग लिया, जेल गए - मैंने कुछ नहीं कहा ।[4] अपनी इन्हीं समष्टिपरक मूल्यों के कारण अन्त में एकाकी जीवन बिताते हुए रूपम अन्त को पहुँचता है ।

---

1. पहल (पत्रिका) पृ. 116 सं. ज्ञानरंजन
2. मेरा मन वनवास दिया था : शान्ति जोशी
3. सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 15.
4. -वही- पृ. 19.

"दुविधा" उपन्यास का हरी सामाजिक मूल्यों के प्रति संघर्षरत है । वे सामाजिक परम्पराओं का तिरस्कार करते हैं । हरी और नमिता बिना विवाह किये ही पति-पत्नी के रूप में साथ रहते हैं समाज की परवाह न करके उसका सामना बड़ी ही तत्परता से करते हैं ।1.

"टेसू की टहनियाँ" में मधुर एक बुद्धिजीवी है । देश में फैली भ्रष्टाचार एवं राजनीति के कारण वह असन्तुष्ट रहता है । अपनी लेखनी द्वारा वैसे भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ करता है । वह देश की गरीब जनता की सेवा में संघर्षरत रहता है । भ्रष्ट राजनीति के प्रति वह विरोध प्रकट करता है । " ये भी कोई बात है कि शासन में जो पार्टी या सत्ता न हो उसके गुणगान न करो और अव्यवस्था की ओर से आँखें मींच लो । जो पार्टी सत्ता में न हो उसका ज़िक्र भी मत करो । मैंने सामान्य भ्रष्टाचार के बारे में लिखा था न कि किसी व्यक्ति विशेष की खसोट था । • अब कहीं भी देखा, जहाँ जिस गाँव में जाते हैं भौंडी राजनीति दिखती है । •••शहर में आओ तो ऐसा लगता है कि इस भीड़ में, इस भद्दी राजनीति की भीड़ में, कोई किसी को कपड़े पहने देख बर्दाश्त नहीं कर सकता । यहाँ वह सोचने तो दूर रहे चुका है कि सभी अच्छे कपड़े पहनें, सोचते यही कि एक दूसरे को नंगा कैसे करें । ऐसी अव्यवस्था करना भला किसी वाद से कहाँ सम्बन्धित है ?" 2.

"निर्धनता का अभिशाप" में मोहन एक जमींदार का बेटा होते हुये भी गरीब किसानों के दुःखदर्द को समझता है । वह और अतुल मिलकर गाँव में स्कूल खोलते हैं । गाँव में गरीब किसानों में जागृति भरते हैं तथा नारी की दशा को सुधारना चाहते हैं । "हमारी प्रत्येक बहन को, चाहे वह निर्धन हो या धनिक, अपनी गृह-सुरभि से बड़े-बड़े गृहों को सुरभित करना है । जाति-पाति का

---

1. दुविधा : रजनी पनिकर :
2. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 210.

मेद की निर्धनता उसे केवल कल्याण या उच्च कुल प्राप्त करने में बाधक न बनेगी। हमें आशा है, आप लोग तथा हमारे वृद्ध, जो यहाँ उपस्थित हैं, हमारे संघ के उद्देश्यों से सहमत होंगे, और हमें अपना सम्पूर्ण सहयोग देंगे।"[1] और अंत तक वह गरीब किसानों की दशा को सुधारने में संघर्षरत रहता है।

"टेसू की टहनियाँ" में मुकुल एक गरीब युवक है। वह एक कंपनी में कार्यरत है। मजदूरों की दुर्दशा उससे देखी नहीं जाती थी, उनके जीवन को सुधारने के लिये वह मजदूरों का नेता बन जाता है। उसको स्थिति को सुधारने के लिए उसे कठिन संघर्ष का सामना करना पड़ता है।[2] वह पूँजीपति के विरुद्ध खड़ा होता है।

स्थिति के प्रति विद्रोह या संघर्ष की भावना प्रत्येक पुरुष पात्र में निहित है। समष्टिपरक मूल्यों के लिये यह संघर्षशील पात्र अपनी स्वाभाविक वृत्तियों का दमन कर देता है अतः समष्टिपरक मूल्यों के लिये संघर्षरत पुरुष चरित्रों का अंकन साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने सफलतापूर्वक किया है।

3.2.5 यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित चरित्र प्रकृति

जो चरित्र जैसा है, उसे उसी रूप में ग्रहण करना। साहित्यिक दृष्टि से कह सकते हैं कि जीवन जैसा है उसे उसी रूप में अंकित करना ही यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित चरित्र प्रकृति है। "यथार्थ चरित्रों का ध्यान किसी महान उद्देश्य की पूर्ति, किसी कल्याणकारी संघ की स्थापना अथवा किसी नैतिक, धार्मिक या आध्यात्मिक अनुष्ठान की योजना की ओट नहीं रहता। प्रेमचंद के मतानुसार 'यथार्थवादी चरित्र को इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा – ये चरित्र अपनी कमजोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं।"[3] साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में

---

1. निर्धनता का अभिशाप : सम्पूर्णा तामडी : पृ. 54.
2. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री :
3. हिन्दी कहानी चरित्र-चित्रण का विकास : उषा गोयल : पृ. 23.

पुरुष पात्रों का यथार्थ रूप से चरित्र-चित्रण किया है । उन्होंने पुरुष को जिस स्थिति में जैसा देखा है वैसा चित्रित किया है । अधिकांश यथार्थवादी पात्र वैवाहिक और सामाजिक परिवेश से घिरे जीवन को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्थितियों को स्पष्ट करते है ।

यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित कुछ ऐसे पात्र है जो धन की लिप्सा में जीते हैं । जो चरित्र-भ्रष्ट भी दिखाई देते हैं । ये पात्र मुख्य रूप से दुर्बल, चरित्रहीन, विलासी, स्वार्थी, विश्वासघाती होते हैं । "बीता हुआ आदमी" में किशोर एक विश्वासघाती एवं स्वार्थी है । वह अपने ऐशो आराम के लिये एवं अपना कर्ज उतारने के लिये अपनी प्रेमिका से उस अधेड़ सेठ से विवाह करने को कहता है जिससे उसने कर्ज लिया था । वह यह भी कहता है कि विवाह करने के बाद उसे छोड़ देना, क्योंकि तब तक सेठ वह उधार लिये रूपये के रुक्का वाला कागज फाड़ चुका होगा ।"1.

"उसका घर" उपन्यास में रेशमा का भाई भी एक नीच एवं स्वार्थी पुरुष है । अपने ऐशो आराम एवं अपना ऐश -शोहरत बढ़ाने के लिये वह अपनी ही बहन का सौदा करता है । यहाँ तक कि जब उसका काम निकला जाता है, तो वह रेशमा को पूछता भी नहीं । यही नहीं वह अपना घर भी ले लेता है । "भइया कैसे हैं जो खुद बरसों से रही अपने घर के तिनके-तिनके करके उड़ जाना चाहते हैं ।"2.

"टपरेवाले" उपन्यास में हिमांशु धन का लोभी पुरुष है । धन के लिये वह अपनी माँ पर तक हाथ उठा देता है । माँ के गिरने पर वह उनकी सहायता करने के बजाय वह उनके गड़े हुये धन की बात पूछता है । " बड़ी मालकिन बाथरूम में फिसलकर गिर पड़ी थी । उनके पैर में बहुत चोट आयी थी । वे तड़प रही थी और हिमांशु उन्हें डांट रहे थे - अब तो बता दो वह सोना कहाँ रखा है, मर

---

1. बीता हुआ आदमी : निरूपमा सेवती : पृ. 53.
2. उसका घर : मेहरून्निसा परवेज : पृ.86.

जाओगी तो हस्ती ही में पड़ा रह जायेगा ।"1.

"कुमारिकाएँ" उपन्यास का शेखर एक चरित्रहीन, स्वार्थी, विलासप्रिय एवं मायावी पुरुष है । वह एक ऐसा नीच पुरुष है जो अपने स.म्मान के लिये आराम के लिये अपनी पत्नी को स्वामी के चरणों में अर्पित करने के लिये भी हिचकता नहीं है । वह साफ कहता है कि "यह तो तुम्हारा भाग्य है शुचि की स्वामी जी तुम्हें सबसे अधिक पसन्द करते हैं .. तुम क्या जानो कि उनकी कृपा से ही हमारा घर धन-धान्य से भरा पूरा है. और उन्हीं की कृपा से हम इतने सारे भाई-बहन अच्छे ढंग से पढ़कर सब नौकरियों में जम गये हैं ।"2.

अर्थ की समस्या ने पात्रों का चरित्रविमुखी विकास किया है । अर्थ के कारण ही इन पात्रों के आपसी सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है । यह सम्बन्ध आत्मिक धरातल में न होकर शुद्ध स्वार्थवादी हो गये हैं ।

"बात एक औरत की" का पुरुष पात्र हरबू एक ऐसा भाई है, जिसे यह पसन्द नहीं है कि विवाह के बाद उसकी बहिने घर के में आकर रहे । उसके घर पर आकर रहने से ज्यादा खर्चा होता है । "एक-एक समय के भोजन तथा एक-एक चाय के कप तक का हिसाब रखने की उसको आदत है ।"3. "वह कहता है उमा और अनु को विवाह के बाद इस तरह इतने दिन तक पड़े नहीं रहना चाहिए ।"4.

"सोनाली दी" उपन्यास में देवेन भी एक स्वार्थी एवं मायावी पुरुष है । वह सोनाली को अपने घर में देखकर प्रसन्न नहीं होता। "आजकल के भाई जाने कैसे हैं, माता-पिता का ऋण भी चुकाना नहीं चाहते । उसका भाई तो यहाँ तक कहता है उसके पिता ने क्या किया, उसका जन्म तो एक दुर्घटना है, जो होना था हो गया । फिर यदि

---

1. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 119.
2. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 12.
3. बात एक औरत की: कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 125.
4. -वही- -वही- पृ. 125.

पिता ने सिखाया – पढ़ाया, तो कौन सा बड़ा काम किया । वह भी उनका फर्ज था, उन्होंने पूरा कर दिया । पक्षी भी अपने बच्चों को तब तक घोंसले में नहीं निकालते जब तक वह उनमें उड़ना और दाना चुगना नहीं सीख लेते । वह   को घर से निकाल नहीं सकता, क्योंकि जिसका वाला मकान उसके नाम है ।"1.

"अजन्मी आत्मा की चाह" का मुकाश भी एक ऐसा भाई है, जो अपने विवाह के बाद अपनी बहिन के साथ बात करना ही छोड़ देता है । जब रक्षा बन्धन और भाई दूज को ही वह अपनी बहिन से बात करता है ।" 2.

"प्रेम कहानी" में   के पिता के रूप में यथार्थवादी पुरुष पात्र का चरित्र-चित्रण किया गया है जो अपनी बेटियों को एक बोझ के रूप में मानता है और इस बोझ को किसी भी प्रकार से उतार देना चाहता है । " वे रिश्ता ढूँढते समय यह नहीं देखते हैं कि रिश्ता लड़की के लायक है या नहीं, वे तो गिनती पूरी करते हैं । .... यह भी गई, अब बची तीन । यह भी पार लगी. अब बची दो...बस दो पैर, दो हाथ का जोड़ा होना चाहिए , इतना वह देखते हैं ।"3.

यथार्थ प्रवृत्ति से प्रेरित ऐसे पुरुष पात्रों का भी चित्रण किया गया है जो मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज की विकृतियों से ग्रस्त दिखाया है । पुरुष की आर्थिक भौतिक उपलब्धियाँ, वासना, रोमांस आदि से जनित प्रवृत्तियों के मूल में पुरुष की स्वामित्व भावना को प्रश्रय मिला । इनमें बाह्य तड़क-भड़क को प्रश्रय देने वाले पुरुष, सामाजिक असंतोष को व्यक्त करने वाले प्रगतिशील विचारों के युवक, नारी के प्रति "शिकारी दृष्टि" रखने वाले तथा पति के रूप में अधिकार-भाव का यथार्थ रूप से स्वातंत्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने चरित्र-चित्रण किया है ।

"गोधूलि बेला में" किशोर बाह्य तड़क-भड़क से प्रभावित होकर

- -

1. सोनाली दी : रजनी पनिकर : पृ. 138.
2. अजन्मी आत्मा की चाह : सुभद्रा : पृ. 57.
3. प्रेम कहानी : ममता कालिया : पृ. 14.

अपनी पत्नी के होते हुये भी विदेशी महिला से विवाह कर लेता है । अपनी पत्नी से तलाक की माँग करता है । वह अपनी विदेशी प्रेमिका के साथ वासना में डूब जाता है और अपनी पत्नी की अवहेलना करता है । परन्तु यही प्रेमिका उसके साथ कुछ विलासिता में डूब कर उसका सारा धन लूटाकर चली जाती है और वह पछताते हुये रह जाता है । " एक तो थी सुख की लालिमा ... मुझ में सूक्ष्म प्रेम की पोखें बढ़ाई । मैंने पैसे भी पानी की तरह बहा दिया उसके ऊपर..फिर भी धोखा दे गई । वह तो जाती भला-सोच... अपना गहना जो कुछ जमा-पूँजी थी सब भी लेकर चम्पत हो गई और लिख गई -"तुम्हारे भारत में हमारे जैसी स्त्री नई जमाने की लड़कियों का वैसा आदर नहीं जैसा यूरोप में है ।"1·

इसी प्रकार "महत्वाकांक्षिणी" में योगेश एक महत्वाकांक्षी पुरुष है । बाह्य तड़क-भड़क एवं भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिये वह रिश्वत आदि लेता है । वह पैसों को ही सब कुछ मानता है । "आज की दुनिया का सबसे बड़ा सत्य, सबसे बड़ी ताकत है -पैसा । इस सत्य को, इस कटु सत्य को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता ... मेरे पास पैसा नहीं था, इसलिए जिन्दगी से मुझे कितने समझौतेकरने पड़े, उन लोगों के हाथ नीलाम हो जाना पड़ा, जिनका मुँह देखना तक मुझे गंवारा नहीं था । जिन्दगी के हाथों बहुत कुछ सहा है मैंने । मेरा वक्त अब आया है । अब मैं ब्याज समेत सारा हिसाब चुकता कर लेना चाहता हूँ ।"2·

जहाँ "महत्वाकांक्षिणी" का योगेश धन को ही सब कुछ समझता है । वहीं "सूखा सैलाब" का कैलाश फैशन परस्त एवं बाह्य तड़क-भड़क को प्रमुख स्थान देता है । वह अत्यधिक आधुनिक विचारों वाला पुरुष है । वह चाहता है कि उसकी पत्नी भी आधुनिक फैशन में रंग जाये । पति की अधिकार-भावना के फलस्वरूप वह उसे आधुनिक बनने के लिये शिक्षा करता है वह उसे कहता है कि " तुम नहीं

- -

1· मोहिनी पैसा : चन्द्रा स्वरूप : पृ.42.

2· महत्वाकांक्षिणी : मालती जोशी : पृ.61.

जानती कि तुम्हारी हँसी मेरे मन के कितने तारों को झनझना जाती है । काश, तुम कोमल होती, तुम्हारी हँसी की गूँज न जाने कितनों की छाती में ऐसी रस भरी झंकार पैदा कर देती कि तुम्हारा पति एक बार गर्वी से ।"[1]. यहाँ तक कि वह यह नहीं चाहता है कि ममता बच्चों को पैदा करे । वह कहता है कैसी लगती है औरतें । इधर बच्चा, उधर बच्चा ढीली देह, हाँ-बच्चा चीखी, मैं-मैं, सब ममता । मुझे बच्चा नहीं चाहिए कभी नहीं - मुझे सिर्फ तुम - बस तुम ।[2].

स्वत्वगत अधिकार भावना से युक्त " मेरा मन बनवास दिया सा" में हरीश का चरित्र चित्रित किया गया है । वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसी की ही आज्ञाकारिणी बनकर रहे । उसी के आस-पास मँडराती रहे । वह अपने आगे किसी को नहीं समझना चाहता है ।[3]. हरीश को अपने मनोनुकूल सब कुछ घटित हो जाए तो वह प्रसन्न हो जाता था और साथ ही सोचने लगता था कि घर-भर प्रसन्न है । अपना ही प्रतिबिम्ब घर में देखना अपनी इच्छा को अनुत्स्यूत: प्राधान्य देना - कृष्णा तो मानो मिट्टी का पुतला है जिसकी घर में स्थापना कर दी गयी है और इस भाँति स्थापित हो जाना ही जिसका सम्पूर्ण है ।" [4]

"नरक-दर-नरक" का विनय अहंकार युक्त है । उसकी पत्नी सीता कालेज में पढ़ाती है । शायद आज भी इतना अध्ययन न करती होगी जितना वह लेक्चर तैयार करने में करती है । पर विनय कोई सहयोग नहीं करता है । हाँ पति की अधिकार भावना के फलस्वरूप वह " कालेज जाने और वहाँ से लौटने में कितना समय रिक्शे में लगता है, उसका वेतन कितना, कहाँ खर्च होता है, उसकी साड़ी का छाप और रंग सब प्रकार निर्धारण विनय के हाथ में था ।"[5]. यहाँ तक कि

- -

1. गोधूलि की बेला : निर्मला वाजपेयी : पृ.46.
2. -वही- -वही- : पृ.39.
3. मेरा मन बनवास दिया सा : शान्ता जोशी : पृ.36.
4. -वही- -वही- : पृ.86.
5. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ.

वह उस पर शक करता है और उसको जल्दी घर आने के लिए कहता है ।"1"

"घर मेरा है" का पति भी इसी प्रकार का पुरुष है । वह अपनी पत्नी को कभी सहयोग नहीं देता है । वह उससे साफ कह देता है कि "तुम जानो तुम्हारा काम जानो, मेरा किसी से कुछ मतलब नहीं । मेरा क्या कहीं रह लूँगा कमरा लेकर ।"···· आदमी औरत को जब और कुछ नहीं दे पाता तब धौंस दिखाकर, धमका कर अपना बड़प्पन जताता है । उसे छूट है, जब चाहे गृहस्थी की जिम्मेदारी छोड़ कर चल दें ।" 2· ऐसे पुरुषों का जो अपनी पत्नी को सहयोग नहीं दिया, महिला उपन्यासकारों ने यथार्थ रूप से उनका चरित्र-चित्रण किया है ।

"मेरा नरक अपना है" में हरेन्द्र के माध्यम से दाम्पत्य जीवन की विरसता - कृत्रिम व्यवहार, अकर्मण्यता का चित्रण किया गया है । वह अपनी पत्नी से अधिक अभिज्ञ रहता है । जिससे दाम्पत्य-जीवन में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है । सबके सामने कृत्रिम व्यवहार करता है । "ड्राइंग रूम में बैठे समय तो वह बहुत खुशनुमा पिता, पति और सन्तुष्ट परिवार का स्वामी दिखना चाह रहा था ।··। और वह भीतर की पीड़ा को और भी भीतर सोखने के प्रयत्न में खुशी - खुशी हँसी हँसता रहा । जब तक कि मिस्टर और मिसेज तनेजा उसके यहाँ - रहे, वह जैसे तैसे अपनी भूमिका निभाता रहा । धका टूटता रहा ।"3· इतना ही नहीं वह अपनी पत्नी से इतना दबता है कि वह यह जानता है कि उसकी पत्नी अन्य पुरुष से प्रेम कर रही है, तो भी वह उसको कुछ नहीं कहता और चार्य चुपके रहता है । उसे हमेशा डर लगा रहता है कि कहीं उसकी पत्नी उसे छोड़कर नहीं चली जायेगी "यह सुषिमा को छोड़ देने का निर्णय ले ले तो आफ़त में फँसी उसकी अपनी जान भी कितने-कितने दिनों बाद खुली सांस लेगी । और अगर निर्णय इसके विपरीत हुआ तो ;···· वह सुन्न सा होने लगा ··।

1· नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ·

2· घर मेरा है : प्रतिभा सक्सेना : पृ·28·

3· मेरा नरक अपना है : निरूपमा सेवती : पृ·70·

नहीं, पत्नी बच्चे परिवार इन सब को बिना तो वह कहीं ही जाएगा । वह हाथ-पांव तक नहीं हिला सकता बस विचार ही है कि जिस घर को उसने इतनी लगन से और अपने पिता की दांव पर लगा कर बनाया वही बिखर जाए तो वह क्या करेगा ।"[1]

पारिवारिक विघटन, गहराता हुआ असंतोष, बढ़ती हुई निराशा, यांत्रिक परिधि में टूटता हुआ मानवीय मूल्य आदि का जोगेन्द्र साहनी के चरित्र के माध्यम से यथार्थ चित्रण "नरक-दर-नरक" में किया गया है । महानगर की विसंगतियों से युक्त जोगेन्द्र का यथार्थ चित्रण किया गया है । जोगेन्द्र एक निर्भीक एवं संवेदनशील पुरुष है । वह एक कालेज का प्राध्यापक है । परन्तु वहाँ की अव्यवस्था के कारण उसे वह नौकरी छोड़नी पड़ती है, और उषा के साथ महानगर में आकर रहना पड़ता है । यहाँ वह प्रेम सीखता है परन्तु मध्यवर्गीय मनुष्य अर्थ संकट से युक्त बढ़ती हुई आवश्यकताओं से सम्बद्ध, सामाजिक पद-प्रतिष्ठा बनाये रखने के कारण प्राय: असंतोष और असन्तुलन में जीता है । वह इसी असन्तोष एवं असन्तुलन के कारण उषा को वितृष्णा की दृष्टि से देखता है । वह सोचता है कि " उसने कैसे इस सस्ती औरत से क्यों शादी कर ली जो इस वक्त बैठी अपनी दाल-रोटी के लिए चीख पुकार कर रही है ।"[2] परन्तु बाद में जब उसके प्रेम को लूट लिया जाता है तो अपने साथ उषा और अपने बेटे को देखकर तसल्ली से भर उठता है कि यही उसके लिये बहुत है ।

"किस्सा मुकुन्दीलाल" में मुकुन्दीलाल का यथार्थ चित्रण किया गया है । मुकुन्दीलाल एक मामूली क्लर्क, मदमस्त, फक्कड़ , मनमौजी, महाकाव्यकार, लेखक तथा कर्मभोगी है । उसके जीवन के उतार-चढ़ाव का यथार्थ चित्रण किया गया है जो एक बार परिवार को समाप्त कर बाद में उस गौरैया के समान अपने तिनके-तिनके को फिर समेट लेता है जो संकटकारी वर्षा में बह गया था । आज के लेखक पेशों के लिए

- -

1. मेरा नरक अपना है : निरुपमा सेवती : पृ॰75
2. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ॰ 111-112॰

मिलती है परन्तु मुरलीलाल की अपनी ही विशेषता है । "मैं और लेखकों की तरह नहीं लिखता कि और सब काम कर रहे हैं और लिखना भी हम दीवाने हो जाते है, दीवाने । न नहाना, न खाना, अपने पात्रों को इतना प्यार करने लगते है कि एक मिनट को भी नहीं छोड़ सकते ।"[1]

पुरुष की प्रवृत्ति शक्की होती है । इसका यथार्थ चित्रण "टूटे सपने" में नवीन के माध्यम से किया गया है । वह इतना शक्की पुरुष है कि अपने भाई प्रवीण के प्रति शक करता है कि उसके भाई और उसकी पत्नी में प्रेम-सम्बन्ध है । "ऐसी लिखा है नवीन, जो अपने मित्रों से कहते है कि प्रवीण को आधुनिक सभ्यता छू तक नहीं पाई । पुरुष औरतककी भाभी बन दी हो मित्र से सके । जिस भाई पर गर्व करते, उसके कार्य की सराहना करते थकते न थे, उसी पर बेतुका सन्देह ।"[2]

"पाषाण युग" में प्रोफेसर विमल प्रौढ़ पुरुष है, फिर भी वह अपनी छात्रा से विवाह कर लेता है । विवाह करने के बाद भी वह उसको और शक की निगाहों से देखता है ।"उन्हें शक है कि उनकी पत्नी नीरजा रणजीत से प्रेम करती है । क्योंकि जब तक अपनी बेटी उन्हें उसके बारे में नहीं बताती है तो वह उसे डांट मार देते है । जिससे नीरजा बहुत ही क्षुब्ध हो जाती है । "रणजीत के बारे में पूछना है न । हाँ, वह आया था । यह ज़रा सी बात जानने के लिए इतने घुमावदार रास्तों से आने की ज़रूरत नहीं है । मुझसे पूछ लिया होता - और इतनी बड़ी लड़की पर हाथ उठाते हुए शर्म आनी चाहिए आपको । बड़े कसाई बनते हैं ।"[3] प्रौढ़ व्यक्ति की मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया गया है । क्योंकि नवयुवती से विवाह करने के बाद उनके मानस में हमेशा यह भय समाया रहता है कि कहीं वह दूसरे नौजवान पुरुष से प्रेम तो नहीं कर रही है, प्रौढ़ पुरुष की यह मानसिकता चाहे वह अनपढ़ हो या शिक्षित सभी में पाई जाती है ।

आधुनिक युग में प्रेम की परिभाषा बदल चुकी है । अब प्रेमी प्रेम को लेकर ही जीवित नहीं रहना चाहते है । यदि प्रेम उनको

- -

1. किस्सा मुरलीलाल : मधुरानी : 59.
2. टूटे सपने : इन्दु स्वप्न : पृ.40.
3. पाषाण युग: मालती जोशी : पृ.90.

सफलता के मार्ग में रूकावट उत्पन्न करता है तो वह वहाँ से हट जाते है । ऐसे प्रेमी का यथार्थ चित्रण "कुमारिकाएँ" उपन्यास में कृष्ण के माध्यम से देखा जा सकता है । पहले तो वह रोज से प्रेम करता है, परन्तु बाद में जब रोज उसकी प्रगति के आगे बाधा बनती है तो वह उसे छोड़ देता है, क्योंकि रोज एक मुस्लिम लड़की थी । वह रोज को अपनी सफाई देते हुए कहता है " मैं तो जानता हूँ कि तुमसे मेरे विवाह की सुनते ही माँ खटिया पकड़ लेगी और पिताजी बात करना बंद कर देंगे, लेकिन मैं अनब्याहा तो रह ही सकता था । नियति के इस मोड़ के सामने निहत्था हथियार डाल देने के और कोई रास्ता दिखाई नहीं देता मुझे । हो सकता है, तुम मुझे बेवफा कहो या धोखेबाज समझो, परन्तु मैं दोनों में से एक भी नहीं हूँ । मैं अभी तक संपूर्णता से बंधा हूँ ।"1. ऐसे प्रेमी प्रेम तो कर सकते हैं, परन्तु विवाह नहीं ।

"दूरियाँ" उपन्यास का यश भी ऐसा ही प्रेमी है । वह चारू से प्रेम करता है, परन्तु विवाह अन्य लड़की से कर लेता है । विवाह करने के बाद भी वह चारू से मिलने का हौसला रखता है । "मुझे छिपाने जैसी कोई बात नहीं । अपराध की कोई भावना नहीं, फिर पर उसका पछतावा नहीं । वर्तमान से कोई असंतोष नहीं चारू को ब्याह करके भी उससे मिलने का हौसला रखता है ।"2.

"अजन्मी आत्मा की बातें" का राम ऐसा ही प्रेमी है । वह पहले तो गीता से प्रेम करता है परन्तु बाद में किनारा कर जाता है । "पुरुष विवाह से पहले भावना को महत्व देता है, और जब उसे घर बसाने की जरूरत पड़ती है तब वह जिन्दगी की सच्चाईयों को स्वीकार करता है ।"3.

परन्तु इन प्रेमियों के विपरीत " पचपन खंभे लाल दीवारें" का प्रेमी नील है । वह एक आदर्शवादी प्रेमी है जो मैं नहीं बल्कि

- -

1. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.169.
2. दूरियाँ : रजनी पनिकर : पृ. 101.
3. अजन्मी आत्मा की बातें : सुभद्रा : पृ. 101.

एक यथार्थवादी प्रेमी के रूप में उभरता है । वह सुषमा से प्रेम करता है, और उससे विवाह करने को भी तैयार रहता है, यहाँ तक कि सुषमा के परिवार का बोझा उठाने को भी तत्पर रहता है । सुषमा भी उससे प्रेम करती है । परन्तु अपने परिवार के बोझ के कारण वह नील से विवाह करने से इन्कार कर देती है । आदर्श प्रेमियों की तरह नील उसके विरह में नहीं बैठा रहता । वह विदेश चला जाता है वह सुषमा से कहता है कि " मुझे लगता है सुषमा, कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अन्डयू एडवान्टेज लेता है । तुम्हारे भाई-बहन, तुम्हारे माता-पिता की जिम्मेदारी है, तुम्हारी नहीं ।"1"

प्रेमियों की चंचल प्रवृत्ति का भी " अपने बेगाने" उपन्यास में प्रेमचन्द्र के माध्यम से यथार्थ-चित्रण किया गया है । पहले तो वह मिली से प्रेम करता है, परन्तु जैसे ही मंजू को देखता है उसकी ओर आकर्षित हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है । " वह मंजू से कहता है " वाह क्या गु.. मंजू आह क्या गु. ..मैंने तुम्हें प्यार किया है, सिर्फ तुम्हें ही ! तुम्हारे सिवा कभी किसी को अपने दिल में नहीं बसा सकता, कभी नहीं ... ।"2" जब मंजू उससे प्रेम करने से इन्कार कर देती है तो, वह फिर मिली की ओर झुक जाता है ।

आधुनिक युग की देन पिता की बदलती हुई विचारधारा का भी यथार्थ चित्रण पात्रों के माध्यम से किया गया है । इस विचारधारा के बदलने के कारण नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में टकराव भी होता है । नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर पाती है ।

"सौनायो दी" उपन्यास का जीवनदास के विचारों और उसकी पुत्री रानू के विचारों में अन्तर है । जीवनदास को रानू का इस तरह से स्वछन्द रूप से फिरना एवं क्लबों में जाना पसन्द नहीं है, वह

- -

1. पचपन खम्भे : लाल दीवारें : उषा प्रियम्वदा : पृ.51.

2. अपने -बेगाने : प्रतिमा वर्मा : पृ. 161.

उस पर रोक लगाता है, परन्तु रानू अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं होती है । वह रानू को सुधारने के लिये लोनाली को उसकी गर्वनेस के रूप में रखता है ।[1]

आधुनिक होते हुये भी उनके विचारों में कितनी रूढ़िवादिता है इसका सबल चित्रण "प्रेम कहानी" के उषा के पिता, नरक-दर-नरक में उषा के पिता एवं शीषा के उस लावन के माध्यम से इस वर्ग के पुरुष पात्रों का यथार्थ रूप से चित्रण किया गया है । "प्रेम कहानी" में उषा के पिता आधुनिक विचारों के पोषक होते हुये भी यह पसन्द नहीं करते हैं कि उषा प्रेम-विवाह करें । लेकिन जब उषा उनकी बात नहीं मान कर विपिन से विवाह कर लेती है तो वह उससे बात करना यहाँ तक कि उससे मिलना छोड़ देते हैं ।[2] इसी प्रकार"नरक-दर-नरक" में उषा का पिता भी आधुनिक विचारों का है । वह अपनी बेटी को किसी ऊँचे पद पर देखना चाहता है । वह उसे कभी घर-गृहस्थी के काम करने नहीं देता है । परन्तु जब उषा उनकी मर्जी के खिलाफ जगन से विवाह कर लेती है तो वह उससे बात करना छोड़ देता है । विवाह के बाद जगन और उषा के आने पर वह स्वागत भी नहीं करता है ।[3] "शीषा" उपन्यास में उस लावन और सुधीर के विचारों में जमीन आसमान का अन्तर है । जहाँ उस लावन अंग्रेजी सभ्यता के पोषक हैं,[4] वहीं सुधीर उस सभ्यता से चिढ़ता है । वह अपने पिता को अंग्रेजों का पिट्ठू कहता है । अंग्रेजों का पिट्ठू जब ऊँचा दण्ड विधान हाथ में लेकर देश को स्वतंत्रता की राह में रोड़े अटकाता रहा था । वे सुधीर का संघ में जाना पसन्द नहीं करते हैं । वह सुधीर को समझाते हैं । जिससे दोनों में टकराव होती है "सुधीर और डैडी में बहुत समानता है । दोनों धरातल पर न टिककर

---

1. लोनाली दी : रजनी पनिकर
2. प्रेम कहानी : ममता कालिया
3. नरक-दर-नरक : ममता कालिया
4. शीषा : मृदुला गर्ग : पृ. 14.

अपने-अपने वैचारिक गुब्बारों को पाने हवा में उड़ रहे हैं। अन्तर केवल इतना है कि एक स्वस्थ दृष्टि को थामे हैं और दूसरा अपने पर होते अन्याय को।"1"

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने यथार्थवादी प्रवृत्ति से प्रेरित पुरुष पात्रों के विभिन्न रूप चित्रित किये हैं। जमींदार एक महत्वपूर्ण पुरुष पात्र है, जो ग्रामीण जीवन में सदियों तक जिन्दा रहा है। अन्नपूर्णा तागिडी ने जमींदार के जीवन की कुण्ठा तथा विलासिता और उसकी शोषक मनोवृत्ति का चित्रण किया है। "निर्बलता का अभिशाप" में जमींदार बैजनाथ विलासी एवं शोषक मनोवृत्ति का पुरुष है। वह किसानों से बेगार करवाता है। जमींदार अपनी कमजोरी को जानते हुये भी अपराध करता है क्योंकि उसकी मनोवृत्ति छूट तो नहीं सकती। अपनी दुर्बलता, अपराधी और निर्बलता को जानते थे। वह और जानते हुये भी करते इसलिये थे कि बिना उसके रह नहीं सकते थे। दूसरों को पीड़ा देना और अपना ही हित करना उनका व्यसन सा हो गया था। उसी में आनन्द आता था। दोनों की कराहों और तड़पन को वह भाप जाते थे, जिसे उन्हें सहना ही था।" 2"

बुद्धिजीवी वर्ग के अन्तर्गत वकील, डाक्टर और प्रोफेसर जैसे पुरुष पात्र आते हैं। इन लोगों के जीवन की विसंगतियों को साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने चरित्रों के माध्यम से यथार्थपरक दृष्टि से चित्रित किया है। जिस प्रकार वकील पुरुष पात्र झूठ बोल कर रोटी कमाने वाले, झूठ तथा अनीति को प्रश्रय देने वाले होते हैं। यह लोग कानून की अपेक्षा झूठ विधा के प्रयोग से सफलता पाने की चेष्टा करते हैं। प्रतिमा वर्मा के " अपने बेगाने" उपन्यास का पुरुष पात्र शिवप्रसाद द्वारा टेढ़े-मेढ़े मार्गों से सफलता पाने वाले वकील को सामने लाती है। वह स्वयं कहता है " कुशल वकील अपनी जान बचाने के लिए ही तो करते

---

1. बीज : मृदुला गर्ग : पृ. 194.
2. निर्बलता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तागिडी : पृ. 122.

तर्क करता है । उसकी आत्मा और विवेक को जगाने का ठेका लेना हो तो वकालत छोड़ कर भजन रंग लो । कानून का आत्मा-परमात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो शरीर पर लागू होता है । अक्सर तो जेल से लौटने के बाद अपराधी और गम्भीर अपराध करने लगते हैं, इन सब का हिसाब कहाँ तक करोगे । चुपचाप मेरी बात सुनते जाओ, तब तो वकालत में जम सकोगे, वरना यहीं रह जाओगे ।"[1]

डाक्टरों की धन लिप्सा, पुर्जा-प्रियता का चित्रण ममता-कालिया ने "प्रेम कहानी" में शशिप्रभा शास्त्री ने "सीढ़ियाँ" उपन्यास में, प्रो. गुप्ता और डा. कश्यप के माध्यम से किया है । "प्रेम कहानी" में प्रो. गुप्ता एक धन के लोभी एवं हृदयहीन डाक्टर है । वह अपने धन्धे के गुर बताते हुए कहता है कि " यह है हमारे धन्धे का अन्धा जादू, सीख लो, सीख लो काम आयेगा । कम बोलो, ध्यान से सुनते जाओ, मरीज के ट्रीटमेन्ट को कभी समझाने की कोशिश न करो, बस पर्चा लिखो, पकड़ा दो ज्यादा से ज्यादा हूँ हाँ से काम चलाओ ।"[2] वह इतना हृदयहीन एवं पैसों का लालची है कि मरीजों को उन्हीं कंपनी की दवाईयों के नुस्खे देता है, जिस कंपनी से उसे धन का लाभ होता है । "सीढ़ियाँ" उपन्यास में डा. कश्यप भी एक हृदयहीन डाक्टर है । वह मरीजों से ज्यादा अपने कर्तव्य से ज्यादा इनाम को महत्व देता है । वह कहता है " बहुत सीधी सी बात है, आपके जेब का सवाल हो, दिमाग का या पेट का, मरीजों का ख्याल करें तो जेबें कटें और मैं भूखे बैठे रहें, अब आप भी अगर उनके जैसे रहे तो फिर सब कुछ चौपट हो जायेगा या नहीं ? आखिर आप भी इन्सान है, आपको भी कुछ भावनाएं कुछ इच्छाएं, कुछ आपके पर्सनल काम हो सकते हैं । बहरहाल आप पूरे समय मरीजों से वास्ता नहीं रख सकते । ... आखिर मैं भी हमेशा से मरीजों के दुःख दर्द और अपने पैसे की इम्पोर्टेन्स मुझे मालूम है, फिर भी मैं इन्सानियत के समान

---

1. अपने-बेगाने : पूर्णिमा वर्मा, पृ. 80.

2. प्रेम कहानी : ममता कालिया : पृ. 94.

इन्सान को ज्यादा महत्व देता हूँ ।[1]

"पापमुक्ता" में प्रो० किशन और " उन रातों पर" में प्रोफेसरों द्वारा प्रोफेसर पुत्रों की व्यथा, प्रदर्शनप्रियता, ओढ़ी हुई बौद्धिकता झूठी उपदेशप्रियता आदि का परिचय कराता है ।

सरकारी अथवा गैर सरकारी दफ्तरों में एकरस जिन्दगी को ढोते, आर्थिक अभावों से संघर्ष करने तथा पारिवारिक संकटों को झेलते हुए क्लर्क पुरुष का सजीव वर्णन है "यारों के यार" लघु उपन्यास में बाबुओं की टुच्ची मनोवृत्ति, उनका कामचोरपन, उनकी परस्पर ईर्ष्या, अफसरों के बारे में उनके रागद्वेष, आर्थिक तंगी, संकीर्ण विचार-धारा आदि का कृष्णा सोबती ने इस लघु उपन्यास में किया है । "बड़े बाबू अधिकारी अन्दाज में आँख उठाये बिना रौब को-सी मुस्तैदी और मसरूफियत से डाक मार्क करते रहे । अपने सामने आस-पास की हरकतों को "वाच" करती रही ।[2] क्लर्क किस प्रकार गाली गलौज करते हैं उसका यथार्थ चित्रण सुरी के माध्यम से किया गया " साहब लोग फर्नीचर लाला । आगा पट्टी से बाज नहीं आता । जब देखो बैठे-बैठे यू ही मरता है साहब और किसी दिन पासा पलट गया तो रोएगा बाप के साले को ।"[3]

"सुबह के इन्तजार तक" मुंशी जी का यथार्थ चित्रण किया गया है । जो समाज में अपनी इज्जत बनाये रखना चाहता है । भीतर से चाहे कितना ही अभाव ग्रस्त क्यों न हो वह बाहर से सम्पन्न दिखना चाहता है । "घर में हम चाहे सहूलों से गुड़ की हल्की चाय पी रहे हों पर अलबत्ता आये मेहमान के लिये एक छोटी टीन की डिब्बा में सहेज कर रखी चीनी, दो एक काजू कप । घर में जैसा भी कुछ पहनकर निर्वाह करने के बावजूद बाहर निकलते समय हम सबके कपड़े बड़ी कारीगरी से सिले, निखरकर दिखाये और धुले होते ।"[4]

- -

1. सीढ़ियाँ : शशिप्रभा शास्त्री : पृ० 161,162.
2. यारों के यार : कृष्णा सोबती : पृ० 22.
3. यारों के यार : कृष्णा सोबती : पृ०22.
4. महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ० 13.

नौकरी के न होने पर भी वह छोटा मोटा कार्य करने को तैयार नहीं रहता है, क्योंकि इससे उसके सम्मान को ठेस पहुँचती है । अभावों से ग्रस्त होते हुये भी झूठी शान में ही रहना चाहता है ।

स्वतंत्रता से पहले राजनीति नेताओं के लिए साधना थी । स्वतंत्रता से पूर्व के नेता स्वच्छ, उज्ज्वल तथा पूज्य थे । किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात राजनीति नेताओं के लिए देश सेवा का साधन न रहकर उसका व्यवसाय बन गयी है । इसलिये आज का नेता अवसरवादी, पूँजीपतियों का हित चिंतक, चापलूस, आदर्शहीन, स्वार्थी, रिश्वतखोर, संकीर्ण मानसिकता वाला तथा जनता के साथ धोखा करने वाला बना दिया । मन्नू भण्डारी ने "महाभोज" में ऐसे ही राजनेताओं का यथार्थ चित्रण किया है । " दा साहब"के रूप में एक ऐसे राजनेता का चरित्र-चित्रण किया है जिसके एक नहीं अनेक चेहरे हैं । सबसे खतरनाक शैतान वह होता है जो ऊपर से सन्त दिखता है । दा साहब भी इसी प्रकार के हैं जो ऊपर से तो सन्त दिखते हैं, परन्तु जिसके पीछे उनकी शैतानियत छुप कर रहती है । उनका अतिशय स्वभाव एवं अधिक गम्भीरता भी इसी की प्रतीक है " दा साहब मौन, गंभीर.... उनका अपना खास अंदाज, कम शब्द, धीमी आवाज । बात को अपने से, अपने मन से होने वाली उथल-पुथल से काट कर भी बताया जा सकता है - यह गुर कोई दा साहब से सीखें -- इसके अतिरिक्त दा साहब का पूरा व्यक्तित्व ही जैसे भव्यता के फ्रेम से जड़ा हुआ है ।[1] वे अपने विरोधियों को बड़ी ही आसानी से अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं । महेश के दत्ता बाबू इसके उदाहरण हैं । यही नहीं वे स्वार्थी मनोवृत्ति के हैं और राजनीतिक दांव-पेच को अच्छी तरह से जानते हैं । गाँव में घटी इतनी भयानक घटनाओं के बाद जनता का ध्यान बँटाने के लिए दा साहब तुरंत वहाँ "घरेलू उद्योग"योजना शुरू करते हैं और एक कूटनीतिज्ञ की भांति वे सबों को बिसेसर के घर जाते हैं, और उसे साथ लेकर मंच पर पहुँचते हैं और घरेलू उद्योग योजना का उद्घाटन भी उससे करवा देते हैं ।[2]

---

1. महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ. 13.
2. महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ.

एक ओर पुरुष-पात्र सुकुल बाबू के माध्यम से स्वार्थपूर्ति एवं पदलिप्सा का सजीव चित्रण किया गया है कि किस तरह राजनीतिक दलों के लोग अपनी स्वार्थपूर्ति एवं पदलिप्सा के कारण उसे एक नया रंग देना चाहते हैं। वे घटना के कारणों की जाँच न करके उसके मौके का पूरा फायदा उठाते हैं, और दा साहब की सरकार के खिलाफ बोलते हैं। गाँव वालों से सुकुल बाबू मीठी-मीठी बातें करते हैं। "आप लोग मुझसे नाराज हुए ... हक था आपका। पर बदले में मैं नाराजगी दिखाता तो गुनाह होता मेरा। कैसे भूल सकता हूँ कि दस साल तक आप लोगों का होकर रहा हूँ... आप लोगों के लिए रहा हूँ.. हक है आप लोगों का मुझ पर और अब एक अदायगी का अवसर आया है तो यह सुकुल चूकेगा नहीं।"1"

आज के राजनेता किस प्रकार थाली के बैंगन होते हैं इसका चित्रण सहायक पात्रद्वय राव और चौधरी जी करते हैं। एक ही पार्टी में पदलिप्सा के लिये व्यक्ति किस तरह स्वार्थी बन जाता है। एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये तथा अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये नीचे तक गिर जाते हैं। जब उन्हें आभास हो जाता है कि दा साहब का मन्त्री मंडल टूटेगा और नए मन्त्रीमण्डल में लोचन बाबू का एक विशिष्ट स्थान रहेगा। इसी लिये थाली में बैंगन की भाँति वह लोचन का साथ देने को तैयार हो जाते हैं। यहीं नहीं लोचन बाबू से अपनी शेखी भी बघारते हैं। -"खास बात की कुछ व्यवस्था तो करेंगे या नहीं?"2"

मशाल के सम्पादक "दत्ता बाबू" का भी सजीव चित्रण किया गया है कि किस प्रकार वह प्रलोभन में आकर अपनी जमीर की आवाज को अनसुनी करके दा साहब का आज्ञाकारी बनता है। वह दा साहब की मर्जी के अनुसार " मशाल" में बिसू की हत्या को आत्महत्या करार देते हैं। "दा साहब" के आज्ञाकारी कार्यकर्ता बनने के बाद दत्ता बाबू

---

1. महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ 37.
2. महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ.

को अलौकिक पुरस्कार भी मिला, डी०आई०जी० सिन्हा द्वारा दी गई पार्टी में दत्ता बाबू के मन में दा साहब की शाबाशी से बड़ाई और जेब में कागज के उस कोटे का परमिट पड़ा हुआ है और वे अपने को जमीन से डेढ़ फीट ऊपर महसूस कर रहे हैं।"[1]

"अनित्य" में मुकर्जी के माध्यम से एक ऐसे नेता का चरित्र-चित्रण किया गया है जो आजादी की लड़ाई तो नहीं लड़ता है, परन्तु बाद में राजनेता बन जाता है। वह ऊपर से तो गांधी जी की माला जपता है पर भीतर से स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ है। गांधी टोपी और खादी के कपड़े पहनकर अपने आपको वह कांग्रेसी कहता है। दूसरों का काम करवाने के लिये उनसे रिश्वत लेता है। काजल के मुकर्जी के बारे में अविजित से कहती है कि "आदमी तिकड़मबाज है.. आजादी मिलने पर झुककर गोरों की चापलूसी की गन्ध लेने गए।.... उद्योगमंत्री मुकर्जी कोई छोटी चीज है नहीं। कल रकम लगाई होगी।"[2]

इसी प्रकार "सुरंगमा" उपन्यास का मन्त्री दिनकर एक विलासी, विश्वासघाती एवं स्वार्थी है। वह सुरंगमा से झूठे प्रेम का नाटक रचता है। जब उसके स्वार्थ की सिद्धि हो जाती है तो वह उसको तिरस्कृत कर देता है। वह अपने चरित्र का उद्घाटन स्वयं करता है वह कहता है "मैं इस राजनीति के अखाड़े में ताल ठोककर किसी भी सरपंच को ललकार सकता हूँ.. । मैं सत्य वक्ता भी हूँ -झूठा भी, कठोर वचन भी बोलता हूँ और मधुभाषी भी हूँ, हिंसक भी हूँ, दयालु भी। वेश्या की भांति मेरी नृप नीति के अनेक रूप हैं।"[3] जिस प्रकार एक मन्त्री के कई मुखौटे होते हैं उसी प्रकार दिनकर के भी हैं। वह सुरंगमा से कहता है कि "कभी-कभी राजनीति के गरिष्ठ भोजन के बाद ऐसा पाचन अनिवार्य हो उठता है। स्वीटज़, नेपोलियन

---

1. महाभोज : मन्नू भण्डारी : पृ.
2. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ 93,94.
3. सुरंगमा : शिवानी : पृ 173.

और कहो तो अपने देश की विभूतियों के नाम भी गिनवा दूं ।"[1]

सुधारवादी नेताओं की कथनी और करनी में अन्तर होता है इसका सफल चित्रण "मिट्टी के देव" उपन्यास में युगल-किशोर के माध्यम से किया गया है । वे ऊपर से तो छुआ-छूत आदि के विरोधी रहते हैं । वे एक मानवी पुरुष है । जब उन्हें ज्ञात होता है कि हनकुराम भिक्खू को अपने पुत्र के समान समझते हैं तो वह अपनी पुत्री का विवाह भिक्खू से करने को तैयार रहता है, परन्तु जैसे ही उन्हें मालूम पड़ता है कि भिक्खू हरिजन का बेटा है तो उनकी सारी सुधार की भावनायें धरी की धरी रह जाती है तथा वे अपनी बेटी का विवाह भिक्खू से करने को इन्कार कर देता है । इस तरह उनकी कथनी और करनी में अन्तर है ।[2]

दमित काम भावना कभी-कभी इतनी भड़क जाती है कि पुरुष को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता यह भावना सीमित आयु के घेरे में नहीं रहती । यह दमित भावना कभी कभी प्रौढ़ व्यक्ति में भी आ जाती है । इस भावना का यथार्थ चित्रण शिवानी के उपन्यास "रति-विलाप" में किया गया है । "भगवानदास कापड़िया एक वयोवृद्ध पुरुष है । उनकी बहू अनसूया घर पर काम करने के लिये जेल से छूटी हुई लड़की ले आती है । पहले तो कापड़िया उससे नफरत करते हैं, परन्तु बाद में धीरे-धीरे वह लड़की उनको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । वह भला-बुरा सब भूल कर उसके साथ भाग जाते हैं ।"[3]

भावनाओं के सागर में नारी जिस तेजी से डूबती है पुरुष नहीं - वह अपनी व्यावहारिकता, यथार्थपरक दृष्टि तथा समय की आवश्यकता की दृष्टि के सहारे तैर कर बाहर निकल आता है । "सोढ़िया" उपन्यास के सुकेत के माध्यम से पुरुष की इस प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण

- -

1. सुरंगमा : शिवानी : पृ. 256.
2. मिट्टी के देव : पद्मा विनोदी
3. रति-विलाप : शिवानी : पृ. 28.

किया है । पहले तो सुमित मनीषी से भावुकता से जुड़ा हुआ रहता है, परन्तु विवाह के बाद वह उस भावुकता को छोड़ देता है, और वह मनीषी से भी कहता है कि व्यर्थ की भावुकता में न पड़े । वह मनीषी को समझाता है "डोन्ट बी सेन्टिमेन्टल मैं भी तुम्हारी तरह पहले बहुत सेन्टिमेन्टल था, यू नो हट व्यर्थ की भावुकता से बँधा हुआ । ... नार्मल आदमी मैं अब बना हूँ । अपनी "एज का आदमी.... मेरा यही कहना है, अपने को संभालो, बस ...भावुकता के बहाव में बहते रहने में कुछ नहीं रखा है सबको समझना सबसे प्यार करना सीखो ।"[1]

"बीते हुए" उपन्यास में देव के माध्यम से एक ऐसे पुरुष का चित्रण किया गया है जिसकी मनःस्थिति एक जगह नहीं टिकती ।वह पारिवारिक दायित्व को ठीक से निभा नहीं पाता । एक के बाद एक नौकरी करता और छोड़ता है । दाम्पत्य जीवन में भी एकरसता का अनुभव करता है । हताश और निराश होकर औरत और को शरण लेता है । ऐसा नहीं कि पत्नी और घर के प्रति अपनी गैर जिम्मेदारी को "देव" महसूस नहीं करता । "देव अपने दायित्वों से भागना नहीं चाहता । वह सच्चे मन से चाहता था, उसका अपना सजाया एक छोटा-सा घर हो ।"[2]

अतः हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने समाज में सभी वर्गों के विभिन्न पुरुष पात्रों का यथार्थ रूप से प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता के साथ चित्रित किया है । इन पात्रों के जीवन की सभी स्थितियों का खुले रूप में चित्रण किया है ।

3.1 **शिल्पगत**

उपन्यास जीवित संरचना है ।प्रत्येक उपन्यास एक अद्वितीयता और अनुपमता लिए हुए होता है ।यही नहीं उसके प्रत्येक अंग में विलक्षणता होती है । एक सजीव प्राणी की भांति जब उपन्यास का एक अंग कमजोर होता है, तब उसकी पूर्ति दूसरे अंग कर देते है और उसकी सजीवता में अंतर नहीं आता । इसीलिए उपन्यास के क्या-क्या अंग हैं और वे एक दूसरे से किस प्रकार संबंधित हैं, इसका जानना महत्त्व

---

1. सीढ़ियाँ : शशिप्रभा शास्त्री: पृ. 326. 2. बीते हुए :प्रभा सक्सेना: पृ. 46.

नहीं मिलता कि उपन्यास में "संरचनात्मक समग्रता" का होता है ।[1] उपन्यास का प्रमुख अंग चरित्र-चित्रण ही है । वास्तव में चरित्र-सृष्टि उपन्यास एवं उपन्यासकार दोनों की शक्ति एवं सामर्थ्य की महत्वपूर्ण कसौटी है । इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास में प्राणवत्ता का उसकी सजीवता एवं प्राणवान् चरित्र-सृष्टि से ही सम्भव हो सकता है । औपन्यासिक चरित्र सृष्टि उपन्यासकार के अनुभव, लोकव्यवहार, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, अनुभूति की तीव्रता और मौलिक जीवन-दृष्टि की देन है । एक सिद्धहस्त उपन्यासकार अपने उपन्यास में चरित्रों की सृष्टि के लिए जीवन के विविध पहलुओं से चरित्र के उपकरण जुटाता है । वस्तुतः चरित्र सृष्टि पात्र के व्यक्तित्व निर्माण की एक ऐसी कला है जिसमें एक अनेक तत्वों का समन्वय होता है । "उपन्यासकार डी॰एच॰लारेंस ने इस बात पर बल दिया था कि " उपन्यास केवल कला-रूप नहीं है, वरन् यह जीवन का अभिन्न अवयव है, एक झोंका है, एक अन्तःकरण चित्र है, एक संदेश है - मुझे उपन्यास दो ताकि मैं सुन सकूं वह क्या कहता है । कलाकार पर नहीं उपन्यास वृत्तान्त पर विश्वास करो, क्योंकि उपन्यासकार झूठ बोल सकता है परन्तु उपन्यास झूठ पर आधारित नहीं हो सकता ।"[2] फिर भी चरित्र की अवधारणा और उसकी सृजन-प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रत्येक युग की अपनी-अपनी दृष्टि रही है । भारत में आदि कवि वाल्मीकि और ग्रीस में होमर से लेकर अब तक के महाकाव्य, नाटक और उपन्यास में न जाने कितने चरित्र निर्मित हुए, जिनमें मानवीय आदर्श, सफलताएं, दुर्बलताएं, सुख-दुःख तथा उत्थान-पतन मूर्त हो उठे हैं, और जिन्हें साहित्य स्रष्टाओं ने अपने युग-जीवन को व्यक्त करने का साधन माना तथा जिनमें मानवीय विविधताओं को दर्शाते हुए सम्पूर्ण मानवता के लिए मार्ग-प्रदर्शन का काम किया गया है ।[3] अतः उपन्यास में मानव चरित्र का प्रत्येक पक्ष अपनी परिपूर्ण व्यापकता के साथ उजागर हो जाता है ।

1॰ उपन्यास सृजन की समस्याएं : रणवीर सिंह नरूला : पृ॰ 21॰

2॰ उपन्यास एक कला विवेचन : डा॰ विश्वामित्र : पृ॰ 27॰

3॰ -वही- -वही-

उपन्यास ही एक ऐसा कला-रूप है जिसमें संरचनात्मकता या कथात्मकता का अपने आप में अधिक महत्व नहीं होता, जिसमें रूप-विधान या शिल्प-कौशल उपन्यास की वस्तु के आधारहीन होता है और उस वस्तु के आवेगानुवर्तन में निरंतर बदलता रहता है ।[1] इसके अतिरिक्त आज का युग परिस्थिष्ट -काम्प्लेक्स चरित्रों का है । शुद्ध चरित्र आज सम्भव नहीं है । एक ही चरित्र, चोर है, रक्षक है, दुराचारी है, सदाचारी है, पापी भी है और धर्मात्मा भी है, ब्लैक मार्केटिंग भी करता है और मन्दिर में दान भी करता है । पात्रों के चरित्र-चित्रण की समस्त प्रक्रिया का आधार भी उपन्यासकार की नैतिक दृष्टि होती है । जीवन में व्यक्तियों की भाँति उपन्यास में पात्र विचारों, अनुभवों और संवेदनाओं का वाहक है । इन्हीं के आदान-प्रदान और परस्पर टकराव द्वारा पात्रों के गुण-अवगुण निखरते हैं, इन्हीं द्वारा सामाजिक और व्यक्तिगत वातावरण से उन पात्रों की अनुकूलता या प्रतिकूलता प्रकट होती है । जैसे-जैसे कथानक आगे बढ़ता है सारे अवयव उस गति में योगदान देते हैं । जो तत्त्व उपन्यास की सम्पूर्णता को समाकलित करता है, वस्तु के भाँति-भाँति के टुकड़ों को उस सम्पूर्णता में ठीक से बैठाता है और समस्त सामग्री को समापन की ओर वेगपूर्वक अग्रसर करता है वह उपन्यासकार की नैतिक अवधारणा है ।[2]

समग्र रूप से साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात हम पाते हैं कि लेखिकाओं ने चरित्र-प्रधान उपन्यासों की रचना की है । इसका एक कारण है कि नारी अन्तर्मुखी होती है । जिसके कारण महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में परिवेश को कम लिया है । स्वाभाविक है कि पुरुष का अनुभव जगत और स्त्री का अनुभव जगत अलग होता है । स्त्री में संवेदना अधिक होती है, अतः रचना में अन्तर आ जाता है । साठोत्तर उपन्यास

- -

1. उपन्यास सृजन की समस्याएं : रणवीर सिंह नरूला : पृ. 22.
2. उपन्यास सृजन की समस्याएं : रणवीर सिंह नरूला : पृ. 31.

लेखिकाओं ने मनोवैज्ञानिक चरित्रों को ही अंकित किया है । अधिकतर पुरुष पात्र उनके उपन्यासों में सहायक रूप में आते हैं । बहुत कम महिला लेखिकाओं ने प्रधान पुरुष पात्रों को लिया है । जिनमें ममता कालिया, निरुपमा सेवती और मन्नू भंडारी आदि है । अमृतलाल नागर, रेणु आदि ने जिस प्रकार परिवेश को लेकर अपने उपन्यासों की रचना की, परन्तु महिला लेखिकाओं ने बाह्य परिवेश को बहुत कम लिया है । फिर भी मन्नू भंडारी और मृदुला गर्ग ने बाह्य परिवेश को अपने उपन्यासों में लेने का प्रयास किया है । उनका यह प्रयास ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई एक झरोखे से बाहर का दृश्य देखना । इसका एक कारण भी है कि महिला -लेखिकाओं का रचना संसार सीमित है । बाह्य परिवेश में अपने कदम महिलाओं ने अभी-अभी ही निकाले है ।

पाश्चात्य महिला लेखिकाओं ने अपने पुरुष चरित्रों के सम्बन्ध में विभिन्न टिप्पणियाँ दी है । Charlotle Bronte अपनी मित्र James Tayler से अपनी शोचनीय स्थिति बताते हुये कहती हैं कि "मैं पुरुष चरित्र का चित्रण करते समय सहजबुद्धि के मत को प्रतिकूल परिस्थिति के कष्ट में पड़ती हूँ और यह अवलोकन और अनुभव यथेष्ट मात्रा में नहीं मिलता । मैं जब नारी के बारे में लिखती हूँ तो मैं अपने क्षेत्र के बारे में निश्चिन्त रहती हूँ, परन्तु जब मैं नर के बारे में लिखती हूँ, तब मैं निश्चिन्त नहीं रहती ।"[1] वे यहाँ तक कहती हैं कि नारी पुरुष के मनोभावों को समझने में पूर्ण रूप से असमर्थ नहीं है । पाश्चात्य महिला विचारकों के अनुसार " महिला लेखिकाओं के सारे पुरुष घृणित और असामाजिक और झूठे हैं, सब या तो देवता है या

---

1. Charlotte Bronte lamented to her friend James Taylor : ' In delineating male character. I labour under disadvantages ; intuition and theory will not adequately supply the place of observation and experience when I write about women , I am sure of my ground - in the other case I am not so sure ':A Literature of their Own: Elaine Showalter .p.133.

शैलाप ।"1" Margaret Oliphant अपनी मित्र Isabella Black-wood; से सहमत होते हुये कहती है कि "नारी के लेखन में नर हमेशा काल्पनिक रूप से अवास्तविक मनुष्य है और अपने ही कार्य(लेखिका) के नायकों की अच्छाइयों और बुराइयों को हम नहीं ढंग से प्रदर्शित कर सकते हैं। यहां तक कि जार्ज इलियट भी अपने नायक के आगे कमजोर है। मैं यह स्वीकार करती हूं कि इस सम्बन्ध में हम जो कार्य करती हैं, मैं उसकी हानि को समझती हूं क्योंकि कभी-कभी हम यह नहीं जान पाते हैं कि बाह्य रेखा को स्पष्ट और साफ किस तरह रखा जाये। परन्तु कभी-कभी हम इसे बहुत अच्छी तरह भी जानती हैं लेकिन अपने ज्ञान को किसी भी तरह छोड़ा नहीं दे सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि नारी की किताब में पुरुष का हमेशा धुंधला हुआ चरित्र होता है और रंगीन चित्रों से परिपूर्ण होता है। यही संरचनात्मक ज्ञान और सूक्ष्मता शायद मैं समझती हूं कि नारी को एक महान् चित्रकार बनने से रोकती है। अगर कोई इस सम्बन्ध में आवश्यक अध्ययन करें तो उसे लाभ से ज्यादा अधिक हानि होगी।"2" यहां तक कि

" Female Imagination Finds that for readily discervible historical reasons woman's hare characteristically concerned themselves with matters more or less peripheral to male concerns, or at least slightly skewed from them."3.

इसके विपरीत शताब्दी महिला उपन्यासकारों ने इस परिधि को तोड़ने की कोशिश की है। सा० से पहले महिला लेखिकाओं के उपन्यासों में सामाजिक और पारिवारिक चरित्र ही होते हैं। ज्यादातर उन्होंने स्त्रियों की समस्याओं को लेकर ही अपनी रचनायें रची है।

---

1. Therefore women's men were all absured contemplible and unrealistic, all were either angels or devils. A Literature of their Own : Elaine Showalter : Feminine Heroes : The Women men: p.133.

2. A Literature of their Own : Elaine Showalter:p.135.

98. A Literature of their own : -do- : The Female Tradition :p.10.

डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक लेख में महिला कहानीकारों की कहानियों पर विचार करते समय इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि "आलोच्य कहानियों की लेखिकाएं परिवार और समाज [एक शब्द में "समूह"] पर से अपनी चिन्ता हटा नहीं सकतीं । इस एक बिन्दु पर ही उनका सारा ध्यान केन्द्रित है । वे लोग निश्चित ही हमारे समाज के बहुत ही महत्वपूर्ण आधे हिस्से के प्रतिनिधि हैं, इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि स्त्री का समूचा ध्यान परिवार और समाज पर है, जबकि पुरुष इस व्यावसायिक युग के दुर्निवार्य प्रवाह में बहकर नाना घाटों में जा लगा है, जबकि व्यक्ति स्वाधीनता ने पुरुष की तो महत्वाकांक्षाओं को निरन्तर उत्तेजित कर दिया ; जबकि आर्थिक चक्र के आवेग -आघूर्णन ने कुटुम्ब की भावना को पीस डाला है, जबकि स्फीतकाय नागरिक सभ्यता ने पुरुष की कोमलता को एकदम कुचल डाला है, स्त्री परिवार,कुटुम्ब और समाज से और भी जोर से चिपट गयी है ।"1॰

आज के युग में चरित्र-प्रधान उपन्यासों का ही अधिक महत्व है । क्योंकि जब हम टालस्टाय, दोस्तोवस्की, जेन आस्टिन, वर्जीनिया वुल्फ आदि के उपन्यासों का स्मरण करते हैं तो हमारे सामने पात्र ही खड़े रह जाते हैं, बाकी बातें पृष्ठभूमि में चली जाती है ।2॰ आधुनिकीकरण, सामाजिक सुधारों एवं नारी-मुक्ति आन्दोलनों के फलस्वरूप स्त्रियों में जागृति आई । जिसके फलस्वरूप वे अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होने लगीं । शिक्षा के फलस्वरूप वह अपने-आप को पुरुष से कम नहीं समझने लगी । उनमें एक तरह से प्रतिद्वन्द्विता का भाव उत्पन्न होने लगा । परन्तु उनकी यह प्रतिद्वन्द्विता की भावना पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता की भावना से अलग थी । द्विवेदी जी ने भी यह स्वीकार किया है कि " आधुनिक शिक्षा ने स्त्री में भी पुरुष की भांति महत्वाकांक्षा के भाव भर दिये हैं, वह भी पुरुष के साथ

1॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : भाग 10 : पृ॰192॰

2॰ उपन्यास स्थिति और गति : चन्द्रकांत बांदिवडेकर : पृ॰9॰

प्रतिद्वन्द्विता के लिए निकल पड़ी है, परन्तु पुरुष की भाँति उसकी स्वाधीनता में लापरवाही नहीं है । वह वर्तमान परिस्थितियों के साथ समाज का सामंजस्य चाहती है । वह उस नयी समाज व्यवस्था के गढ़ने के लिए व्याकुल है जो स्त्री की महत्वाकांक्षा का विरोध न हो । स्त्री की वैयक्तिकता समाज की स्वीकृति पाकर समाज की प्रधानता को स्वीकार कर लेती है ।"1. साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपनी इसी भावना को अपने उपन्यासों में चरित्रों के माध्यम से किया है । "मृदुला गर्ग" के उपन्यास "उसके हिस्से की धूप" चित्त कोबरा, और " कृष्णा सोबती" के उपन्यास " मित्रोमरजानी" में प्रतिद्वंदिता का भाव और अपने अस्तित्व की तलाश को चरित्रों के माध्यम से उजागर किया है । "उसके हिस्से की धूप" की मनीषा को अपने अस्तित्व की तलाश है वह अपने हिस्सेकी धूप चाहती है, वह स्त्री और पुरुष को समान रूप से देखती है । अपनी इसी प्रतिद्वंदिता के कारण कभी जितेन की ओर झुकती है, और कभी मधुकर की ओर, अपने जिस अस्तित्व की उसे तलाश है वह न जितेन दे सका और न मधुकर । जिस जितेन की एकरसता तथा उदासीनता की भावना से ऊबकर मधुकर की भावुकता की ओर आकर्षित होती है तो वहाँ भी उसे घुटन ही मिलती है । क्योंकि मधुकर अपनी पुरुष प्रवृत्ति के अनुरूप उसे स्वतंत्रता नहीं देना चाहता है । वह साफ कहता है कि "मैं न तो " सोमल किस" में विश्वास करता हूँ और न "फ्री लव में।"2. वह नारी को वस्तु के रूप में मानता है ।

अपनी इसी प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप नारी ने नैतिक मूल्यों के अतिक्रमण का भी परिचय दिया है । वह सैक्स के स्तर पर भी पुरुष की बराबरी पर उतर आई है । आधुनिक उपन्यासकारों में "भगवतीचरण वर्मा" ने अपने उपन्यास "रेखा" में रेखा के चरित्र के द्वारा स्त्री के इस भाव को खूब उभारकर बताया है । परन्तु पुरुष के

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : पृ. 192.
2. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 5.

इस्तेमाल के दूसरे ढंग को भारतीय महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चरित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया है । आर्थिक कठिनाइयों के फलस्वरूप आज की नारी को आजीविका के साधन ढूंढना पड़ रहा है । आर्थिक सुख-सुविधा एवं पद आदि प्राप्त करने के लिये उसे अपनी अस्मिता को तक बेचना पड़ रहा है । पुरुष उसे आर्थिक सुख-सुविधायें एवं पद का लालच देकर आसानी से अपने जाल में फांस लेता है । जैसे " पतझड़ की आवाजें" "उस तक" आदि उपन्यासों में इस तरह के चरित्र हैं । " उस तक" की मुक्ता एक मध्यम वर्ग की लड़की है । वह जिन्दगी में कुछ करना चाहती है, और कुछ करने के चाहने में वह उन्मुक्त और कुंठा रहित जीवन चुनती है । वह आर्थिक सुख-सुविधा एवं पद के कारण वह अपने बॉस सत्यपाल साहू के आगे आत्मसमर्पण कर देती है । सत्यपाल एक ऐसा पुरुष है, जो अपनी काम-वासना की तृप्ति करने के लिये अपने नीचे काम करने वाली स्त्रियों को आर्थिक सुख-सुविधा एवं पद का लालच देता है । 1.

इसी प्रति द्वन्द्विता एवं समानता की भावना के कारण नारी ने एक तरह से प्रतिशोधात्मक रवैया पुरुष के प्रति अपनाया है । उसमें यह भावना जागृत हो गई है कि यदि जिस प्रकार पुरुष स्त्री को इस्तेमाल की वस्तु बना सकता है तो क्या वह पुरुष को इस्तेमाल की वस्तु नहीं बना सकती । रजनी पनिक्कर के उपन्यास " दूरियां" में चारु के चरित्र द्वारा इस तरह की भावना को दिखाया गया है । वह राजा से प्रेम में ठुकराये जाने के फलस्वरूप अन्य पुरुषों के प्रति प्रतिशोधात्मक रवैया अपनाती है । उन्हें अपने रूप जाल में फंसाती है । फ्रायड के अनुसार काम की प्रवृत्ति स्त्री और पुरुष दोनों में समान रूप से होती है, फिर क्या कारण है कि स्त्री की भोगेच्छा को समान रूप से नहीं लिया जाता और उसकी इस प्रवृत्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है । "कृष्णा सोबती का उपन्यास "मित्रो मरजानी" में मित्रो द्वारा इस प्रकार की भावना दृष्टिगोचर होती है ।

- -

1. उस तक : कुसुम अंसल : पृ.

कांता भारती और निरुपमा सेवती ने अपने उपन्यास "रेत की मछली" और "मेरा नरक अपना है" की प्रतिशोधात्मकता को दिखाने के लिये कहीं-कहीं अतिकामुक वृत्ति का भी परिचय दिया है । कांता भारती ने अपने उपन्यास " रेत की मछली" में अपनी प्रतिशोधात्मक भावना के फलस्वरूप शोभन के चरित्र को लिखा है । उन्होंने उसकी शारीरिक क्रियाओं को व्यक्त करने वाली घटनाओं को ही अंकित किया है । कान्ता भारती ने यह बताने की बिल्कुल चेष्टा नहीं की है कि तीसरी स्त्री के आ जाने से शोभन की मानसिक स्थिति क्या है । "ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्तिगत ईर्ष्या से प्रभावित होने के कारण ही लेखिका ने दोनों के सहवास की स्मृतियों से अधिक चेष्टाओं को महत्व दिया है । अतः ईर्ष्या से भरी हुई लेखिका ने अपनी रचना के नाजुक तथ्य के संतुलन और महत्व को भुला दिया है । 1."

इसके अतिरिक्त साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने सहज और यथार्थ चरित्रों को भी लिया है जैसे मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास "आपका बंटी","महाभोज" और ममता कालिया ने "नरक-दर-नरक" और " बेघर " आदि । जिनमें उन्होंने आज के युग के पुरुषों की मानसिकता और सहज मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण किया है ।

अतः हमें समग्र रूप से निरीक्षण करने के बाद यह ज्ञात होता है साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने चरित्र प्रधान उपन्यासों की रचना की है । पुरुष चरित्रों के माध्यम से उन्होंने आज के नये प्रश्न जो हमारे सम्मुख आये हैं उनको लिया है । स्त्री ने पुरुष को कभी गलत नहीं समझा । बल्कि पुरुष ने ही उसको हमेशा गलत समझा है । इसलिये हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि "पुरुष का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी कल्पनात्मक प्रवृत्ति से सदा सतर्क रहना चाहिये और स्त्री का जब स्त्री-चित्रण पढ़ा जाय तो उसकी रहस्यात्मक प्रवृत्ति से भी सावधान रहना चाहिए । यह गलत बात है कि स्त्री वस्तुतः वैसी ही है जैसी के द्वारा चित्रित है या वैसी नहीं है , जैसा पुरुष द्वारा कल्पित है ।"2"

- -

1. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास : डॉ. रामविनोद सिंह: पृ. 80.
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली : पृ. 187.

अ ध्या य ... चा र

4. साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

4.1 वैवाहिक सम्बन्ध

प्राचीन काल से ही विवाह संस्था चली आ रही है । यह प्रत्येक मानव-समूह में पाई जाती है । चाहे वह सभ्य हो अथवा असभ्य । मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ इसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं । वैस्टमार्क के अनुसार - "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है जो प्रथा या कानून द्वारा स्वीकार्य होता है तथा इसमें सम्बन्ध दोनों पक्षों और उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार और कर्तव्यों का समावेश होता है ।"[1]

विवाह के उपरान्त पति-पत्नी दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हैं । इस परिवार रूपी गाड़ी में पति-पत्नी का स्थान पहियों के समान है । जिस प्रकार समस्त गाड़ी का बोझ पहियों पर निर्भर रहता है, उनके दुर्बल होने से गाड़ी कठिनाई से आगे चल पाती है । वह जल्दी टूट जाती है, उसी प्रकार पति-पत्नी के सम्बन्ध अच्छे न होने से, उनके अपने-अपने कर्तव्य और दायित्व का पालन न करने से परिवार न तो प्रसन्न रह सकता है, न फल-फूल सकता है । वह एक दिन टूट कर ही रहता है । पति और पत्नी नदी के दो तटों की भाँति सहयुक्त है, दोनों के मध्य से ही जीवन की धारा प्रवाहित होती है । "वैदिक साहित्य में स्त्री और पुरुष के सम्मिलन की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है । जैसे शुक्ति के दो दलों के बीच में मोती की स्थिति होती है, वैसे ही स्त्री और पुरुष इन दोनों के मध्य में सन्तति है । पति-पत्नी

---

1. The History of Human Marriage : Westermark :Vol.1 p.6.

दो होते हुए भी एक है । दोनों के इस अभेद की स्वीकृति विवाह संस्कार है । जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है, उसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है । यही पति-पत्नी का गृहस्थ के जीवन का वास्तविक संगीत है ।"[1]

पहले पत्नी पुरुष के अधीन रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करती थी । उसकी कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं होती थी उसे बताया जाता था कि पति ही उसके लिए सर्वस्व है । "जिस पुरुष को कभी वह पूर्णत: अपना और अपने लिए अखण्ड समझ कर अपने सम्बन्धों का निर्वाह करती रही थी, उसे एक, दो अथवा कई दिशाओं में विभक्त पाकर पुराने सम्बन्ध की निष्ठा और सम्पूर्णता को स्थिर रखना उसके सम्मुख नई समस्या बनकर प्रकट होता है और बहुधा देखा गया है कि ऐसी स्थिति में नारी, परिस्थितियों की बदली हुई गतिविधियों के कारण छोजती सी चली जाती है, कुण्ठित हो जाती है ।"[2]

नई जागृति, नई विचारधाराओं और नारी में शिक्षा के प्रसार के कारण आज प्रबुद्ध नारी अपने को पुरुष के समकक्ष मानने लगी है । नारी पुरुष की भोग्या और समर्पिता बन कर नहीं रहना चाहती । आर्थिक क्षेत्र में निर्भरता के कारण स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना कर वह पुरुष की चिरकालीन परतंत्रता से मुक्त होने का प्रयास कर रही है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक सम्बन्धों का यथार्थ रूप में चित्रण किया है । "आज प्राचीन समय की न तो नारी है और न ही उस समय का पुरुष । उस समय दोनों नैतिकता की बेड़ियों में जकड़े हुए होने के कारण असमर्थ थे, किन्तु आज के संदर्भ में दोनों का अस्तित्व दो भिन्न-समान धुरी पर अवलम्बित है। उनका अपना-अपना महत्व है । यह सब समाज की गतिशीलता और परिवेश की नवीनता का प्रतिफलन है कि आज भी रानी आर्थिक

1· हिन्दू परिवार मीमांसा : श्री हरिदत्त वेदालंकार पृ·भूमि :25
2· हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन : चण्डी प्रसाद जोशी पृ·44

विवशताओं से पिसी और दबाव की दासी है ।"1"

अगर पति पढ़ा-लिखा और आधुनिकता प्रेमी होगा, तो स्त्री संकोचशीला, अनुरक्त और मर्यादा प्रेमी होगी । यह स्थिति आज के सन्दर्भ में तनाव पूर्ण बन गया है जैसे "कोहरे" के मेजर जी.पी. सिन्हा में जो एक आधुनिक विचारों के है, उनकी पत्नी अनपढ़ है, उसके हर पद से हमेशा क्रोध करते हैं । वे कहते हैं " कहीं घर में कोई टाइम नहीं ; यह चवन्नी के बराबर सी हनुमान जी के सिन्दूर की बिंदी और भई ; ज़रा तो चेहरा देखने लायक रहा करो ... तुम्हें क्या मालूम आजकल ज़माना कितना बदल गया है ।" 2"

इसी प्रकार "खोटे पैसे" का कमल अपने आपको उच्च शिक्षित एवं उच्च मानता है । उसकी पत्नी नन्दी अनपढ़ है, और उसके साथ उच्च सोसाइटी में नहीं आ सकती । वह कलकत्ते में नौकरी करता है । साल भर में एक बार घर में आता है, परन्तु अपने ही अहं में चूर । नन्दी भय के मारे अपने साल भर के सुःख-दुःख का प्रकटीकरण नहीं कर पाती । वह अपने राग रंग में लीन होकर भूल जाता है कि पत्नी की विवश परिस्थितियों को जानना भी उसका कर्तव्य है । पुरुष अपने अहं को ठेस नहीं लगने देना चाहता, न ही अपनी सुख-सुविधा तथा अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधा सहन करता है । वह स्पष्ट नन्दी से कहता है "मुझे अक्सर दौरे पर बाहर रहना पड़ता है, रात आधी रात मेरे कमरे में दसियों तरह के मिलने वाले आते रहते हैं । तुम्हें इसी कमरे में रहना होगा । मेरे किसी काम में तुम दखल नहीं दे सकोगी ।"3" "सूनी नदी के पुल" के गोविन्दचन्द भी अपनी पत्नी की इसलिए उपेक्षा करते हैं कि वह पढ़ी-लिखी नहीं थी, और उसके साथ क्लब आदि में नहीं जा सकती थी । इसलिये वे उसकी उपेक्षा

---

1. आधुनिक युग के वातायन से : अशोक कुमार गुप्त, पृ.48
2. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.30
3. खोटे पैसे : शिवानी : पृ.14.

करते हैं । सरला की इसी दुःख में मृत्यु हो गई ।" योगेश उन दिनों विलायत से पढ़ कर आये है । अपने को पूरे साहब समझते है । उन्हें चाहिये थी ऐसी पत्नी जिसे वह चार आदमियों की संगत चांदनी रातों में नाव पर पिकनिक कर सकें, जो अपने यौवन, रूप और रंग का अत्यधिक विज्ञापन कर सके, तथा अपनी देह को उनके मित्रों के साथ सौंपकर नाच सके । 1.

इसके विपरीत यदि स्त्री अधिक "माडर्न " है, तो पति अपनी आर्थिक विवशता से पीड़ित होने के कारण अपना तालमेल नहीं बैठा पाता है जैसे " लेडीज क्लब" के बी पुरी की पत्नी । बी पुरी की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं है फिर भी उनकी पत्नी शान-शौकत में जीना चाहती है । अत्यधिक आधुनिक वेश-भूषा में रहती है । आये दिन पार्टी करती है और शान-शौकत का झूठा प्रदर्शन करती है।"2

कुछ संबंध ऐसे भी है, जो किसी नैतिक, नाम अभिधान से अभिषिक्त नहीं है । परन्तु ये संबंध अन्य की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म और गहरे होते है। जीवन में एक को दूसरे की और दूसरे को पहले की अपेक्षा होती है । यह संबंध इतने अमूर्त रूप में होता है कि उन्हें [पति-पत्नी] भी ज्ञात नहीं होता है । इनमें जीवन की विवशता है, जो संबंधों को आधुनिक मनःस्थितियों के मध्य औचित्य लिए हुए होती है । ऐसा होने में मानव -संबंधों के बीच बढ़ती हुई उदासीनता है । ऐसी ही कुछ स्थिति मन्नू भंडारी के उपन्यास "आपका बंटी" में है । "3.
अजय और शकुन एक दूसरे को पराजित दिखाना चाहते है । अजय से विलग होकर भी शकुन राहत का अनुभव नहीं कर पाती । अपने वैवाहिक जीवन की एकरसता से ऊबकर उसने सम्बन्ध-विच्छेद किया था । परन्तु संबंध विच्छेद के बाद का अनुभव पहले से सुखद नहीं है । वह स्वयं स्वीकारती है कि "दस वर्षों का यह विवाहित जीवन एक

---

1. सूखी नदी का पुल . पृ. 54
2. लेडीज क्लब : मंजुल भगत, पृ. 70
3. आधुनिक युग के वातायन से अशोक कुमार गुप्त : 52.

अँधेरी सुरंग में चले जाने की अनुभूति से भिन्न नहीं था । आज जैसे एकाएक वह उसके अन्तिम छोर पर आ गई है । पर आ पहुँचाने का संतोष नहीं है, ढकेल दिये जाने की निरीह कचोट भर है.... वह अजय को पराजित देखने की लालसा में स्वयं हार गई है ।"[1]

कुछ सीढ़ियों में स्त्री-पुरुष द्वारा शारीरिक सुख प्रदान कर, सीढ़ियों को सुदृढ़ बनाने का ही प्रयत्न किया गया है, यह प्रवृत्ति पति-पत्नी के बीच की स्थितियों में विशेष निराकुलता पैदा करती है, दूसरे शब्दों में इसे हम मैथुन-वृत्ति भी कह सकते हैं । क्योंकि मैथुन विवाह का आवश्यक अंग माना जाता है । इस संदर्भ में पति-पत्नी की समान संतुष्टि अपेक्षित है । इसका प्रभाव " क्षुधा-वासना" में परिणत होकर नारी-जीवन को आग में झुलसाने लगता है । इसी विकृति का परिणाम मानसिक स्तर पर हानिकारक तनाव बन जाता है । "बात एक औरत" के उपन्यास का लेखक एक कामुक एवं वासना-प्रिय पति है । पत्नी के सुख-दुःख की उसे परवाह नहीं है, हमेशा उसकी देह की चाह उसमें रहती है । " दिन-भर बैठे-बैठे कमर टेढ़ी हो जाती और उस पर लेखक उसके आराम, थकावट, सुख-दुःख आदि के बारे में कुछ न पूछकर उसे सारी रात बाहों में थामे हुए डायल करता रहता..। लेखक जैसे ही पति होते है क्या ! - रसिया : जानवर । सुख-दुःख और अपनेपन के दो शब्द तक नहीं पूछते । परिचय अपरिचय के बीच कोई सेतु नहीं... वासना की कमजोर रस्सी ।"[2] "सुरंगमा" उपन्यास का पति गजानन भी एक क्रूरतम प्रवृत्ति" का पति है । पत्नी के इच्छा के विरुद्ध उससे संभोग स्थापित करता है ।[3] "टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष " का पति मनोज भी अपने अधिकार भावना रखकर पत्नी की इच्छा के विरुद्ध उससे दैहिक सम्बन्ध स्थापित करता है[4]

---

1. आपका बंटी : मन्नू भंडारी : पृ.
2. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री, पृ.51
3. सुरंगमा : शिवानी : पृ.21
4. टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : पृ.106

यह स्थिति अत्यधिक जटिल होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पुरुष द्वारा अपने "फ्रस्ट्रेशन" का बदला अपनी पत्नी से लिया जाने लगा है, क्योंकि वह जीवन की विषमताओं के प्रति समर्पित है ।

पति-पत्नी में प्रेम और काम भाव सम्बन्धित वैवाहिक विषमता वैवाहिक जीवन के सामंजस्य को झकझोर देती है । पति-पत्नी में यौन-अभियोजन (सेक्सुअल एडजस्टमेंट) के अभाव में दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातें भी खीझ और झुंझलाहट उत्पन्न करती है । "पतझड़ की आवाज़ें" की सुनीता सुधांशु की कामुक प्रवृत्ति के कारण असन्तुष्ट रहती है । उसे यह जानकर बहुत अधिक दुःख होता है कि उसके पति को "प्रेम" की जगह " देह की आकांक्षा अधिक है । उस आदमी को प्यार की नहीं, किसी भी मांसल औरत की ज़रूरत है । इस सत्य से परिचित होने पर सुनीता अपने पति के साथ हम बिस्तर होना पसन्द नहीं करती। वह पति की काम-इच्छा की उपेक्षा करती है । फलतः दोनों में खींचातानी चलती है ।[1]

"अपने साथ" में पति-पत्नी में दूसरी ही प्रकार की स्थिति है । "वैका" ने अपने बचपन में दादीमां से उन कहानियों को सुन रखा है जिनमें पति-पत्नी के सम्भोग को गन्दा कहा गया है । अपराध या पाप का यह बोध वैका के जीवन में गहरे में उतर जाता है और अपने विवाह के बाद अपने पति रोहित से दूर-दूर रहने लगती है । जिसके कारण रोहित बार-बार दौरे पर रहता है और वह घर में अकेली आत्म-निरीक्षण करती रहती है ।[2]

आज जीवन के क्षेत्र में पति-पत्नी के सम्बन्ध अन्तर्द्वंद्व, संघर्ष और तीखे तनावों से प्रभावित हुए हैं । इसका सबसे बड़ा कारण उनके द्वारा किसी नयी निजी जिन्दगी की स्थितियों में जीने की चाह है । "मृदुला गर्ग" के उपन्यास " उसके हिस्से की धूप" की पत्नी निजी निर्णय लेती है, वह अपने पति जितेन को छोड़कर मधुकर से विवाह कर लेती

---

1. पतझड़ की आवाज़ें : निरुपमा सेवती : पृ. 157
2. अपने साथ : ज्योत्स्ना मिलन : 166.

है । क्योंकि विनोद ने उसे उपेक्षा एवं अकेलापन दिया था ।"[1] "मेरा नरक अपना है" कि पत्नी भी इस निर्णय पे लेती है कि वह पति को त्याग कर अपने प्रेमी के पास नहीं जायेगी, चाहे उन दोनों के बीच कितना ही तनाव क्यों न हो ।"[2] स्त्री पुरुषों द्वारा जीवन अपने निर्णयों पर नहीं, बल्कि अपनी "स्थिति" के निर्णयों पर जिया जाता है । "टुकड़ों में बँटा चन्द्रधनुष" के विनोद और चरित्रा में आपस में तनाव एवं अलगाव है । चरित्रा विनोद को पसन्द नहीं करती है, परन्तु विनोद उस पर अधिकार जमाता है । पहले तो वह इन्कार कर देती है परन्तु बाद में अपनी स्थिति को देखकर निर्णय ले लेती है तथा विचारों की भिन्नता के बावजूद वह उसी के साथ रहती है ।[3] "घर मेरा है" कि पत्नी स्थिति को देखकर अंत में निर्णय ले लेती है कि वह अब दब कर नहीं रहेगी और अन्य औरतों की तरह काम करेगी, क्योंकि यह घर उसका अपना है ।[4]

पति-पत्नी के संबंधों में तनाव का विघटन हुआ है और यह दाम्पत्य सम्बन्ध न केवल शारीरिकता के धरातल पर आया है वरन्, जहाँ भी दोनों एक दूसरे को झेले जाने या कहूँ कि निभाते जाने की सीमा में सिमट कर रह गये हैं । वे तनाव और नाराज़गी की स्थिति में जी रहे हैं । पहले का दाम्पत्य जीवन जो कभी विश्वास के पंखों उड़ता और समर्पण के मैदान में खेलता था, आज वही सन्देह और अविश्वास की कैंचियों से कतरे जा रहा है । जहाँ दिल के आँगन में कभी प्यार जगमगाता था, वहीं अहं के गुब्बारे में भरी हुई नफरत की हवा डोलती है । "बिन्दु" उपन्यास के कृष्णकान्त को लिया जा सकता है । पहले जहाँ वह अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करता था, वहीं अब उससे नफरत करने लगा । बिन्दु के लाख सफाई देने पर भी वह उस पर विश्वास नहीं कर सका । " नहीं बिन्दु विश्वास तो मुझे रहा नहीं । शादी की बुनियाद जिस पर होती है, वह समाप्त

---

1. उसके हिस्से की धूप : गर्ग
2. मेरा नरक अपना है : [illegible]
3. टुकड़ों में बँटा चन्द्र धनुष : प्रभा सक्सेना
4. घर मेरा है : प्रभा सक्सेना : पृ.30

हो गया ।"1. "इन्नो" उपन्यास का नायक भी अपनी पत्नी से पहले एकनिष्ठ प्रेम करता था, जो अपने कमरे में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करता था, वही बाद में अपनी ही पत्नी पर सन्देह करने लगता है, और जिस कमरे में दूसरों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था, वही अब उस कमरे में लड़की आने की इजाज़त दे देता है ।2. "मेरा महल अपना है" के पति-पत्नी जो पहले एक दूसरे से बेहद प्रेम करते थे, दिल की गहराई से प्रेम करते थे वही एक-दूसरे से नफरत करने लगे हैं, और दूसरों के सामने एक अच्छे पति-पत्नी का दिखावा करते हैं "ड्राइंग रूम में बैठे थे तो सब तो वह बहुत खुशनुमा पिता, पति और संतुष्ट परिवार का स्वामी दिखना चाह रहा था। शीला भी चहक-चहक कर उद्घोषित कर रही थी अपने सुखद दाम्पत्य को । "इनकी चिन्ता करती थी मेहमानों की ओर कह रही थी, "इन्होंने भी तो खाना नहीं खाया । ये अभी बाहर से आए । " मैं तो कभी अकेले इनके बिना खा ही नहीं सकती खाना । तू होरे इतने अच्छे हैं कि समझ करते है इनके लिए । खास कर दूसरों के सामने वह प्यार का जोश दिखाते हुए प्यार के नाम होने से ही कुढ़ने लगती । .... और वह भीतर की पीड़ा को और भी भीतर सोखने के प्रयत्न में घुटी-घुटी हँसी हँसता रहा । जब तक कि मिस्टर और मिसेज सक्सेना उनके यहाँ बैठे रहे - बस वह जैसे तैसे अपनी भूमिका निभाता भर रहा । थकता टूटता रहा ।" 3.

परन्तु "चित्तकोबरा" उपन्यास में उल्टी स्थिति है, पहले पत्नी अपने पति से बेहद प्रेम करती है, परन्तु पति उसकी निरन्तर उपेक्षा करता है । " मैं हमेशा जानता रही हूँ .. जब उसने विवाह किया था, सुनिश्चित विवाह से अधिक कुछ नहीं है । प्यार सिर्फ मेरी तरफ से है, सिर्फ मेरी ।"4. इस निरन्तर उपेक्षा के कारण वह जब दूसरे पुरुष से प्रेम करने लगती है, तब उसका पति उससे प्रेम करने लगता है और वह स्वीकारता भी है कि " मेरे साथ बड़ी भारी

---

1. बिन्दु : सुनीता जैन : पृ.62
2. इन्नो : मालती परुलकर : पृ.207
3. मेरा महल अपना है : निरुपमा सेवती : पृ.70,71.
4. चित्तकोबरा: मृदुला गर्ग: पृ .97.

निर्ममता छा गई है मनु "शायद ठीक उसी तरह जब तुमने मुझे प्यार करना बन्द किया • • मैं तुम्हें प्यार करने लगा ।"1• परिणाम यह है कि पति-पत्नी के सम्बन्ध मात्र औपचारिकता, विवशता, अभिशप्त जीवन और ऊब व अकेलेपन के पर्याय बनकर रह गये हैं ।

पुरुष निर्मित समाज में आज नारी की स्थिति परिवर्तित हो गई है । आज पति-पत्नी के सम्बन्धों में वैषम्य इसलिये दिखाई देता है, क्योंकि वह उसके जीवन को मात्र पुर्जापना बना देने वाले पुरुष की कृपा दृष्टि पर ही अपने को निरात्मा आश्रिता नहीं रखना चाहती । स्त्री को शोषित जीवन व्यतीत करने के पीछे उसके सामन्तवादी विचार है । वह स्वयं तो स्वच्छन्द विहार करना चाहता है । परन्तु नारी को प्राचीन मान्यताओं के संकुचित दायरे में रख सदा कर्तव्य-परायण और पतिव्रता ही देखना चाहता है । "कोहरे" उपन्यास का सुनील जो अपनी पत्नी को सम्पत्ति की तरह मानता था । उसकी इजाजत के बगैर बाहर नहीं निकलने देता था, तथा किसी से बात भी नहीं करने देता था ।" मादा खरगोश गर्भ-भार से शिथिल है, किन्तु नर-खरगोश के कुलांचे भरने में कोई कमी नहीं •••• । यह भी देखा कि मादा खरगोश की आँखों की लाल माणिक सी आँखों की चपलता स्थिर हो उठी थी - किन्तु नर खरगोश की पुतलियाँ वैसी ही नाच रही थीं ।"2• यह एक ऐसा पति है जो अपनी पत्नी के सामने ही दूसरी स्त्री से अवैध सम्बन्ध बनाता है, और विमला के यह कहने पर की यह इल्लीगल है, गैर कानूनी है, और रिपोर्ट कर दूँगी" कहने पर वह बड़े ही इत्मीनान से कहता है कि " मैं आपके डाइवोर्स का सूट पहले ही फाइल कर चुका हूँ ।"3• वह बड़े ही निर्मम सांकेतिकता से कहता है कि आई मस्ट वेड दिस ब्राइड टू "4• मैला उपन्यास का पति रोहिताश्व भी अपनी पत्नी को कठे अनुशासन

1• चित्तकोबरा : मृदुला गर्ग : पृ•101
2• कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ•24
3• कोहरे : " " : पृ•29
4• कोहरे : " " : पृ•28

में रखता है, और खुद पत्नी की सहेली के पति को पशु से पुरुष बनाते हुए स्वयं ही पशु बन जाता है । पत्नी की सहेली से ही प्रेम करने लगता है ।[1]

सामन्तवादी प्रवृत्ति के पुरुष, पत्नी को घर में संरक्षण पोषण देकर अपने कर्तव्य की परिसमाप्ति समझ लेता है और प्रतिकार में उस पर पूर्ण स्वामित्व चाहता है । "मछली मरा जल" का कमल अपनी पत्नी पर पूर्ण स्वामित्व चाहता है, उसे पसन्द नहीं कि उसकी पत्नी मायके जाये। वह चाहता है कि उसकी पत्नी सिर्फ उसी से ही प्रेम करे । उसे यह गर्व है कि वह अपनी पत्नी को ठाठ से रखता है । वह कहता है "क्या अभाव है तुम्हें यहाँ ! क्या श्रीमान् श्रीमती मुखर्जी यानि तुम्हारे माँ-बाप तुम्हें मुझसे अधिक प्रेम दे सकते हैं, उनका प्यार तो दिखावा मात्र है । वे प्यार के नाम पर तुमसे अपनी सेवा कराते हैं, वहाँ जाकर क्या करोगी मैं जानता हूँ ... । यहाँ का ठाठ से रहना तुम्हें कुछ लगता ही नहीं है । दिन-भर आराम ही आराम चारपाई पर पड़े-पड़े मेरे प्रति असंतोष को जन्म देते रहना, मुझे लगता है यह सब तुम्हारे मायके वालों की कुबुद्धि है । वे तुम्हें भड़काते रहते हैं....। मैं सात घण्टे तो आफिस में रहता हूँ और जब घर आता हूँ तो अपना काम तुमसे नहीं करवाता हूँ । तुम कहोगी तुम चाय बनाती हो, खाना पकाती हो एवं घर के काम करती हो । सोचो तो जरा कितना छोटा लेकिन तुम मेरे ऊपर जताती हो ... खाना वह तुम अपने लिए पकाती ही हो, मैं भी खा लेता हूँ ।"[2]

पुरुष किसी भी वर्ग का हो - उसकी आराम-प्रवृत्तियाँ एक सी होती है । "रेत की मछली" उपन्यास का शोभन अपने पौरुष के दम्भ में अपनी पत्नी कुंतल पर अत्याचार करता है । वह अपनी पत्नी की एकनिष्ठ सेवा और प्यार की उपेक्षा करते हुए एक अन्य लड़की मीनल के प्रेमपाश में बन्ध जाता है । शोभन कई बार कुंतल को

---

1. गैंडा : शिवानी : पृ. 16,19.
2. मछली मरा जल : शान्ति जोशी, पृ. 20.

शोभन के सामने प्रताड़ित करता है, उसे मारता-पीटता है, और उस पर झूठा लांछन लगा कर उसे बदनाम करता है । उसे जबरन कुछ पिलवाकर हमेशा के लिए रेगिस्तान के विशाल रेत के सागर में छोड़ दिया । शोभन एक साहित्यकार है । मानवीय मूल्यों पर बड़ी-बड़ी बातें करता है तथा संसार में अपनी महानता और उदारताओं का ढोल पीटता है । मानवता को अपना आदर्श मानता है, किन्तु उसका वास्तविक रूप कितना घिनौना है कि वह अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए, अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिये अपनी मनचाही, सुशील एवं आदर्श पत्नी तक को कुचरित्रा बता कर समाज में उसे बदनाम करता और त्याग देता है ।[1]

इसी प्रकार निम्न वर्ग का "नन्दलाल" चरित्रहीन, दायित्वहीन, स्वार्थी और व्यर्थ की डींग हाँकने वाला पति है, वह बातें बड़ी-बड़ी करता है किन्तु नैतिक साहस का अभाव है । कभी कहीं टिककर उसने काम नहीं किया, गाली-गलौज,कर्ज-उधार से भी बाज नहीं आता । जब मन में आया बिना कहे सुने घर छोड़कर भाग जाता है । वह अनारो की कमाई पर ऐश करता है । कभी उसकी सहायता नहीं करता ।"[2] "चौदह फेरे" का कर्नल भी अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है, उसे कभी भी प्यार नहीं किया । उसके सामने सदा अपना आतंककारी रूप ही उसके समक्ष रखता है । ताकि भय के कारण वह बोलने का साहस न कर सके ।[3]

नारी को पुरुष अपने से पृथक व्यक्तित्व प्रदान नहीं करना चाहता वह पति बन जाता है तो यही चाहता है कि उसकी पत्नी उसके कहने पर चले । जैसे वह नचाये वह वैसा ही नाच करे पति के हाथ में कठपुतली की तरह नाचे । "मेरा मन बनजारा दिया था" का हरीश अपनी पत्नी को केवल भोग्या मानता है "पत्नी तो

---

1. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ.792.
2. अनारो : मंजुल भगत : पृ.
3. चौदह फेरे : शिवानी :

मानो मिट्टी का पुतला है, जिसकी घर में स्थापना कर दी गई है । हरीश पत्नी को कठपुतली मानता है । वह उसको कहता है, चाहे प्यार कर ले या मिट्टी में मिला दे" पत्नी को फरियाद करने का अधिकार नहीं ।"[1] "प्रेम कहानी" का मधुकर भी अपनी पत्नी को कुछ नहीं समझता है । जब उसकी पत्नी मायके गई थी तो वह साफ कहता है कि मैं उसके विरह में क्यों मरूं । अतः वह एक ऐसा पति है जो अपनी पत्नी को पति की जूती के समान समझता है । "अब बीबी मायके रहती है तब हम इन पुस्तकों के सहारे जिन्दगी काटेंगे ।[2] "पारु ने कहा था" का पति अपनी पत्नी को बराबर नहीं समझता है । वह एक लेखक है, परन्तु उसमें नारी की संवेदना नहीं है । वह कहता है औरत को बराबरी का दर्जा नहीं देना चाहिये । फिर भी वह अपनी पत्नी के विचार को पसन्द करता है ।"[3]

दुविधा के झमेले में पड़ी हुई मजबूरियों की बैसाखियों के सहारे अपने वादों और अपनी स्थिति में जीवन से जुड़े रहने की विवशता को मानती नारी जहाँ भीतर से टूटी-बिखरी है । वहीं उसके मन पर अकेलेपन का मनो-बोझ भी आ पड़ा है । "मेरे सन्धि पत्र" की शिवा भी अपनी ही नियति में जकड़ी हुई है । उसका पति एक रूढ़िवादी है । वह हमेशा अपने आप में ही व्यस्त रहता है । जिससे शिवा के मन पर अकेलेपन का मनोबोझ आ पड़ता है ।"[4] वह हर पल टूटती बिखरती रहती है । "सूखी नदी का पुल" की तारा है । जिसने योगेश्वरी के साथ प्रेम-विवाह किया था । परन्तु दोनों का प्यार धीरे-धीरे कम होता चला जाता है । वह गृहस्थी को छोड़कर आश्रम में चले जाना चाहती है, परन्तु वह विवश है । इसी विवशता के कारण वह घुटती रहती है ।[5] "नावें" उपन्यास की मालती अपने पति से दूर रहती है । दोनों के बीच अन्तराल सा है,

---

1. मेरा मन बनवास दिया सा : शान्ति जोशी : पृ.32
2. प्रेम कहानी : ममता कालिया : पृ.72.
3. पारु ने कहा था : मणिका मोहिनी : पृ.12
4. मेरे सन्धि पत्र : सूर्यबाला : पृ.33
5. सूखी नदी का पुल

मालती अपने अकेलेपन में ही जकड़ी रहती है। क्योंकि उसने विवेक से विवाह अपनी बेटी के कारण ही किया था, इसलिये वह विवेक से आत्मिक रूप से जुड़ न सकी। इस अकेलेपन में वह विवशता से जुड़ी है।"[1] "पाषाणयुग" की नीरजा अपनी ही स्थिति में जीवन में जुड़े रहने की विवशता में जी रही है। उसने विवाह अपने ही विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर से किया था। पति का जो कर्तव्य होना चाहिये प्रोफेसर ने कभी नहीं निभाया। पत्नी होने के नाते अपनी पुस्तक का सारा काम उससे करवा लेते हैं। परन्तु उस पुस्तक के समर्पण पर उसका नाम न लिखकर अपनी पूर्व पत्नी का नाम लिखते हैं। फिर भी नीरजा कुछ नहीं कहती। वह अपने आप में ही घुटती रहती है। उसे इस विवाह से सुख नहीं मिलता है। वह स्वयं कहती है "यह अकेलापन क्या आज का है। इसकी तो अब आदत-सी बन गयी है। तुम्हारे पिता के साथ रहकर और सीखा ही क्या है। बचपन में तुम लोगों ने उस जादूगर की कहानी तो सुनी होगी, जो एक राज-कुमारी को वश में कर लेता है दिन भर तो बेचारी पत्थर की मूरत बनी रहती है और रात में.... ।[2]

आज का स्त्री-पुरुष सम्बन्ध अपनी पसन्द की परम्परा से जुड़ना चाहता है। अतः स्त्री का महत्व समय के साथ चल सकने में है। "वह तीसरा" उपन्यास के पति-पत्नी के विचारों में भिन्नता है। जहाँ संदीप यथार्थ में जीना चाहता है तो वही रंजिता भावुकता में जीती है। परन्तु ये दोनों अपनी-अपनी पसन्द से जुड़े हैं। दोनों एक दूसरे से प्यार नहीं करते बल्कि स्वयं से प्यार करते हैं। जिन होठों से यह दम्पत्ति रस लेते थे, वे बाद विष उगलने लगे।[3] "सूखा सैलाब" उपन्यास का कैलाश अपनी पत्नी ममता को अपनी पसन्द की परम्परा के अनुसार ढालना चाहता है। वह उसे अत्याधुनिक

---

1. नावें : शशिप्रभा शास्त्री पृ. 86
2. पाषाण युग : मालती जोशी पृ. 102
3. वह तीसरा : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.

बनाना चाहता है । उसे क्लब ले जाना चाहता है, अपने मित्रों से मिलवाना चाहता है । जिससे उसके दोस्त उसकी किस्मत पर रश्क कर सकें ।"बाहर जाना ही जरूरी नहीं, तुम्हें एन्टरटेन भी करना होगा, समझी ! कितने काम के हैं ये लोग हमारे, तुम अगर इतना भी न कर सकी तो मैं यही समझूँगा कि मैंने कभी विवाह ही नहीं किया था ।"[1] यह पुरुष की स्वार्थपरता ही नारी को विनाश के कगार पर पहुँचाती है । क्योंकि वह भौतिकता के अन्धेमार्ग पर चलने के लिए नारीत्व का परित्याग करवाता है । कैसी विडम्बना पूर्ण स्थिति है आज नारी की ।

विवाह के बाद कामकाजी नारी दाम्पत्य संबंधों में मधुरता तब बनाए रख सकती है, जब घर के काम-काज में उसे सहायता उपलब्ध होती है । यदि कोई पतिमहोदय यह मानता रहा कि नौकरी के बावजूद पत्नी घर का सारा बोझ उठाए, तब तो तनाव पैदा होगा ही । आज पत्नी को पत्नी-माँ और कामकाजी नारी की तिहरी भूमिका निभानी पड़ती है । इसलिए उसके आचरण में जटिलता आ जाती है । उसे समझे बिना यदि पति उस पर अपनी रुचि को थोपने लगता है, उसका अनादर करने लगता है, तब संघर्ष आरंभ होता है । "नरक-दर-नरक" के विनय गुप्ता की पत्नी सीता कॉलेज में पढ़ाती थी । शोध छात्र भी इतना अध्ययन न करते होंगे जितना वह लेक्चर तैयार करने में करती । पर विनय कोई सहयोग नहीं करता था । हाँ भारतीय पति के नाते कॉलेज जाने और वहाँ से लौटने में कितना समय रिक्शे में लगता है । उसका वेतन कितना, कहाँ खर्च होता है । उसकी साड़ी का डिजाइन और रंग इन सब का निर्धारण विनय के हाथ में था । रसोईगीरी और बाबागीरी ने उसकी शक्ल को तेजी से इतना बदल डाला था कि कटी-छँटी आकृति के आधार पर विवाहेत्तर प्रेम-प्रसंग की संभावना बची ही न थी, फिर भी जब विनय उस पर सन्देह करता है तो वह क्रोध में आकर कह उठती है । "अब तक तो मोटी कहा करते थे, लेकिन अब

---

1. मुर्दा मैदान : निर्मला वाजपेयी : पृ.29.

जाना चाहती थी ।[1] "एक इंच मुस्कान" की रतन चड्ढा का पति एक निकम्मा एवं आराम पसन्द है पहले अस्थायी नौकरी से चार सौ रुपये कमाते थे, पर बाद में उसे भी छोड़ स्वयं पत्नी के सिर पर आर्थिक भार सौंप कर स्वयं बेफिक्र हो जाते है । घर के काम में भी उसका सहयोग नहीं करते । बेचारी रतन पति की इच्छाओं को घर में और अपनी नौकरी की जिम्मेदारियों को घर से बाहर निबाह करने में दो तरफा बोझ से दबी जाती है ।[2] "घर मेरा है" की पत्नी एक स्कूल में टीचर है । उसका पति अपने कर्तव्य को नहीं पहचानता। अपनी पत्नी को कभी सहयोग नहीं देता है । वह चाहता है कि उसकी पत्नी नौकरी भी करे, घर का काम भी करें और बच्चों को भी संभाले । पत्नी के कहने पर वह घर छोड़ कर चले जाने की धमकी देता है " घर छोड़कर अलग रहूँगा जाकर ।" और बच्चे : मुझे कोई मतलब नहीं .... ।[3]

भौतिकवादी चेतना के कारण आपसी सम्बन्धों को निर्धारित करने वाली धुरी "अर्थ" को महत्त्व दिया जाने लगा , जिसके कारण परम्परित मूल्यों के प्रति अनास्था बढ़ने लगी । त्याग, सेवा, सहिष्णुता धर्म तथा कर्तव्य परायणता आदि को अर्थ प्रधान संस्कृति ने छिन्न-भिन्न कर दिया । "शर्त" उपन्यास का समीर सीता की इसलिये अवहेलना करता है कि वह उसके मन मुताबिक दहेज नहीं लाई थी । सीता की सेवा, सहिष्णुता तथा कर्तव्य परायणता की वह अवहेलना करता है । वह सीता से साफ कहता है कि "तुम्हारे पिताजी ने रुपया नहीं दिया । हम लोगों को पूरी आशा थी कि दस-पन्द्रह हजार तो नकद देंगे ही ।[4] "प्रिया" उपन्यास का राजकमल पैसों के जोर से अपनी उम्र से कम आयु की लड़की से विवाह करता है, और अपनी ही उपस्थिति में अपनी ही आज्ञा से अपने

---

1. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ.189
2. एक इंच मुस्कान : मन्नू भण्डारी : पृ.
3. घर मेरा है : प्रभा सक्सेना पृ.18
4. शर्त : प्रभा सक्सेना : पृ.46.

मित्रों द्वारा अपनी पत्नी का बलात्कार करवाता है ।[1] "कुमारिकाएँ" उपन्यास का शेखर भी इसी अर्थ के कारण अपनी पत्नी सुचिता से कहता है कि वह स्वामीजी की सेवा करे, क्योंकि स्वामीजी की कृपा के कारण ही उनका घर धन धान्य से परिपूर्ण है ।[2] "यह तो तुम्हारा भाग्य है सुचि की स्वामीजी तुम्हें सबसे अधिक पसन्द करते हैं और दो बरसों से वे लगातार सेवा के लिये तुम्हें चुनते हैं । तुम क्या जानो कि उनकी कृपा से ही पिताजी का कारोबार सुधरा.... और अब भी उनकी ही कृपा से तो हमारा घर धन धान्य भरा पूरा है ।[2] जब सुचिता इन्कार कर देती है तो वह अपनी ही पत्नी को धोखे से नशे का पान कराकर स्वामीजी के हवाले कर देता है । इसी अर्थ के कारण पति-पत्नी के संबंधों में दरार और खोखलापन आ जाता है । "बँटता हुआ आदमी" के पति-पत्नी में अर्थ के कारण दरार उत्पन्न हो जाती है । जो पक्के रिश्ते थे उनमें बदलाव आ गया, जो पत्नी उसके बगैर एक दिन भी नहीं रह सकती थी, उसमें आश्चर्यजनक रूप से बदलाव आ गया है । पुरुष कभी नहीं चाहता है कि पत्नी अपने संबंधों के बारे में कभी उसके माँ-बाप से कहे । चाहे उन्हें कितनी ही आर्थिक कठिनाई क्यों न हो । वह अन्य लोगों के सामने अपने संबंधों को अच्छे बनाये रखना चाहता है ।[3] "प्रतिध्वनियाँ" का नीलकान्त अचला से इसलिये विवाह करता है क्योंकि वह एक सेठ की बेटी थी, यद्यपि वह एक गरीब लड़की से प्रेम करता था, और अचला भी एक अन्य युवक से प्रेम करती थी, यह जानते हुये भी नीलकान्त अचला से विवाह करता है, और उसकी अतुल संपत्ति का मालिक बनता है।[4] मालिक उपन्यास का रमेन्द्र भी एक ऐसा पति है जो अपनी पत्नी से यह कहता है तुम्हें आपत्ति न हो, तो मैं उस अंगूठी के बदले तुम्हारा जोड़ा बनाने को तैयार हूँ, उसका गुलाम पति ।[5] अतः ऐसा पति

---

1. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.117
2. कुमारिकाएँ, पृ. 12
3. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती, पृ.22
4. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल, पृ.
5. मालिक : शिवानी, पृ.39.

है जो पैसों की खातिर अपनी पत्नी की बड़ी बहिन का पति भी बनने को तैयार है । "ममता कालिया" का उपन्यास "नरक-दर-नरक" में जोगेन्दर और उषा का दाम्पत्य सम्बन्ध आर्थिक तंगी के कारण तनाव पूर्ण हो जाता है । विवाह के बाद उनके जीवन की विरोधी परिस्थितियाँ देखने लगती है । उनमें आर्थिक अभाव के कारण धीरे-धीरे ढीलापन आ जाता है ।[1]

पति-पत्नी के संबंधों में भावनाओं की अनुभूतियों की प्रगाढ़ता जब तक न होगी, वह एक दूसरे से बँधे तो रहेंगे परन्तु हृदय की भटकन समाप्त न होगी । "कुमारिकाएं" के पति-पत्नी विक्रांत और शुचिता एक दूसरे से बँधे हुये हैं, परन्तु विक्रान्त में भावनाओं की अनुभूति कम है । वह शुचिता से विवाह तो करता है परन्तु दिल से नहीं अपनाता । उसकी बेटी को अपनी बेटी नहीं मानता । वह दूसरी औरत से भी सम्बन्ध बनाता है । वह एक ऐसा पति है जो यह दावा करता है कि वह फिर भी शुचिता अपनी पत्नी से ही प्यार करता है " बस देह धर्म की तृप्ति का संबंध कहीं भी शुचिता के प्रति मेरा विश्वासघात नहीं है, मेरी वह धर्मपत्नी है, उसे मैं प्यार करता हूँ, और उसके प्रति मेरे मन में इतना कुछ है कि सीमा नहीं । वह कहे कि विक्रांत मेरे लिये शरीर को रख दो तो मैं दूँगा । और उसे न कोई कमी हुई, न होगी ।"[2]

पति-पत्नी के मधुर स्थितियों की खाई को नापने के लिये वे अचेतन तथा चेतन मन की गहनता तक पहुँचते हैं । पहले विवाह अल्पायु में हो जाते थे । उस कच्ची उम्र में नारी के चेतन तथा अचेतन में यह संस्कार डाल दिया जाता था कि पति परमेश्वर है । इसलिए हृदय की सम्पूर्ण भक्ति उसे ही अर्पित करती है चाहे वह पात्र हो या न हो । परन्तु शिक्षित नारी की अब पति के लिए अपनी कल्पना है, वह अपने कल्पना-पुरुष को अपने दृष्टिकोण से देखती है ।

---

1. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ. 78.
2. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री , पृ. 26, 108.

यही कारण है कि हिन्दुओं में सम्पत्ति की तरह नारी को अधिकृत वस्तु मानने वाला पुरुष नारी के स्व-अस्तित्व को सह नहीं पाता विभिन्न विचारधाराओं में विकसित व्यक्तियों में यदि सामंजस्य करने की प्रवृत्ति का प्रभाव है तो सत्ता की टकराहट उन्हें तोड़ देती है । ऐसी स्थिति "सूखी नदी के पुल" में शैलेश और अर्चना के बीच है । अर्चना अपने पति को अपने कल्पना के अनुरूप नहीं पाती । वह एक शिक्षित नारी है । वह स्त्री और पुरुष दोनों का समान अधिकार मानती है । परन्तु इसके विपरीत शैलेश उस पर अपना अधिकार जताना चाहता है । जिससे दोनों में टकराहट होती है, और अर्चना शैलेश को छोड़ कर चली जाती है । वह साफ कहती है कि जिसके साथ मुझे जीवन की मंज़िलें तय करनी है वही मेरे प्रति उदासीन है तो मैं अब तक यूं बैठ कर तिल-तिल जल सकती हूं ।"1" "टुकड़ों में बंटा इन्द्रधनुष" की गरिमा विनोद को अपनी कल्पना के अनुरूप नहीं पाती है क्योंकि विनोद में हीन भावना है । वह गरिमा पर अपना आधिपत्य जताता है । उसने एक भावुक, कवि एवं व्यक्ति की कल्पना की थी । परन्तु विनोद में इन तीनों का अभाव था ।"2" क्योंकि पति के साथ उसने जिस दुविधा को जिया वह सामाजिक और प्रतिष्ठा का समानार्थ था । पर अनमेल विवाह का एक सदमा सा था । उसका वैवाहिक जीवन कुंठाग्रस्त था ।

नारी शिक्षा के बावजूद आज स्त्री-पुरुष का भेद मिटना सरल है : "एक और मुस्कान" की रंजना अमर पर अनुरक्त है अतः वह उससे विवाह कर लेती है । परन्तु जब वह देखती है कि अमर का झुकाव अलका के प्रति है, और वह उसके प्रति ईमानदार नहीं है तो वह उससे जल्द ही सम्बन्ध तोड़ देती है । क्योंकि वह एक संस्कार जड़ित स्त्री है । उसे यह बिल्कुल पसंद नहीं है कि उसका पति अन्य से संबंध रखे । उसकी यह धारणा है कि स्त्री-पुरुष के मध्य मित्रता

---

1. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ. 185.
2. टुकड़ों में बंटा इन्द्रधनुष : प्रभा सक्सेना : पृ. 63.

का कोई सम्बन्ध नहीं होता है ।[1] नारी आज बेमानी व आरोपित सम्बन्धों को बनाये रखना नहीं चाहती । जब तक वह अमर पर अनुरक्त है उसके लिये सब कुछ करने को तैयार है, अपने मानापमान को भी चिन्ता नहीं करती । लेकिन यह विश्वास हो जाने पर कि अमर उसके प्रति ईमानदार नहीं है, उसका झुकाव अलका की ओर है, तब उससे विमुख हो जाती है ।[2]

नारी अपने पति को अपने अनुकूल ढालना चाहती है, लेकिन जब वह ऐसा नहीं कर पाती तो उसे पूरे घर का विरोध सहन करना पड़ता है और वह स्वयं को अपने घर में ही अकेला अनुभव करती है । "ज्वालामुखी के गर्भ" में पत्नी की भी यही स्थिति है । सुलक्षणा को यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि पति उदार एवं उसकी प्रवृत्ति का हो । वह चाहती है कि उसके पति में कार्य करने की क्षमता हो । जब वह उसे अपने अनुकूल करना चाहती है तो उसकी सास उसका विरोध करती है । वह पति को सही रास्ते पर लाने के लिये घर छोड़कर जाना चाहती है । परन्तु पति में बिल्कुल भी अधिकार भावना नहीं है । वह उसे रोक भी नहीं पाता ।[3] "शर्त" उपन्यास की गीता जब अपने पति समीर को अपने अनुकूल बनाना चाहती है तो उसे पूरे घर का विरोध सहन करना पड़ता है, यहाँ तक कि उसका पति भी उसका साथ नहीं देता ।[4] सास-श्वसुर की आज्ञाओं के सामने सिर झुकाने के अतिरिक्त वह और कुछ भी नहीं कर पाती । जब तक पति खुद यह महसूस न करे कि उसे अपने हक के अनुसार प्रेम और आदर मिले तब तक वह भी परिवार वालों के साथ निर्मम व्यवहार करता है ।

पत्नी अगर विवाह के पूर्व किसी से प्रेम सम्बन्ध बनाती है, तो वही विवाह के बाद खतरा बन जाता है । चाहे पति विवाह

---

1. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव मन्नू भंडारी : पृ.22।
2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि : स्वर्णलता, पृ.140.
3. ज्वालामुखी के गर्भ से : मालती जोशी , पृ.56.
4. शर्त : मालती जोशी, पृ.57.

से पूर्व प्रेम सम्बन्ध बनाये हो, पर वह अपनी पत्नी को माफ नहीं कर सकता । "बिन्दु" उपन्यास के कुलकांत को जब यह मालूम होता है कि उसकी पत्नी विवाह से पूर्व किसी से प्रेम करती थी, तो वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है ।"[1] वहीं नारी कभी इतनी सरलता से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करती ,चाहे उसका पति स्वयं यह बात स्वीकारता ही क्यों न हो । "निर्ममता का अभिशाप" का मोहन सरस्वती से सुहागरात में ही कहता है " पर सरस्वती मिलन के पूर्व मैं तुमसे कुछ गुप्त नहीं रखना चाहता । आज के दिवस हम दोनों को अन्य ही रूप में एक दूसरे के सम्मुख आना है । अपने प्यार की बड़ी-बड़ी डींगे मारने के पूर्व मैं तुम्हें बतला देता हूँ कि तुम से पूर्व ही मैं अपना हृदय किसी को दे चुका हूँ ... ।"[2]

शिक्षित होने पर भी रूढ़ि और परंपरावादी होने से पुरुष यह सोचता है कि सुखी जीवन के लिए सिर्फ एक सीधी, समर्पणशील पत्नी मिलना ही काफी है, यह सोचकर " बेघर " का परमजीत विवाह एक लगभग अपरिचित रमा के साथ कर लेता है जो झगड़ालू और पति को न समझने वाली निकलती है । निरन्तर उसके स्वभाव के कारण अकेलेपन का दबाव फैलता रहता है । ऊपरी तौर पर एक सफल अफसर आदमी होने पर भी वह व्यक्ति स्तर पर एक असफल जीवन व्यतीत करता है ।"[3] अतः यह स्थिति दो व्यक्तियों को साथ बाँध देती की है । जहाँ इनके बीच एक स्नेह या संवाद कभी बन ही नहीं पाता। समझ और मैत्री की अनुपस्थिति तथा साथी की आशाओं पर पानी फिर जाने से यह खाई बढ़ती चली जाती है ।"[4] जोंक का सुधीर और सरिता के मध्य भी आक्रोश का मुख्य कारण यही है कि सरिता सुधीर के चिर संचित पत्नी रूप की छवि या "इमेज" को नकारती है । सरिता को विवाह से पूर्व देखकर सुधीर यह स्वप्न संजो लेता है

---

1. बिन्दु : सुनीता जैन, पृ.
2. निर्ममता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तांगड़ी , पृ.258.
3. बेघर : ममता कालिया : पृ.
4. हिन्दी कहानी : अलगाव का दर्द : गार्डन वाली पृ.108
रोजरमल

कि " लड़की पढ़ी लिखी है, आजाद ख्याल भी होगी । उधर वह उसके हृदय की तह में छिपी आकांक्षाओं को समझ लेगी, उसके कदम से कदम मिलाकर चल पायेगी, उसे जिंदगी जैसे चाहता है जीयेगी, जो उसकी इच्छा होगी, उन्हीं के अनुसार अपने को ढालेगी ।"1. परन्तु सरिता का संकीर्ण व्यावसायिक बुद्धि वाला कृपण स्वभाव जब-जब सुधीर के उदार, मानवतावादी, निःस्वार्थ परोपकारी स्वभाव से टकराता है, दोनों में लड़ाई-झगड़ा शुरू हो जाता है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने संकीर्ण मनोवृत्ति वाले स्त्री-पुरुष के संबंधों को लिया है । अपनी हीन भावना के कारण उनमें तनाव उत्पन्न हो जाता है । "टेसू की टहनियाँ" का प्रकाश होम्योपैथिक है, परन्तु वह अंतर्विरोधों एवं हीन भावना से युक्त है । अपनी पत्नी के गुणों ने जैसे उसको और भी हीन कर दिया था । "शीला के गुणों ने प्रकाश को बहुत त्रस्त कर दिया और उसकी हीन ग्रन्थि रह-रहकर उसे सताने लगी और वह जैसे अन्दर से कहीं टूटने लगा । इस टूटन के साथ उसकी बाहरी झुंझलाहट बढ़ जाती ।"2. ऐसी ही स्थिति " उसकी पंचवटी" के यतीन की है । यतीन भी अपनी पत्नी के बहुत सारे गुणों, एवं लोकप्रियता से उसे क्षोभ उत्पन्न होता था । वह अपने बड़े भाई के प्रखर व्यक्तित्व के आगे अपने आपको हीन समझता था । मालती ने उसकी इस हीन भावना को हटाने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वह उसी में ही ग्रस्त रहा ।3. पत्नी अपने पति की हीन भावना को हटाना चाहती है, वह चाहती है कि उसका पति दब्बू एवं कायर प्रवृत्ति का न रहे, बल्कि खुद मेहनत करे, किसी की दया पर निर्भर न रहे । वह चाहती है कि उसके पति में अधिकार भावना रहे , इसके लिये चाहे उसे छोटे

---

1. वंशज : मृदुला गर्ग, पृ.95.
2. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री, पृ.36
3. उसकी पंचवटी, कुसुम अंसल : पृ.

से घर में ही क्यों न रहना पड़े । ऐसी ही स्थिति "ज्वालामुखी के गर्भ" के पत्नी की है । सुलक्षणा को हरि की दलीय प्रवृत्ति बिल्कुल पसन्द नहीं है । जिसकी न अपनी संवेदना है एवं न स्वाभिमान ।[1] वह स्वयं कहती है कि " मैं किराये के दो कमरों में भी गुजारा कर लूँगी, बशर्ते वह मेरा घर हो । जहाँ हर पल यह भाव न होता रहे, हम किसी और की छत के नीचे खड़े हैं । हर कौर के साथ यह ग्लानि न चिपटी रहे कि हम किसी और का दिया खा रहे है । इस तरह का अन्न खाते-खाते इन लोगों का स्वाभिमान जैसे खो चुका है ।[2] "समर्पण का सुख" गीता का पति राजू शुरू से ही हीन भावना से ग्रस्त था । क्योंकि उसके दोनों भाई उच्च नौकरियों में प्रतिष्ठित थे, एक वही मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ पाया । इसलिये वह किसी से भी खुलकर बात नहीं करता था । अपनी ही हीन -ग्रन्थि में डूबा रहता था । उसकी इसी हीन-ग्रन्थि को विवाह के बाद गीता ने पूरी तरह से हटा दिया । "शादी से पहले बच्चे ही तो होते हैं ये लोग उन्हें ठोक-पीटकर आदमी बनाना तो हमारे ही सिर आता है । कितने हीन-बोध से ग्रस्त था यह व्यक्ति । कितनी मुश्किलों से उसके मन की गाठें खोल पायी हूँ मैं । कितनी तपस्या करनी पड़ी है मुझे उसका विश्वास लौटाने के लिए ।[3]

शारीरिक सुन्दरता एवं असुन्दरता के कारण भी पति-पत्नी के सम्बन्धों में अन्तर आ जाता है । "लेडिज क्लब" का मि०कौल जितने सुन्दर है, उतने ही दिल के कठोर है, वह अपनी पत्नी को निरन्तर उपेक्षा करता है, जिसके कारण उसकी पत्नी अर्द्ध-विक्षिप्त सी रहती है । वह अन्य स्त्रियों से मेलजोल बनाये रहता है ।[4] परन्तु इसके विपरीत "मैला" का मेंहदी एक बदसूरत व्यक्ति है । वह अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करता है, परन्तु उसकी पत्नी उससे घृणा

---

1. ज्वालामुखी के गर्भ से : मालती जोशी पृ० 55
2. ज्वालामुखी के गर्भ से : मालती जोशी पृ० 58
3. समर्पण का सुख : मालती जोशी , पृ०
4. लेडिज क्लब; मंजुल भगत ; पृ०

करती है, वह उसे "गैंडा" कह कर बुलाती है " मेरे गैंडे का चमड़ा भी निखालिस गैंडे का है ।"[1] अपनी पत्नी की इस घृणा को भी वह प्यार से अपनाता है । उसे यह भी मालूम है कि उसकी पत्नी अन्य पुरुष से सम्बन्ध बनाये हुये है तो भी वह कुछ नहीं कहता । इसी प्रकार " अनित्य" उपन्यास का सुरेश भी अपनी पत्नी संगीता से बेहद प्रेम करता है, सुरेश का हृदय बहुत ही कोमल है । वह संगीता से जबरदस्ती नहीं करना चाहता । वह दयनीय नहीं बनना चाहता, वह नहीं चाहता है कि उसकी पत्नी उससे जबरदस्ती प्रेम करें । "बलात्कार वह करेगा नहीं, झूठा आत्म-समर्पण सहेगा नहीं ।"[2]

पुरुष आयु में पत्नी से अगर बड़ा है तो भी पति-पत्नी के संबंधों पर असर आ जाता है । पति उस पर सन्देह करने लगता है, उसके सुझाये हुये आदमी को नहीं रखना चाहता है " पाषाण युग" का प्रोफेसर अपनी पत्नी पर सन्देह करता है कि वह किसी अन्य पुरुष से सम्बन्ध तो नहीं बनाये हुये है । वह घुमा-फिरा कर पूछते हैं ।"[3] इसी प्रकार "सूखी नदी का पुल" के योगेशचन्द्र भी कभी-कभी अपनी पत्नी पर सन्देह करते है । शक की नजर से देखते हैं । "एक तो उन्होंने मुझ पर कभी विश्वास किया ही नहीं । सदैव कहीं न कहीं उनकी सन्दिग्ध दृष्टि का अंश मुझे मिल ही जाया करता था । दुलारी और बाबू को कई प्रकार के आदेश थे मेरे लिये सांझ को आकर अकसर अकेले में बाबू से घुमा-फिराकर मेरे बारे में अनेक प्रश्न वह पूछा करते थे । कौन आया था घर में ? बीबी-साहब कहीं गयी तो नहीं थी ? गयी तो साथ में दुलारी थी कि नहीं ?"[4] छोटी आयु की पत्नी को खुश करने के लिए भी अधेड़ उम्र का पति उसे गहने आदि बनवाता है । "कोरजा" उपन्यास का डाक्टर दास अपनी पत्नी को प्रसन्न

---

1. गैंडा : शिवानी : पृ.23.
2. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ.207.
3. पाषाण युग : मालती जोशी : पृ.90
4. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ.83.

करने के लिये गहने आदि बनवाता है ।"1"

विचारों में अन्तर होने के कारण भी पति पत्नी के संबंधों में तनाव उत्पन्न हो जाता है । "सहचारिणी" के गौरी और नीलम में भी विचारों में अन्तर था "हमारी विचारधारा अलग थी, हमारी आचार-संहिता भिन्न थी, जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में अंतर था और हमारे नैतिक मूल्यों में कोई समानता नहीं थी । दुःख सहने की हमारी क्षमता एक सी नहीं थी । सुख भोगने की हमारी कल्पनाएं भी आपस में मेल नहीं खाती थी ।"2" "सागर पारखी" उपन्यास के सत्यम और सुलोचना के विचारों में भी भिन्नता थी । "सत्यम और सुलोचना समानुपात त्रिभुज की दो भुजाएं हैं, एक कोण पर मिलकर भी एक दूसरे से सर्वथा विपरीत है । सुलोचना स्वीकारती भी है कि " देखो सत्यम, नियति ने हमें शायद इसीलिये एक सूत्र में बांधा है कि हम दोनों सदा दो छोरों पर रहे, हमारे बीच सूत्र की लम्बाई का अहसास होना ही चाहिए । तुम्हारी राजनीति और मेरी सेवा-भावना के बीच सामंजस्य तभी हो सकता है, जब हम एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करें ।"3"

कुछ ऐसे पति होते है जो अपनी पत्नी के सौन्दर्य में वेश्याओं का सौन्दर्य देखना चाहते है । पत्नी में वैसी अदायें न होने पर उसकी उपेक्षा करते हैं । "अमलतास" उपन्यास का हरदेवलाल इसी प्रकार का पति है । वह अपनी पत्नी से कहता है "तुम सोच रही होगी इज्जत बेगम और तुममें क्या फर्क है, तुम्हारी देह भी तो गोरी चिट्टी है, तुम्हारे बाल भी तो लम्बे है, आंखें कटीली है । पर मैं तुम्हें बताऊं उसमें और तुममें क्या फर्क पड़ता है ... अन्तर यही है कि उसमें गजब का आकर्षण है तुम सुन्दर जरूर हो, पर

---

1. नीरजा : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.

2. सहचारिणी : मालती जोशी : पृ.62.

3. सागरपारखी : बिन्दु सिन्हा : पृ.19.

तुम्हारा सौन्दर्य मुझे किसी मृत्यु के सौन्दर्य जैसा वीरान लगता है -देह होते हुए भी जिसमें स्पन्दन नहीं है ।[1]

अपनी-अपनी संस्कृति पर गर्व होने के कारण भी पति-पत्नी के आपसी सम्बन्धों में दरार पड़ जाती है । यद्यपि "कोहरे" उपन्यास का निहाल पाश्चात्य संस्कृति का पोषक है, लेकिन अपनी भारतीय संस्कृति पर गर्व होने के कारण अपनी बेटी का हिन्दू नाम रखना चाहता है, एन्जेला उसका क्रिश्चियन नाम एलिज़ाबेथ रखना चाहती है । दोनों सांस्कृतिक भिन्नता के कारण एक दूसरे का विरोध करते हैं ।[2] इसी प्रकार "कुमारिकाएं" उपन्यास के परवेज़ और आभा" में भी इसी बात को लेकर तनाव उत्पन्न होता है । क्योंकि परवेज़ अपनी बेटी को पठान बनाना चाहता है ।[3]

विवाह दो मनों का बन्धन है, दो शरीरों का नहीं इसका निरूपण मंजरी और अविनाश के सफल वैवाहिक जीवन के माध्यम से किया गया है । अविनाश उषा के प्रेम से निराश होकर जीवन में उस भूल को दोहराना नहीं चाहता, मंजरी का आकर्षण और उसका बढ़ता हुआ हाथ ठुकरा भी नहीं पाता । इनका प्रेम विवाह के रूप में परिणत होता है । इसी से इनका जीवन सुखी और सम्पन्न है । इस जीवन में सहजता और सहयोग है ।[4] "किस्सा गुलाबोलाल" के पति-पत्नी भी सुःख-दुःख में समान रूप से भागी है । सावित्री का अपने पति गुलाबोलाल पर पूर्ण विश्वास है । पति की प्रतिभा और कला साधना पर उसे पूर्ण विश्वास है । पति के फक्कड़ होते हुये भी वह अपने बच्चों तथा पति को परिवार की इकाई में समेटे रहती है ।[5] भिन्न वर्ग के होते हुये भी गोरेलाल और मनिया आदर्श दम्पत्ति है । "गोरेलाल अन्य टपरे वाले की

---

1. अकलास : रुचिगुप्त शास्त्री : पृ.95.
2. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल :
3. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री
4. मायापुरी : शिवानी : पृ.
5. किस्सा गुलाबोलाल : मधुरानी

तरह पत्नी को मारता-पीटता नहीं, पत्नी के मना करने पर जुआ खेलने भी नहीं जाता और मरीजों से बाहर का कोई भी काम नहीं करवाता ।"1."

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में नई नैतिकता से प्रभावित नवीन दृष्टिकोण को अपने उपन्यासों में लिया है । जिसमें शरीर की अपेक्षा मन की पवित्रता पर अधिक बल दिया जाने लगा है । " उन हालों पर का " डा॰ शिशिरकांत तनुजा से विवाह कर लेता है । उसे तनुजा के अपवित्र शरीर से कुछ सरोकार नहीं । वह नैतिकता की कसौटी शारीरिक अथवा भौतिक कर्म की पवित्रता मानता है ।"2." "उसके हिस्से की धूप" का जितेन को भी यही धारणा है । वह मनीषा से कहता है " किसी भी स्त्री पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि वह विवाह करें ही । आकर्षण ऐसी चीज है जो वक्त के साथ टिकती नहीं । तुम जानती हो मैं उतने कायदों का आदमी नहीं हूँ । मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ भी गुजरा हो तो भुलाया जा सकता है इसमें तलाक की जरूरत नहीं है ।"3." विवाह के नवीन समझौते को भी लिया गया है । "बीते हुए" उपन्यास के देव और तरन्निका आपस में समझौते के रूप में विवाह करते है । देव ने तरन्निका को आश्वासन दिया था कि वह उसे पूरे मन से प्रेम न भी करे तो भी उसकी सुख-सुविधा का ध्यान जरूर रखेगा ।"4."

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने आज के युग में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में जो "तीसरा" का आगमन हो गया है उसका बड़े ही यथार्थ रूप में अपने उपन्यासों में चित्रण किया है । यह तीसरा आन्तरिक रूप से (कुण्ठा वहम आदि) एवं बाह्य (पति का मित्र

---

1. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ॰6.
2. उन हालों पर : पुनिता शर्मा : पृ॰129.
3. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ॰145.
4. बीते हुए : शुभा वर्मा : पृ॰14.

या पत्नी का प्रेमी] रूप से जुड़ा चला आ रहा है । दीप्ति खण्डेलवाल ने "वह तीसरा" उपन्यास की भूमिका में इस प्रकार कहा है कि "यह तीसरा कभी मूलधार पर "अहम्" होता है, कभी "अविश्वास" कभी "अहंकार" -- कभी स्थूल स्तर पर यह "भूख की भूख" भी होता है ... कभी अकुलाहटों का "प्रेत" ... कभी "कोई जमीन नहीं" का निर्मम यथार्थ और कभी "वह" का "वह" जो न देख के भी पाता है -- वह वैसे निरन्तर लड़ता रहता है अपने आप से ही एक लड़ाई ... हार वह मानता नहीं, जीतना उसे आता नहीं ...[1] दीप्ति खण्डेलवाल के "वह तीसरा" उपन्यास में यही वह तीसरे के रूप में संदीप और रंजिता के बीच आ गया है । "संदीप और रंजिता के बीच कोई "तीसरा" आ खड़ा हुआ है जो शायद हर दम्पत्ति के बीच में आ खड़ा होता है -- और इस "तीसरे" के कारण बाहों का घर आधा अधूरा हो जाता है ।[2] इसी आन्तरिक अहम् के कारण दोनों में दरार उत्पन्न हो जाती है ।

आज पत्नी अपने पति को जब पूरा सहयोग दे रही है तो उसके मन में स्वयं को पति से हीन समझने की भावना समाप्त हो रही है । उनके सम्बन्धों में भी बदलाव आया है । एक समझौता उन्हें साथ-साथ रहने के लिए कभी प्रेरित करता है तो कभी बाधित करता है, इस समझौते में भी एक दरार पड़ती जा रही है । जब एक दूसरे पर अपना अधिकार जताना चाहते हैं । इसलिए इन दोनों के सम्बन्धों में एक तीसरा व्यक्ति उपस्थित हो जाता है । "चित्तकोबरा" का महेश को यह पसंद नहीं है कि मनु किसी पुरुष से मिले । लेकिन वह स्वयं दूसरी नारी को पा लेने की आकांक्षा से भरा हुआ है, यह छोटा सा वाक्य मनु के भीतर तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है वह अपने जीवन की सार्थकता के लिए तीसरे की खोज का प्रयास आरम्भ करती है ।[3] वस्तुतः वैवाहिक सम्बन्धों के आत्मीयतात्मक

---

1. वह तीसरा : दीप्ति खण्डेलवाल : प्रस्तावना
2. - वही - : पृ. 14.
3. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास : रामविनोद सिंह : पृ.

होने पर पत्नियाँ अन्य पुरुषों की ओर निगाह उठाती है । मगर उनकी कामना सेक्स की अपेक्षा विवाह के खोखलेपन को भरने के लिए प्यार और ध्यान खींचने की ही अधिक होती है । "उसकी पंचवटी" की नायिका अपने पति सतीश से और उसके विचारों में समानता न होने के कारण एवं पति में प्रेम का अभाव होने के कारण वह विक्रम की ओर झुक जाती है ।1. शशिप्रभा शास्त्री का कहना ठीक ही है कि "विवाह के बाद कई चीजें सामने आ सकती है । पति की नपुंसकता या उसके अन्य स्त्री के साथ संबंध हो सकते हैं, और पत्नी को इस आधार पर असंतोष उत्पन्न हो सकता है फिर वह किसी दूसरे के साथ संबंध स्थापित कर ले तो क्या वह अनुचित है ।"2.

जब स्त्री और पुरुष में तीसरा आ जाता है तो वह तीसरा असुरक्षा की भावना से पीड़ित रहता है । "उसके हिस्से की धूप" का मधुकर सन्देह की प्रवृत्ति का है । उसे अक्सर यह भय बना रहता है कि जितेन की भांति उसे भी मनीषा कहीं त्याग न दे । असुरक्षा की भावना से पीड़ित मधुकर अक्सर मनीषा की गतिविधियों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है और अपना असंतोष प्रकट करके मनीषा को खिझाता है । ... असुरक्षाबोध से पीड़ित मधुकर भूमिका बांध-बांध कर अक्सर मनीषा को चेताया करता है "मैं तो कोमन लिव में विश्वास करता हूँ और न फ्री सेक्स में इसलिए मैं जान-बूझकर अपनी चीज दूसरे को उठाकर नहीं दे सकता । और मैं विश्वासघात बर्दाश्त नहीं करूँगा ।"3.

महिला उपन्यासकारों ने पुरुष को इसके प्रति सहनशील होकर अपने निहित संस्कारों को जाने अनजाने नई दिशा में मोड़ते हुए दिखाया है । "टूटा हुआ इन्द्रधनुष" का प्रभात अपनी पत्नी शोभना का अन्य से सम्बन्ध है जानकर भी खामोश रहता है ।"4.

---

1. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल
2. काम संबंधों का यथार्थ और समकालीन : पृ.287 : वीरेन्द्र सक्सेना - हिन्दी कहानी

3;4:, उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ.53.

"धुंधला" उपन्यास का नायक एक आदर्श एवं भावनावादी युवक है। उसकी पत्नी उसके मित्र जितेन्द्र के प्रति आकर्षित है। वह समझा-बुझा कर अपनी भावना के द्वारा उस मोहजाल से हटा लेता है। पत्नी के जितेन्द्र के प्रति आकर्षण को उसके कहने पर भी वह उससे कुछ नहीं कहता है।"[1]
इसी प्रकार "मेरा नरक अपना है" के पति वीरेन्द्र को मालूम है कि उसकी पत्नी शोभा सुमित से प्रेम करती है तो वह उसे कुछ नहीं कहता है। वह चाहता है कि उसकी पत्नी उस प्रेम को भूल जाए। जिससे उसका परिवार जो टूट रहा है वह जुड़ जाए।"

इस प्रकार वैवाहिक सम्बन्धों की शिथिलता का साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने चित्रण किया है। पति-पत्नी के बीच की ऊब, अजनबीपन एवं, अहं एवं विचारों में ताल-मेल न होने के कारण विवाहेतर यौन सम्बन्धों की ओर झुकाव होने लगा है।

---

1. मेरा नरक अपना है : [illegible], पृ. 75.

4·2 विवाहेत्तर यौन - सम्बन्ध

वर्तमान जगत् में विवाह पूर्व यौन सम्बन्ध की स्वतंत्रता, महत्त्वपूर्ण चर्चा का विषय बना हुआ है । मानव-जीवन में यौन-प्रवृत्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है । यौन क्षेत्र में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों ने अधिक स्वेच्छाचारिता का उपयोग किया है । कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में लिंग-साम्यवाद था, अर्थात् अनियमित स्वच्छंद यौन सम्बन्ध तथा परिवार का अभाव था । कुछ विद्वानों का कहना है कि इसके लिये आदिम जातियों में पाये जाने वाले ऐसे रीति-रिवाज है, जिनके कारण यौन -स्वच्छन्दता का सन्देह होता है । उदाहरणार्थ, उत्सवों पर स्त्रियों का आदान-प्रदान अतिथि सत्कार हेतु पत्नियों को देना आदि । परन्तु कुछ अवसरों पर यौन उन्मुक्तता के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि यौन साम्यवाद के अवशेष हैं ।[1] आज के अधिकांश युवक-युवतियाँ विवाह पूर्व ही यौन-जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र से परिचित होते हैं । पाश्चात्य पीढ़ी से प्रभावित युवा-वर्ग यौन-जीवन को वैवाहिक जीवन से स्वतंत्र मानता है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उपन्यासों में विवाह पूर्व और विवाह के बाद स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों का चित्रण किया है ।

प्रायः ऐसा भी होता है कि हम पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध को कोई नाम नहीं दे पाते । कुछ स्त्रियाँ पुरुषों के साथ रहती है, लेकिन वे कुमारिका भी नहीं, विवाहिता भी नहीं होती । शारीरिक सम्बन्ध भी उनका है, और पति भी नहीं । ऐसे सम्बन्ध को हम अ-वैवाहिक यौन-सम्बन्ध ही कह सकते हैं ।

"दूरियाँ" उपन्यास के हरि और नमिता भी इसी प्रकार रह रहे हैं । दोनों ने विवाह नहीं किया है, दोनों में शारीरिक सम्बन्ध भी है । दोनों स्वतन्त्र विचारों वाले है । "पतझड़ की

1· स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि : स्वर्णलता : पृ· 128·

आशायें " के अनुभा और हीरेन वर्मा के सम्बन्ध भी अवैवाहिक यौन सम्बन्ध हैं । वर्मा विवाहित है जानकर भी अनुभा उसकी ओर आकर्षित होती है । वह बिना विवाह किये उसी के साथ रहना पसन्द करती है । क्योंकि वह विवाहित है और अनुभा नहीं पसन्द करती है कि हीरेन अपनी फैमिली को छोड़े । अनुभा अपनी सहेली से कहती है कि "दिमागी चैन भी कोई दुकान में रखी बिकाऊ चीज नहीं है । जरा बताओ हम अपनी जिन्दगी खुद अपने से तैयार करें । सावधानी से सही करें जो सही माना जाता है , तब भी क्या गारंटी है कि दिमागी चैन मिलेगा ही ... सोचो, शादी करके भी क्या गारंटी है'? इसलिये वह हीरेन से साफ कह देती है कि "हीरेन, मैं बड़ी खुश हूँ इसी सिचुएशन में । तुम्हारे साथ में । बाकी बातों में कुछ रखा नहीं अब ।"[2]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ यौन सम्बन्धी परंपरागत नैतिकता को अस्वीकारा गया है । "अजन्मी आत्मा की आह" का विजय गीता से प्रेम करता था । वह उसे दूर के रिश्ते से भाई लगता था । विवाह के पहले ही वह गीता से यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है, अन्यत्र विवाह होने के बाद भी वह उससे यौन सम्बन्ध रखता है । वह गीता से कहता है " मैं तुम्हारी नज़रों में चाहे जितना ही क्यों न गिर जाऊँ पर इतना यकीन रखना अपने सबसे नजदीक तुम मुझे ही पाओगी । मैं कहीं भी रहूँ, किसी का भी होकर रहूँ पहला हक तुम्हारा होगा।[3] "शिवानी" के उपन्यास "रथ्या" का मत्स्यस्वामी जो पहले बसन्ती को बेटी कह कर बुलाता था, परन्तु बाद में पत्नी की मृत्यु के बाद वही मत्स्यस्वामी जो बेटी-बेटी कहता था उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करता है ।" उसी रात को मुझे बेटी-बेटी कहने वाला वह काना भुजंग-सा

---

1. पतझड़ की आशायें : निरूपमा सेवती : पृ. 146.
2. - वही - पृ. 171.
3. अजन्मी आत्मा की आह : सुभद्रा : पृ. 34.

मेरा रक्षक मेरा भक्षक बन गया । मैं जब सो रही थी तब वह न जाने किस कुबड्डी में ताला खोलकर भीतर चला आया ।"1" "प्रेम कहानी" का दीपक है, जो उषा का रिश्ते में चाचा है, उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहा । पर उषा उसे ऐसा नहीं करने देती है । वह सोचती है उस वारदात के बाद मुझे लग रहा था मर्दों के चेहरे चेहरे नहीं छुपे-छुपे श्यामपट होते हैं । कुछ भी लिखो, कुछ भी मिटा दो । सुबह उठी कपड़े बदली, मैल धो दी साफ ।"2" "मित्रोमरजानी" की सुमित्रावन्ती की माँ अपने दामाद सरदारी के शरीर की लम्बाई नजर से देखती है ।"3" "टुकड़ों में बँटा बन्धु हनुज" का डॉ॰ वर्मा जो रिश्ते में परिमा का जीजा है, वह परिमा के सम्मुख अपने को दीन प्रकट कर उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । वह परिमा से कहता है "परिमा तुम महान् हो । खुशी है कि तुम आदमी को पशु नहीं समझती । मानता हूँ मेरे विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है, और तुम्हारे आने के बाद आया है । आखिर मुझे मेरे घर में तो समझने की कोशिश होनी चाहिए ।"4"

दृष्टि परिवर्तन से परम्परागत मूल्यों में बदलाव आया है । प्रेम और यौन के क्षेत्र में परम्परागत सन्दर्भ में जो कुछ अवैध माना गया है उसे वर्तमान संदर्भ में वैध की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया जा रहा है । "टपरे वाले" में पन्ना और लीला में पहले प्रेम होता है, विवाह पूर्व दोनों में यौन-सम्बन्ध भी होता है । परन्तु पन्ना अपने पिता के कारण लीला से विवाह नहीं कर पाता, क्योंकि वह हृदय के रोगी हैं । इसलिये वह नहीं चाहता है कि उन्हें कोई ठेस पहुँचे । वह अन्यत्र विवाह भी नहीं करना चाहता । बाद में वह

- -

1॰ रथ्या : शिवानी : पृ॰32॰
2॰ प्रेमकहानी : उषा : पृ॰21॰
3॰ मित्रोमरजानी : कृष्णा सोबती : पृ॰
4॰ टुकड़ों में बँटा बन्धुहनूज : प्रभा सक्सेना : पृ॰35॰

सबके सामने मीता एवं उसके बेटे को अपनाता है ।"1· समाज की भी उनके इस सम्बन्ध को वैध मान्यता मिलती है ।

प्रेम और यौन तृप्ति को व्यक्ति की सहज कामना माना जाने लगा, जिसकी तृप्ति करना मानव का अधिकार है । "स्त्री पुरुष का आकर्षण प्राकृतिक है । स्त्री की ओर पुरुष आकर्षित होता है, मानो उसके जीवन में कोई कमी है, जिसे वह स्त्री में पूर्ण करना चाहता है । "प्रिया" का मनचित्र भावुकता को ही सत्य मानता है जब वह देखता है कि प्रिया उसे स्वीकारने में देर कर रही है तो वह उसके साथ जबरदस्ती यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । वह कहता है "नारी वह होती है, जो तुम हो, यानी कि प्रिया ··· जिसे प्यार किया जाता है·· जिसके बिना जिन्दगी अधूरी होती है··· जैसे एक चांद के बिना तारों भरा आकाश भी सूना होता है· जैसे तुम्हारे बिना मैं हूँ ।"2·

आजकल यह आवश्यक नहीं है कि जिसके साथ प्रेम हो, जिसके साथ यौन-सम्बन्ध हो उसी के साथ विवाह भी हो । "बेघर" उपन्यास के परमजीत और संजीवनी एक दूसरे से प्रेम करते हैं । दोनों में यौन सम्बन्ध भी होता है, परन्तु परमजीत संजीवनी से विवाह नहीं करता है क्योंकि वह पहला पुरुष नहीं है । इसके कारण उसके अहं को ठेस पहुँचती है । परमजीत आधुनिकता का सामना नहीं कर पाता । अपने बद्धमूल संस्कार के कारण उसे धक्का लगता है । संजीवनी के जीवन में आने वाला वह प्रथम पुरुष नहीं है परमजीत की संभोग लालसा जिस उत्सुकता से आगे बढ़ी थी उसी ठेस से टकराकर चूर-चूर हो जाती है । वह रमा से विवाह कर लेता है ।"3·

प्रेम में असफल होकर "बैठा" का सुरेश भट्ट भयानक सेक्स मैनियक बन गया था । वस्तुतः नन्दी के प्रेम में असफल होकर, नैराश्य

1· टपरेवाला : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ·173·
2· प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ·10·
3· बेघर : ममता कालिया:पृ·

के अन्धकार में भटकता सुरेश भ्रष्ट लड़कियों के साथ जबरदस्ती यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है । वह अपनी इस स्थिति को मन्दी के सम्मुख भी स्वीकारता है कि जिस प्यास को आज लाख लहरों की नित्य नवीन सुरा के छलकते मधुपात्र भी नहीं बुझा सकते, अपने पर बुझाने वाली उसे एक ही घूँट से बुझा सकती थी ।"1"

विवाहेत्तर यौन-संबंधों के पीछे भावना प्रायः "प्रेम होने" की होती है, पर कभी-कभी ये बिना प्रेम के भी रख लिये जाते हैं । इसी प्रकार विवाहेत्तर काम-सम्बन्ध रखने वालों में प्रायः एक साथी विवाहित होता है और दूसरा एकाकी, पर किन्हीं-किन्हीं स्थितियों में दोनों ही साथी विवाहित होते हैं ।"2" "उपेन्द्रनाथ अश्क" ने कहा है कि विवाह पूर्व हो या विवाहेत्तर, ऐसे सम्बन्ध शरीर से नहीं तो मन से, स्वाभाविक होते हैं । वहाँ या दबे रहें, यह बात और है ।

साठोत्तर महिला उपन्यासकारों ने विवाहेत्तर-यौन सम्बन्धों का चित्रण किया है । "कृष्णा सोबती" ने कहा है कि "विवाह पूर्व और विवाहेत्तर सम्बन्धों को उचित अनुचित के बजाय "स्वाभाविक" कहना ज्यादा सही है । कोई भी स्त्री-पुरुष यदि सोचकर ऐसे सम्बन्ध रखते हैं, तो दूसरों को क्या हक है कि वे उन पर टिप्पणी करें या उनके कार्य को अनुचित बतायें ।

"नारी" के सोमश्री एक विवाहित पुरुष हैं, वे मालती से जो अविवाहित है यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं । वे चाहते हैं कि मालती ऐसे ही उनके संग रहे, वे मालती से विवाह भी नहीं करना चाहते हैं । वे मालती के घर नियमित रूप से रुपये भी भेजते रहे हैं और इस प्रकार से उसका भार उठाने को तैयार भी हैं । परन्तु मालती उनसे अलग हो जाती है । क्योंकि वह एक रईस बनकर

- -

1. कैंजा : शिवानी : पृ. 29 एवं 59.
2. काम संबंधों का यथार्थ और समकालीन हिंदी कहानी : वीरेन्द्र सक्सेना : पृ. 152.

नहीं रखना चाहती थी । उसे पारिवारिक अस्मिता के बीच अपनी हैसियत और अस्तित्व की सामाजिक स्वीकृति भी चाहिए थी ।

"उसकी पैंसठटी" का विक्रम का अपनी पत्नी से तादात्म्य नहीं हो पाता है वह माधवी की ओर आकर्षित होता है। वह माधवी का विवाह अपने छोटे भाई से करवाता है । माधवी प्रवीण को अपने से पृथक पाती है, जो सदा अपने व्यवसाय में ही व्यस्त रहता है । अतः वह विक्रम की ओर आकर्षित होती है । दोनों में यौन सम्बन्ध होता है । विक्रम उससे विवाह नहीं कर सकता । माधवी भी प्रवीण को तलाक देकर उसकी प्रेमिका बन कर रहना चाहती है ।"1.

मनुष्य के जीवन में यौन अत्यन्त गहन एवं शाश्वत आवश्यकता है । यौन मनुष्य की भूख की तरह है । जिस प्रकार व्यक्ति भूखा नहीं रह सकता, उसी प्रकार वह अपनी यौन आवश्यकताओं की पूर्ति किये बिना नहीं रह सकता ।"2. "उसका घर" के आहूजा की हर रात एक लड़की के साथ सोने की आदत है । वह एक विलासी प्रकृति का पुरुष है । वह रचना से यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है । वह रचना से कहता है कि " हर औरत में मुझे अलग तरह का स्वाद मिला ।"3. "एक और लाश" का प्रधान भी एक विलासी प्रकृति का पुरुष है । वह निरंजन गाँव की बहू बेटियों से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । वह रजनी को जबरदस्ती उठवाता है और उससे यौन सम्बन्ध स्थापित कर उसे बाद में मार डालता है ।"4. "टपरे वाले" का सिद्धो पंडु कम आयु की पत्नियों को रुपये देकर यौन तृप्ति करता है । वह पत्नियों को दिलासा देते हुये कहता है कि " हर बार खुश रहोगी तो बीस रुपये दूंगा .... हाँ ।"5.

- -

1. उसकी पैंसठटी : कुसुम अंसल . पृ.
2. सामन्तवाद : पृ.324.
3. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.64.
4. एक और लाश : शान्ति जोशी : पृ.16.
5. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री , पृ.37.

वैवाहिक जीवन में पत्नी को छोड़कर पर स्त्री को अंकशायिनी बनाने वाला पति निश्चय ही "काम की आग" से पीड़ित दूसरी से यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं करता क्योंकि पत्नी से शारीरिक सुख तो प्राप्त होता ही है । कुछ ऐसे सुख भी होते है जिन्हें पत्नी दे नहीं पाती । कुछ ऐसी संवेदनाएँ होती है जिन्हें वह समझा नहीं पाती । "इम्नी" का राजबिहारी इम्नी से प्रेम करता है वह विवाहित है । वह इम्नी से आत्मिक रूप से जुड़ जाता है । वह अगले जन्म में अपनी प्रेमिका का बेटा बन कर आना चाहता है । वह इम्नी से कहता है कि " तेरी गोद में शिशु बनकर सोऊँ तो तू छीनेगी तो नहीं, पीटेगी तो नहीं ।"[1]

"पुतिअभिसारिका" में नीलकान्त अपनी ही पत्नी की परिचारिका से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । नीलकान्त जो अपनी पत्नी से सिर्फ तन से जुड़ा था । दैहिक सुख से परे वह किसी नारी व्यक्तित्व का ऐसा प्यासा हो उठा था कि किसी नारी देह के साथ नारी मन को भी पूर्ण रूप से बाँध लेने के लिये उन्माद की सीमा तक आतुर हो उठा था ।"[2]

"पाल ने कहा था" का मनोज सेक्स को जल्दबाजी से लेना नहीं चाहता । वह विवाहित है, परन्तु अपनी पत्नी को उसने तलाक दे दिया है । वह पाल की माँ से विवाह करना चाहता है, परन्तु जल्दबाजी में नहीं पहले वह एक दूसरे को जान लेना जरूरी समझता है । वह कहता है " सेक्स जल्दबाजी या लापरवाही नहीं । सेक्स एक अंडरस्टैंडिंग है । एक दूसरे के शरीरों से, एक दूसरे के तौर तरीकों से पूरा परिचय होना जरूरी है । एक दूसरे की रुचियों-अरुचियों का पूरा ज्ञान होना चाहिए ।"[3]

- -

1. इम्नी : मालती परुलकर : पृ. 173.

2. पुतिअभिसारिका : दीप्ति खण्डेलवाल

3. पाल ने कहा था : मणिका मोहिनी : पृ. 28.

"गोधूलि बेला" का किशोर पत्नी के होते हुए विदेश में मेम से शादी कर लेता है । वापस देश में आकर वह मेम के साथ विलासिता में डूब जाता है, और अपनी पत्नी की परवाह नहीं करता ।" [1] पर बाद में जब वह उसे छोड़कर उसकी सारी जमा पूँजी लेकर चली जाती है तो वह पछताता है ।[2]

"चित्तकोबरा" उपन्यास का रिचर्ड और मनु दोनों विवाहित हैं । दोनों में यौन सम्बन्ध भी है । दोनों अपने-अपने कर्तव्य निभाते हैं । दोनों इस सम्बन्ध को अनुचित नहीं मानते हैं । मृदुला गर्ग ने स्वयं ही कहा है कि "दरअसल में बात यह है कि उचित -अनुचित का प्रश्न ही ऐसा है कि उसका उत्तर दिया ही नहीं जा सकता । किसी को निजी समझता ! सेक्स -सम्बन्धों को भी उचित-अनुचित की कसौटी पर परखना ही मैं गलत समझती हूँ ।"

"दूरियाँ" का कमल विवाहित होते हुए भी अन्य लड़कियों की ओर आकर्षित होता है । "खूबसूरत शरीर दिखाई पड़ते तो नज़र भर कर देखता , मन पर दस्तक भी पड़ती ।[3] वह चारु की ओर आकर्षित होता है , उससे यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है , लेकिन चारु उस पर अपनी धाक जमाती है । "जब भी किसी नये लड़के से मिलती , हमेशा अपने सौन्दर्य की धाक जमाना चाहती । वह देख लेना चाहती थी कि उसके सौन्दर्य में नित्य नया आदमी फँसता है या नहीं ।"[4]

"टूटता हुआ आदमी" के शरद गुप्ता की पत्नी आर्थिक कठिनाई के कारण अपने मायके चली जाती है । इसी बीच गुप्ता को सुनन्दा मिलती है, जो हिरोइन बनना चाहती है । सुनंदा गुप्ता को अपने घर लेकर जाती है, जहाँ पर दोनों भावनाओं में बह जाते हैं और

- -

1,2 : गोधूलि की बेला : चन्द्रा [illegible] : पृ. 42.

3. दूरियाँ : रजनी पनिकर : पृ. 39.

4. दूरियाँ : रजनी पनिकर : पृ. 79.

यौन-सम्बन्ध स्थापित करते हैं ।

मान्यता-मूल्यों का ढिंढोरा पीटने वाला "रेत की मछली" का शोभन एक उच्छृंखल एवं घिनौना व्यक्ति है, जो दूसरी स्त्री के कारण अपनी पत्नी को त्याग देता है । पहले वह मोनल से राखी बँधवाता था और अपनी बहिन मानता था, पर बाद में वह अपनी पत्नी के सम्मुख ही मोनल से यौन-सम्बन्ध स्थापित करता है जो एक अस्थिर चित्त वाला है ।[1]

"टूटा हुआ इन्द्रधनुष" के मनोज और शोभना पहले प्रेमी और प्रेमिका थे । पर शोभना ने अन्यत्र विवाह कर लिया था, और बाद में मनोज ने भी विवाह कर लिया । बाद में दोनों एक दूसरे से मिलते हैं और उनमें शारीरिक सम्बन्ध हो जाता है । मनोज की पत्नी को मनोज और शोभना के सम्बन्धों का जानकारी है फिर भी वह खामोश रहती है ।[2]

"सोलह फेरे" का कर्नल अशिक्षित पत्नी होने के कारण मल्लिका की ओर आकर्षित होता है । यद्यपि मल्लिका विवाहित है, फिर भी दोनों में यौन सम्बन्ध होते हैं । कर्नल अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है । मल्लिका को पत्नी के सारे अधिकार देता है ।[3]

"अनित्य" का अविजित अपनी पत्नी के निरन्तर बीमार रहने के कारण संगीता से प्रेम करने लगता है, संगीता चूँकि उसकी पुत्री की आयु की थी फिर भी वह उससे अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित करता है ।[4]

"सुरंगमा" उपन्यास का "दिनकर" एक मंत्री है, और अविवाहित भी है । वह सुरंगमा की ओर आकर्षित होता है । उसे अपने शब्दों के जाल में फँसाता है। वह पत्नी से भी डरता है । वह किसी

---

1. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ० 119, 150.
2. टूटा हुआ इन्द्रधनुष : मंजुल भगत :
3. सोलह फेरे : शिवानी : पृ०
4. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ०

भी प्रकार सुरगमा के सौन्दर्य को भूला नहीं पाता है, वह बार-बार उसके पास जाता है , अन्त में दोनों में दैहिक सम्बन्ध भी होते हैं । पर बाद में वह सुरगमा के पास जाना छोड़ देता है । " एक भौंरे के समान उसका रस चूस कर चला जाता है । वह कहता है "कभी राजनीति के गरिष्ठ भोजन के बाद ऐसा पाचक भी अनिवार्य हो उठता है ।"1."

"गैंडा" उपन्यास का "रोहिताश्वदत्ता" अपनी पत्नी की सखि के पति को पशु से मानव बनाने के चक्कर में स्वयं ही पशु बन जाता है अर्थात् वह राज से दैहिक सम्बन्ध स्थापित करता है । रोहिताश्वदत्ता एक विलासी प्रवृत्ति का पुरुष है । वह अपनी पत्नी से कहता है " देख लेना एक दिन तुम्हारी राज के इस गैंडे को पुरुष बना कर जीना सीखा दूँगा ।"2."

"उस तक" का सत्यपाल निगम मुक्ता का बौस है । वह अपनी सैक्रेटरी मुक्ता से यौन सम्बन्ध रखता है । जब मुक्ता से उसका मन भर जाता है तो वह उसका ट्रान्सफर करवा देता है और अन्य लड़की को सैक्रेटरी बना देता है ।"3."

"बेघर" का नायिका एक कम्पनी का मालिक है, वह अपने यहाँ की मजदूरिन चित्रा बैनर्जी से शारीरिक संबंध स्थापित करता है और उसे रखैल बनाकर रखता है । नायिका की नजर में एक टाइपिस्ट होने के लिए वह ज्यादा समझदार है और पत्नी होने के लिये कुछ कम सुन्दर । नायिका से उसका सुख केवल साझेदारी तक है । इससे हटकर वह किसी के भी सामने उसका बड़े से बड़ा अपमान करने से नहीं चूकता । वह उसकी बुद्धि तथा उसके शरीर का शोषण करना अपने पौरुष का प्रतीक मानता है ।"4."

- -

1. सुरगमा : शिवानी : पृ.242.
2. गैंडा : शिवानी : पृ.19.
3. उस तक : कुसुम अंसल : पृ.98.
4. बेघर : ममता कालिया : पृ.

"किशनुली का ढाँट" उपन्यास का परमानन्द एक पुजारी है । उसकी पत्नी किशनुली को अपनी बेटी मानकर पालती है ,क्योंकि किशनुली पागल है । वही परमानन्द जिसे उसकी पत्नी ने बेटी माना उसी से अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं । जिसके फलस्वरूप किशनुली को लड़का होता है ।[1]

"रुकोगी नहीं राधिका" का डैन विवाहित है । वह राधिका से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है । परन्तु वह राधिका से प्रसन्न नहीं होता है । वह राधिका से स्पष्ट कहता है कि " तुम मुझमें अपना पिता ढूँढ रही थी, वही पिता जिसे [illegible] त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थी । पर मैं तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नहीं होना चाहता ।[2] वह उसे हिम कन्या और संगमरमर की प्रतिमा कह कर चिढ़ाता है । वह कहता है कि मैं तुममें अपना खोया हुआ यौवन ढूँढ रहा था । अतः दोनों इस यौन-सम्बन्ध से असन्तुष्ट रहते हैं ।

"मुक्ता" उपन्यास का जितेन्द्र अपनी पत्नी के लिए जहाँ नपुंसक है, वहीं मुक्ता के लिये आदिम पुरुष है । वह मुक्ता से प्रेम करता है, वह मुक्ता से यौन सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, पर ऐसा नहीं कर पाता है ।[3]

"आँखों की दहलीज" में जावेद और तालिया दोनों विवाहित हैं, जावेद और तालिया एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, दोनों में शारीरिक सम्बन्ध भी होता है । परन्तु तालिया बाद में घर छोड़ कर चली जाती है क्योंकि उसने अपने पति से विश्वासघात किया था ।[4]

---

1. किशनुली का ढाँट : शिवानी : पृ.
2. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा : पृ.38.
3. मुक्ता : मालती परूलकर : पृ.
4. आँखों की दहलीज : मेहरुन्निसा परवेज :

अतः निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों में जो बदलाव आया है एवं जो स्वच्छंदता का प्रादुर्भाव हुआ है उसका उल्लेख किया है । महिला उपन्यासकारों ने इस सम्बन्ध को अनुचित भी नहीं माना है । वे इस सम्बन्ध को "स्वाभाविक" मानती हैं । इसके साथ ही उन्होंने वर्तमान युग में परिवर्तित हुये पारिवारिक सम्बन्धों का भी अपने उपन्यासों में चित्रण किया है ।

4·3 पारिवारिक सम्बन्ध

परिवार मानवीय सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण इकाई है । परिवार की कब उत्पत्ति हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । परिवार का आधुनिक ढाँचा परम्परागत परिवार से भिन्न है । परिवार एक ऐसी संस्था है, जो संसार के प्रत्येक भाग में पाई जाती है । कौंस तथा नाफ के अनुसार परिवार बालक पर सांस्कृतिक प्रभाव डालने वाली एक मौलिक समिति है तथा पारिवारिक परम्परा बालक को उसके प्रति प्रारम्भिक व्यवहार, प्रतिमान तथा आचरण का स्तर प्रदान करती है ।·1· पहले व्यक्ति की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार ही करता था, परन्तु आजकल व्यक्ति परिवार से अधिक अन्य समितियों से सम्बन्धित रहता है । परिवार पर उसकी आश्रितता बहुत कम होती जा रही है । पहले परिवार सामाजिक जीवन की मूलभूत केन्द्रीय इकाई के रूप में जाना जाता था । समाजशास्त्रियों की समाज-परक विवेचना के अनुसार यह समाज की अनिवार्य इकाई है । समाज के संगठित स्वरूप एवं सुसंचालन में परिवार का योग अकथनीय है ।·2· भारतीय सामाजिक संरचना आरम्भ ही से पारिवारिक सम्बन्धों के महत्व को निर्विवाद स्वीकृति देता रहा है । किन्तु आधुनिक युग में नवीन अर्थ-व्यवस्था ने जन्म लिया । "अलग कमाओ और खाओ" की भावना प्रबल हो उठी जिससे परिवार प्रथा पर भीषण आघात पहुँचा । जहाँ पारिवारिक सम्बन्धों में सब मनुष्य एक दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होते हैं, वह आज टिक न सका । पारिवारिक सम्बन्ध स्वार्थ सम्बन्धों में परिणित हो गया । परिवार का अलग महत्व है । आगबर्न तथा निमकाफ के अनुसार —"किसी भी संस्कृति में परिवार के महत्व का मूल्यांकन करने के लिये यह

- -

1· दी फैमिली : कौंस नाफ : 1950·

2· अर्थलोद : 3130 17-3 पृ·218·

जानना आवश्यक है कि उसके क्या कार्य है तथा वह किस सीमा तक उनकी पूर्ति करता है ।[1] परन्तु इसका महत्व अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है । परिवार का ढाँचा सीमित होता जा रहा है । आर्थिक सम्बन्धों में नातेदारी का आधुनिक परिवार के लिये कोई महत्व नहीं रह गया । इसीलिए सम्बन्धों के स्थायित्व के संदर्भ में पुराने जमाने से चला आता हुआ "मिथक" अब टूट चुका है । आज हमारी परंपराएं टूट रही है और नवीन आस्थाएं जन्म ले रही है । आज की यान्त्रिक सभ्यता में मानव जीवन यन्त्रवत् हो गया है । प्रेम, सेवा सहानुभूति ,सहिष्णुता, सहअस्तित्व आदि के स्रोत क्षीण होते जा रहे है । सहजाभाव से मानवीय सम्बन्धों में शिथिलता उत्पन्न हुई है ।[2] अतः परंपरा से विच्छिन्न होकर तथा सभी प्राचीन मानव-सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्म केन्द्रित होता जा रहा है । यहाँ तक कि पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहिन जैसे निकटतम सम्बन्धों में भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है, जो एक दूसरे के पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने इस प्रकार के परिवर्तित पारिवारिक सम्बन्धों के सूक्ष्म धरातल को अपने उपन्यासों में बड़ी ही यथार्थपरक दृष्टि के साथ चित्रित किया है ।

(अ) <u>पिता-पुत्री का सम्बन्ध</u> :

पारिवारिक सम्बन्धों में पिता और पुत्री के आपसी सम्बन्ध के दोनों पहलू आदर्श और यथार्थ रूपों का चित्रण महिला उपन्यासकारों ने किया है । आधुनिक युग में परिवर्तित जीवन मूल्यों के साथ-साथ पिता के विचारों में भी परिवर्तन आ गया है ।

"अपने बेगाने" उपन्यास के रामप्रसाद सिंह बीमार होने के कारण चारपाई पर ही पड़े रहते है । घर में उनको हर कोई

- -

1. A Hand book of Sociology : W.F.Ogburn & M.F.Nimkaff 1947, p.459.

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण : हेमेन्द्र कुमार

उपेक्षा करता है। यहाँ तक कि उनकी बेटी मिनी भी उनकी उपेक्षा करती है। मिनी प्रेमेन्द्र नामक युवक से प्रेम करती है। अपनी सखी मंजू के कहने पर वह अपने पिता की देखभाल करती है। मिनी अपने पिता से प्रेमेन्द्र के बारे में राय लेना चाहती है। परन्तु संकोच के कारण नहीं कह पाती है। परन्तु उसकी बुआ प्रेमेन्द्र के बारे में सब कुछ कह देती है। रामप्रसाद सिंह मिनी को बुलाकर उसे समझाते है कि तुम्हें प्रेमेन्द्र से विवाह अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि तुमने यह भी सोचा है कि लोग और क्या कहेंगे ? दूसरी जगह तुम्हारी शादी की बात चलेगी तब क्या लोग तुम्हारी पवित्रता पर अविश्वास न कर बैठेंगे ?"[1] मिनी अपने पिता की इस राय से प्रसन्न हो जाती है, और आभार प्रकट करती है।

"एक इंच मुस्कान" की अमला के पिता अपनी परित्यक्ता पुत्री से बेहद प्रेम करते है। वह उसकी हर सुख-सुविधा का ख्याल रखते है। वे चाहते है कि अमला अन्यत्र विवाह कर ले। जब अमला का पूर्व पति उनसे मिलता है, और उन्हें यह ज्ञात होता है कि अमला का पूर्व पति अपनी गलती पर पछता रहा है, तो वे अमला को फिर से उसे स्वीकार कर लेने को कहते है, परन्तु अमला अपने पिता को साफ कहती है कि " जीवन में आपने मुझे बहुत कुछ दिया है। उसका बदला शायद मैं कभी नहीं चुका सकूँगी, यों भी आप मेरे पिता है, और पिता के सारे अधिकार आपके पास है, फिर भी यह न भूलिए कि मैं भी वयस्क हूँ, और अपने को यों अपमानित करने का अधिकार शायद मैं आपको भी नहीं दे सकूँगी।"[2]

"टेसू की टहनियाँ" के राजेन्द्र रूढ़िवादी नहीं है। अपनी बेटी सीता से प्रकाश का बुरा व्यवहार देखकर वह सीता से कहते है कि " देखो सीता प्रयत्न तो कर ही लो ... मैं विश्वास रखता

---

1. अपने बेगाने : प्रतिभा वर्मा पृ. 90.
2. एक इंच मुस्कान : मन्नू भंडारी , राजेन्द्र यादव : पृ. 97.

का आशीर्वाद देकर घर आ रहा हूँ तो इसके यह मायने नहीं कि मैं वह रूढ़िवादी पिता हूँ जो बेटी को हर कष्ट में वही पिटा-पिटा उपदेश दे कि बेटी पति के घर से अर्थी ही निकलना... यदि पति की बुराइयों की अर्थी नहीं निकलती तो पत्नी की अर्थी भी क्यों निकलेगी ? तुम्हारी हर लड़ाई व समझौते में मैं व सुशील साथ है-रहेंगे ।"[1]

"टपरेवाले" के गौरीनाथ को जब मालूम होता है कि मीता माँ बनने वाली है तो उसे बहुत दुःख होता है, क्योंकि वह अपनी बेटी से बेहद प्रेम करता था, वह मीता को लेकर उसके प्रेमी पन्ना के गाँव जाता है, और विवाह करने को कहता है, जब वह देखता है कि पन्ना विवाह करने को तैयार नहीं है तो उसे बहुत क्रोध आता है । वह उसे बुरा भला कहता है ।[2] परन्तु मीता उसे लेकर वापिस गाँव से आ जाती है । ऐसा होने पर भी वह बेटी से कुछ भी नहीं कहता ।

पिता का पुत्री के प्रति जो प्रेम-भावना है उसमें भी थोड़ा अन्तर आया है । "वंशज" के जब शुक्ला अपनी बेटी रेवा से प्रेम करते हैं, और बेटी से भी ज्यादा वे अपनी घोड़ी से प्रेम करते हैं । जब उनकी पुत्री रात को बग्घी में बैठकर बाहर पिक्चर देखने जाना चाहती है तो जब शुक्ला कहते हैं " इस तरह रात को बाहर नहीं रहना, यह बहुत सेन्सिटिव है ।[3]

स्वतंत्र विचारों का होते हुए भी पिता अपनी पुत्री के प्रेम विवाह को स्वीकार नहीं कर पाता । "[illegible]" का कर्नल शिक्षित एवं स्वतंत्र विचारों वाला है । वह अपनी पुत्री अहिल्या को आधुनिक शिक्षा एवं स्वतंत्रता देता है । लेकिन जब अहिल्या

- -

1. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.70.
2. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.150.
3. वंशज : मृदुला गर्ग : पृ.42.

के विवाह का प्रश्न आता है तब वही कर्नल अहल्या के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारता है। अहल्या के प्रेम का जब उसे पता चलता है तो वह क्रोधित हो उठता है।[1]

"प्रेम कहानी" की कथा के पिता स्वतंत्र विचारों वाले होते हुए भी आकाश मिलिंद से विवाह पसन्द नहीं करते परन्तु जब कथा उनकी मर्जी के खिलाफ मिलिंद से विवाह कर लेती है तो वे उससे कभी नहीं मिलते।[2]

"रेत की मछली" उपन्यास की कुन्तल के पिता को यह बिल्कुल नहीं पसन्द की कुन्तल शोभन जैसे साहित्यकार से प्रेम-विवाह करे, वह उसे समझाते हैं। "एक बात सुन लो कुन्तल। तुम्हें तो इस समय कुछ सूझ नहीं रहा है। रोमांटिक हो कि वह कवि और लेखक है लेकिन इसलिए कहता भी हूँ कि वह जो आज तुम पर अपने प्राण देता है, कल उसकी संवेदना किसी और के साथ भी हो सकती है।"[3] पर कुन्तल उनकी बात नहीं मानती तो वे बाद में अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं "ठीक है, तुम्हीं जीती मैं हार गया।"[4]

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में अन्तर आ गया है। नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का अपने ऊपर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप सहन नहीं करती। इससे दोनों के बीच संघर्ष होता है।

"अनित्य" उपन्यास के अविजित और प्रभा में विचारों में अन्तर आ जाता है। पहले प्रभा अपने पिता को आदर की दृष्टि से देखती थी। अविजित गांधीवादी था। उसने स्वतंत्रता की लड़ाई पूरी तरह से नहीं लड़ी थी। पहले पिता और पुत्री के विचारों में बहुत समानता थी। "अविजित की तरह वह भी हरदम लोगों से घिरे रहना पसन्द करती है।"[5] बाद में वह

---

1. चौदह फेरे : शिवानी
2. प्रेम कहानी : ममता कालिया
3. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ. 64.
4. -वही- पृ. 65.
5. अनित्य : मृदुला गर्ग, पृ. 4.

घर से निकल जाती है । आजकल के युग में चली जाती है ।

“सोनाली दी” के रोशनलाल पुरानी पीढ़ी के होने के कारण यह पसन्द नहीं करते है कि रानू स्वतंत्र रूप से पुरुष एवं लड़कों से मैत्री सम्बन्ध रखे । वह उसे डाँटते रहते है, फिर भी रानू उनकी बात नहीं मानती है । उसी प्रकार स्वच्छंद विचरण करती रहती है ।[1]

आज के युग का पिता अपनी पुत्री को रसोई घर में काम करते हुए नहीं देखना चाहता है, बल्कि वह उसे उच्च शिक्षिता देखना चाहते है । “नरक-दर-नरक” के पिता ऊषा को घर का काम नहीं करने देते, बल्कि उसे हमेशा पढ़ते रहने को कहते है । वे अपनी पत्नी से कहते है कि “मेरी ऊषा रोटियाँ नहीं बेलेगी, वह रसोई में पड़ी-पड़ी सीली नहीं होगी, वह इन्दिरा गान्धी बनेगी, विजयलक्ष्मी पंडित बनेगी ।[2]” ऊषा का समय व्यर्थ न जाय, इसीलिये वे वहाँ उसके लिए केन्द्रीय सचिवालय लायब्रेरी, ब्रिटिश काउंसिल और यू.एस.आई.एस. लायब्रेरी से किताबें छाँट-छाँट कर लाया करते ।

अर्थ के कारण पिता-पुत्री के सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया है । पिता अर्थ को प्रमुखता देने लगा है । अपनी बेटी के सुख से ज्यादा उसकी इज्जत से ज्यादा उसे अपनी इज्जत प्यारी है । “प्रतिध्वनियाँ” का नीलकान्त अपनी पुत्री रागिनी का विवाह उसकी मर्जी के खिलाफ अपने ही प्रतिद्वन्द्वी के बेटे से करवा देता है ताकि सारी जायदाद उसकी पुत्री को ही मिले, तथा समाज में उसकी नाक कम न हो । जिस बेटी की आँखों में हमेशा सपने छाये रहते थे, वहाँ पर अब मरुस्थल ही रह गया था । “आखिर पापा आपने उमर-कैद दे ही दी ।”[3]

“प्रिया” उपन्यास का यशवन्त अपनी पुत्री को कभी नहीं देखा । जब उसे मालूम होता है कि उसकी बेटी बहुत सुन्दर है तो वह उसका

- -

1. सोनाली दी : रजनी पनिकर : पृ.
2. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ. 13.
3. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.

रिश्ता अपने दोस्त जो मिल का मालिक है उससे तय करता है । दोनों के सम्बन्धों की आड़ में वह अपने व्यापार को बढ़ा लेता है । बाद में अरुण प्रिया से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करता है, जिससे वह गर्भ धारण करती है । अरुण उसे इसी अवस्था में छोड़ कर विदेश चला जाता है । बाद में पता चलता है कि वह पहले से ही विवाहित था । यह सब उसके पिता और प्रिया के पिता की मिली जालसाजी थी । प्रिया के पिता ही स्वयं सौदामिनी को अपनी बेटी का गर्भपात करवाने के लिये 2,000 रुपये देते है ।[1]

आज की पीढ़ी यह सहन नहीं करती है कि उसका पिता दूसरा विवाह करें । "रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका के पिता जब विद्या को अपना जीवन साथी बना लेते है तो वह अपने को निराधार निर्वासित समझने लगती है क्योंकि वह अपने पिता को अपने जीवन की धुरी मानती है । एक तरह से वह अपने पिता के प्रति विद्रोह करती है । वह डैन के साथ विदेश चली जाती है । थोड़े दिनों बाद वह भारत लौट आती है । वह पिता के साथ नहीं रहकर अलग रहने लगती है । पिता के यह कहने पर कि उसके पास आ जाओ वह अपने पिता को जवाब देने के लिये कहते है कि मेरे एक बन्धु मनीष ।"[2]

"पाषाण युग" के शकुन के पापा छोटी आयु वाली लड़की से विवाह कर लेते है जिससे शकुन अपने पिता को क्षमा नहीं कर पाती है । वह घर में न रहकर हास्टल चली जाती है । वह अपने पिता से आज्ञा लिये बिना कैलफोर्निया के कालेज में एडमिशन ले लेती है । बाद में अपने पिता को बताती है, जिससे उन्हें बहुत दुःख होता है क्योंकि वे शकुन से बेहद प्रेम करते थे और उनकी इच्छा थी कि शकुन अमरीका जाकर पढ़े । वही उसका सारा खर्चा उठाते थे । शकुन को इस बारे में कुछ नहीं मालूम होता । [3]

- -

1. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल
2. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा : पृ.
3. पाषाण युग : मालती जोशी : पृ.82.

"कुमारिकाएं" उपन्यास का निशान्त अपनी दूसरी पत्नी की पहले पति की बेटी को अपनी बेटी की तरह नहीं मानता । वह अपनी बेटी गुड्डी से पूजा की तुलना करता है। वह चाहता है कि गुड्डी पूजा से भी बढ़कर निकले । परन्तु गुड्डी पूजा से हर क्षेत्र में कम थी, सुन्दरता से लेकर गुणों में । पूजा शान्त स्वभाव की लड़की थी और गुड्डी उच्छृंखल थी । वह पूजा से ईर्ष्या करता था । "पूजा की शालीनता और कैशोर्यमयी अपरिमित सौन्दर्य से निशान्त खुश दिखने का प्रयास करता परन्तु उसके अवचेतन मन में पूजा के गुणों के प्रति ईर्ष्या का भाव ही था और उसके अकुंठित व्यवहार के बल पर गुड्डी पूजा से हर पल प्रतियोगिता करती ।[1]

परन्तु इसके विपरीत "नारी" उपन्यास का निशीथ जो नीलिमा का सगा पिता नहीं है फिर भी वह उसे पिता की तरह प्रेम करता है । वह उसे अपनी बेटी मानता है । वह नीलिमा की शादी के लिये उसके प्रेमी के पिता के पास भी जाता है ।[2]

प्राचीन युग में पिता अपनी पुत्री के सहारे अपना जीवन यापन नहीं करता था, परन्तु नवीन मूल्यों के कारण पिता पुत्री के अर्थ को स्वीकारने लगा है ।

"प्रिया" उपन्यास का रविशंकर अपाहिज है । सौदामिनी अपने पिता की देखभाल करती है । रविशंकर अपनी बेटी के ही घर में रहता है ।[3]

प्रिया उपन्यास का रविशंकर अपाहिज होने के कारण ही अपनी बेटी के घर रह रहा था परन्तु "सुरंगमा" उपन्यास का "गजानन" जो अपाहिज अपाहिज नहीं है झूठ बोलकर वह उससे पैसे लेते रहता है । वह झूठी बात कह कर सुरंगमा के मित्रों से पैसे लेता है । अपनी पुत्री की कमाई पर ही वह रहता है, शराब पीता है ।[4]

---

1. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 74.
2. नारी : शशिप्रभा शास्त्री : पृ.
3. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल
4. सुरंगमा : शिवानी : पृ. 137.

परिवर्तित मूल्यों के कारण पिता के व्यवहार में अन्तर आ गया है। पिता का पुत्री के प्रति प्रेम अब सुन्दरता की कसौटी में होने लगा है। " उन लाशों पर " उपन्यास के डा॰ कृपाल की दो बेटियाँ है एक सुन्दर है तो दूसरी ज्यादा सुन्दर नहीं। डा॰कृपाल अपनी सुन्दर बेटी मोरु को ही अपने साथ बाहर ले जाते है और तनु जो ख़ास सुन्दर नहीं है उसे कभी नहीं ले जाते और उसकी उपेक्षा करते है। वह एक ऐसे पिता भी है जो बाद में दूसरा विवाह कर लेते है। वे साफ अपनी बेटियों से कहते है कि इस उम्र में उन्हें एक साथी की आवश्यकता है।[1]

आज के आधुनिक युग में पिता अपनी ही पुत्री पर बुरी नज़र रखने लगा है। "कौरजा" उपन्यास का रहमान शॉ अपनी बेटी पर बुरी नज़र रखता है।[2]

(आ) <u>माता और पुत्र का सम्बन्ध</u>

माँ का अपनी सन्तान से रक्त का सम्बन्ध होता है। इसीलिए वह अपनी सन्तान को अत्यधिक स्नेह देती है। उसका प्रेम निःस्वार्थ है, निर्मल है। वह स्वयं दुःख भोग कर भी उसको सुख पहुँचाने की सदा चेष्टा करती है। वहाँ सन्तान का उसके प्रति कर्तव्य है कि वह अपनी माता को मान एवं आदर की दृष्टि से देखे। परन्तु नवीन युग में अन्य सम्बन्धों के बदलाव के साथ-साथ माता-पुत्र के सम्बन्धों में अन्तर आया है। माँ के साथ सन्तति के लगाव की भावुकता अन्य सम्बन्धों की अपेक्षा कुछ देर से टूटी है।

माँ और पुत्र के सम्बन्धों में जो परायापन, अलगाव ऊब एवं अजनबीपन आ गया है। इस स्थिति का साठोत्तरी महिला-उपन्यासकारों ने स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है।

---

1. उन लाशों पर : प्रतिभा वर्मा : पृ॰27,50॰
2. कौरजा : मेहरुन्निसा परवेज़ :

आज के युग की सन्तान बड़ों के कथनों का निरादर करती है, और उसे कोई महत्व नहीं देती है। "तिन पहाड़" का भी अपनी माँ के वचन को तोड़ता है, वह उनके हृदय को ठेस पहुँचाता है। क्योंकि जब वह देश में रहता है, तब वह जया का हाथ अपनी माँ से मांगता है। जिससे उसकी माँ बहुत प्रसन्न हो जाती है, और अपने बेटे से कहती है कि इस वचन को न तोड़े। परन्तु यही भी विदेश में जाकर एक विदेशी लड़की से विवाह कर लेता है, और अपनी माँ के वचनों को तोड़ता है।[1]

पुत्र का माँ के प्रति जो आदर की भावना रहती थी, वह अब समाप्त प्रायः हो गई है। अब वह अपनी माँ की परवाह नहीं करता यहाँ तक कि क्रोध के कारण अपनी माँ पर हाथ उठाने भी लगा है।

"कोरजा" का करीम खाँ अपनी माँ की बिल्कुल भी परवाह नहीं करता है। जब उसकी माँ मृत्यु के समीप रहती है, तब भी वह अपनी माँ की देखभाल नहीं करता, और माँ की मृत्यु के बाद उसके पास नहीं आता।[2]

करीमा खाँ से भी ज्यादा निर्दयी "टपरेवाले" का हिमांशु है। जो अपनी माँ को कभी सुखी नहीं कर सका। हिमांशु की माँ बूढ़ी हो चुकी है फिर भी घर का सारा कार्य करती है, यह एक ऐसा पुत्र है जो अपनी पत्नी को कभी काम करने के लिये नहीं कहता। माँ के बीमार होने पर भी उसकी देखभाल नहीं करता। जब तब वह अपनी माँ को सोने के बारे में पूछता रहता है। माँ के फिसलकर गिरने का भी ख्याल नहीं करता। "बूढ़ी माँ जिस दिन बाथरूम में फिसलकर गिर पड़ी थी, उनके पैर में बहुत चोट आयी थी। वे तड़प रही थी और हिमांशु उन्हें डांट रहे थे – अब तो बता दो सोना कहाँ रखा है, मर जाओगी तो धरती में ही पड़ा रह जायेगा।"[3]

---

1. तिन पहाड़, कृष्णा सोबती :
2. कोरजा : मेहरुन्निसा परवेज़ : पृ.
3. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 110.

जब माँ को मालूम हो जाता है तो वह अपनी माँ को घर में नहीं रखना चाहता, क्योंकि वह कहता है कि इससे उसके बच्चों पर बुरा असर पड़ेगा ।[1] माँ के यह कहने पर "क्यों रे शिवनाथ, तेरे बेटे भी तेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करें तो? वह झट से खटिया पर पड़ी माँ के गाल पर एक चाँटा जड़ दिया – ये हाल होगा समझी"[2] कहता है ।

जीवन मूल्यों के बदलाव के कारण माँ आत्म केन्द्रित होती जा रही है । वह अपने बेटे से दूर होती जा रही है । अपने ही दुःख में डूब कर वह अपने बेटे की उपेक्षा भी करने लगी है । "सूखी नदी का पुल" के दिनेश की माँ अपने दुःख में ही डूबी रहती है । वह अपने बेटे की उतनी देखभाल नहीं करती जितनी एक माँ करती है । जिसके कारण दिनेश एकान्त प्रिय हो जाता है । वह अपनी माँ से कभी शिकायत नहीं करता, बल्कि अपनी माँ की व्यथा को अच्छी तरह से जानता है ।[3]

"ज्वालामुखी के गर्भ से" के मनीष की माँ अपने बेटे की उपेक्षा करती है, वह कभी उसे प्यार के एक शब्द नहीं कहती । जिससे मनीष बहुत दुःखी रहता है । मनीष अपने मन की बात माँ से कहना चाहता है, पर वह उसकी एक नहीं सुनती है । मनीष की दूसरी लड़की से विवाह करने पर वह अपना सारा गहना आदि अपनी बहिन के लड़के की बहू को दे देती है ।[4]

हरि की माँ भी अपने बेटे से प्यार नहीं करती है । जिससे हरि हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है । हरि के पास होने पर भी वह खुशियाँ नहीं मनाती बल्कि उसकी बहिन का बेटा मनीष उत्तीर्ण होता है तो बहुत ही प्रसन्न होती है । उसे अपने बेटे की खुशी एक आँख नहीं भाती । वह अपनी बहू को भी ताने देती रहती है ।

---

1. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री पृ. 122.
2. -वही- पृ. 123.
3. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ. 148.
4. ज्वालामुखी के गर्भ से : मालती जोशी

इस तरह रवि की माँ एक ऐसी माँ है, जो अपने ही बेटे की अवहेलना करती है ।[1]

"उस रात्रौं पर" का आनन्द अपनी माँ पर हुये अत्याचार को सहन नहीं करता, वह अपने पिता से विद्रोह करता है । आनन्द को यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि उसकी माँ पिता के अत्याचार सहे । वह माँ को समझाता है, पर वह देखता है कि उसकी माँ कुछ भी नहीं कर सकती है तो एक मेधावी लड़का होने के बावजूद उद्दण्ड हो जाता है ।

(ब) <u>भाई-बहन का सम्बन्ध</u>

भाई-बहन का सम्बन्ध पवित्र एवं आदर्श होता है । परन्तु आधुनिक युग में इस सम्बन्ध में भी बदलाव आया है । स्वार्थ एवं अर्थ के कारण इस सम्बन्ध को भी धक्का लगा है । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में भाई-बहन के इस बदलते हुये रूप को लिया है । आदर्श और यथार्थ सम्बन्ध भी इन उपन्यासों में पाये गये है ।

"मेरा मन बनवास दिया सा" का हरीश अपनी बहन इन्दु से प्रेम करता है, उसकी बहन का विवाह एक सेठ के बेटे से होता है । जो शराबी एवं विलासगामी है । हरीश अपनी बहिन के दुःख को समझता है । उसे वह आदर की दृष्टि से देखता है, और पछताता है कि वह उसके दुःख दूर नहीं कर सका । अन्त में उसकी बहन की मृत्यु हो जाती है ।[2]

"गोधूलि बेला" का सतीश भी अपनी बहिनों से प्रेम करता है, परन्तु कभी-कभी पत्नी के दबाव के कारण वह उनका सम्मान नहीं दे पाता है । उसकी बहन जब अपने पति का घर छोड़कर आ जाती है, तो वह उसको सान्त्वना देता है । दोनों भाई-बहन मिलकर गरीब बच्चों की सेवा करते है । सतीश की छोटी बहिन के पति

- -

1. ज्वालामुखी के गर्भ में : मालती जोशी : पृ 28.
2. मेरा मन बनवास दिया सा : शान्ति जोशी : पृ. 100.

की मृत्यु हो जाने पर वह उसका पालन-पोषण करता है, और बाद में उसका विवाह भी करता है ।[1]

"टेसू की टहनियाँ" सुशील अपनी बहन सीता को आदर की दृष्टि से देखता है । सीता का कहना है पुलिस उसका व्यवहार न देखकर ।" दुःख होता है, वह सीता को हमेशा प्रसन्न देखना चाहता है ।[2]

"निर्धनता का अभिशाप" का अतुल अपनी बहन मीरा से जीजान से प्रेम करता है । जब अतुल देखता है कि मोहन और मीरा एक दूसरे से प्रेम करते हैं तो वह मोहन को समझाता है कि वह मार्ग से हट जाये, क्यों कि हमारे और तुम्हारे में कोई समानता नहीं है । हम गरीब हैं, और तुम अमीर पर जब मोहन की प्यार में डूबा पाता है तो वह अपनी स्वीकृति दे देता है । परन्तु मोहन और मीरा का प्रेम सफल नहीं होता, मोहन का विवाह अन्यत्र हो जाता है । मीरा दूसरी जगह विवाह करने से इन्कार कर देती है, तो अतुल भी अपना विवाह नहीं करता । दोनों भाई-बहन मिलकर गाँव में स्त्री विद्यालय खोलते हैं, अत्यधिक परिश्रम के कारण मीरा का स्वास्थ्य खराब हो जाता है । अतुल मीरा की सेवा करता है, परन्तु उसे बचा नहीं सकता । मीरा के मरने के कारण अतुल चित्कार उठता है क्योंकि दहेज के कारण ही उसकी बहन का विवाह मोहन से न हो सका था । "बहन बहन ! कैसे त्यागकर चली हो अपने भैया को ! ओह ! इस निर्मम समाज में - इस अत्याचारी दहेज रूपी दानव ने - इन पुरानी परम्पराओं ने आज असमय में ही हमारी हँसी-भरी कोमल भगिनी को कवलित कर लिया । आज बहन की [illegible] हो गई । आज ऊँच नीच की दिवारें, धनी-निर्धन की मर्यादा और बड़ाई मेरी बहन लाडली के प्राणों की प्यासी है ।"[3]

"लोहे" उपन्यास के विनोद और विभा में विचारों में अन्तर होने पर भी दोनों के दर्द एक जैसे ही हैं । क्योंकि विनोद

- -

1· गोधूलि बेला : रज्जा 2· टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री
3· निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा शास्त्री : पृ·265·

अपनी पत्नी के कारण दुःखी है और सिमता भी अपने पति के कारण। इसलिये मिथिल अपनी बहन सिमता से कहता है "सिमी, हमारे सुख एक जैसे न हों, लेकिन हमारे दुःख एक जैसे हो हैं ... शायद हम दोनों ने भाई-बहन होने के नाते ; एक जैसी ही चोटें खाई है और शायद हमारे बीच यह दर्द का रिश्ता ही बना रहेगा ... जानती हो सिमी ! हँसी के रिश्ते टूट जाते है, आँसुओं के रिश्ते बड़े पक्के होते है - तेरी सामिन ।"[1]

भाई-बहन के सम्बन्ध में थोड़ा परिवर्तन आया है ।"सूरज के चमत्कार में" की मानू अपने भाई कुनू को पढ़ाती है । दोनों गरीब माँ-बाप की संतान है । मानू यह देखती है कि कुनू को पढ़ने में बहुत ही दिलचस्पी है तो वह कुनू को साथ लेकर घर से निकल जाती है, और अथक परिश्रम करके अपने भाई को पढ़ाती है । वह कुनू को डाक्टर बनाना चाहती है । परन्तु अत्यधिक परिश्रम के कारण वह बीमार पड़ जाती है । कुनू उसको सुख देना करता है, पर अपनी बहिन मानू को बचा नहीं पाता । अतः मानू अपने भाई कुनू को कीचड़ से निकालकर उसे डाक्टर बना देती है ।[2]

युग परिवर्तन के साथ-साथ आपसी सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है । भाई-बहन के सम्बन्धों में जहाँ त्याग तथा एवं सौहार्द की भावना रहती थी वह अब धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है । इस युग का भाई स्वार्थी हो गया है, वह अपना स्वार्थ ही देखना चाहता है । "सोनाबोदी" का देवेन को सोनाली के घर में रहना पसन्द नहीं है । वह अपनी बहन को देखकर कभी प्रसन्न नहीं होता । जब भी "कभी-कभी भाई की भृकुटी का ख्याल आ जाता है, तो वह पुनः स्वस्थ हो जाती है । उसका भाई उसे घर में देखकर प्रसन्न न होगा ।"[3]

"बात एक औरत की" का बरमू भी उसी प्रकार का भाई है ।

---

1. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.86.
2. सूरज के चमत्कार में : सूर्यबाला
3. सोनाबोदी : रजनी पनिकर : पृ.130.

वह अपनी बहिनों से कभी प्रेम नहीं करता है । उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि विवाह के बाद बहन उसके घर आकर रहे । वह बहुत ही संकीर्ण एवं स्वार्थी विचारों वाला है । वह उनके खाने पीने का हिसाब रखता है । "एक-एक समय के भोजन और और एक-एक कप चायतक का हिसाब रखने की उसको आदत है । .. वह कहता है. उमा और कनु को विवाह के बाद इस तरह इतने दिन तक पड़े नहीं रहना चाहिए ।"1.

बहिन के प्रति भाई का जो कर्तव्य होना चाहिये वह कर्तव्य आज के युग के भाई नहीं निभाते है । "अजन्मी आत्मा की बाँह" का सुहास भी इसी प्रकार का भाई है । बहन के प्रति जो कर्तव्य होना चाहिये वह उसने कभी नहीं निभाया, बल्कि वह अपनी बहन मीता को घृणा की दृष्टि से देखता है । विवाह होने के बाद तो वह अपनी बहिन मीता की ओर से बिल्कुल लापरवाह हो जाता है । उसे बहिन की याद तभी आती है जब रक्षा बन्धन और भइयादूज होती है । "रक्षा बन्धन और भैय्या दूज के दिन जब वह इस दीवार के पार झांकती है तो न भाभी उसे अपमानित करती है और न माँ । शायद भैय्या के लिए बहन की दुआ आवश्यक होती है-- इन दो दिन औपचारिकता ओढ़ कर उसे इस दीवार के पार खैंच देती है और तब वह सुहास भैय्या के माथे पर रोली की लकीर खींच देती है । भैय्या की उदारता से ही शायद उसके हाथ में दस का नोट न पकड़ा कर उसकी थाली में रख देते है ।2.

"बिन्दु" उपन्यास का रवि अपनी बहिन बिन्दु के प्रति जो कर्तव्य होता है उसे कभी नहीं निभाया । वह बचपन से ही अपने बहिन पर अत्याचार करता रहा । बड़े होने पर भी वह कभी अपनी बहिन की सहायता नहीं कर सका । "बिन्दु" की जबरदस्ती

---

1. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.125.
2. अजन्मी आत्मा की बाँह : सुभद्रा : पृ.57.

कृष्णकांत से विवाह होने पर जब वह अपने भाई से सहायता मांगती है तो वह साफ कह देता है कि "मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? तुझे पहले ही सोचना चाहिए था।"1.

जहाँ पहले भाई अपनी बहिन की आर्थिक सहायता भी करते थे, परन्तु बदलते जीवन मूल्यों के साथ-साथ भाई अपनी बहन से आर्थिक सहायता की भी अपेक्षा करने लगा है, चाहे वह अपनी बहिन के प्रति कर्तव्य न निभाया हो। "मेरा नरक अपना" है का हीरेन्द्र जो पहले अपनी बहिन आशा दीदी को उनका ध्यान रखने एवं हर तरह से सम्भालने की बात बड़े उत्साह से करता था, वही अब पत्नी के कारण उसकी उपेक्षा करता है। आशा के दुःख दर्द का उसने कभी ख्याल नहीं किया, बल्कि अपने ही दुःख दर्द उसके सामने लेकर रोते बैठता है। जब उसकी पत्नी उसकी बहन के सामने ही माँ के विरुद्ध कुछ कहती है तो आशा उसकी पत्नी को यह कहती है " मेरी फरिश्ते सी माँ.. ससुराल की इतनी बड़ी फैमिली और अपनी फैमिली की सेवा करते करते ही जीवन बिता गयी। अपने लिए कुछ नहीं मांगा..उनका जिक्र यूँ ना कम से कम मेरे सामने नहीं. .. ।"2. इतना कहने पर ही शीला रोने लगती है, तो वह अपनी पत्नी को कुछ न कहकर बल्कि यह कहता है " शीला! देखो शीला, दीदी अपसेट है इसलिए यह सब कह दिया। वरना मैं जानता हूँ तुम माँ के लिए मेरे से भी ज्यादा दुखी हो। अब और मत रोओ।" इस पर दीदी ने उसकी तरफ यूँ देखा था मानो अब निराशा की पराकाष्ठा हो गयी। भाई इतनी हद तक मजबूर हो सकता है।3.

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव एवं आधुनिक विचारों के प्रवेश के कारण भी भाई-बहन के सम्बन्धों में परिवर्तन आया। भाई की मानसिकता में परिवर्तन आया है। वह अपनी बहन को आधुनिक

- -

1. बिन्दु : सुनीता जैन ,पृ.57.
2. मेरा नरक अपना है : निरुपमा सेवती : पृ.67.
3. " " पृ.67.

स्वीकार कर रहा है । "अपने बेगाने" का शिवप्रसाद स्वतंत्र विचार-धारा है, वह अपनी बहन मिली को हैबिन्दु से मिलने की छूट दे देता है । जब हैबिन्दु मिली से मिलना छोड़ देता है तो वह मिली का विवाह एक प्रौढ़ से जो बहुत अमीर है, से करने को तैयार रहता है क्योंकि वह सब किसी को पैसे से तौलता है । "यह फिर बेचारा भी कैसे जानती है, हर चीज को धन से तौलते है, न आत्मा उनके लिये कुछ है, न जिन्दगी । आखिर मिली में क्या कमी है कि वह एक अधेड़ उम्र वाले रंडुए के साथ ब्याही जाय ?"[1] परन्तु इसके विपरीत शिवप्रसाद का छोटा भाई कुमार विदेश में रह चुका है, परन्तु उसमें उस पर पाश्चात्य का कुछ भी रंग नहीं चढ़ा । वह वापिस आकर मिली का विवाह हैबिन्दु से करवाता है । वह अपने बड़े भाई की तरह हर किसी को पैसे से नहीं तौलता है ।

प्राचीन युग में जो भाई अपनी बहन के सतीत्व के खातिर अपने प्राण निछावर कर देता था, वही भाई आज इतना स्वार्थी एवं नीच हो गया है कि वह अपनी सुख-सुविधा के लिये अपनी बहन को अपने बॉस के पास भेजने से भी नहीं चूकता है "उसका घर" उपन्यास में प्रकाश का भाई अपनी तरक्की एवं ऐश-ओ-आराम को बढ़ाने के लिये अपनी बहन प्रकाश को अपने बॉस बाजुआ के पास भेजता है । प्रकाश को बाजुआ के द्वारा ही मालूम होता है कि "बबुआ और बाजुआ की मिली भगत की चालों में भोग लगाना ही गयी और मैं कुछ जानकर भी उनके बिछाये जाल में फंस गयी हूं ।"[2] इसी प्रकार माँ-बाप का बेटा कमाई में ही गया जो अपनी बहन को बेचता और सौदा करता है ।"[3] प्रकाश को उसके पति ने छोड़ दिया था, बाद में उसके सगे भाई ने तलाक दिलवाया : वह

---

1. अपने बेगाने : सुशिला शर्मा : पृ.103.
2. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.58.
3. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.93.

वह समझता है कारखाना उसके समीप नहीं आये बल्कि उसके पास उस व्यापारी की तरह पास आये है, जिसका जानवर अच्छे दामों में बिकने वाला हो और उसे पता चले कि वह बीमार पड़ गया है। अपनी बहन की सुन्दरता का सौदा शाकिर से करने के बाद वही भाई बहन को दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकता है और अलग रहने लगता है।

इसतरह भाई-बहन के रिश्ते भी आजकल स्वार्थ में परिणत हो गये है।

(ई) देवर-भाभी का सम्बन्ध :

यद्यपि देवर और भाभी का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन सम्बन्ध है, तथापि समय-समय पर उसमें गुणात्मक परिवर्तन होते रहते है। देवर-भाभी का निश्छल सहज हास्य-परिहास और विनोद हमारे साहित्य में अनेक रूपों में अंकित हुआ है। सुख-दुःख में उनकी सहायता करना भी उनका कर्तव्य माना गया है।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने इस देवर-भाभी के पावन सम्बन्धों को अपने उपन्यासों में लिया है।

"टूटे मनके" उपन्यास का प्रवीण अपनी भाभी को आदर की दृष्टि से देखता है। वह उन्हें अपनी माँ के समान मानता है। दोनों देवर-भाभी आपस में हास्य-विनोद भी कर लेते है। परंतु प्रवीण का भाई नवीन अपने ही भाई एवं अपनी ही पत्नी पर शक करता है जिससे दुःखी होकर प्रवीण घर से चला जाता है और सेना में भर्ती हो जाता है। वह अपनी सफलता का श्रेय अपने भाई और भाभी को देता है। "आपके पाँव छूकर हम स्वर्ग जा सकते है आप कैसे नहीं जायेंगी। मुस्कराकर नवीन की ओर देखते हुए बोला, मेरी इस सफलता का श्रेय आप दोनों को है।"[1]

- -

1. टूटे मनके : चन्द्रा स्वप्न : पृ. 32.

"बात एक औरत की" का भी संदीप अपनी भाभी अनु को आदर की दृष्टि से देखता है । जब भी उसकी माँ अनु पर क्रोध एवं अत्याचार करती है तो वह बचाता है और माँ को डाँटता है ।[1]

[ठ] अन्य सम्बन्ध :

पारिवारिक सम्बन्धों में चाचा-भतीजी एवं मामा भांजी के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है । यह सम्बन्ध पहले जो पवित्रता को लिये हुये रहते थे वे अब प्राय: समाप्त हो चुके है । इन संबंधों में भी वासना एवं स्वार्थ की भावना आ चुकी है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने इन गिरते हुए सम्बन्धों को भी अपने उपन्यासों में लिया है । "बात एक औरत की" का परेश जो अनु का चाचा है, वह निम्न कोटि का विलासी पुरुष है, वह अपनी ही भतीजी अनु पर बुरी नजर रखता है, उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है ।[2]

"प्रेम कहानी" उपन्यास की क्षमा पढ़ने के लिए अपने रिश्ते के चाचा के पास रहने लगती है । एक रात वही चाचा उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करते है । जिसके कारण क्षमा हास्टल में रहकर पढ़ने लगती है ।[3]

मामा-भान्जी के नैतिक रिश्तों में परिवर्तन आया है । "रति-विलाप" उपन्यास में अनुसूया का मामा पैसों के कारण अपनी भान्जी का विवाह एक हलवान विक्षिप्त लड़के से कर देते है । वह अपनी भान्जी को धोखे में रखता है । वह उसके ससुर को स्वयं कहता है कि "मेरी भान्जी को कोई आपत्ति नहीं है, कहती है, स्वयं मेरे कुल में भी तो दोष है कौन करेगा मुझसे विवाह ! बड़ी समझदार है मेरी अनुसूया ।"[4]

- -

1. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.
2. -वही-
3. प्रेम कहानी : ममता कालिया
4. रति-विलाप : शिवानी : पृ. 11.

"सुबह के बनजारे" उपन्यास का मामा [सुरेश] इससे भी आगे है। भानु अपने मामा के घर पर रहती थी । सुरेश के आफिस का आदमी मौका पाकर भानु की इज्जत ले लेता है । परन्तु यही मामा जो रिश्वत आदि लेता था इस डर से की सारा भेद खुल जायेगा उस व्यक्ति को कुछ नहीं कहता है, उसे अपनी इज्जत से ज्यादा भानु की इज्जत प्यारी नहीं है । वह अपनी भान्जी की इज्जत की खातिर अपनी आमदनी समाप्त नहीं करना चाहता है ।1"

इस प्रकार 1960 के बाद पारिवारिक के स्वरूप में परिवर्तन आ गया है । परंपरा से विच्छिन्न होकर पारिवारिक सम्बन्ध अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित एवं निजी स्वार्थ में परिणत होते जा रहे हैं । ये सम्बन्ध नाम मात्र को रह गये है । इन सम्बन्धों में एक अजनबीपन समाता जा रहा है जो एक दूसरे के पास रहते हुये भी एक दूसरे से बहुत दूर कर दे रहा है । वात्सल्य एवं स्नेह जैसी मनोवृत्तियाँ समाप्त होती जा रही है और पारिवारिक सम्बन्ध स्वयं में सिमटे हुए और एक दूसरे से अलग और कटे हुये होते जा रहे है । युग-युग से चले आने वाले और मनुष्य को जिन्दा रखने में सहायक पारिवारिक सम्बन्धों का टूटना आज की दुनिया की भयंकर सच्चाई है, इसी सच्चाई को साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने पारिवारिक सम्बन्धों को लिया है । स्त्री-पुरुष के पारिवारिक सम्बन्धों के साथ-साथ स्त्री-पुरुष के परिवारेतर सम्बन्धों को भी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्थान दिया है ।

---

1. सुबह के बनजारे : सूर्यबाला

4·4 परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्ध

स्त्री-पुरुष के सामाजिक सम्बन्ध जो पारिवारिक कहलाये जाते है, उनसे अलग हट कर जो सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के होते है उन्हें परिवारेत्तर सम्बन्ध कहते है, यह सम्बन्ध प्रेमी-प्रेमिका के होते है, तथा अन्य सम्बन्ध भी होते है जो मित्रता की परिधि में आते है। परिवारेत्तर सम्बन्ध को मानवीय सम्बन्ध भी कह सकते है। "मानवीय सम्बन्ध बहुत कुछ समाज की आर्थिक संरचना पर निर्भर करते है और सामाजिक संरचना का सीधा सम्बन्ध उत्पादन वितरण की व्यवस्था से है। मानवीय सम्बन्धों की विकास-प्रक्रिया में उत्पादन-वितरण आधारित इस प्रक्रिया का विशेष योगदान है।"[1] परन्तु मानवीय सम्बन्धों की सीमा अति विस्तृत है किन्तु यहाँ हम विवेचन को स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों तक ही सीमित रखा गया है।

सामाजिक सम्बन्धों के बदलाव के साथ ही स्त्री-पुरुषों के प्रेम-सम्बन्धों पर भी पर्याप्त परिवर्तन आया है। "आज प्रेम सम्बन्ध मात्र सौन्दर्य और भावुकता के परिणाम स्वरूप स्थापित नहीं होते अब प्रेम का कुछ नैतिक मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। प्रेम अब नितान्त व्यक्तिगत अनुभव है।"[2]

भारतीय समाज में जैसे-जैसे लोग देहात से उठकर कस्बों में आते गये, कस्बों से उखड़कर नगरों में और नगरों से उठकर महानगरों में बसते गये है, वैसे-वैसे उनके जीवन-बोध में अन्तर आता गया है और उनके आपसी सम्बन्धों में बदलाव भी आ गया है। इन सम्बन्धों में परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्ध भी अपना अलग महत्व रखते है। आधुनिकता की चुनौती ने जीवन के मूल्यों को इतना बदल

1· आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना : विजय मोहन सिंह : पृ·237·

2· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : मेवालाल गर्ग : पृ·858·

किया है कि मानवीय सम्बन्धों में भारी अन्तर आ गया है । इसका कारण बदलते हुए परिवेश का परिणाम है । इस बदलते हुए परिवेश का आशय यह है कि मूल्य बोध का बदलना । महानगरीकरण ने आपसी सम्बन्धों की दृष्टि को पूरी तरह बदल दिया या उसे द्वन्द्व की स्थिति में डाल दिया है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने नर-नारी के आपसी सम्बन्धों विशेष रूप से प्रेम-सम्बन्धों को अपने उपन्यासों में उजागर किया है । "पिछले पच्चीस वर्षों से प्रेम सम्बन्धों ने अनेक रंग बदले हैं । पूर्व प्रेमचन्द या यशपाल की प्रेम-कहानियों में जो भावुकता लक्षित होती थी, वह इस काल में बहुत कम दिखाई पड़ती है । अब प्रेम सम्बन्धों में भी स्वार्थ वासना उद्वेग तथा अपने अपने व्यक्तित्वों के परस्पर सफलता या असफलता लक्षित होती है ।"[1] प्रेम का सम्बन्ध मानवीय रागात्मक वृत्ति से है । जैसे करुणा दया आदि की भांति प्रेम भावात्मक मूल्यों की श्रेणी में आता है । जीवन की प्रेमात्मिका स्थिति की पहचान में इसका प्रमुख दृष्टि-बिन्दु आभासित होता है । प्रत्येक को अपने मूल रूप में देखने की वैज्ञानिक दृष्टि ने आज प्रेम की नैतिकता की धारा से मुक्ति दिला दी है । अधिकांश महिला उपन्यासकारों ने इसी पक्ष का उजागर अपने उपन्यासों में किया है चाहे वह शिवानी हो या कृष्णा सोबती हो या अन्य महिला उपन्यासकार ।

प्रेम का सैद्धान्तिक पक्ष आज भी आदर्श को समाहित किये है । प्रेम के परम्परागत एवं नूतन दोनों दृष्टिकोणों का प्रतिफलन हुआ है । "सूखा सैलाब" का अशेष ममता से प्रेम करता है। वह एक आदर्शवादी युवक है । वह ममता से एकनिष्ठ प्रेम करता, ममता का विवाह हो जाने पर वह विवाह नहीं करता है । जब वह देखता है कि उसकी प्रेमिका पतन के मार्ग पर अग्रसर हो रही है तो वह उसे समझाता है, परन्तु वह नहीं मानती । जिससे अशेष को बहुत दुःख

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : [illegible] शर्मा पृ. 86.

होता है । "काश नारी की पवित्रता पर की अपरिमित दाग और कष्टों को तुम पोंछ देती । नारीत्व के सब आनन्द, आदर, सुहाग और पुत्र तुमको मिल जाते, तुम पुरुष को मोमुख प्रखर आँखों में निरादृता बनकर कोसती रहती ।" 1.

"कोहरे" उपन्यास का भीमसिंह भी अपनी प्रेमिका चन्दा से अत्यन्त प्रेम करता है । दोनों का विवाह नहीं हो सकता था, जिसके फलस्वरूप चंदा ने आत्म हत्या कर ली थी । भीमसिंह चंदा की याद में आजीवन कुँवारा रहता है । मेहता के यह कहने पर कि तुमने दूसरा ब्याह क्यों न किया तो वह कहता है कि "विवाह हमारा हो चुका था मालिक, जमाने की नजर में भले नहीं, परभु की नजरन में तो सब कुछ हुई चुके थे... फिर दूसरा ब्याह कैसे करते . हम मालूम है मालिक विवाह नहीं जी जोड़े से विधना ही जोड़ा हुई चुके थे." 2.

"टपरे वाले" का रामअवतार भी माला से सच्चा प्रेम करता है । परन्तु लीला उससे प्रेम नहीं करती है, वह पन्ना से प्रेम करती है । जिसके कारण उसे गर्भ रह जाता है । समाज में उसकी बदनामी होने लगती है, तो रामअवतार आगे आकर उस बच्चे को अपना बच्चा कहता है । वह लीला से कहता है कि " अनजान काहे का री ! जानता हूँ कि पन्ना बाबू का ही यह सब है - और यह भी समझता हूँ कि उसने कितने छोह मिलकर तुझे नहीं अपनाया होगा ! सीता को बनवास देकर रामचन्द्रजी सुखी तो नहीं हुए होंगे । कभी शराब पीने वाला शराबी जरूर हूँ । कभी अकल का इम्तहान नहीं हूँ ।" 3. वह लीला से यह भी कहता है कि " तेरे शरीर को भी तेरी तरह चाहता हूँ... परन्तु तेरी मर्जी के बिना मैं क्यों हाथ लगाऊँगा भला ! लूटने खसोटने को क्या घरों में कमी है ।" 4.

---

1. सूखा सैलाब : निर्मला वाजपेयी : 82.
2. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.
3. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 161.
4. -वही- : पृ. 162.

"टेसू की टहनियाँ" का नायक एक आदर्शवादी युवक है । वह नीता से बहुत प्रभावित होता है, और उससे प्रेम करने लगता है । नीता भी उसकी ओर आकर्षित होती है । परन्तु जीवन में पहली बार रिश्वत लेते हुए पकड़ा जाता है । यह रिश्वत उसे अपने पिताजी के कारण लेना पड़ा था । उसे ऐसा लगता है कि वह नीता की नजरों से गिर गया । वह नीता का सामना कर पाने में अपने आपको असमर्थ पाता है और आत्महत्या कर लेता है ।1.

"सूखी नदी का पुल" का डा०कामी नारी द्वारा ठुकराया जाता है । फिर भी वह उसके प्रति घृणा नहीं करता है । यहाँ तक की दोनों की सगाई भी हो चुकी थी । बाद में तारा उनसे अपने बेटे के इलाज के समय उनसे मिलती है तब उसे मालूम होता है कि उसकी जिस युवक से सगाई हुई थी वही डाक्टर कामी है । बाद में डाक्टर ने विवाह नहीं किया । तारा डाक्टर से विवाह करने के लिये कहती है तो वह कहता है कि वह जीवन में किसी नारी से ठुकराया नहीं गया कभी । जो एक बार ठुकराया गया हो वह बड़ी मुश्किल से सम्भलता है ।.2. वह तारा से एकनिष्ट प्रेम करता है और आजीवन मरीजों की सेवा में बिता देता है । वह कहता है मैं एक डाक्टर हूँ, प्रसन्नचित्त मुझे रहना ही चाहिए और दूसरा हँसना और हँस कर पी जाना तो मैंने जीवन से सीखा है ।.3.

"बिन्दु" उपन्यास के शम्भु और बिन्दु एक दूसरे से सच्चा प्रेम करते है । परन्तु रूढ़िवादी समाज के कारण एक दूसरे से अलग हो जाते है । जो सपने दोनों ने मिलकर संजोये थे वे टूट चुके । क्योंकि बिन्दु के परिवार वाले उसका विवाह अन्यत्र कर देते हैं । बिन्दु के यह कहने पर कि उसे एक बार प्यार कर ले तो वह कहता है कि "छि ऐसे नहीं कहते बिन्दु ! ऐसी छोटी नहीं बनो रानी ! सोचो देख । देख बिन्दु, देख.. ये हाथ पराई मेंहदी रचाए हैं । इन्हें कीचड़ से नहीं सानो, सुनती है...बिन्दु...तेरा सामीप्य मैंने

1.टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री :
2.सूखी नदी का पुल : कृष्णा सिन्हा : पृ.169.
3. -वही- : पृ.180.

चाहता है, तेरी भावना भी समझता रहा हूँ, तू नहीं जानती । पर वह भावना थी जो कभी पूरी नहीं हुई । देख बिन्दू, किसी के लिए निकली गई वस्तु वैसा पाप है चोरी है, बिन्दू..."1. वह उसे ढाढ़स बंधाता है देखता हूँ तुझे देर से बल की आवश्यकता होगी, आत्मबल की । मेरे सर्वस्व को कोई मेरे सामने ही ले जायगा और मैं बैठा देखता रह जाऊँगा , उसमें भी बल चाहिए । पर मुझसे अधिक तुझे ....बिन्दू.... तुझे । जिसे समर्पण भी करना होगा और वह भी अनचाहा समर्पण.... 2.

प्रेमी के रोमान्टिक बोध का सम्बन्ध "चाँद का अमावस" में किया गया है । रमाकांत सुनीता से प्रेम करता है । परन्तु सुनीता उससे घृणा करती है क्योंकि सुनीता का विवाह हो चुका था, परन्तु बाद में उसके पति की मृत्यु हो जाती है । सुनीता को ऐसा लगता है कि वह अब मुक्त है । इसीलिये वह उससे घृणा करती है, लेकिन रमाकान्त किसी दूसरी नारी से शादी करने से इंकार करता है और सुनीता के इन्तजार में दिन काटने लगता है । वह भाभी से कहता है " प्रतीक्षा... अन्तहीन प्रतीक्षा । जिस दिन जीवन की लड़ाई अकेले लड़ते-लड़ते हार जायेगी और मुझे पुकारेगी उसी दिन दौड़ा-दौड़ा चला आऊँगा, उससे पहले नहीं । और भाभी, उस दिन के लिए अपने को मुक्त रखना चाहता पहले नहीं । .... क्योंकि मैंने पागलपन की हद तक उसे प्यार भी तो किया है ।" 3.

"सुरंगमा" उपन्यास का राबर्ट ग्यूरी एक धीर, प्रशान्त एवं सच्चे अर्थों में आदर्श प्रेमी है । जो महानता त्याग और समर्पण के कारण एक अविस्मरणीय प्रेमी बन गया है । राबर्ट निःस्वार्थ भाव से ही लक्ष्मी को बचाता है । उसे अपनी बहन के पास आश्रय देता है । इतना ही नहीं बहिन के कहने पर लक्ष्मी की सन्तान को अवैध कहलाने से बचाने के लिए लक्ष्मी के साथ विवाह भी करता है ।

- -

1. बिन्दू : पृ.53.
2. बिन्दू : पृ.54.
3. चाँद अमावस का : मालती जोशी : पृ.102.

उसके बदले में वह किसी चीज की आशा नहीं रखता । वह मूक प्रेमी का आदर्श प्रस्तुत करता है । उसके प्रेम में वासना की दुर्गन्ध नहीं है । वासना से ऊपर उठकर किया जाने वाला प्रेम ही तो सच्चा प्रेम है । वह प्रेमियों का आदर्श प्रतीक है । गजानन जब लक्ष्मी को ले जाता है तब वह खामोश रहता है और यही उसका सबसे बड़ा त्याग है । उसका यही त्याग उसे उज्ज्वलता प्रदान करता है ।[1]

परन्तु बदलते सम्बन्धों के साथ-साथ प्रेम-सम्बन्धों में भी बदलाव आ गया है । अब प्रेम सम्बन्धों में अजनबीपन, कुंठा स्वार्थ भावना, धन एवं अर्थ की प्रधानता आ गयी है, अब पहले की उच्च भावना प्रायः समाप्त हो रही है । भावुकता पूर्ण प्रेम संबंध अब कम मिलते है । अपने अपने व्यक्तित्वों के परस्पर उन्मीलन की सफलता या असफलता निहित होती है । प्रेम करने के पहले पुरुष अपने जीवन के महती उद्देश्यों के प्रति सोचने लगा है ।

"बँटता हुआ आदमी" का प्रेमी किशोर एक ऐसा प्रेमी है जो अपने स्वार्थ के कारण अपनी ही प्रेमिका से एक नीच प्रस्ताव करता है कि सेठ से विवाह कर ले । क्योंकि किशोर ने उस सेठ से कर्ज लिया है । विवाह के थोड़े दिनों बाद सब एक उधार लिये हुये रुक्के वाला कागज फाड़ चुका होगा । इस तरह किशोर एक वासना-क एवं स्वार्थी प्रेमी है, जो अपने जीवन के उद्देश्यों के प्रति अपनी ही प्रेमिका अनीता को सेठ से विवाह करने को कहता है । बाद में यही किशोर एक अमीर क्रिश्चियनों से विवाह कर लेता है । परन्तु अनीता इस दुःख को नहीं भुला पाती । जहाँ पुरुष इस दुःख को आसानी से भूल पाते है वहाँ स्त्रियाँ नहीं भुला पाती । वह कहती है इतनी आसानी से अपने को स्थितियों के अनुकूल ढाला जा सकता है ।[2]

"कुमारिकाएं" उपन्यास का गुरुवचन और गुड्डो प्रेमी-प्रेमिका है । गुरुवचन एक ऐसा प्रेमी है जो गुड्डो से प्रेम तो कर सकता है परन्तु

---

1. शिवानी के उपन्यासों का रचना-विधान : हरिबाला : पृ. 24-25.
2. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : पृ. 53,160.

विवाह नहीं । क्योंकि वह कहता है कि "पिताजी कह रहे थे कि यदि दूसरी जाति में विवाह करोगे तो जायदाद का कुछ भी हिस्सा वे मुझे नहीं देंगे ।"1"

प्यार स्त्री-पुरुष दोनों की एक दुविधा, एक भावात्मक स्थिति भर है । वह दुविधा समय के साथ बदलेगी । पूरा मामला का झुकाव नवीन दृष्टिकोण की ओर इंगित है ।

"नारी" का नायक किसी भी प्रकार के बन्धन को नहीं मानता । वह विवाह में बड़ों की स्वीकृति आवश्यक नहीं समझता । वह मोनिका से प्रेम करता है। वह कहता है कि "पिताजी अपनी जिद पर तुले है । इसके अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं था, अब कम से कम वे यह जान लें कि उनके बिना भी शादी हो सकती है ।"2"

प्रेम-सम्बन्ध को पुरुष बड़ी आसानी से भूल जाता है और अन्यत्र विवाह भी कर लेता है । उसे प्रेम या विवाह की संभावना उसके लिये कोई महत्व नहीं रखती । अलग छूट जाने का अर्थ उसके लिए जीवन भर प्रेम की संभावना से हाथ धोना नहीं होता है ।

"हिम पहाड़" का भी पहले तो उमा से प्रेम करता है, परन्तु विदेश में जाकर वहाँ पर विदेशी लड़की से विवाह कर लेता है, और उमा को दिया गया वचन आसानी से तोड़ देता है ।3.

"दुविधा" केशव और नायक दोनों प्रेमी-प्रेमिका है । दोनों में प्रेम सम्बन्ध होता है । परन्तु जो एक नायक से एक दिन भी मिले बगैर नहीं रहता था, वही बाद में अन्यत्र विवाह कर लेता है, वह नायक से आकर मिलता भी है । उसमें जरा सी भी अपराध भावना नहीं रहती है "जैसे कुछ भी नहीं हुआ था । सारी बातें ऐसी सहजता और सफाई से याद थी जैसे अभी कल की ही बात हो । नायिका के सामने वह वह ढाँचा बिल्कुल नया था । मुझे दिखाने

---

1. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.121.
2. नारी : शशिप्रभा शास्त्री : पृ.120.
3. हिम पहाड़ : कृष्णा सोबती :

जैसी कोई बात नहीं। अपराध की कोई भावना नहीं जिस पर जरा भी पछतावा नहीं। वर्तमान से कोई असंतोष नहीं बाद की तलाश करके भी उसे मिलने का हौसला रखता है।"1.

"कुमारिकाएँ" उपन्यास के पुष्प और रोज प्रेमी-प्रेमिका है। वह रोज से विवाह नहीं कर पाता है क्योंकि रोज से विवाह करने पर उसे समाज में सम्मान नहीं मिल पायेगा। वह रोज से कहता है कि "मैं तो मानता हूँ कि तुमसे मेरे विवाह को सुनते ही माँ खटिया पकड़ लेगी और पिताजी बात करना बंद कर देंगे, लेकिन मैं अनचाहा तो रह भी सकता था। स्थिति है इन बीच के सामने विवश हथियार डाल देने हैं और कोई रास्ता दिखाई नहीं देता मुझे। हो सकता है तुम मुझे बेवफा कहो या डरपोक बाज समझो परन्तु मैं दोनों में से एक भी नहीं हूँ। मैं अभी तक मजबूरियों से बंधा हूँ।"2. वह बड़ी सफाई से अपनी कमजोरी को छिपाता है। रोज पुष्प से कहती है कि "पुष्प, सच तो यह है कि तुम अपने मन कमजोरी पर इन स्वका परदा डाल रहे हो। समय के साथ तुम कहाँ तक सोच रहे हो कि इस मुस्लिम सामान्य लड़की के लिये एक ऊँचे परिवार की लड़की को क्यों छोड़ दी जायें।"3.

कुछ प्रेमी अपनी प्रेमिका से प्रेम सम्बन्ध तो रख सकते है, परन्तु कायर की प्रवृत्ति होने के कारण अपनी प्रेमिका से विवाह नहीं कर पाते है।

"इन्सान कम्पा" का मधुकर कम्पा से प्रेम करता है। परन्तु कम्पा की अन्तिम अन्तर्जातीय विवाह कर लेती है तो उनका विवाह नहीं हो पाता। मधुकर एक ऐसा कायर प्रवृत्ति का प्रेमी है जो कम्पा से विवाह नहीं कर सका।

"आज एक औरत भी" का संदीप प्राण से प्रेम करता है।

- -

1. दुविधा : रजनी पनिकर : पृ. 101.
2. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 183.
3. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 173.

यामिनी भी उससे प्रेम करती है । परन्तु संदीप का विवाह अन्यत्र हो जाता है । यामिनी संदीप को नहीं भुला पाती । संदीप भी यामिनी को नहीं भुला पाता है । वह एक कायर प्रवृत्ति का पुरुष है, उसे अपनी माँ का भय है । वह कहता है कि "यामिनी के अतिरिक्त मुझे सुन्दर पत्नी भी सुखी नहीं रख सकेगी ।"[1]

"अजन्मी आत्मा की चाह" का राज भी पहले सीता से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता है, और बाद में उसे छोड़ देता है, पत्र द्वारा अपनी लाचारी प्रकट करता है । "स्त्री लाचार हो सकती है क्योंकि परिवार, समाज, धर्म तथा कानून से न जाने कितने छोटे बड़े बन्धनों में वह जकड़ी पड़ी है । पुरुष लाचार नहीं होता । मगर वह कहता है कि वह लाचार है तो लाचारी ओढ़ी हुई होती है ।"[2] वह जिन्दगी को एक ब्लैकबोर्ड समझ लिया है, जिस पर लिखा हुआ आसानी से पोंछा जा सकता है । "ब्लैकबोर्ड पर चाक से लिखा हुआ डस्टर से पुंछ जाता है, और तुम्हें पोंछने की आदत है । पर राज जिन्दगी एक "ब्लैकबोर्ड" नहीं है जिस पर लिखा सब पोंछा सकें । यह हो सकता है कि तुमने अपनी जिन्दगी को ब्लैक बोर्ड समझा हो और उस पर लिखे को पोंछते रहे हो पर तुमने यह क्या सोच लिया कि औरों की जिन्दगी भी ब्लैक बोर्ड है और वह भी तुम्हारी तरह उसे पोंछ कर लिखने से पहले साफ कर लेगा ।"[3]

अर्थ के महत्व के कारण भी प्रेम सम्बन्धों में बदलाव आया है । "भिक्षुता का अभिशाप" का मोहन मीरा से प्रेम करता है । मीरा भी मोहन से प्रेम करती है । परन्तु मोहन के पिता को यह प्रेम बिल्कुल नहीं भाता । क्योंकि मीरा एक गरीब अध्यापक की बेटी थी, जिससे उन्हें दहेज कुछ भी नहीं मिल सकता था । वे मोहन का विवाह दूसरी जगह कर देते हैं जिससे इसी अर्थ के कारण दोनों के सम्बन्ध टूट जाते हैं ।[4]

---

1. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री
2. अजन्मी आत्मा की चाह : सुभद्रा : पृ. 100
3. -वही- पृ. 104
4. भिक्षुता का अभिशाप : सम्पूर्णा तागिडो : पृ.

प्रतिध्वनियाँ उपन्यास का नीलकान्त शुभ्रा से प्रेम करता है । शुभ्रा भी उसकी ओर आकर्षित होती है। परन्तु शुभ्रा गरीब थी, उसे दौलत की चमक के आगे शुभ्रा का प्रेम फीका लगा और वह अपनी प्रेमिका को छोड़कर कमला से जो सेठ की जायदाद की अकेली वारिस थी, उससे विवाह कर लिया । इस तरह नीलकान्त ने प्रेम सम्बन्ध से ज्यादा अर्थ को महत्व दिया है ।[1]

प्रेमी-प्रेमिका प्रेम सम्बन्धों में आयु को महत्व नहीं देते है । चाहे प्रेमी हो या प्रेमिका वे अपनी आयु से भी ज्यादा आयु वाले से प्रेम करते है । इनके प्रेम सम्बन्धों में आयु दिवार बनकर रास्ता नहीं रोकती है ।

हमारे समाज में उम्र को लेकर रूढ़ियाँ और परंपराएं हैं । उम्र में छोटे या बहुत बड़े (प्रौढ़) प्रेम या विवाह की बात हम सोच भी नहीं सकते, प्रेम में आदान-प्रदान या एक दूसरे के लिए कुछ करने का भाव निहित रहता है । यदि यह प्रवृत्ति दो व्यक्तियों में है तो शरीर गौण हो जाता है और प्यार स्वयमेव सूक्ष्म हो जाता है । दो व्यक्ति आपस में जुड़ते हैं मूलतः मानसिक लगाव से फिर भी हो आयु का अंतर हो, प्रमुख है मन या चिंतन ।[2]

"एक औरत की जिन्दगी" का रघु रती से आयु में बहुत बड़ा है । रघु रती की बहिन का जेठ है । दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है । रघु रती से सच्चे हृदय से प्रेम करता है । वह रती के बिना जीना नहीं चाहता । वह उससे विवाह करना चाहता है परन्तु रती के पिता को यह संबंध बिल्कुल पसन्द नहीं है । वे रती का विवाह अन्यत्र कर देते है । रघु इस सदमे को नहीं सह सकता । तीन-चार वर्षों तक वह विक्षिप्त सा घूमता रहता है । बाद में वह ठीक होता है । इसी बीच रती का विवाह सफल नहीं होता है । वह गांव से भागकर नौकरी के लिये दिल्ली जा रही होती है तो टिकट चेकर के रूप में उसे रघु मिलता है । वर्षों से बिछुड़े हुये प्रेमी आपस में मिल जाते है । रघु रती को अपना लेता है ।[3]

---

1. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल 2. सारिका :
[illegible]

"दुविधा" उपन्यास का विक्रम अपनी प्रेमिका वाणी से आयु में छोटा है। पर वे उम्र के इस बन्धन को नहीं मानते और प्रेम सम्बन्ध को बनाये रखते हैं। दोनों एक दूसरे को हृदय से प्रेम करते हैं।[1]

"टेसू की टहनियाँ" का मधुर एक पत्रकार है। वह सीता से प्रेम करने लगता है। यद्यपि आयु में सीता से वह छोटा है। सीता और वह मिलकर गाँवों में गरीबों की सेवा करते हैं। सीता भावनाओं को दबा कर कर्तव्य में ही जुटी रहती है। वह मधुर के प्यार की उपेक्षा करती है, वह इस प्यार को उचित नहीं समझती, पर मधुर उसे समझाता है "तुम तो स्वयं रत्न हो और तुम्हें बार-बार देखकर ही मुझे सिवा एक निश्छल प्यार के और कुछ अनुभव नहीं होता। वह कहता है आप जो जीवन जी रही है वह प्यार से ऊपर-ही-ऊपर जीने की युक्तिमात्र है। भीतर से उपजती मनोभावनाओं का डटकर मुकाबला किये की हिम्मत आपकी नहीं। सारी दुनिया के पुरुष मुर्दा नहीं, और न अतीत के साथ ही सारे पुरुष मर गये।"[2]

"सौंदृत" उपन्यास के साईं बाबू के सुमेर की सुन्दरी तन्वंगी मामी माँ बहुत अच्छी लगती है और वह उसके साथ स्नेह-रज्जु में बन्धता चला जाता है। किशोर सुमेर अब यौवन में प्रवेश कर गया, वह जान नहीं पाई, जान पाई तब जबकि दोनों जबरदस्त प्रयास कर रहे थे, एक दूसरे से अपनी भावनाओं को छिपाने के लिए। सुमेर अपने हृदय की सच्चाई को सबसे बड़ा सत्य समझता है, और समस्त दुनिया का कोई इससे लेना नहीं चाहता। यद्यपि आयु में मनोजी से बहुत छोटा है फिर भी वह शक्तियों से मनोजी को अपना भाव बता देता है। मनोजी भी इस आकर्षण को समझती है, पर वह इस सम्बन्ध के लिये तैयार नहीं होती है। वह सुमेर का विवाह अन्यत्र कर देती है। वह सुमेर के प्रेम को लोगों से छिपाये रखती है, परन्तु

---

1. दुविधा : रजनी पनिकर :
2. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.22।

अब वही सुकीत जिसने अपनी सारी संवेदनाओं को समाप्त कर लिया है और अपने जीवन की निस्सारता के कठोर धरातल पर स्वीकार कर लिया है वही मनोपी को स्वयं की भावुकता को छोड़कर आंखें खोलकर जीवन जीने को कहता है ।1.

"सोनाली दी" उपन्यास के जीवनदास जी सोनाली से आयु में दुगनी उम्र के है । परन्तु वे सोनाली से प्रेम करने लगते है । सोनाली भी उनसे प्रेम करती है । उनकी एक पुत्री थी । जिसके सामने वे अपने इस प्रेम-सम्बन्ध को उजागर करने से कतराते है, बाद में उनकी बेटी रानू उनके इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेती है ।2.

अपनी उम्र से बड़ी उम्र के व्यक्ति के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भी प्रेम सम्बन्ध हो जाता है । "सोनाली दी" की रानू महिम के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी ओर आकर्षित होती है । यह यह प्रेम सम्बन्ध का एक स्तर है युवती और प्रौढ़ में स्थापित होता है । परन्तु रानू जल्दी ही इस आकर्षण से दूर हो जाती है । वह कहती है " मुझे अपने आप पर हैरानगी है कि मैं जाने कैसे महिम दा के लिए कई बार तड़पी हूँ । महिम दा में तो ऐसा कुछ भी नहीं. अब तो मुझे उनके नाम से भी नफरत है ।"3.

अधिकार भावना होने पर भी प्रेम-सम्बन्ध टूट जाते है । "एक इंच मुस्कान" का कैलाश अमला से प्रेम करता है । परन्तु उसे यह पसन्द नहीं है कि अमला सामान्य व्यक्तियों से बात करें । वह अमला से कहता है कि तुम साहित्य में रुचि रखती हो, पढ़ती हो, लिखती हो छपती-छिपती हो - इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर हर किसी के साथ आवश्यकता से अधिक घनिष्ठ हो जाओ, सबसे बराबरी का व्यवहार करो, साधारण से आदमी को अपना बनालो, यह सब तुम्हें शोभा नहीं देता ।"4. बाद में वह अन्याय

---

1. सीढ़ियां : शशिप्रभा शास्त्री :
2. सोनाली दी : रजनी पनिक्कर : पृ.
3. सोनाली दी : रजनी पनिक्कर : पृ.160.
4. एक इंच मुस्कान : मन्नू भंडारी : राजेन्द्र यादव : 81-82.

विवाह कर लेता है ।

"पचपन खम्भे लाल दीवारें" का नील अत्यन्त भावुक संवेदनशील युवक है । वह सुषमा से प्रेम करता है । सुषमा भी उससे प्रेम करती है । पहली ही भेंट में सुषमा पर मुग्ध हो गया था । सुषमा ने उसे पूरी तरह संकेत कर दिया था कि वह उससे उम्र में बड़ी है । यह सब जानने पर भी वह सुषमा के पास आना नहीं छोड़ता। वह शब्द के पूरे अर्थों में एक आधुनिक युवा प्रेमी है जो अपने और दूसरों के प्रति पूर्ण ईमानदार, स्थिति और वास्तविकता को पूरी तरह समझने वाला उसे अपनी स्वतंत्रता में दूसरों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं था । वह एक ऐसा प्रेमी है जो अपनी सोच का रास्ते का निर्माण स्वयं करता है । सुषमा से विवाह प्रस्ताव करने से पहले उसने उसके उत्तरदायित्व के विषय में पूरा सोच लिया है और सुषमा से कहता है "तुम्हारा परिवार विवाह के बाद मेरी जिम्मेदारी होगी उसी तरह जिस तरह अब वह तुम्हारा है ।"[1] परन्तु सुषमा के न कहने पर उसे बहुत क्रोध आता है और सुषमा से दूर चला जाता है ।

अधिकांश प्रेम सम्बन्ध टूटने के लिए ही बनते हैं । "रुकोगी नहीं राधिका" का अक्षय राधिका के प्रति आकर्षण का अनुभव करता है । राधिका भी उसकी ओर आकर्षित होती है । पर उसके परम्परित संस्कार राधिका को पूर्ण रूप से उसके अतीत सहित ग्रहण करने में अवरोध खड़ा करते हैं। राधिका अक्षय के मन में बसने वाले परम्परागत संस्कारों और आकर्षण के द्वन्द्व से परिचित है । इसी से वह अपने को मनीष जैसे व्यक्ति से बांधने का निर्णय ले लेती है जो विचारों में प्रगतिशील होने के साथ ही परिस्थिति को काफी नजदीक से देख चुका है । मनीष राधिका के दर्द को समझता है और राधिका भी अपनी पीड़ा उसके आगे उंडेलती है । "विद्या को सौंपने से क्या? अब जो मैं थी वह अब नहीं हूं ।"[2] बाद में वह अक्षय से सम्बन्ध तोड़ कर मनीष को अपना

- -

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा :

2. रुकोगी नहीं राधिका : -वही- : पृ. 165.

लेती है ।

"कोई एक" उपन्यास के देव और रोमा जो एक दूसरे से प्रेम करते थे, परन्तु बाद में यह प्रेम-सम्बन्ध टूट जाते है । देव रोमा के पिता की मृत्यु के बाद अकेला ही अमेरिका चला जाता है, तब उसने सांत्वना का एक शब्द भी नहीं बोला था । "उसने एक बार भी मुझे अपनी बाँहों में भरकर मेरे आंसू नहीं पोंछे ! एक बार भी मेरे सर पर हाथ फेरकर नहीं कहा "पापा नहीं रहे तो क्या, मैं तो हूँ । मेरे रहते हुए उदास क्यों हो ।"[1]

कुछ प्रेमिकाओं में प्रेम की तटस्थता नहीं रहती है भ्रमर की भांति इधर-उधर मंडराती रहती है " अपने बेगाने" उपन्यास का प्रेमेन्द्र पहले शिखा से प्रेम करता था । शिखा भी उससे अत्यंत घनिष्ठ प्रेम करती है परन्तु वही प्रेमेन्द्र शिखा की उपेक्षा कर उसकी सखि मंजू पर आसक्त हो जाता है । परन्तु, मंजू उसे फटकारती है वह प्रेमेन्द्र से कहती है कि "आपको मैंने इस दृष्टि से कभी नहीं देखा ! प्यार क्या होता है यह तो मैं ठीक नहीं जानती, किन्तु यह इतनी छोटी चीज कभी नहीं हो सकती ! जो दूसरों को मुँह दर न दर दे वह प्यार ही क्या है !"[2]

नपुंसकता के कारण भी प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्धों में दरारें उत्पन्न होती है । "कौरवा" उपन्यास के अमित और कम्मो के बीच प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्ध है । जब कम्मो को मालूम होता है कि अमित नपुंसक है तो उसे बहुत दुःख होता है । वह इसका अमित नहीं सहन कर सका, क्योंकि अमित यह समझता था कि प्रेम आत्माओं का मिलन है उसमें शरीर का स्थान नहीं । वह कम्मो से कहता है "तुम क्या सोचती हो कम्मो तिल-तिल उसके अपने को मारना क्या ठू हो है जो इन्साफ पोंछकर अपने को, अपनी कमजोरी को भूलने की कोशिश करता हूँ यह क्या झूठा है ! तुम सोचती होगी कम्मो, जब

---

1. कोई एक : सुधा शर्मा : पृ.22.
2. अपने बेगाने : सुनिता शर्मा पृ.61.

मैं नाबालिग नहीं था तो क्यों मैंने तुमसे प्यार किया ? पर इसका मेरे पास सीधा-सादा उत्तर है - मैं नहीं जानता था कि प्यार में शरीर का इतना स्थान होता है । शरीर से हटकर आत्मा से किसी को प्यार किया जा सकता है । बस यही मैं सोचता था ।"1.

कुछ प्रेम सम्बन्ध ऐसे भी होते हैं, जिसमें प्रेमी अपने प्रेम का इजहार अपनी प्रेमिका से नहीं करता है । "कोई एक" का सत्यजीत रोमा से कभी प्रेम का इजहार नहीं करता । यद्यपि रोमा सत्यजीत से प्रेम करती है । वह किसी से बँधना नहीं चाहता है । न उसने रोमा से कभी वायदा किया था । परन्तु सत्यजीत दिल ही दिल में रोमा से प्रेम करता था । अपनी बात अपने ढंग से कहने या अपनी भावनाओं को अपने तक सीमित रखने का अंदाज उसका अपना था । रोमा सोचती है कि " सत्यजीत के साथ जिन्दगी आसान नहीं थी लेकिन उसमें सुकून था, आत्म-विश्वास था, रोशनी की अनगिनत किरणें थीं, जो अपनी चंचलता में मुझे दूर-दूर तक बहा सकती थीं । न जाने क्यों मुझे लगता था, सत्यजीत को पा लेना खुद को पा लेना होगा ।"2.

प्रेम सम्बन्धों में प्रेमी को अपनी चीज का अर्थात् अपनी प्रेमिका का अन्य की ओर आकर्षण बर्दाश्त नहीं कर सकता है । "अपने बेगाने" का प्रताप मंजू के यह कहने पर कि प्रेमेन्द्र ने उससे प्रेम किया है तो वह आवेश में आकर चाँटा मार देता है । परन्तु मंजू क्रोध में आने की अपेक्षा पुलक से भर उठती है " इतने पुरुषों के बीच सब एक उसे मिला था जो दिल से उसे अपना बनाना चाहता था - जैसी कही या बनावट से अछूता, पर वह आवेश - "अपनी" चीज की रक्षा करने या वह नर पशु का आवेश उसके गूढ़ अन्तर का भाव आइने की तरह स्पष्ट कर रहा था ।"3.

- -

1. कोहरा : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.277.
2. कोई एक : शुभा वर्मा : पृ.81.
3. अपने बेगाने : प्रतिभा वर्मा : पृ.215.

कुछ प्रेम सम्बन्ध सहानुभूतिवश होते है परन्तु ऐसे सम्बन्ध जल्दी ही टूट जाते है । "अपने बेगाने" का शैलेश और मंजू का प्रेम भी सहानुभूति वश है । शैलेश को सहानुभूति चाहिये पर मंजू कब तक सहानुभूति दे सकती थी । इसलिये वह इस सम्बन्ध को तोड़ देती है । वह सोचती है कि गेटे ने ठीक ही कहा है कि मर्द सब एक जैसे होते है - स्त्री की समझदारी और प्रतिभा लेकर वह क्या करेंगे ; शैलेश को इस समय किसी स्त्री की सहानुभूति चाहिये थी । मुझसे मिली तो मुझे ही सब कुछ समझ लिया । सवेरा तो उन्हें सहानुभूति की आवश्यकता न रहेगी । वह भी नौकरी करेंगे । समाज में चार मित्र होंगे, फिर मुझे इतना ही आदर देंगे या नहीं, और मुझे भी उनसे कितना प्रेम है ।[1] यही सोच कर मंजू शैलेश से संबंध तोड़ लेती है ।

प्रेम सम्बन्धों में स्वार्थी प्रेमी का भी चित्रण उपन्यासों में किया गया है । "कुमारिकाएं" उपन्यास का विनीत शुचिता की कहानी सुनकर उसकी ओर झूठे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता है । पर बाद में यही विनीत शुचिता पर झूठा आरोप लगाता है, स्त्री की शक्ति उसके ही पुरुष अहितों से उसे कमजोर बनाता है ।"[2] और एक आदमी को पैसे खिलाकर शुचिता पर झूठा लांछन लगवाता है ।[3]

आजकल प्रेम-व्यापार एक मन बहलाव बन कर रह गया है । "एक और बात" कान्तिकान्त जयश्री से प्रेम करता है । परन्तु जयश्री उसके साथ सिर्फ मन बहलाव करती है, वह उससे प्रेम नहीं कर सकती । क्योंकि वह हाईक्लास के आदमी से विवाह करना चाहती है जिसके पास बड़ा बंगला हो, मोटरकार हो, जो बात-बात पर विदेशी नकल करता है ।" परन्तु रविकान्त एक गरीब युवक है । उसके पास यह सारा वैभव नहीं है । इसलिये जयश्री उसे ठुकरा देती है । उनके संबंध टूट जाते है ।

---

1. अपने बेगाने : प्रतिभा वर्मा : पृ.206.
2. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.136.
3. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.53

इस तरह महिला उपन्यासकारों ने प्रेम सम्बन्धों के बदले हुए स्वरूप का वर्णन किया है । जो परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्ध पहले होते है, वह स्नेह सम्बन्ध अब समाप्त होते चुके है ।

अन्य परिवारेत्तर सम्बन्धों में साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष के मित्रता के सम्बन्ध को लिया है । मालिक और नौकर के सम्बन्ध को लिया है ।

"टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" विनु वरिमा से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करता है । दोनों एक दूसरे के मित्र है । विनु वरिमा के दर्द को समझता है । वह वरिमा से कहता है कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध जबरदस्ती नहीं होने चाहिये । वरिमा को उसके द्वारा कई बातों का समाधान मिलता है ।1·

"मेरे सन्धि पत्र" के रमेश माथुर और शिवा में स्नेह सम्बन्ध है । वह शिवा को देवी के समान जानता है । उसके दुःख दर्द को बाँट लेना चाहता है । परन्तु शिवा के अपने संस्कार है जिसमें वह जकड़ी हुई है । रमेश कहता है " अपनी पूजा के लिए एक दिव्य माध्यम ढूंढ पाने को, जिसे मेरे अन्दर की संपूर्ण आस्था समर्पित है ।"

" सागर पाखी" उपन्यास का स्वरूप उषा को अपनी बेटी के समान मानता है । उषा भी उसका बहुत आदर करती है, परन्तु स्वरूप की पत्नी उन दोनों पर शक करती है । जिससे स्वरूप अपनी पत्नी के इस व्यवहार से दुःखी होकर गांव चले जाते हैं । बाद में वही उषा स्वरूप के लिखे हुये इतिहास को छपवाती है, वह सोचती है कि "स्वरूप की इन यादगारों को वह पवित्र धरोहर की तरह सुरक्षित रखेगी ।"2·

"सागर पाखी" उपन्यास के यशवन्त और सुलोचना के सम्बन्ध मित्रता के सम्बन्ध है । परन्तु सुलोचना और यशवन्त पर मित्रता के नाते अधिकार जताना चाहती थी, उसे यह पसन्द नहीं था कि

- -

1· टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : प्रभा सक्सेना :पृ·

2· सागर पाखी : बिन्दु जैन : पृ·82·

यशवन्त ज्या से मिले जुले " यशवन्त उसका कोई नहीं, फिर भी वह उस पर अपना अधिकार समझती थी । उसके प्रभाव से निकलकर वह ज्या से मिले-जुले यह उसे कभी भी सहन नहीं था ।"[1]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में नौकर व स्त्री-मालिक के सम्बन्धों को भी लिया है, लेकिन वह सीमित स्नेह के सीमित है ।

"उसका घर" उपन्यास का जोसेफ एक नौकर है । वह बहुत स्वामी भक्त है । वह आंटी की बहुत सेवा करता है । आन्टी की मृत्यु पर बहुत रोता है । वह उनकी मौत को भुला नहीं पाता । इसी प्रकार आंटी के साथ जोसेफ एलमा का सम्मान करता है । वह एलमा के दुःख को समझता है ।[2] जो उसका भाई होकर एलमा के दुःख को नहीं पहचान सका । वहीं एक नौकर उससे सहानुभूति रखता है । वह एलमा के साथ जाना चाहता है परन्तु एलमा उसे नहीं ले जाती है । वह "जोसेफ के उस रूप की तो उसने कल्पना तक नहीं की थी । जितना दुःख उस छूट पाये हैं, क्या उतना ही जोसेफ को भी है ।"[3]

"प्रिया" उपन्यास का बिरजू एक रिक्शावाला है । वह प्रिया को दीदी कहता है और प्रिया को सम्मान देता है । वह प्रिया से रिक्शे का भाड़ा भी नहीं लेता । प्रिया उसे गरम कपड़े देती है तो वह बिमारी में ठिठुरते हुए भिखारी को दे देता है ।[4]

अतः महिला उपन्यासकारों ने परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्धों के विविध रूपों का चित्रण किया है । इन संबंधों में परंपरागत मर्यादा का अंत हुआ है एवं स्वार्थता का प्रादुर्भाव हो चुका है । मूल्य-संक्रमण

---

1. सागरपाखी : बिन्दु जैन : पृ. 66.
2. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ. 162
3. -वही-
4. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल :

के कारण स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में जो बदलाव आया है, उसका चित्रण भी महिला उपन्यासकारों ने किया है । स्त्री पुरुष के बदलते स्वरूप को उजागर करने का यत्न किया है और यह ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक जान पड़ता है ।

--

4·2 मूल्य-संक्रमण और स्त्री पुरुष सम्बन्धों में बदलाव

मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिस पर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है । समाज में मूल्य सदैव बनते-मिटते रहते हैं । आदिम समाज में भी कतिपय मूल्य रहे होंगे । समाज के निर्माण में एवं स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में मूल्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है । समाज का सम्बन्ध भी स्त्री-पुरुष से है, अतः मूल्यों का संबंध भी स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों से होना अनिवार्य है ।

ज्यों-ज्यों समाज में भौतिक स्थितियाँ बदलती है । समाज में भी उसके साथ परिवर्तन आता है । रहन-सहन, सोचने विचारने, आपसी सम्बन्धों में पर्याप्त अन्तर आया है । समय-समय पर अनेक परिवर्तन आये है । सामाजिक विघटन के साथ मूल्य टूटे है, और टूटते रहते है । यह "मूल्य -संक्रमण"की क्रिया अनवरत है । "भौतिक परिस्थितियों के बदल जाने से इन आदर्शों में भी परिवर्तन हो जाता है । ये आचार-विचार और आदर्श किंचित अर्थ भेद के साथ मूल्य कहे जा सकते है । मूल्य अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और गूढ़ है । इससे जाहिर है कि यथार्थ के बदल जाने से मूल्य भी बदल जाते है ।"[1]

- -

1· समकालीन साहित्य : आलोचना को चुनौती : नया यथार्थ नया मूल्य बोध : डॉ बच्चन सिंह : पृ·129·

"प्रत्येक समाज का संचरण कतिपय मूल्यों और नियमों के समूह द्वारा होता है ।"[1] समाज के मूल में स्त्री-पुरुष है जो समाज को बनाते है ।" "विभिन्न प्रकार के पर्यावरण में मनुष्य मूल्यों एवं प्रतीकों का विकास करता है । यह मानव-अस्तित्व में एक साथ उभरते है जो कि सामाजिक संबंधों को बढ़ाते है, विकसित करते है, सुधारते है । यही नहीं प्रत्येक व्यवहार एवं निषेध के समक्ष मानव को एक साथ बांधते है ।"[2] इस प्रकार समाज के मानवीय सम्बन्धों में मूल्यों का विशेष अस्तित्व होता है ।

युग में घटित परिवर्तनों के साथ ही हमारी आस्थाएं बदल रही है । मशीनीकरण, पाश्चात्य सभ्यता तथा शहरों के बढ़ने से पुरानी मान्यताओं, आस्था और स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों को तोड़ती चली जा रही है । इस युग में परम्परागत मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन आया है । मानवीय सम्बन्धों के एक पक्ष स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को इसने लिया है । स्त्री पुरुष के बदलते सम्बन्धों को लेकर जितने उपन्यास इस युग में लिखे गये है उतने अन्य किसी विषय पर नहीं लिखे गये । "प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में अथवा उससे भी पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की सामाजिक पृष्ठभूमि साहित्यिक विषय-वस्तु का प्रधान अंग थी, किन्तु अन्तर काल में जब से व्यक्ति का अध्ययन औपन्यासिक सामाग्री का आधार बना, तब से इन सम्बन्धों का चित्रण मुख्यत: लैंगिक के क्षेत्र में ही विश्लेषण पाने लगा। तात्पर्य यह है कि उपन्यास चाहे किसी भी युग का हो स्त्री पुरुष सम्बन्ध तो उसमें मिलने ही है । अन्तर केवल इतना है कि अतीत में इस चित्रण का आधार सामाजिक पक्ष था और वर्तमान में इसका आधार लैंगिक हो गया है ।[3] अत: आदर्शों और मर्यादाओं के मसले पर

- -

1. " Every Society carries on under some set of values & Rules".- Sociology & Social Life Young & Mack , 1959 p.85.

2. The Development of Social Thoughts : Bogardus:p.635.

3. उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन

यथार्थ और नये मान-मूल्यों को स्थापित किया गया है । मनुष्य समाज से कटा है और अपने इस कटने, टूटने और बिखरने में वह नितांत अकेला छूटता गया है । अकेलेपन, ऊब, उदासी और पीड़ा के साथ-साथ उसमें अनेक अन्तर्विरोध जन्मे हैं । जहाँ सारे परिवेश में इतना बदलाव आया है, वहाँ मानव-सम्बन्ध अर्थात् स्त्री-पुरुष के मूल्यों में परिवर्तित दृष्टि का विकसित होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य था । गाँव के उजड़ने और शहरों के बढ़ने के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध बदले हैं । पहला परिवर्तन स्त्री-पुरुष के वैवाहिक सम्बन्धों में आया है । यह परिवर्तन न आत्मिकता के बल्कि शारीरिकता के धरातल पर आया है, वरन् वहां भी दोनों एक दूसरे को ढोते जाने या कहूँ कि निभाते जाने की सीमा में सिमट कर रह गये हैं । दूसरा विवाहेतर यौन सम्बन्धों में भी पर्याप्त अन्तर आया है, उपन्यासों में इनका खुलकर चित्रण होने लगा है । इन विवाहेतर यौन सम्बन्धों के मूल्यों को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाने लगा है । तीसरे पारिवारिक सम्बन्धों के मूल्यों में भी बड़ी तेजी से अन्तर आया है । यह सम्बन्ध केन्द्रित होता जा रहा है । यहाँ तक कि पिता के प्रति पुत्र का आक्रोश, माँ व बेटे के सम्बन्धों की दूरी भाई-बहन तथा अन्य निकटतम सम्बन्धों में अजनबीपन समाता जा रहा है जो एक दूसरे के पास रहते हुये भी दूर कर देता है । चौथा और अन्तिम परिवारेतर सम्बन्धों के परम्परागत मूल्यों में भी परिवर्तन आया है । जैसे प्रेमी-प्रेमिका तथा अन्य सम्बन्धों के मूल्यों में परिवर्तन एक आवश्यक तत्व बन कर रह गया है । प्रेम का नैतिक मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है । यह अब नितान्त व्यक्तिगत अनुभव बन गया है । अतः साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने नये युग के यथार्थ सामाजिक सम्बन्ध अर्थात् इन चारों स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के परिवर्तित मूल्यों का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों,

खासकर पति-पत्नी के सम्बन्धों में जो मूल्यगत परिवर्तन हुआ उसका उल्लेख अपने उपन्यासों में किया है । जो वैवाहिक सम्बन्धों के अन्तर्गत है । पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव का विकास हुआ है और वह अन्तिम सम्बन्ध न केवल शारीरिकता के धरातल पर आया है वरन् वहाँ भी दोनों एक दूसरे को झेलते जाने या कहूँ कि निभाते जाने की सीमा में सिमट कर रह गये हैं ।

"उसकी पंचवटी" के सतीन और माधवी के सम्बन्ध भी इसी प्रकार के है । सतीन अपनी ही हीनता में ग्रस्त है, और पत्नी के कर्तव्य नहीं निभाता है । जिससे दोनों के बीच तनाव उत्पन्न होता है ।

"मेरा नरक अपना है" के हीरेन्द्र और शीला के सम्बन्ध भी इसी प्रकार के है । दोनों एक दूसरे को झेलते जा रहे है । समाज को दिखाने के लिये ही ये सम्बन्ध निभाये जा रहे है । "पति-पत्नी में पटती नहीं बच्चे बड़े हो ही गए । फलते जायें उनके लिए खर्च पर उन्हें दो उसकी कौन सी बड़ी जरूरत है । और शीला के साथ भी अपना रिश्ता क्या रहा है । कितना सड़ा हुआ । जिस औरत को वह छूना नहीं चाहता, उसके साथ भी मजे लेने के लिए एक मर्द की धुन में रात के अंधेरे में जा चिपकता है ।

"टेसू की कहानियाँ" का प्रकाश अपनी पत्नी के गुणों से प्रभावित नहीं होता है । वह एक इंजीनियर है । परन्तु उसमें हीन भावनाएँ है । जिससे दोनों में सम्बन्ध सामान्य नहीं रह पाते है । वह अपनी पत्नी से आत्मिक नहीं हो पाता है, वह अपनी पत्नी के सामान्य गुणों को भी बर्दाश्त नहीं करता है । "प्रकाश सीता के इतने गुणों की प्रशंसा बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। यद्यपि इस समय जो भी बात उसके सामने आ रही थी वह सामान्य थी, लेकिन प्रकाश पत्नी से आत्मीयता का बंटवारा न कर सकने के कारण उसके गुणों से कुछ न हो ईर्ष्या अनुभव कर रहा था ।"[1] दोनों में

---

1. टेसू की कहानियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 46.

तनाव इस तरह बढ़ जाते हैं कि अन्त में वे अलग हो जाते है ।

पति-पत्नी के सम्बन्धों के मूल्यों में एक बहुत बड़ा परिवर्तन यह भी आया है कि यह सम्बन्ध जिस शीघ्रता से स्थापित होते हैं उसी शीघ्रता से विस्थापित होने की भी साक्षी देते है । इन परिवर्तित मूल्यों का उल्लेख भी साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने किया है । "सूखी नदी का पुल" उपन्यास के शैलेश और अर्चना पति-पत्नी है । परन्तु दोनों के विचारों में जमीन-आसमान का अन्तर है ।जिस शीघ्रता से उनका विवाह होता है, उसी शीघ्रता से टूट भी जाता है ।[1]

पति-पत्नी के बदलते सम्बन्धों का साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने एक नया अध्याय खोला है । कृष्णा सोबती के उपन्यास"मित्रोमरजानी" की मित्रो की देह में इतनी प्यास है कि उसका पति उस प्यास को नहीं बुझा पाता । जहाँ पहले पत्नी अपनी प्यास को छुपाती थी, वहीं अब खुलकर बोलने लगी है । अतः सोबती ने पति-पत्नी के सम्बन्धों का नया आयाम खोला है ।[2]

"रेत की मछली" उपन्यास का शोभन कुन्तल से प्रेम-विवाह करता है, और कुछ समय अपनी पत्नी का साथ देकर वह मीनल की ओर आकर्षित होता है । अपनी पत्नी के सामने ही वह मीनल से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है, और बाद में वह कुन्तल को छोड़ देता है । जिस शीघ्रता से उनके यह सम्बन्ध स्थापित हुये है उसी शीघ्रता से विस्थापित भी हो जाते हैं ।[3]

परिवर्तित मूल्यों के साथ-साथ पति की मानसिकता में भी परिवर्तन आया है । वह सरल एवं सहिष्णु भी बनते जा रहा है । जब वह देखता है कि उसकी पत्नी दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित हो रही है तो वह सहन कर लेता है या उसे समझाने की कोशिश करता है ।

- -

1· सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ·183·

2· मित्रोमरजानी : कृष्णा सोबती : पृ·

3· रेत की मछली : कान्ता भारती :

"टूटा हुआ इन्द्रधनुष" उपन्यास का प्रशांत एक सरल एवं उदार हृदय का पति है । वह यह जानता है कि उसकी पत्नी का सम्बन्ध मनोज से है । फिर भी वह शोभना को कुछ नहीं कहता है । वह एक सहज प्रकृति का पति है ।[1]

"उसके हिस्से की धूप" का जितेन एक उदार प्रकृति का पति है । मनीषा जितेन को अपने नये सम्बन्ध के बारे में सब कुछ बता देती है तो भी उसकी दृष्टि इतनी उदार है कि उसे यह नया सम्बन्ध अखरता नहीं है । वह मनीषा से कहता है " किसी भी स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता है कि वह विवाह करे ही , आकर्षण ऐसी चीज है जो वक्त के साथ टिकती नहीं है । तुम जानती हो मैं उतने तंग ख्यालों का आदमी नहीं हूँ । मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ भी गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है । इसमें तलाक की जरूरत नहीं है ।[2]

पति-पत्नी के सम्बन्धों में मूल्य परिवर्तन आया है कि दोनों के बीच अकेलापन, ऊब एवं अहं के रूप में " आपका बंटी" उपन्यास में पति-पत्नी के इसी सम्बन्ध को लिया गया है क्योंकि इस उपन्यास के पति-पत्नी इस अकेलेपन से व्यथित है । आपसी सम्बन्धों की विभिन्न स्थितियों के माध्यम से ही अकेलेपन की विवशता और पीड़ा को दिखाया गया है । शकुन और अजय इसी स्थिति में जी रहे है । दोनों अपने-अपने अहं से युक्त है । शकुन निजी अस्तित्व बोध को लेकर अधिक चैतन्य है । उसके जीवन में इसी अहं ने भारी रिक्तता उत्पन्न कर दी है । अजय जहाँ एक गुस्सैल एवं निरंकुश पुरुष है, जबकि शकुन डोमिनेटिंग नेचर की होने के कारण उसकी हर क्रिया-प्रतिक्रिया को अपने से जोड़कर देखती है । इस तरह एक-दूसरे को पराजित करने की धुन में दोनों के सम्बन्धों में अकेलापन , ऊब एवं अहं प्रबल हो जाता है ।[3]

- -

1. टूटा हुआ इन्द्रधनुष : मंजुल भगत
2. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 145.
3. आपका बंटी : मन्नू भंडारी

पति-पत्नी सम्बन्धों का एक रूप आधुनिक रूप "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास में मिलता है । नीलकान्त एवं अलका पति- पत्नी है । उनके सम्बन्ध नाम मात्र के है । दोनों ने एक दूसरे से कभी प्रेम नहीं किया, फिर भी वे शारीरिक सम्बन्ध रखते है । नीलकान्त ने अलका से अर्थ के कारण ही विवाह किया था । दोनों के अपने-अपने प्रेमी है । अलका का अपना प्रेमी विनोद है, और नीलकान्त भी अन्य स्त्रियों से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता है ।[1]

पति-पत्नी के सम्बन्धों की एक नवीन स्थिति का चित्रण साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने किया है जो अपेक्षाकृत अधिक विस्फोटक है । "बीते हुये" उपन्यास में देव और तनिका आपस में विवाह समझौते रूप में करते है । समझौता इस प्रकार का है कि देव तनिका के सुख-सुविधा का ध्यान रखेगा । उनमें शारीरिक सम्बन्ध भी होंगे । फिर भी वे स्वतंत्र रहेंगे, उनके रैन अलग रहेंगे ।[2]

इस प्रकार मूल्य संक्रमण के कारण वैवाहिक सम्बन्धों में जो परिवर्तन आया, उसका प्रत्येक विभिन्न कोणों से साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है ।

बदलते स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में विवाहेत्तर सम्बन्धों में भी मूलगत परिवर्तन आया है । परिवर्तित मूल्यों के कारण वैज्ञानिक दृष्टि ने आज विवाहेत्तर सम्बन्धों को नैतिकता की कारा से मुक्ति दिला दी है । जहाँ पहले सेक्स का चित्रण मर्यादित रूप में होता था, वहीं सेक्स का चित्रण आज खुले रूप में होने लगा है । उसे वर्तमान संदर्भ में देह की भूमि में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने भी युग की इस मांग को पहचाना है । स्त्री-पुरुष के विवाहेत्तर सम्बन्धों के परिवर्तित

1· प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल
2· बीते हुए : सुषमा शर्मा

मूल्यों का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है । इस विवाहेत्तर यौन-चित्रण में महिला उपन्यासकार पुरुष उपन्यासकार से यदि आगे नहीं है तो उनसे कदम अवश्य मिला रही है । विवाहेत्तर सम्बन्धों में पाप का बोध यदि पूरी तरह लुप्त नहीं हो गया, तो शिथिल अवश्य पड़ गया है । इनके सम्बन्ध अब अनाचारण न होकर वास्तवि-कता के धरातल पर आ गये है ।[1]

आज का युवा वर्ग मुक्त संभोग की छूट नहीं वरन् मुक्त सम्बन्धों की छूट चाहता है । संबंध बनाये रखने के लिये वह विवाह अनिवार्य नहीं मानता है । "दूरियां" उपन्यास के हरि और नमिता विवाह किये बिना ही साथ रहते है । दोनों में शारीरिक सम्बन्ध भी है तथा दोनों पति-पत्नी के सम्बन्ध बनाये हुये हो ।[2]

"पतझड़ की आवाजें" उपन्यास के हीरेन वर्मा और अनुभा इसी तरह विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करते है । हीरेन वर्मा विवाहित है फिर भी अनुभा से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है । दोनों में आत्मिक सम्बन्ध है । हीरेन आत्मा की शांति के लिये ही अनुभा के पास आता है । अनुभा यह भी जानती है कि दोनों का विवाह संभव नहीं है, फिर भी वह हीरेन से सम्बन्ध बनाये हुये है । इस सम्बन्ध में वे पाप-बोध का अनुभव नहीं करते हैं ।[3]

"रेत की मछली" का शोभन मोनक से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है । वह ड्रा रूम में अपनी पत्नी के सामने ही मोनक से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है । जिसे पहले अपनी बहन मानता था, उसी से शारीरिक संबंध स्थापित करता है । इस तरह नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया है ।[4]

- -

1. महिला कथाकारों के कथा-साहित्य में प्रेम का स्वरूप-विकास
   सरिता कुमार : पृ.215.
2. दूरियां : रजनी पनिक्कर
3. पतझड़ की आवाजें : निरूपमा सेवती
4. रेत की मछली : कान्ता भारती : 118.

स्त्री-पुरुष के विवाहेत्तर सम्बन्धों में नवीन परिवर्तन यह भी आया है कि आज स्त्री-पुरुष दैहिक स्तर पर एक दूसरे को जान लेना चाहते है । "पाख ने कहा था" उपन्यास के मनोज और पाख की माँ दोनों विवाह करने के पहले दैहिक रूप से एक दूसरे को जान लेना आवश्यक समझती है । उन्हें छोरे-छोरे प्रेम करना पसन्द नहीं है । मनोज कहता है " सेक्स जल्दबाजी या मौका परस्ती नहीं । सेक्स एक अंडरस्टैंडिंग है । एक दूसरे के शरीरों से, एक दूसरे की तौर-तरीकों से पूरा परिचय होना जरूरी है । एक दूसरे की रूचियों अरूचियों का पूरा ज्ञान होना चाहिए ।"[1]

"चित्तकोबरा" उपन्यास के रिचर्ड और मनु दोनों विवाहित है, परन्तु दोनों में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होता है । दोनों अपने अपने कर्तव्य का पालन करते है । इस सम्बन्ध में वे किसी प्रकार के पाप की भावना का अनुभव नहीं करते ।[2]

विवाहेत्तर स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में सेक्स का खुला चित्रण होने लगा है । "सूरजमुखी अन्धेरे के" उपन्यास में सेक्स का खुला चित्रण है । इसमें असफल प्रेम सम्बन्धों का चित्रण किया गया है । मानसिक स्तर पर यौन सम्बन्धों के लिए इच्छुक रहते हुए भी वह शारीरिक स्तर पर शान्त हो गई । अन्त में दिवाकर ही उसके बर्फ जैसे व्यक्तित्व को तोड़ता है और उससे शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है ।[3]

स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के एक ओर यह पारिवारिक सम्बन्धों में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है । श्यामसिंह शशि ने भी एक स्थल पर कहा है कि " वैयक्तिक स्वतंत्रता प्रवृत्तियों का चरमोत्कर्ष और सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता आज का पर्यावरण बनता

- -

1. पाख ने कहा था : मणिका मोहिनी : पृ. 28.
2. चित्तकोबरा : मृदुला गर्ग : पृ. 57.
3. सूरजमुखी अन्धेरे : कृष्णा सोबती : पृ. 120.

बदल चुका है कि परम्परागत परिवार न केवल विघटित हो रहे है, बल्कि नई सामाजिक समस्याओं को भी जन्म दे रहे है । आज सामाजिक परिवेश में जो मूल्यों की टकराहट हो रही है । व्यक्ति निष्ठता इतनी बढ़ गई है कि सहिष्णुता परहित-भावना के लिए स्थान सीमित हो गया है । एक दूसरे की देखा-देखी व्यक्ति नए परिवेश में ढल रहा है और पारिवारिक विघटन की इकाई बन रहा है ।"[1]" आज पारिवारिक परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन हो रहा है । सम्बन्धों की अनिवार्यता की रूढ़ि से ऊबकर आदमी व्यर्थता का बोध अनुभव करने लगा है । पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहन तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्ध मात्र औपचारिक रह गये है । परिवर्तित मूल्य के कारण आज व्यक्ति काम केन्द्रित होता जा रहा है जिससे पारिवारिक सम्बन्ध सिमटते जा रहे है । इन सम्बन्धों में इस भौतिकवादी युग के कारण अर्थ की प्रधानता हो गई । स्वार्थ की भावना प्रबल हो जाने से यह स्त्री-पुरुष के पारिवारिक सम्बन्ध स्वार्थ के घेरे में सिमट कर रह गये है ।

स्त्री-पुरुष के इन पारिवारिक मूल्य संक्रमण में जो परिवर्तन आया है, उसका सूक्ष्म एवं यथार्थ रूप में चित्रण साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है ।

पिता-पुत्री के सम्बन्धों में भी मूल्यगत परिवर्तन आया है । पिता के विचारों में पर्याप्त अंतर आया है । पहले जहाँ पिता अपनी पुत्री को विदा करते समय यह कहता था कि चाहे कुछ भी हो जावे, पति के घर से ही तेरी अर्थी उठनी चाहिये वहीं आज के युग का पिता ऐसा नहीं कहता है । "टेसू की टहनियां" उपन्यास का राजेन्द्र स्वतंत्र विचारों वाला व्यक्ति है । वह अपनी बेटी को

---

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : 30 मार्च, 1980 परिचर्चा : पारिवारिक विघटन सन्दर्भों की तलाश ।

साफ कहता है कि अगर उस पर पति द्वारा दुर्व्यवहार हो तो उसके लिये उसका घर हमेशा खुला रहेगा । वह कभी भी आ सकती है ।[1]

विचारों में अन्तर होने के कारण पुरानी पीढ़ी को स्वीकार नहीं कर पा रही है । "सोनाली दी" उपन्यास के जीवनदास और उनकी बेटी रानू के विचारों में अन्तर है । जिससे दोनों के बीच तनाव है । जीवनदास को रानू का स्वच्छन्द विचरण करना पसन्द नहीं है ।[2]

धन के महत्त्व के कारण भी पिता-पुत्री के सम्बन्धों में बदलाव आ गया है । धन एवं इज्जत के कारण आज पिता अपनी पुत्री का विवाह जहाँ चाहे करा देना चाहता है । "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का नीलकान्त मेहता अपनी बेटी का विवाह अपने ही प्रतिद्वन्द्वी के बेटे से कर दिया । अपनी बेटी की भावनाओं का उसने रत्ती भर ध्यान नहीं रखा ।[3]

इसी धन के कारण पिता अपनी पुत्री का सौदा करता है । "प्रिया" उपन्यास का यशवन्त अपनी पुत्री का विवाह एक मिल-मालिक के बेटे से तय करता है । दोनों को स्वच्छन्द विचरण करने की अनुमति भी देता है । पर बाद में पता चलता है कि अरुण विवाहित है । परन्तु तब तक देर हो चुकी थी । प्रिया तब तक गर्भवती हो चुकी थी । परन्तु यही पिता अपनी पुत्री के गर्भपात के लिये दो हजार रुपये देता है ।[4]

पिता के विचारों में एक अन्य परिवर्तन यह भी आया है कि वह अपनी पुत्री को गृहिणी नहीं देखना चाहता । बल्कि उच्च पद पर सुशोभित देखना चाहता है । "नरक-दर-नरक" उपन्यास का पिता उषा को ऊँचे ओहदे पर देखना चाहता है । वह स्वयं कहता है कि

- -

1. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.
2. सोनाली दी : रजनी पनिकर
3. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खण्डेलवाल
4. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 129.

"मेरी उषा रोटियां नहीं बेलेगी, वह रसोई में पड़े-पड़े पीली नहीं होगी, वह इन्दिरागांधी बनेगी, विजयलक्ष्मी पंडित बनेगी ।"[1]

मूल्य संक्रमण के इस युग में पिता और पुत्री के सम्बन्ध का एक नया आयाम खुला है । पत्नी के न होने पर पिता अपनी सारी संवेदना अपनी पुत्री के प्रति करता है । पुत्री भी पूर्णतः अपने पिता पर आश्रित हो जाती है । परंतु जब ऐसे समय में विमाता का प्रवेश हो जाता है तो यह सम्बन्ध एक विद्रोह के रूप में परिवर्तित हो जाते है । "रूकोगी नहीं राधिका" में हमें ऐसा ही मिलता है । राधिका के पिता का अपनी पुत्री से बेहद लगाव है । परन्तु जब राधिका के पिता दुबारा विवाह कर लेते है तो राधिका विद्रोहिणी बन जाती है । राधिका के सारे निर्णय और कार्य उस मानसिक ग्रन्थि के फलस्वरूप है जो उसकी अपने पिता के अत्यधिक लगाव के कारण बन गई है । वह में अपने पिता की छवि ढूंढती है । वह अपनी विमाता से घृणा करती है, व अक्षय को इसलिये अस्वीकार करती है कि उसके पिता उसे पसन्द करते है और मनीष को सिर्फ इसलिये स्वीकार करती है कि उसके पिता उसे नापसंद करते है ।[2]

कार्यशील पुत्री के होने के कारण पिता अपनी पुत्री का विवाह नहीं करना चाह रहा है । सम्बन्धों के इस परिवर्तन का उल्लेख हमें "पचपन खम्भे लाल दीवारें" में मिलेगा । जिसमें सुषमा का पिता सुषमा का विवाह इसलिये नहीं करता है कि वह कमाती है जिससे सारा घर चलता है । वह चाहते तो सुषमा का विवाह पहले ही हो जा सकता था ।[3]

सौन्दर्य के मापदण्डों के कारण भी पिता-पुत्री के सम्बन्धों में अन्तर आया है । सुन्दर पुत्री को ही आज पिता ज्यादा

---

1. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ.
2. रूकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा
3. पचपन खम्भे लाल दिवारें : उषा प्रियंवदा

पसन्द करता है । " उन शाखों पर " का डॉ॰ अनुताम नीरू को तनु से ज्यादा प्रेम करता है । चूंकि नीरू सुन्दर थी और तनु सामान्य थी। वह बाहर घुमाने-फिराने नीरू को ही लेकर जाते है ।[1]

भौतिकवादी इस युग में एक विस्फोटजनक अन्तर पिता पुत्री के सम्बन्धों में यह भी आया है कि आज पिता अपनी ही पुत्री पर बुरी नजर रखे हुये है । "कोरजा" उपन्यास का रहमानकर्ता अपनी ही पुत्री पर बुरी नजर रखे हुये है । उसकी इस बुरी नजर से बचाने के लिए उसकी पत्नी बेटी का विवाह कर देती है ।[2]

पिता-पुत्री के सम्बन्धों के बदलाव के साथ-साथ माता-पुत्र के सम्बन्धों में भी परंपरागत परिवर्तन आया है । भावनात्मक स्तर पर माता के प्रति पुत्र की जो भावनायें थी, वह समाप्त हो चुकी है । आज यह सम्बन्ध भी स्वार्थ में परिणत हो गये है । आज का पुत्र अपनी माँ पर हाथ उठाने पर भी संकोच नहीं कर रहा है ।

"टपरे वाले" उपन्यास का हिमांशु अपनी माँ की कभी परवाह नहीं करता । उसकी माँ बूढ़ी होने पर भी घर का सारा कार्य करती है । माँ के बीमार होने पर भी वह उसकी देखभाल नहीं करता । बल्कि माँ के बीमार पड़ने पर वह उसकी सेवा करने के बजाय बूढ़ी हुये धन को दे देने की माँग करता है । माँ के टी॰बी॰ हो जाने पर वह घर में रखने के बजाय वह उसे अस्पताल में रखना चाहता है क्योंकि उसे डर है कि उसके बच्चों को वह बीमारी लग जायेगी । माँ के यह कहने पर कि उसके बेटे भी उसके साथ इस तरह का व्यवहार करें तो वह झट अपनी माँ को चाँटा मार देता है । "इस प्रकार यह निर्दयी पुत्र है जो अपनी माँ पर हाथ उठाता है ।"[3]

---

1. उन शाखों पर :
2. कोरजा : मेहरून्निसा परवेज
3. टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री

"कोरजा" उपन्यास का करीम ख़ाँ भी अपनी माँ की बिल्कुल परवाह नहीं करता है। माँ की मृत्यु के समीप होने पर भी वह उनकी सेवा नहीं करता है। यहाँ तक कि माँ के मरने के बाद भी वह उनके पास नहीं आता है।[1]

पिता-पुत्री, माता-पुत्र के परंपरागत मूल्यों के परिवर्तन के साथ-साथ भाई-बहन के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। यह संबंध भी स्वार्थ में परिणत हो गये हैं।

आज के युग का भाई विवाहित बहन का घर में आना पसन्द नहीं करता है। "बात एक औरत" का हरबू को यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि विवाह होने के बाद उसकी बहनें घर पर रहें।[2]

आज के युग में भाई को अपनी बहन की तभी याद आती है जब राखी या भैयादूज हो। "अनन्धी आत्मा की बाँह का" सुहास और नीता के सम्बन्ध भी इसी प्रकार के हैं। भाई के बहन के प्रति जो कर्तव्य होने चाहिये वह सुहास में नहीं है। वह अपनी बहन से सिर्फ राखी एवं भैया दूज को ही मिलता है।[3]

बहन के प्रति भाई के जो कर्तव्य हैं वह मूल्यगत बदलाव के कारण परिवर्तित हो गये हैं। "बिन्दु" उपन्यास का रवि अपनी बहन के प्रति उदासीन है। वह अपनी बहन की कोई सहायता नहीं कर पाता है। बहन के सहायता माँगने पर भी वह इन्कार कर देता है।[4]

पाश्चात्य विचारों के प्रभाव के कारण भी भाई-बहन के व्यवहार में बदलाव आ गया है। "अपने बेगाने" उपन्यास का शिवप्रसाद पाश्चात्य सभ्यता का पोषक है। वह अपनी बहन निली

---

1. कोरजा : मेहरुन्निसा परवेज
2. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 125.
3. अनन्धीआत्मा की बाँह : सुभद्रा
4. बिन्दु : पृ. 57.

को भी पाश्चात्य रंग में रंग देता है । वह मिनी को प्रेमेन्द्र से प्रेम करने में खुली छूट दे देता है ।[1]

अर्थ की प्रधानता के कारण भी भाई बहन के सम्बन्ध में परिवर्तन आया है । आज भाई अपनी बहन से आर्थिक सहायता चाहता है । "मेरा नरक अपना है" उपन्यास का हरीन्द्र अपनी दीदी से आर्थिक सहायता चाहता है ।[2]

सुख एवं ऐश्वर्य को प्रमुख स्थान देने के कारण भी भाई-बहन के सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तन आ गया है । अपनी तरक्की एवं बैंक-बैलेंस एवं सुख-सुविधा के लिये भाई अपनी बहन का सौदा करने लगा है । "उसका घर" उपन्यास में रमा का भाई अपनी तरक्की एवं बैंक-बैलेंस एवं सुख सुविधा के लिये रमा का सौदा करता है, अपनी ही बहन रमा को बास के पास भेजता है ।[3]

अतः यह सम्बन्ध आज कटु हो गये है । पारिवारिक संबंध में चाचा भतीजी एवं मामा भान्जी के सम्बन्धों में परिवर्तन आया है । इन सम्बन्धों में भी स्वार्थ की भावना आ गई है । "रात एक औरत की" का चाचा अपनी ही भतीजी पर बुरी नजर रखे हुए है ।[4] अपनी इज्जत और धन के कारण मामा अपनी भान्जी की इज्जत की परवाह नहीं करता है । "सुबह के इन्तजार में" का मामा [सुरेश] धन और इज्जत को अपनी भांजी की इज्जत से भी ज्यादा कीमती मानता है । भांजी की इज्जत के खातिर वह अपनी आमदानी समाप्त नहीं कर देना चाहता है ।[5]

इस प्रकार मूल्य संक्रमण के कारण पारिवारिक सम्बन्धों में जो बदलाव आया है, उसका उल्लेख हमें साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में मिलता है ।

---

1. अपने बेगाने : प्रतिभा वर्मा
2. मेरा नरक अपना है : निरुपमा सेवती
3. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ.71.
4. रात एक औरत की : कृष्ण अग्निहोत्री
5. सुबह के इन्तजार में : सूर्यबाला : पृ.

स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के चौथे पक्ष परिवारेत्तर स्नेह सम्बन्धों के बदलाव का भी चित्रण साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने किया है । स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के साथ ही प्रेम सम्बन्धों में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है । प्रेम अब पावन सम्बन्ध नहीं रहा है । अब प्रेम सम्बन्धों में सहजता लक्षित होती है । महिला उपन्यासकारों ने प्रेम और नैतिकता के आपसी सम्बन्धों को नयी दृष्टि दी है । प्रेम अब नितान्त व्यक्तिगत अनुभव है ।

परिवारेत्तर सम्बन्धों के अन्तर्गत प्रेमी-प्रेमिका तथा अन्य सम्बन्ध आते हैं । अब प्रेम सम्बन्धों में भी स्वार्थ, वासना, उद्देश्य तथा अपने-अपने व्यक्तित्वों के परस्पर उन्मोचन की सफलता या असफलता लक्षित होती है । प्रेम एवं सौन्दर्य विषयक मानसिकता का आग्रह पूर्व-स्वच्छाभोग का केवल प्रवाह -पद्धतियों के माध्यम से इस क्षेत्र की जटिलताओं से संयुक्त होकर विलक्षण हो उठा है ।[1]

स्त्री-पुरुष के परिवारेत्तर सम्बन्धों में अब प्रेमी और प्रेमिका की मानसिकता में परिवर्तन आ गया है । वे विवाह में बच्चों का होना अनिवार्य नहीं समझते हैं । "नारी" उपन्यास के अजय और नीलिमा एक दूसरे से प्रेम करते हैं । अतः अजय यह जरूरी नहीं समझता है कि विवाह में उसके पिता का होना अनिवार्य है ।[2]

प्रेमी-प्रेमिका के सम्बन्धों में दूसरा बदलाव यह आया है कि वह आयु को महत्त्व नहीं देते हैं । "टेसू की टहनियाँ" एवं "दूरियाँ" उपन्यास के प्रेमी एवं प्रेमिका आयु को महत्त्व नहीं देते हैं । "टेसू की टहनियाँ" का मधुर सीता से आयु में छोटा है फिर भी वह सीता से प्रेम करता है ।[3अ] इसी प्रकार दूरियाँ उपन्यास का विजय भी चारु से आयु में छोटा है फिर भी वह चारु से प्रेम करता है ।[3ब]

- -

1. हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य का विकास :
डा॰ देव कपूरिया : पृ॰ 396.

2. नारी : शशिप्रभा शास्त्री : पृ॰ 128.

अ 3. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री

3ब. दूरियाँ : रजनी पनिकर :

बदलते प्रेम-सम्बन्धों में पुरुष प्रेमी भ्रमर की भांति हो गया है । "अपने बेगाने" उपन्यास का प्रेमेन्द्र भी इसी प्रकार का है वह पहले किसी से प्रेम करता है । परन्तु जैसे ही किसी की सखि मंजू को देखता है उसके प्रति आकर्षित हो जाता है ।[1]

प्रेम सम्बन्धी आदर्श के नये रूप का चित्रण भी साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में मिलता है । "सुरंगमा" उपन्यास का रोबर्ट म्यूरी एक आदर्श प्रेमी है । वह लक्ष्मी की इज्जत के खातिर उससे विवाह कर लेता है, परन्तु उनमें शारीरिक सम्बन्ध नहीं होते, वह लक्ष्मी से प्रेम करता है, किन्तु उसके सामने कभी नहीं व्यक्त करता है ।

इसी प्रकार "चाँद अमावस का" गजानन्द अपनी प्रेमिका का इन्तजार अन्तिम समय तक करता है, वह विवाह से इन्कार कर देती है । वह कहता है कि वह अपनी प्रेमिका का इन्तजार करेगा न जाने कब उसकी प्रेमिका सुनीता उसे पुकार ले ।[2] "बिन्दु" उपन्यास का शमुन भी अपनी प्रेमिका से बेहद प्रेम करता है । बिन्दु की अन्यत्र विवाह हो जाने पर भी वह विवाह नहीं करता है, और अपनी प्रेमिका की याद में वह कविताएँ आदि करता है ।[3]

प्रेम सम्बन्धों के खोखलेपन के कारण भी उनमें परिवर्तन आया है । इस रूढ़िगत संस्कार एवं खोखलेपन के कारण यह सम्बन्ध जल्द ही टूट जाते है । जैसे " बेघर" उपन्यास के परमजित और संजीवनी के सम्बन्धों से देखा जा सकता है ।

"अजन्मी आत्मा की चाह" उपन्यास के राम और सीता के सम्बन्ध भी जल्दी ही टूट जाते है। अतः प्रेम सम्बन्ध रोमान्टिक बोध से बदल कर आधुनिक बोध में बदला है ।

- -

1. अपने बेगाने : प्रतिभा वर्मा
2. चाँद अमावस का : मालती जोशी, पृ.102.
3. बिन्दु :

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने परिवारेत्तर यौन सम्बन्धों में एक नया आयाम अपने उपन्यासों में जोड़ा है और वह है नर और नारी में मित्रता का सम्बन्ध ।

"टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" उपन्यास में बिनु और वरिमा का सम्बन्ध मित्रता का है । दोनों आपस में खुले रूप में विचार-विमर्श करते है ।[1] "मेरे सन्धि पत्र" में रमेश माथुर और शिवा का सम्बन्ध भी मित्रता का है ।[2]

"बात एक औरत की" में अभय और कनु में मित्रता संबंध है । संजय का कनु के प्रति दुर्व्यवहार उसे सहन नहीं है । वह कनु को समझाता है कि वह अपने अधिकार को जाने तथा कनु को निरोध अवस्था में न रहने के लिये कहता है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में मूल्य संक्रमण के कारण परिवारेत्तर सम्बन्धों में प्रेम के बदलते हुए स्वरूप को उजागर करने का प्रयत्न किया है ।

इस प्रकार मूल्य संक्रमण के कारण स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में जो बदलाव आ गया है उसका साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में वर्णन किया है । वस्तुतः संबंधों का आधार अब भावनात्मक न होकर स्वार्थ अर्थात् आर्थिक धरातल रह गया है । पति-पत्नी सम्बन्ध, विवाहेत्तर सम्बन्ध , पारिवारिक सम्बन्ध माँ बेटे, पिता-पुत्री , भाई बहन तथा प्रेमी-प्रेमिका एवं अन्य सम्बन्ध सभी स्वार्थ की दृष्टि से एक दूसरे का मूल्यांकन करने लगे है । जो अधिकाधिक फायदायी होता है उसके प्रति विशेष झुकाव रहता है । इस प्रकार अब संबंधों में परंपरागत मर्यादा का अन्त एवं स्वछंदता का प्रादुर्भाव हो चुका है ।[3]

---

1. टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : प्रभा सक्सेना
2. मेरे सन्धि पत्र : सूर्यबाला
3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण : शैलेन्द्र
   पृ. 197.

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के सारे पक्षों का बड़ी ही सफलता के साथ एवं सूक्ष्म दृष्टिकोण के साथ यथार्थ चित्रण किया है । वैवाहिक सम्बन्ध हो या विवाहेत्तर सम्बन्ध, पारिवारिक सम्बन्ध हो या परिवारेत्तर । स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के किसी भी पक्ष को साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने नहीं छोड़ा है । बल्कि इन सम्बन्धों में आये परिवर्तनों का भी उल्लेख उन्होंने इस युग की मांग के अनुसार किया है । उन्होंने नर और नारी के सम्बन्धों को बाह्य समाज के नियमों की कसौटी पर परखने के बजाय उनकी आन्तरिक आवश्यकताओं पर बल दिया है ।

अध्याय पाँच

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग-दृष्टि और पुरुष छवि

5·1 वर्ग क्या है :

विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप समाज में वर्ग व्यवस्था का जन्म हुआ । वर्ग क्या है, इसके बारे में प्रसिद्ध हैनरी ए॰मैक का मत है " एक सामाजिक वर्ग मनुष्यों का एक ऐसा समुदाय है, जो अपने कतिपय ऐसे सामान्य गुणों और व्यवहार के कतिपय सामान्य तरीकों के विषय में सचेत रहता है, जो उन व्यक्तियों को दूसरे विभिन्न गुणों और व्यवहार वाले सामाजिक वर्गों के सदस्यों से पृथक करते हैं । किसी सामाजिक वर्ग-विशेष का सदस्य बनने के हेतु एक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह स्वयं को उस रूप में अनुभव करे एवं दूसरों द्वारा भी वह उस रूप में अनुभव किया जाए ।"[1] अतः वर्ग वह है जिसे समाज ने एक विशेष स्थान दिया है । यह स्थान व्यक्तियों के सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर होता है । यह सामाजिक प्रतिष्ठा रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा सामाजिक सुविधाओं के आधार पर दी जाती है ।[2]

मैकाइवर तथा पेज जैसे समाजशास्त्रियों ने वर्ग की परिभाषा करते हुए कहा है, "किसी वर्ग का अर्थ ऐसे श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह आते है ।[3] लेनिन के अनुसार " वर्ग व्यक्तियों के बड़े-बड़े दल होते हैं । ये दल एक-दूसरे से भिन्न

1· A social class is a group of persons consicious of certain commontraits and of certain common ways of behaviour wh-ich distinguish them from members of other social classes with other trails and other ways of behaviour, to be a member of a social class an individual must both feel himself to be so and must be felt by others to be: Social Studies.
हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग द्वारा उद्धृत : हेमराज निर्मम :पृ॰85-86

2· भारतीय सामाजिक संरचना तथा संस्कृति :[illegible] 1942· पृ॰102·

3· सोसायटी : आर॰एम॰मैकाइवर सी॰एच॰पेज:पृ॰348

होते हैं जिनकी भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है । इस प्रकार की उत्पादन के साधनों से इंगित कर सकते हैं । इस प्रकार कुछ तो उन जीविकाओं के संगठन कार्यों पर आधारित होता है और कुछ धन के उपार्जित करने के उपायों से भी ज्ञात किया जा सकता है ।[1] इस प्रकार विभिन्न विचारकों ने विभिन्न प्रकार से वर्ग की परिभाषा की है ।

वर्ग समाज में वर्ग चेतना होती है, वे जाति-समाज के सदस्यों की तरह अपने नाम के आगे वर्ग का नाम नहीं जोड़ते हैं । वर्ग समाज में व्यवसायों का निर्धारण नहीं होता है । यद्यपि समाज में व्यवसायों के आधार पर विभिन्न वर्ग भी होते हैं ; किन्तु उनमें जातीय संगठन जैसी सुदृढ़ता नहीं होती । एक वर्ग के सदस्यों के व्यवसाय परिवर्तन से अशान्ति नहीं उत्पन्न होती है । वर्ग-समाज के सदस्य बिना किसी कठिनाई के अपने व्यवसाय को बदल सकते हैं । वर्ग-समाज में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत गुणों और दुर्गुणों के आधार पर ऊँचे-नीचे वर्ग का सदस्य हो सकता है । आकस्मिक रूप से किसी ऊँचे पद पर पहुँच जाने या धन प्राप्त कर लेने से व्यक्ति ऊँचे वर्ग का सदस्य हो सकता है, और दिवालिया हो जाने या पद से हटा दिये जाने से नीचे वर्ग में पहुँच सकता है ।

5.1.1. <u>भारतीय समाज की वर्ग संरचना : विभिन्न वर्गों का अस्तित्व में आना</u> :

वर्तमान वर्ग प्रधान समाज व्यवस्था में विभिन्न वर्णों के स्थान पर वर्गों का उदय हुआ । प्रारम्भ में वर्ण-निर्धारण जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होता था, किन्तु कालान्तर में यह वर्ण व्यवस्था जटिल हो गयी । जिसके परिणाम स्वरूप वर्णों के स्थान पर वर्गों का जन्म हुआ । वर्ण-व्यवस्था के जाति व्यवस्था में परिवर्तन के फलस्वरूप समाज में अनेक वर्ग बन गए । इन वर्गों के विकास में व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास ने भी पर्याप्त योग दिया है ।

- -

1. फंडामेंटल्स आफ मार्क्सिज्म : लेनिनिज्म मैन्युअल : पृ.150.

इससे पहले जो वर्ग है उनका आधार धन नहीं था । उस समय लोगों के हित और आर्थिक स्वार्थ परस्पर विरोधी नहीं होते थे । लोगों के दैनिक जीवन की आवश्यकताएं बहुत सीमित थी । इसी कारण उत्पादन के साधन बहुत सीमित थे, और उनका विकास नहीं हो पाता था । बाद में ज्यों-ज्यों मनुष्य का जीवन विकसित होता गया त्यों-त्यों मनुष्य ने कुछ अन्य कार्य खेती-बाड़ी तथा पशु-पालन आदि प्रारंभ किये । एक विशेष प्रकार के कार्य को प्रारंभ करने का कारण उस वर्ग के लोगों के सामने श्रम-विभाजन की भावना आई होगी, तथा विभिन्न कार्यों को करने वाले लोगों के सामने उनके श्रम के फलस्वरूप आई होगी । सम्भवतः इसी कारण वर्गों की उत्पत्ति हुई होगी । बाद में विनिमय के सिद्धांत का प्रचार होने पर उनका विभाजन विभिन्न वर्गों में हो गया होगा ।"1" अंग्रेजों के आगमन के पूर्व समाज में सामन्त-वर्ग को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । अंग्रेजों की आर्थिक नीति के फलस्वरूप पूँजीपति वर्ग का जन्म हुआ और औद्योगीकरण ने मध्यम तथा निम्न वर्ग को जन्म दिया । समाज में वर्ग संघर्ष प्रारम्भ हुआ । निम्न तथा मध्यम वर्ग की प्रतिक्रिया ने सामान्त एवं पूँजीवादी मूल्यों को विकुंठित कर दिया ।

वर्ग जनित मूल्यों के सृजन में भूमि, पूँजी एवं श्रम तीन निर्णायकारी तत्व मुख्यतः स्वीकार किये जा सकते हैं । सामाजिक परिपार्श्व में विभिन्न विषमताओं का जन्मदाता भी अर्थ ही है ।

आधुनिक युग में वर्ग की भावना को एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया का रूप देने का श्रेय महान्, चिन्तक एवं विचारक कार्ल-मार्क्स को है । मार्क्स के अनुसार आदिम समाज में वर्ग-भावना या श्रेणी-भेद नहीं था, क्योंकि उत्पादन इतना कम होता था कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकते थे, बचाना उसके लिए असम्भव बात थी । धीरे-धीरे उत्पादन की वृद्धि के साथ लोगों ने सम्पत्ति बनाना प्रारम्भ किया और इस प्रकार वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना, जैसे-जैसे प्रवृत्तियों में बढ़ती गई वैसे ही वर्गों की भावना भी समाज

- -

1. हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना : प्रताप टंडन : पृ. 41,42.

में बढ़ती गई । व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा में व्यक्तिगत संघर्ष हुए और इस प्रकार से समूहगत हितों की रक्षा के लिए वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हुआ । वर्ग-संघर्ष की इस मूल भावना को शाश्वत मानकर कार्लमार्क्स ने कहा है, " अभी तक घटित सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है ।"[1]

कार्लमार्क्स ने प्रमुख रूप से तीन वर्गों की कल्पना की है । पहले वर्ग को उसने " बोर्जुआ" या शोषक वर्ग कहा और दूसरे को "प्रोलेटेरियट" या शोषित वर्ग की संज्ञा दी । शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष से ही कालान्तर में एक तीसरे वर्ग का जन्म हुआ जिसे मार्क्स ने "मध्यवर्ग" कहा ।

नए सामाजिक वर्गों का उदय अंग्रेजी शासन काल में नए सामाजिक अर्थतंत्र, नई राज्य व्यवस्था और, नए प्रजातंत्र और नई शिक्षा का सीधा परिणाम था ।[2] वर्तमान समाज आर्थिक दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित है (क) उच्च वर्ग (ख) मध्य वर्ग (ग) निम्न वर्ग । उच्चवर्ग शोषक, सामन्त, अभिजात तथा पूंजीपति के नाम से भी और निम्न वर्ग शोषित तथा श्रमिक और कृषक वर्ग के नाम से भी जाना जाता है । शोषित वर्ग वह वर्ग है जिसे उत्पादन के लिए काम में लाया जाता है और शोषक वर्ग उन्हें अपनी इच्छानुसार उत्पादन के काम में प्रयोग करता है । वस्तुतः मध्य-वर्ग ही देश का मस्तिष्क और मन माना जा सकता है, क्योंकि यह वर्ग व्यापार तथा सरकारी गैर-सरकारी और अर्द्ध-सरकारी सेवा में रहकर देश के उत्पादन और प्रशासन के कार्यों में सहायता देता है ।

भारत में नए वर्गों का अस्तित्व में आने का कारण "मूलतः ब्रिटिश सरकार के अधिनियमों (जैसे नए प्रकार के भूमि संबंधी) द्वारा

- -

1. मैनिफेस्टो आफ दि कम्युनिस्ट पार्टी – मार्क्स : एंगिल्स, पृ.43.
2. गाडगिल , एम.एन.राय और कृष्ण :

द्वारा लाए गए आधारभूत आर्थिक परिवर्तन, भारतीय समाज में बाहर की पूँजीवादी दुनिया के वाणिज्यिक और अन्य प्रकार के तत्वों के प्रवेश और भारत में नए उद्योगों की स्थापना के कारण हो गए नए वर्ग उदित हुए ।[1]

5.1.1.1. <u>उच्च वर्ग</u> इस वर्ग में स्वतंत्र रियासतों के राजा, जमींदार, मिल-मालिक, उद्योगपति, बड़े-बड़े सेठ साहूकार और पूँजीपति आते हैं । आर्थिक विषमता ने समाज में पूँजीपति एवं सर्वहारा वर्ग को जन्म दिया । अंग्रेजों की आर्थिक नीति के फलस्वरूप पूँजीपति वर्ग का जन्म हुआ । यह वर्ग सर्वहारा का शोषण करता है । एवं सर्वहारा वर्ग के शोषण की दीवारों पर अपने वैभव का महल निर्माता है । उन्नीसवीं सदी के अंतिम कुछ दशकों में और उसके बाद भारतीय उद्योगों की स्थापना और तरक्की हुई । जैसे-जैसे इन उद्योगों में वृद्धि हुई, वैसे-वैसे औद्योगिक बुर्जुआजी बढ़ी । स्टालिन का कहना है कि बुर्जुआजी की राष्ट्रीयता का जन्म मंडी होता है ।[2] स्वदेशी आन्दोलन एवं बहिष्कार आन्दोलन में पूँजीपति वर्ग का सहयोग था । यह वर्ग आधुनिक विचारों का तो समर्थक रहा पर सदा स्वार्थ सिद्धि एवं व्यक्तिगत कल्याण में लगा रहा । बैंकों की स्थापना और भारतीय व्यापारी वर्ग एवं जमींदार तथा पेशेवर वर्ग के कुछ सदस्यों के पास लाभ और बचत के पैसों के जमा होने के कारण भारतीय निर्देशन में सूती कारखानों, खनिज उद्योगों और वैसे ही अन्य उद्योगों की स्थापना हुई और देश में औद्योगिक बुर्जुआजी के नए वर्ग का जन्म हुआ ।

आधुनिक उच्च वर्ग ब्रिटिश शासन काल में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव और नए समाज की जरूरतों के आधार पर विकसित हुए थे । यह वर्ग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सबसे तगड़ा वर्ग था । अपना प्रभुत्व स्थापित होने के लिए यह वर्ग अंग्रेजों के खिलाफ हो गया । भारत में इस वर्ग ने राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत की और 1885 में राष्ट्रीय राजनीतिक संगठन,

---

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई, पृ.42.
2. स्टालिन : पृ.15 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ए.आर.देसाई ।

इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई । इन वर्गों का यह उद्देश्य था अंग्रेजों का स्थान ग्रहण करना । वे औद्योगिक क्षेत्र में अंग्रेजों के एकाधिकार को समाप्त करना चाहते हैं । विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी के कार्यक्रम का उन्होंने उत्साहपूर्ण समर्थन किया, क्योंकि इससे उनका वर्ग-स्वार्थ पूरा होता था । स्वदेशी आन्दोलन सफल रहा, कुछ दिनों तक, और इससे भारतीय उद्योगों को बल मिला खासकर सूती कपड़ों के उद्योग को ।[1] दूसरे वर्गों की तरह इस वर्ग ने भी अपने कई संगठन बनाए । भारतीय अर्थतन्त्र विकास के एकाधिकार इस वर्ग के पास पहुँच चुका था । इसके कारण यह प्रवृत्ति बढ़ती गई कि उद्योग की किसी विशेष शाखा पर या किसी उद्योग की समष्टि पर या उद्योगों के समुदाय पर ही एकाधिकार स्थापित कर लिया जाए । अतः देश की जनता के आर्थिक ही नहीं वरन् सामाजिक बौद्धिक राजनीतिक जीवन पर भी कुछ थोड़े उद्योगपतियों और अर्थपतियों की जकड़ मजबूत होती गई । धीरे-धीरे यह वर्ग अपना प्रभुत्व जमाता गया । "भारतीय पूँजीपति प्रारम्भ से ही अत्यंत आत्म-केन्द्रित, स्वार्थपरायण एवं अवसरवादी मनोवृत्ति के रहे । फलस्वरूप: हमारे यहाँ पूँजीवाद ही प्रबल है । हमारे पूँजीपति दूसरों की अपेक्षा अधिक लोभी, स्वार्थी और नैतिक बन्धनों का पालन न करने वाले हैं । भाग्यवाद और धर्म का प्रभाव भी भारतीय पूँजीपति लेखकों और सामान्य जनता की सहानुभूति के विषय कभी नहीं रहे - न वर्ग के रूप में, न व्यक्ति के रूप में । फलस्वरूप पूँजीपति या उद्योगपति वर्ग लेखकों के प्रहार व्यंग्य का ही भाजन बना ।[2] इस उच्च वर्ग के पास अपार धन संपत्ति रहती है, परन्तु इस सबको वह अपने ही सुख, आराम और शौकों में व्यय करता है । शहरों और गाँवों में महाजनों, साहूकारों तथा व्यापारियों का एक ऐसा वर्ग है जो अपनी पूँजी के बल पर किसानों या अन्य जरूरतमंद लोगों को कर्ज देकर सूद के रूप में इन कर्जदारों से जबरन रुपया वसूल करता है । इस व्यवसाय से इस वर्ग की धन-सम्पत्ति अपरिमित रूप से बढ़ती

- -

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई :पृ.161

2. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल : राम शोभित प्रसादसिंह : पृ.240.

जाती है, और दूसरी ओर कमजोर का खून चूसता चला जाता है । औद्योगिक व्यवस्था के प्रसार के कारण गावों की प्रमुखता समाप्त होने लगी थी, इससे शहरों का तेजी से विकास होने लगा और गांव उजड़ने लगे । पूंजीवादी व्यवस्था का विकास नगरों में ही सम्भव हुआ है। इसलिये बड़ी संख्या में गांवों से लोग शहरों में आकर बस गये है ।

उच्च-वर्ग का व्यक्ति प्रत्येक कार्य को रुपये पैसे से तौलता है । इस उच्च वर्ग की सभ्यता का धर्म-ईमान सब कुछ धन है । प्रेमचन्द ने अपने एक लेख " महाजनी सभ्यता" में इस उच्च वर्ग की सभ्यता की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन किया है । "इस लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप में अपने आधीन कर लिया है । कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है । जिसके पास पैसा है वह देवता स्वरूप है, उसका अन्तःकरण कितना ही काला क्यों न हो । साहित्य, संगीत और कला - सभी धन की देहली पर माथा टेकने वालों में है । यह हवा इतनी जहरीली हो गई है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है । डाक्टर और हकीम है कि वह बिना लम्बी फीस लिए बात नहीं करता । वकील और बैरिस्टर है कि वह मिनटों को अशर्फियों से तौलता है । गुण और योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्यों के हिसाब से मानी जा रही है ।"[1] इस वर्ग की सभ्यता का सिद्धान्त है बिजनेस इज बिजनेस । यह सभ्यता व्यवसाय के सम्बन्ध अपने मित्र बन्धु किसी का भी ख्याल नहीं करती । यह वर्ग सदैव ही अवसर-वादी राजनीति के पक्षधर बने रहे हैं । आज राजनीति के क्षेत्र में भी इसी वर्ग का प्रभुत्व हो गया है । उच्च वर्ग और दूसरे वर्गों में खाई बढ़ती जा रही है । यह उच्चवर्ग साम्प्रदायिक वैमनस्य, भ्रष्टाचार, दलगत राजनीति के कुचक्र, जातिवाद के विष वमन और आतंकवाद का सहारा लेकर जनसाधारण का शोषण करते रहे हैं । धीरे-धीरे इस वर्ग में तस्करी भी बढ़ रही है । यह उच्च वर्ग निम्न लोगों के साथ

- -

1. प्रेमचन्द स्मृति : महाजनी सभ्यता : पृ. 258.

समागम करना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता है । अतः इस नवीन वर्ग व्यवस्था ने एक वर्ग, मध्यम वर्ग को जन्म दिया जो बहुत जागरूक और चेतना सम्पन्न होता है ।

5·1·1·2 <u>मध्यम वर्ग</u>

भारत में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ ही मध्यमवर्ग का उदय हुआ । यह वर्ग पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है । इस वर्ग का जीवन एक ओर तो विषम आर्थिक चक्र से घिरा हुआ था, दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के कारण भी इसके प्राचीन संस्कार भी धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे थे । इस प्रकार न केवल भौतिक दृष्टि से वरन् आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह वर्ग खोखला हो गया था ।

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक सामाजिक युग में दो ही वर्ग रहे हैं । समाज के एक छोर पर उन व्यक्तियों का समूह रहता आया है, जो उत्पादन व्यवस्था के स्वामी होते हैं और जिन्हें शोषक वर्ग कहते हैं । दूसरे छोर पर उन व्यक्तियों का समूह रहता आया है जो अपने श्रम के आधार पर उत्पादन तो करता है, किंतु उसका नाममात्र भी हिस्सा नहीं पाता, उन्हें शोषित वर्ग कहते हैं । उपयुक्त दोनों स्थितियों के बीच में जीवनयापन करने वाले व्यक्तियों के समूह को स्वभावतः "मध्यमवर्ग" नाम से अभिहित किया जाता है ।[1] वस्तुतः मध्यमवर्ग की स्थिति दो छोरों के बीच की वह वास्तविक स्थिति है, जिसकी प्रवृत्तियाँ इन दो छोरों की ओर मुड़ी हुई प्रतीत होते हुए भी अपनी सामाजिक यथार्थता में अलग स्वतंत्र सत्ता रखती है ।

डा॰ चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर ने मध्यमवर्ग की व्याख्या इस प्रकार की है – "भारतीय मध्यमवर्ग में सामान्यतः उस समाज का अन्तर्भाव किया जाता है जो अंग्रेजों के आगमन के बाद अंग्रेजी शिक्षा को ग्रहण कर सामान्यतः सुविधाजनक जीवन को प्राप्त कर सका । शासन विभाग में नौकरियाँ प्राप्त कर अथवा अंग्रेजी शिक्षा के बल पर डाक्टर, वकील, इंजीनियर के तौर पर वैज्ञानिक अथवा

1· हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना : वीना श्रीवास्तव
 :पृ· 14·

तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर इस वर्ग ने आम तौर पर शारीरिक श्रम न करते हुए जीवन-निर्वाह किया । यद्यपि अंग्रेजों की आर्थिक नीति और विश्व-युद्ध के फलस्वरूप इस वर्ग को जीवन-निर्वाह सम्बन्धी कठिनाइयाँ सहनी पड़ीं फिर भी यह वर्ग सुखमय जीवन का ही बहुत समय तक अभ्यस्त बना रहा । अंग्रेजी शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित यह वर्ग सामान्यतः जनता से कटकर अलग हो रहा । उच्चवर्ग के रहन-सहन और आचार-व्यवहार का अनुकरण करने में इस वर्ग के व्यक्ति को संतोष मिलना स्वाभाविक था । वैज्ञानिक चिन्तन और पुराने धार्मिक संस्कारों के बीच यह वर्ग छटपटाता रहा । जीवन के निश्चित दर्शन के सम्बन्ध में अनिश्चितता इस वर्ग की विशेषता है । निश्चित तत्वज्ञान के अभाव में इस वर्ग के आचरण में भी शिथिलता, निष्क्रियता और रूढ़िवादिता का आधिक्य रहा, क्योंकि व्यक्ति जब तक निश्चित और ठोस चिन्तन की भूमिका नहीं अपनाता, तब तक उसके व्यवहार में भी शिथिलता रहती है । कुल मर्यादा परिवार के बन्धन एक ओर बुद्धिवादी दृष्टि-कोण दूसरी ओर - इस प्रकार की स्थिति में मध्यवर्गीय व्यक्ति सदैव त्रिशंकु की तरह लटकता रहा है । राजनीतिक तथा समाज सुधार के क्षेत्र में यह वर्ग सदैव समझौता वादी अथवा समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाता आया है ।[1]

मध्यवर्ग का विभाजन तीन रूपों में किया जाता है "उच्च मध्यवर्ग", "मध्य मध्य वर्ग" और "निम्न मध्य वर्ग" । यह विभाजन आर्थिक आधार पर किया जाता है । अतुल धनराशिवाले पूँजीपति उच्चमध्यवर्ग में, निम्न नौकरी पेशा और छोटे मोटे व्यापारी आदि निम्न मध्यवर्ग में तथा इन दोनों के बीच के लोग बड़े-बड़े वेतन भोगी, नौकरीपेशा वाले मध्य-वित्तीय, बड़े वकील, डाक्टर, अध्यापक आदि मध्यवर्ग में रखे जाते हैं ।[2]

परन्तु हिन्दी साहित्य के संदर्भ में व्याख्या करते हुए गजानन माधव मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग के विभाजन एवं उसकी स्थिति का

---

1. हिन्दी-मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन : चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर, पृ. 112.
2. भारतीय मध्यवर्ग : डॉ. श्यामसुन्दर घोष : पृ. 63.

विवेचन करते हुए यह कहा है कि " हिन्दी में हम कवियों दो प्रकार के वर्ग काम कर रहे हैं । एक उच्च-मध्यवर्गीयजन, दूसरे निम्न मध्यवर्गीय-जन । इन दोनों के बीच की खाई लगातार चौड़ी होती जा रही है । जीवन का जो आभ्यन्तरीकरण ये दो वर्ग करते जा रहे हैं, उसमें बड़ा भेद दृष्टिगत हो रहा है । इन दो श्रेणियों की प्रधान भावनाएं एक दूसरे से जुदा हो चुकी हैं । दोनों के सामने दुनिया दो अलग संवेदनात्मक रूपों में प्रस्तुत हो रही । प्रगतिशील जीवन मूल्य, निम्न-मध्यवर्गीय श्रेणी के भावना-चित्रों में अधिक पाये जाते हैं । इस श्रेणी में, जीवन-संघर्ष की अधिकता के फलस्वरूप तन्मयता और भाव-सघनता तो होती ही है, किन्तु उसके साथ, शिक्षा, स्वाध्याय और समय के अभाव के कारण, काव्य सौन्दर्य के विकास के प्रति विमुखता भी दृष्टि-गोचर होती है । किन्तु सबसे अधिक चिन्तनीय यह है कि वे तथाकथित अभिजात उच्च मध्यवर्गीय काव्य-संस्कृति में आक्रान्त होकर अपनी विशिष्टता को प्रखर रूप से प्रकट नहीं कर पाते ।[1]"

मध्यवर्ग के उदय एवं विकास का संक्षिप्त रूप से विवेचन किया जा रहा है । भारतीय समाज में आधुनिक मध्यवर्ग का उद्भव और विकास का दायित्व अंग्रेजी साम्राज्य पर है । भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना और औद्योगिक पूंजीवादी के उदय के कई दशक पहले ही आधुनिक बुद्धिवादी वर्ग का जन्म हो चुका था । अंग्रेजों के आगमन से पूर्व के भारतीय मध्यवर्ग के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डा० नासिर अहमद खाँ लिखते हैं, " समाज के उच्च स्तर के व्यक्तियों में राजगुरु, क्षत्रिय राजा और उनके अभिभावक सम्मिलित थे । इन व्यक्तियों में ब्राह्मण, अध्यापक, उपदेशक, क्षत्रिय शूरवीर और राजनीतिक नेता भी थे । कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो शासन-व्यवस्था में सहायता करते थे जो विशेषकर सौदागर, पूंजीपेशक और औद्योगिक थे । सामन्त-युग में उच्च और मध्यमवर्ग के व्यक्ति बढ़ते गए.... "जागीरदार, पैंशनजारी, मध्यवर्ग के पूंजीवादी वर्ग के भारतीयों ने

--- ------------------- --

1. मुक्तिबोध रचनावली : सम्पादक : नेमिचन्द्र जैन : पृ० 214-15
भाग -5.

उच्चस्तर के वर्ग का निर्माण किया । उन्होंने पुरोहितों, साहूकारों, राजस्व अधिकारियों, प्रशासकों, सौदागरों तथा व्यापारियों ने मध्यवर्ग बनाया।[1] मूल रूप से अंग्रेजों के आगमन के बाद ही मध्यवर्ग अपने शुद्ध रूप में अस्तित्व में आया । डा॰ए॰आर॰ देसाई मध्यवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा को उत्तरदायी मानते है " भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप इस शिक्षित मध्यवर्ग का जन्म हुआ था । वकील, डाक्टर, टैक्नीशियन, प्रोफेसर, पत्रकार, सरकारी नौकर, विद्यार्थी इत्यादि इस वर्ग के सदस्य है ।[2] डा॰ बी॰बी॰ मिश्र ने भी मध्यवर्ग के विकास की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए लिखा है कि सन् 1905 से पूर्व का समय दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम भाग में कम्पनी शासन के अन्तर्गत मध्यवर्ग का उदय हुआ और दूसरे भाग में सम्पन्न और निम्न-मध्यवर्ग के परिवारों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ ।"[3] भारतीय मध्यवर्ग के अन्तर्गत किसी एक वर्ग या जाति के लोग ही नहीं है, अपितु विभिन्न जातियां एवं विभिन्न समुदाय के लोग सम्मिलित है । इस नवनिर्मित मध्यवर्ग का प्रमुख आधार आर्थिक है ।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में बुद्धिवादियों की भूमिका निर्णायक रही है । बहुत दूर तक उन्होंने भारतीय जनता को आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित किया और अनेक प्रगतिशील सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन का संगठन किया । वे सारे राजनीतिक राष्ट्रवादी आन्दोलनों के जनक प्रणेता, संगठनकर्ता और अगुआ थे । घोर आत्मत्याग और अनेक कष्टों के बावजूद उन्होंने जनता के बीच

- -

1. मिडिल क्लास इन इंडिया : डा॰नासिर अहमद खां : पृ॰3-4

2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए॰आर॰देसाई:पृ॰158॰

3. The period before 1905 may be devided into two parts. The first was that of the Company's rule which witnessed the rise of the new middle classes. The second part of this period began with the spread of English Education among ordinarily well-to-do and lower middle-class families : p. 343.

The Indian Middle Classes : B.B.Misra.

शैक्षिक और प्रचारात्मक कार्य के द्वारा स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद के विचारों को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाया ।[1] इससे लोगों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न हुई । इस प्रकार यह मध्यवर्ग विभिन्न जातियों के मिलने से, जाति बन्धन को तोड़ता, देशों की संकीर्णता का अतिक्रमण करता हुआ मध्यवर्गों का अग्रणी बना ।

व्यापार का जो विकास हुआ उसका कारण मध्यवर्ग था । इन लोगों ने निर्यात का काम संभाला और आयातित माल को देशव्यापी मंडियों में बेचने का काम करने लगे । उद्योग के विकास के साथ छोटे पूँजीपति उन्नति कर बड़े पूँजीपति बनने लगे । अपने अधिकारों के विस्तार रखने के लिए अन्य साधनों का प्रयोग करता रहा । बड़े-बड़े उद्योग-पतियों को अपनी मिल एवं कारखानों को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रबन्धक, परीक्षक, निरीक्षक रखने पड़ते थे, उत्पादन की लागत आदि निकालने के लिए तथा हिसाब-किताब रखने के लिये कितने ही लेखाकारों की आवश्यकता होती थी । देश भर में फैली हुई एजेंसियों तथा अन्य लोगों से पत्रव्यवहार करने के लिए तथा रिकार्ड आदि रखने के लिए क्लर्कों की एक सेना नियुक्त करनी पड़ती थी । इस पूँजीपति व्यवस्था के कारण मध्यमवर्ग का विकास उत्तरोत्तर बढ़ता गया ।

अन्य देशों के अनुरूप अपने असंतुलित फैलाव के कारण मध्यवर्ग के सामाजिक और आर्थिक आयाम भी बदले हैं । भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आया है । धीरे-धीरे प्राचीन मान्यताओं की आलोचना और नवीन विचारों की स्थापना होने लगी । परिणाम स्वरूप " मध्यवर्ग की शिक्षित नई पीढ़ी में पुराने रीति-रिवाजों के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई और विद्रोही प्रवृत्ति का जन्म हुआ ।"[2]

स्वतंत्रता के बाद मध्यवर्ग में पर्याप्त परिवर्तन आया है असंतोष, आक्रोश, विवशता और कुंठा में जी रहा है । सामाजिक तथा आर्थिक

---

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई:पृ.15

2. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : मंजुलता सिंह : पृ.15.

समस्याओं के साथ ही धार्मिक और राजनीतिक समस्या भी मध्यवर्ग को बराबर आक्रान्त किए रहती है । आज जहाँ यह वर्ग अपनी समस्याओं से आक्रान्त है, वहीं दूसरी ओर समाज को जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का स्वर भी इसने दिया ।

"मध्यवर्ग के व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं । इस वर्ग का व्यक्ति आत्मकेन्द्रित तथा कल्पनाप्रिय भी होता है । इस वर्ग में दो प्रकार के व्यक्ति हैं – एक जो हर प्राचीन मान्यता एवं विश्वास, को चाहे वह युग के अनुकूल हो या न हो, ओढ़े जा रहे हैं और किसी भी प्रकार का कोई सुधार या विरोध सहन नहीं करते और दूसरे प्रकार के वे जो हर नयी मान्यता एवं नये विचार को प्रतिष्ठित करने में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं ।"[1]

"इतना होते हुए भी मध्यवर्ग "नये और पुराने" के संघर्ष के बीच सांस ले रहा है । प्राचीन परम्परागत रीति-रिवाजों, मान्यताओं और मर्यादाओं में जकड़ा यह वर्ग प्राचीन संस्कृति से जुड़ा है । आधुनिक विचारों से आकर्षित होकर भी उनको स्वीकारने वाली आधुनिक सामाजिक और वैज्ञानिक चेतना का अभाव है । इस विरोधी स्थिति के कारण यह असंतोष, कुंठा, घुटन से ग्रस्त है । उसके अनुभव, विचार और कर्म में संतुलन नहीं है । वह विचारशील अधिक है, क्रियात्मक कम ।"[2] वर्ग से मिलना चाहकर भी मिलने में असफल है और दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग के निकट होकर भी उससे घृणा करता है । इसीलिए असंतोष की भावना इस वर्ग में पनप रही है । अपने अस्तित्व के लिये यह वर्ग सचेत रहता है और देश की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेता है ।

मध्यवर्ग की सफलताओं के साथ उसमें कुछ दुर्बलताएँ भी हैं । वह अपनी कुल मर्यादा को निभाने के लिये अनेक प्रकार के प्रदर्शन करता है ।

- -

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : मंजुलता सिंह : पृ. 17.
2. The Indian Heritage : Humayun Kabir : 1951 p.756-57.

घर में धन न हो, परन्तु कर्ज लेकर वह अपनी झूठी शान-शौकत को बनाए रखता है। जिसके कारण आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग पंगु होता जा रहा है। आर्थिक विषमताओं का शिकार होकर तथा निरन्तर मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त होता हुआ अपना अस्तित्व खोता जा रहा है।

मध्यवर्ग में अपनी आर्थिक स्थिति को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाने तथा मिथ्या प्रदर्शन की प्रवृत्ति होती है। बीसवीं शताब्दी में इस वर्ग का देश में प्रभुत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। अब संगठित रूप से इसने जातिव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया।"[1] आधुनिक काल में पुनरुत्थान एवं नवजागरण की जो लहर आई, उसमें केवल पुरुष ही नहीं सदियों से दमित, शोषित पीड़ित और व्यथित भारतीय नारी विद्रोहिणी बनकर सामने आई। शिक्षा एवं सामाजिक सुधार की भावनाओं से ओत-प्रोत मध्यवर्ग का नारी समुदाय भी जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील बना। वर्ग-संघर्ष को मिटाने तथा समाज में समाजवादी व्यवस्था द्वारा समानता का विस्तार करने का इच्छुक यही वर्ग है। मध्यवर्ग ने ही विश्व में बड़े-बड़े कलाकारों को जन्म दिया। हिन्दी के महिला उपन्यासकारों का मध्यवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण उन्होंने मध्यवर्गीय समस्याओं को अपना अध्ययन का विषय ही नहीं बनाया वरन् स्थान-स्थान पर समस्याओं के निराकरण एवं मध्यवर्गीय पुरुषों की मनोवृत्ति के उपयुक्त संकेत भी उन्होंने दिये हैं। इस दृष्टि से इन महिला उपन्यासकारों द्वारा चित्रित मध्यवर्गीय पुरुषों का स्वरूप विशेष महत्त्वपूर्ण है। जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे।

5·1·1·3 <u>निम्न वर्ग</u> निम्न वर्ग में ऐसे लोग आते हैं जिनकी आय का न कोई निश्चित साधन है और न कोई निश्चित मात्रा। इनमें ऐसे लोग भी हैं जिन्हें महीने में कई दिन बेकारी के साथ संघर्ष करना पड़ता है, मजदूरी मिलने पर ही जिनके खाने का प्रबन्ध होता है।

1· हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना : डा·कुंवरपाल सिंह, पृ·92·

जो आधुनिक नागरिक जीवन की साधारण सुविधाओं से भी प्रायः वंचित है ।[1] मार्क्स ने इस वर्ग को " प्रोलेटेरियट " या शोषित वर्ग की संज्ञा दी है । पहले भी यह वर्ग अमानुषिक व्यवहार एवं निर्धनता की चक्की में पिसता रहता था । भारत में नवीन निम्न वर्ग ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था की उपज है । यह निम्न वर्ग श्रमिक अथवा मजदूर वर्ग से भी माने जाते हैं । जैसे-जैसे बगानों, आधुनिक कल कारखानों, खनिज, उद्योगों, आवागमन के साधनों आदि में वृद्धि हुई वैसे-वैसे इस वर्ग की संख्या में भी वृद्धि हुई । भारतीय सर्वहारा वर्ग मुख्यतः उन किसानों और दस्तशिल्पकारों से निर्मित हुआ जो दरिद्र होगए थे और अब मजदूरी कमाने लगे थे ।[2] शिक्षा के अभाव के कारण कई वर्षों तक इस वर्ग में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का अभाव रहा । यह वर्ग सांस्कृतिक तौर पर पिछड़ा हुआ वर्ग था । लेकिन बाद में इस वर्ग में भी चेतना आई । 1920-21 से यह वर्ग राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेता रहा बल्कि अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिये संगठित होने लगा । राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों के संगठन बनने लगे ।

स्वतंत्र भारत में इस वर्ग को संविधान के द्वारा विशेष सुविधाएँ दी गई है । फिर भी सामाजिक स्तर पर यह वर्ग उन्नति नहीं कर सका है । आज भी इसमें रूढ़ियाँ, अन्ध विश्वास तथा कुरीतियाँ बस रही है शिक्षा का अभाव होने के कारण इस वर्ग में सबसे अधिक बुराईयाँ पाई जाती है । लेकिन यह महत्वपूर्ण बात है कि इस वर्ग में नारी तथा पुरुष के सम्बन्ध अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक सन्तोषप्रद आधार पर है । सामाजिक जीवन में दोनों को समान अधिकार प्राप्त है क्योंकि दोनों परिश्रम करते हैं तथा एक दूसरे के परिश्रम पर निर्भर नहीं रहते । यही कारण है कि इस वर्ग में विधवा समस्या जैसे सामाजिक दोष नहीं है ।[3]

---

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : हेमराज नि   पृ.21.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई.पृ. 164.
3. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल : डा. राजकौशिका प्रसाद सिंह : पृ. 254.

भारत की अधिकांश जनता पहले गांवों में बसती थी, परन्तु औद्योगिक विकास के साथ एवं जमींदारी व्यवस्था के कारण किसानों की स्थिति दयनीय हो गई । अंग्रेजी शासन व्यवस्था के कारण उत्पादन पर कृषक का अधिकार नाममात्र को रह गया था । इच्छा और भाग्य का लिखा मान कर यह चुपचाप अत्याचार सहता था । ऋण न चुकाने की स्थिति में कृषक भूमि से अपदस्थ होकर मजदूर बन जाने पर विवश हो जाता था । यह कभी संगठित नहीं हो सका क्योंकि किसान बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे हुये थे । इसलिए भी किसानों के बीच संगठनात्मक काम अधिक मुश्किल रहा है । किसान अधिक अंध-विश्वासी एवं शिथिल होते थे । वर्षा जैसी प्राकृतिक शक्तियों पर ही निर्भर रहता था । यह कुछ हद तक आत्मसंतोषी और पराजय-वादी भी है । परन्तु बाद में नेताओं आदि के कारण इनमें भी जागृति आई । गांधी जी ने किसानों की स्थिति सुधारने के लिए किसानों का सत्याग्रह आन्दोलन संगठित किया । "राष्ट्रीय आंदोलन का विकास, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य प्रकार के कार्य कर्ताओं के शैक्षिक और प्रचारात्मक कार्य उनकी अपनी बढ़ती हुई गरीबी, आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कारणों से शिथिल, गतिहीन, क्रियाहीन भारतीय किसान की सामाजिक और मानसिक जड़ता समाप्त होने लगी ।[1]" स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उनकी स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत गांवों के पुनर्निर्माण की व्यवस्था है । इस वर्ग की अपनी विशिष्ट स्थिति होती जा रही है ।

परन्तु आज समाज विषम परिस्थिति में गुजर रहा है । भाई-भतीजावाद बढ़ गया है । हर बड़ा व्यक्ति अपने से छोटे व्यक्ति को लूट रहा है । सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया है । इन तीनों वर्गों की स्थिति को देखते हुये मुक्तिबोध ने लिखा है कि " समाज भयानक रूप से विषमता-ग्रस्त हो गया है । चारों और नैतिक ह्रास के दृश्य दिखायी दे रहे हैं । शोषण और उत्पीड़न पहले से अधिक बढ़

- -

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई:पृ. 196.

गया है । नोच-खसोट, अवसरवाद, भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है । जन के मनोहर भाव उत्पीड़ित हो उठे है । अध्यात्मवादी विचारक, जनता से दूर जा बैठे है । अधिकांश समीक्षकों का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रहा । वे जीवन के कलात्मक साहित्यिक बिम्बों की तो व्याख्या करेंगे, किन्तु जीवन से दूर रहेंगे । सर्वत्र शोषण कष्ट, अन्याय और उत्पीड़न के दृश्य दिखाई दे रहे हैं । समाज के भीतर के विभिन्न वर्गों की खाइयाँ और भी चौड़ी हो गयी है । यहाँ तक कि मध्यवर्ग में भी दो श्रेणियाँ पैदा होकर अपनी परस्पर दूरी खतरनाक तरीके से गहरी और चौड़ी कर रही है । जनपद स्कूल के शिक्षक और यूनिवर्सिटी-प्रोफेसर के बीच , गरीब जनता और सरकारी नेता के बीच, क्लर्क और अफसर के बीच, दूरियाँ [illegible] मुँह फाड़े खड़ी है । किसान, मजदूर और पूँजीपति -जमींदार के बीच की दूरियों का तो क्या कहना ! मानव सम्बन्ध टूट -फूट गये हैं, उलझ गये हैं । समाज में शोषकों उत्पीड़कों और उनके साथियों का जोर बढ़ गया है ।

इस तरह भारतीय समाज की वर्ग संरचना में अंग्रेजों के आगमन, औद्योगिक विकास के कारण यह तीन वर्ग उच्च वर्ग , मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग अस्तित्व में आये । पूँजीवादी आर्थिक वातावरण के फलस्वरूप यहाँ की जनता नए सामाजिक दलों और नए वर्गों में नए सिरे से संगठित हुई । अतः भारतीय समाज नए पुराने वर्गों का बेतरतीब समाज है । यह नए पुराने सामाजिक तत्वों और दलों से बना है ।

9.2. विभिन्न वर्गों के स्वभाव और चरित्र

वर्गबद्ध समाज में मनुष्य अपनी निजी विशेषताओं के बावजूद मूलतः वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में सामने आता है । वर्गीय समाज में हर मनोभूमि का एक निश्चित सामाजिक संदर्भ होता है । जो अन्ततः उसे वर्गीय मनोभूमि का रूप देता है ।

"चरित्र" शब्द का निर्माण "चर" धातु में " इत्र" प्रत्यय लगाने

से हुआ है, जिसके विभिन्न अर्थ है - व्यवहार, आदत, चाल-चलन, अभ्यास, कृत्य, कर्म, अनुष्ठान, स्वभाव प्रवृत्ति आदि।[1] कुछ विद्वानों ने चरित्र में कुछ गुणों को अनिवार्य माना है। विभिन्न वर्गों के मनुष्य के स्वभाव एवं चरित्र को जानने के लिये उनके वर्गों की प्रवृत्तियों को जानना आवश्यक होता है।

वर्गीय चरित्र का अभिप्राय मानव के उस समूह से है जिसके आर्थिक हित समान हो अर्थात् किसी समूह विशेष के आर्थिक हितों में असमानता का अभाव उन्हें एक वर्ग भावना में बाँधता। इन वर्गों में सामूहिक भावना अथवा विचारधारा की एकता रहती है।

एक वर्ग विशेष के भीतर, उसकी जीवन प्रणाली की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्ति अपने जीवन-मूल्य निर्मित करता है। उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति और सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा कलाकार की मूल्य व्यवस्था और जीवन व्यवस्था से प्रभावित होने के कारण बहुत कुछ वर्गीय विशेषताओं से संयुक्त होती है। वर्ग कोई शाश्वत सार्वभौम और सार्वकालिक इकाई नहीं होता। उसके रूप-स्वरूप में सामाजिक उत्पादन-प्रणाली और उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन के साथ, निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए जीवन मूल्य सौन्दर्य-बोध और मनोवैज्ञानिक स्थिति भी परिवर्तनशील होती है। इन परिवर्तनों के साथ विभिन्न वर्गों स्वभाव एवं चरित्रों में भी परिवर्तन होता है।

समाज में तीन वर्ग पाये जाते हैं। जो निम्न है उच्च वर्ग, मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग। इन वर्गों के पात्रों की अपनी वर्गीय स्वभाव एवं चरित्र होते है।

5·2·1 <u>उच्चवर्ग</u> उच्च वर्ग में वे लोग आते हैं जिनके पास पूँजी अथवा मान-प्रतिष्ठा है परन्तु वे शारीरिक श्रम का महत्त्व स्वीकार कर अपना निर्वाह नहीं करते। ये वर्ग अन्य वर्गों अन्य वर्गों का शोषण किसी न किसी रूप में करता है और इसकी वैयक्तिक धन-सम्पत्ति का नैतिक समर्थन नहीं किया जा सकता। उत्पादन के साधनों पर

- -

1· संस्कृत-हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे : पृ·344·

अधिकार होने के कारण समाज की व्यवस्था यही वर्ग चलाता है ।[1] इस वर्ग की अपनी अलग प्रकृति एवं स्वभाव होता है ।

5.2.1.1. सामन्त_वर्ग आधुनिक युग में सामन्त वर्ग समाप्त हो गया है किन्तु सामन्ती चेतना समाप्त नहीं हो पायी है । सामन्तवाद के केवल रूढ़ रूप का ही पतन हुआ । परन्तु सामन्ती प्रवृत्ति ज्यों की त्यों उच्च वर्ग में पाई जाती है । शक्लें बदल गयी किन्तु मूल भाव वही है । "स्वतंत्रता के बाद नये सामन्तों का उदय हुआ है और नये दरबार अस्तित्व में आये है । ये दरबारी परोपजीवी प्रकृति वाले है, जो कमुला भगत नेताओं को राग अलाप रहे हैं ।"[2] यह वर्ग शान, शौकत एवं सुरापान में लिप्त रहता है । ये विलासी, क्रूर एवं सनकी होते हैं । अपनी सनक के कारण वे लाखों रूपये व्यर्थ गंवा देते हैं । नारी इनके पैरों की जूती है और भोग विलास का साधन । उसे ये वस्त्रों की भांति पहनते और उतारते हैं । वे अपनी शान-शौकत के लिए कुछ भी कर सकते है । सामन्ती वर्ग का चरम लक्ष्य सत्ता और शक्ति की प्राप्ति थी इसके लिये बड़े से बड़ा पाप करने में भी वे कभी नहीं चूकते । इन सामन्तों के कारण कुप्रथाओं का भी जन्म हुआ । जैसे दास प्रथा, दहेज, अनमेल विवाह, बहुविवाह , बाल विवाह आदि। अपने से भिन्न जाति से मिलना उन्हें पसन्द नहीं है । निम्न वर्ग के पुरूष को देखने मात्र से छूत लग जाती है । इनमें जातिवाद की भावना गहरी है । "जन जीवन से असामान्य सामन्तों की कुछ अपनी विशिष्ट रुचियां रहीं, जिनकी अभिव्यक्ति अनेक माध्यमों के द्वारा हुई । उनके मनोरंजन के साधन, दण्ड देने के ढंग, व युद्ध सम्बन्धी प्रतिक्रिया, दयालुता सम्बन्धी कुछ सनके, चोरियां और डकैतियां इत्यादि कतिपय ऐसी विशिष्टताएं हैं, जो उन्हें एक विशिष्ट श्रेणी में खड़ा कर देती है । इन विलक्षण रुचियों के मूल में भी अनेक कारण रहे । कुछ रुचियां उनकी यौन कुंठा अथवा यौन पीड़ा का परिणाम रही तो कुछ वैभवजन्य

---

1. मार्क्सवाद : यशपाल : पृ. 142-43.
2. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग : डॉ. त्रिभुवन सिंह :260-61.

और अहंकार की सूचक ।[1] जहाँ इन सामन्त वर्ग में अवगुण है वहीं पर कुछ गुण भी निहित होते हैं। जैसे इनमें उदारता का भी गुण पाया जाता है । एक ओर जहाँ इन्होंने जनता का शोषण किया वहीं दूसरी ओर मुक्त हस्त से दान भी दिया । ये कला मर्मज्ञ थे । कला प्रेम के द्वारा भारतीय संस्कृति को जीवन प्रदान किया तथा उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर किया । अहं की भावना प्रबल होती है । एक दूसरे को नीचा दिखाने की भी प्रवृत्ति होती है । इनमें ईर्ष्या की भावना भी होती है ।

ये वर्ग अपने दम्भ के कारण निम्न वर्ग के लोगों के साथ समागम करना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता है । "सामन्तों का दृष्टिकोण परम्परावादी रहा । कुत्सापूर्ण एवं पापमय जीवन जीने के कारण उनके मन में ईश्वरीय भय भी विद्यमान था और यही भय विभिन्न देवी-देवताओं की मान्यता एवं भूत-प्रेतों के प्रति विश्वास के रूप में जब तब प्रकट हुआ ।"[2]

5·2·1·2 <u>जमींदार वर्ग</u> सामन्तवर्ग की जैसी स्वभाव की चारित्रिक प्रवृत्तियाँ हैं, ठीक उसी प्रकार जमींदार वर्ग की भी स्वभाव की चारित्रिक प्रवृत्तियाँ हैं । इसलिये डा·रामदरश मिश्र का कथन भी इस बात की पुष्टि करता है कि -- "जमींदार प्रथा वास्तव में सामन्ती सभ्यता का ही एक अंग है ।"[3] इनके स्वभाव की सबसे बड़ी प्रवृत्ति अहं भावना है । इस अहं भावना के कारण ये अपने से निम्न जाति को कुछ भी नहीं समझते हैं । उनकी अन्य स्वभावतः चारित्रिक विशेषतायें यह भी है कि वे स्वेच्छाचारी, विलास एवं कामुक होते हैं । नारी को एक खिलौना मात्र ही समझते हैं । जातिगत अभिमान इनमें कूट-कूट कर भरा हुआ है । किसानों पर अत्याचार करना यह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं । जमींदार वर्ग में छल-विद्या कूट-कूटकर भरी

- -

1· हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद : कमला गुप्ता : पृ·165·

2· - वही - : -वही- : पृ·443·

3· हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा : रामदरश मिश्र :पृ·33·

हुई है । पुलिस या कर्मचारियों को रिश्वत देकर यह मनमाना अत्याचार करते हैं । तीज-त्यौहारों पर यह अपनी रियाया से पैसा वसूल करते हैं । जमींदार वर्ग में स्पर्धा की भावना भी रहती है । अन्याय और दमन जमींदार के अस्त्र है । वह बेगार चाहता है, बाजार भाव से सस्ती चीज चाहता है और बदले में सहृदयता दिखाने की जरूरत नहीं समझता ।[1] नजराना भेंट लेना भी यह अपना अधिकार समझते हैं । ये जमींदार न केवल अपने भयंकर आर्थिक शोषण से उनका अन्न वस्त्र छीन रहे हैं अपितु जनता के शोषण से प्राप्त उस कमाई से वे अपने भोग विलास के साधन उचित अनुचित प्रकार से जुटा कर उसी में स्वर्गोपम सुख तथा अपने जीवन की इतिश्री समझते थे ।[2] इस तरह यह वर्ग अपने जातिय अहंकार, धन लिप्सा, स्वार्थ परायणता में ही लिप्त रहता है ।किन्तु आधुनिक युग में जमींदार प्रथा हटने के साथ ही इस वर्ग ने अपना चोला बदल लिया है परन्तु स्वभावतः चारित्रिक प्रवृत्तियाँ वहीं विद्यमान है । पुराने जमींदार और ताल्लुकेदारों ने अपनी शक्लें बदल ली और नयी व्यवस्था में शोषण के लिए अपने को तैयार पाया ।[3]

5.2.1.3 <u>पूँजीपति वर्ग</u> औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप एक नये वर्ग ने जन्म लिया । जिसे पूँजीपति वर्ग कहते हैं । इस वर्ग में मिल-मालिक, व्यापारी एवं राजनेता शामिल होते हैं । जिनकी अपनी अलग स्वभावगत चारित्रिक विशेषतायें हैं । "पूँजीपति तथा व्यवसायी का मुख्य ध्येय अधिकाधिक धनार्जन करना तथा उत्पादन के साधनों पर अत्याचार करना होता है वे मजदूरों का शोषण करते हैं । अफसरों तथा सरकारी तंत्र को अपने हित साधन के लिए खरीद लेते हैं । वे चीजों का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर मँहगाई बढ़ाते हैं । नैतिक मूल्यों के नाम पर वे अंधविश्वासों का पोषण करते हैं । यद्यपि मानवीय मूल्यों तथा संवेदनाओं का उनके लिए कोई अर्थ नहीं है । पैसे के लोभी होते हैं । वे आदमी से ज्यादा कीमत पैसे की मानते हैं । यह कंजूस

---

1. प्रेमचन्द : एक अध्ययन : राजेश्वर गुरु : पृ.154.
2. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास : डा.कमलकुमारी चौधरी:पृ.40
3. हिन्दी उपन्यास और प्रयोग : डा.त्रिभुवन सिंह : पृ.96.

होते हैं । पैसों को मानवीय संवेदनाओं से अधिक महत्व देते हैं । ये पूँजीपति भ्रष्ट बेईमान के साथ विलासी भी होते हैं तथा नारी को विलास का साधन मानते हैं ।[1] यह वर्ग आत्मकेन्द्रित स्वार्थपरायण एवं प्रयोजनवादी मनोवृत्ति के रहे हैं । ये नीति स्वार्थों और नैतिक बंधनों का पालन न करने वाले हैं । यह वर्ग चाटुकारों और खुशामदियों से घिरा होता है । यह धन मद को पसन्द भी करता है । गलत रास्तों द्वारा धन कमाता है एवं धन संग्रह की ही धुन में लगा रहता है । यह वर्ग प्रतिष्ठा सम्पन्न, चतुर और धूर्त होता है ।

पूँजीपति वर्ग में अपने वर्ग के प्रति अहं की भावना है । यह वर्ग अपनी पत्नी को भी उतना महत्व नहीं देता । यह वर्ग नहीं चाहता है कि पत्नी के व्यक्तित्व में विकास हो। यह धन अपनी सुख समृद्धि एवं विलास में खर्च करते हैं । पाश्चात्य सभ्यता का पुजारी होता है । यह वर्ग देश के प्रति सच्चा होता है क्योंकि अपनी शक्ति क्षीण न हो जाये, इस भय से किसी और शक्ति को पनपने नहीं देता ।

पूँजीपतियों ने तो सम्पूर्ण अर्थतन्त्र को अपने नियन्त्रण में करके आर्थिक शोषण करने में अपनी पूर्ण सामर्थ्य का परिचय दिया है । भ्रष्टाचार, काला बाजारी, तस्करी, मिलावट, रिश्वतखोरी, दहेज अनमेल विवाह मजदूरों एवं कर्मचारियों का शोषण आदि अनेक प्रवृत्तियों के पीछे धन लोलुपता की प्रवृत्ति ही विद्यमान है ।[2] अपने मनोरंजन के लिये विभिन्न तरीके अपनाते हैं । भोग विलास इस वर्ग के हृदय की करुणा, दया जैसे गुणों का इस प्रकार हनन कर देता है कि अपने चारों ओर के वातावरण में फैली हुई गरीबी, भुखमरी आदि पर इनकी दृष्टि नहीं जाती । इनके वास्तविक रूप का पता तब चलता है जब गरीबी और अकाल से पीड़ित मानव के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए कमरों में एकत्रित होते हैं ।[3] ईश्वर और धर्म इनके हाथ में

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज:पृ.10
2. हिन्दी कहानी चरित्र-चित्रण का विकास : उषा गोयल :पृ.48.
3. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास : डा.एन.रवीन्द्रनाथ : पृ.137.

एक भीषण शस्त्र बन गए हैं । आदमीयता का खून करने के लिये वह कैपर को औजार के रूप में इस्तेमाल करते हैं ।

पूँजीपति की दृष्टि, कुछ मानों में, जमींदारों से भिन्न होती है। उसके शोषण की विधि भी भिन्न होती है । वह शोषितों को कोई शारीरिक कष्ट प्रत्यक्ष रूप से , नहीं देता, जैसा कि जमींदार करते हैं । बल्कि वह उनको जोंक की तरह चूसता रहता है, उनके हृदय को धीरे धीरे खोखला बनाता रहता है, वह शोषितों को मनुष्य तो समझता ही नहीं । वह सिर्फ अपना लाभ देखता है - किसी बात का किसी एक वर्ग-विशेष पर, या संपूर्ण समाज पर पर क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं होती । [1] यह वर्ग आसानी से कामेच्छा की पूर्ति कर लेता है, क्योंकि उसके लिये सामाजिक और आर्थिक दोनों मार्ग खुले रहते हैं । वह अपनी झूठी त्याग भावना का प्रदर्शन करता है । वह नर हत्या जैसे अपराध करता है, और ऊपर से जनता का हितैषी बनकर समाज कल्याण का दंभ भी भरता है ।

विलास और सुख की प्रवृत्तियों में लिपटे रहना इनकी प्रमुख प्रवृत्ति रही है, जिसके कारण अवैध यौन सम्बन्ध, अनमेल विवाह आदि कुप्रथाएं प्रचलित हुईं । पूँजीवाद को मार्क्स और एंगेल्स ने इसलिए हेय माना है कि मानव-प्रकृति के विरुद्ध जाता और मानव-व्यक्तित्व को वर्ग व्यक्तित्व के रूप में परिणत कर देता है । इस तरह यही सिद्ध होता है कि आज इस पूँजीवादी समाज में वर्ग-सत्ता अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुकी है और वर्ग-तत्व के परे जो मानव तत्व हैं उसकी रक्षा होनी चाहिए । [2]

व्यापारी वर्ग में दया सहानुभूति एवं प्रेम की भावना नहीं रहती है । यह वर्ग अपने व्यापार की उन्नति के लिए ऊँच-नीच हर तरीके इस्तेमाल करता है । यह वर्ग हमेशा स्वार्थ परायणता में

---

1. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना : प्रतापनारायण टंडन : पृ. 115.
2. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना : प्रतापनारायण टंडन : पृ. 117.

छिपा रहता है । मानवीय भावनाएँ, करुणा, प्रेम, दया आदि से यह वर्ग पूर्णतया वंचित है । यह वर्ग बहुत ही ढोंगी होता है। अपने से भिन्न लोगों से यह वर्ग अमानुषिक व्यवहार करता है । यह वर्ग नारी का सम्मान नहीं करता है । यह वर्ग औरतों का व्यापार करने से भी नहीं हिचकता है । हर वस्तु को यह वर्ग व्यापार के ढंग से ही तौलता है । यहाँ तक कि मानवीय सम्बन्धों को भी उसी तराजू में तौलता है । यह वर्ग संकीर्ण मनोवृत्ति का होता है, धन संचय करने की ही लालसा में लिप्त रहता है । धन ही जिसका सर्वस्व रहता है, धन के द्वारा वे पदवी खरीद सकते हैं । निजी स्वार्थ के लिए यह वर्ग घृणित से घृणित कार्य करने के लिए भी नहीं हिचकते हैं । यह व्यापारी वर्ग बढ़ते हुए मूल्यों से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है । भूख से पीड़ित नर-कंकालों को दम तोड़ते देखकर भी उनका कलेजा नहीं पसीजता है । इस तरह यह वर्ग बहुत ही संकीर्ण मनोवृत्ति, लोभी एवं दुश्चरित्र होता है । जिसका ध्येय धन कमाना ही होता है । यह वर्ग व्यापारिक दृष्टिकोण को लेकर ही सम्बन्ध स्थापित करता है ।

5·2·1·4 <u>राजकीय अधिकारी एवं नेता</u>

राजकीय अधिकारी एवं नेता वर्ग के लोग अवसरवादी पूँजीपतियों का हित चिंतक, चालबाज, आदर्शहीन, स्वार्थांध, रिश्वतखोर, संकीर्ण-मानसिकता तथा जनता के साथ धोखा करने वाला है ।[1] वर्तमान राजनीति व्यवसाय मात्र बन गई है । इन राजनीतिक नेताओं में व्यावसायिक कौशल के सभी गुण विद्यमान हैं । यह वर्ग मामले को पटाने में दक्ष रहता है । अपने हित पर इसकी निगाह बराबर टिकी रहती है । इनकी वाणी में मिठास होती है, ये मानव प्रवृत्ति को समझने में सिद्धहस्त होते हैं । यह बगुला भगत होता है परिस्थिति देखकर अपना रंग बदल लेता है । इस वर्ग के मुखौटों पर सभ्यता, सदाशयता, सम्मान और देश भक्ति के मोटे लुभावने आवरण चढ़े रहते

- -

1 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज:पृ· 142·

है । राजनीतिक नेताओं ने जनता को सदैव अपने पाँव रखने की एक सीढ़ी समझा और हित सिद्धि के लिये साधन । साम्प्रदायिक भावना जगाकर यह वर्ग स्वार्थ की पूर्ति करता है । यह राजकीय अधिकारी सदैव ही अवसरवादी राजनीति के पक्षधर बने रहते हैं । कभी रूढ़िवादी परम्पराओं का समर्थन प्राप्त कर और कभी निरंकुश शासन के पक्षधर बनकर जन-धन का उन्मुक्त शोषण करते हैं । यह राजनीतिक नेतापक्ष के बाद दूसरा दल बदलते रहते हैं । राजनीतिकी शतरंज में अपनी गोटी बैठाने के प्रयत्न में संलग्न रहते हैं । इसी व्यक्तिगत स्वार्थों ने दल-बदलू राजनीति को जन्म दिया है । यह वर्ग बड़े ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों की बात करता है । मानवीय आदर्शों पर लम्बी भाषण दे सकता है किन्तु व्यवहार में वह स्वार्थी अवसरवादी, भ्रष्ट और अहंकारी है । यह वर्ग मनुष्य को जाति और वर्ग से पृथक करके नहीं देख सकता, उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जातिवाद और गुटबन्दी के रूप में राजनीति घुसी है । अपनी सत्ता और अपनी शक्ति के बल पर वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों को आसानी से हटा देता है ।

ये राजनीतिक नेता एवं अधिकारी वर्ग भोग-विलास में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं । नारी को मात्र खिलौना समझते हैं । यह अधिकारी वर्ग अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के लिए नारी का क्रय-विक्रय करने से भी नहीं चूकते हैं । यह वर्ग नारी को नौकरी दिलाकर अपने एहसानों का प्रतिफल उसके शरीर से लेकर प्राप्त करना चाहता है ।

इस तरह इस उच्च वर्ग की अपनी चारित्रिक विशेषतायें हैं । जो अपना एक अलग वर्ग बनाती है । जो अपने भोग विलास, स्वार्थ-भावना, अवसरवादी राजनीति एवं जातीय संकीर्णता में ही लिप्त रहता है ।

<u>5·2·2· मध्य वर्ग</u> आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग का जन्म वस्तुतः साम्राज्यवाद के कोढ़ से हुआ । " यह वर्ग समाज का वह बिचला हिस्सा है, जो समाज को अनुरूप ढंग से विभाजित करने पर बनता है ,और जिसमें कमोबेश कर एक ही स्तर या ओहदे के लोग सम्मिलित होते हैं ।

जिसकी विशेष आर्थिक और सामाजिक स्थिति और प्रवृत्ति होती है । जो अधिकतर उसकी आय, व्यवसाय, शिक्षा और वंश-परम्परा से निर्धारित होती है ।[1] यह वर्ग न तो पूर्णतः आधुनिक होता है और न ही प्राचीन रूढ़िग्रस्त रीति-रिवाजों में फँसा हुआ रहता है । वास्तव में यह वर्ग इन दोनों के बीच में लटका हुआ है । जिसकी कोई निश्चित सीमा दृष्टिगोचर नहीं होती है । मैक्स वेबर के अनुसार " The Middle classes Float over acquisition classes. If one sells his labour he belongs to the proletarian class, but If he sells his ability in the form of Labour commodity acquired through Training Vocational or otherwise he belongs to the Middle class.[2]

आर्थिक आधार पर मध्यवर्ग के तीन भेद किये जाते हैं । उच्च मध्यवर्ग, मध्य मध्यवर्ग और निम्न मध्य वर्ग । इसी त्रयीय आधार पर हम इनके स्वभाव एवं चरित्र का विश्लेषण करेंगे ।

5.2.2.1 <u>उच्च मध्य वर्ग</u> उच्च मध्य वर्ग आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त होता है । इस वर्ग में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं । इस वर्ग में जज, बड़े-बड़े अफसर, छोटे उद्योगपति, छोटे पूँजीपति, बैंकर, कम्पनियों के डायरेक्टर, ऊँची-ऊँची तनख्वाहें पाने वाले गैर सरकारी कम्पनियों के विशेषज्ञ, बड़े-बड़े डाक्टर, वकील आदि की गिनती होती है । बाह्य परिवर्तन की विवशता का भान इसको होता है । परन्तु इसके परिवर्तन की दिशा को सोचने का साहस कभी नहीं होता । यह वर्ग वैयक्तिक रूप में समता और स्वतंत्रता का हामी है, परन्तु समाज परिवर्तन की ठोस सैद्धान्तिक नीति पर विश्वास न होने से अथवा कर्मठता के अभाव में यह वर्ग वैयक्तिक अक्षुण्णता को बनाये रखना ही परम आदर्श मानता है ।[3]

---

1. भारतीय मध्यवर्ग : श्यामसुन्दर घोष : पृ.10.
2. Cost to class : by Y.P. Chhibbar : p.14.
3. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन : चन्द्रकान्त महादेव बांदिवडेकर : पृ.120.

यह वर्ग आडम्बर प्रिय होने के साथ, आचार-विचार और रहन-सहन में पश्चिम की नकल करता है । अपनी पुरातन सभ्यता एवं संस्कृति को हीन समझता है । उनका पारस्परिक वार्तालाप अंग्रेजी शब्दों से युक्त होता है । अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा भी वह अंग्रेजी में ही करता है ।

उच्च मध्यवर्ग वैयक्तिकता की परिधि में घिरे रहता है । इस वैयक्तिकता की संकीर्ण परिधि में घिरे रहने के कारण ही इसकी सामूहिक रागात्मकता मर जाती है । यह आत्मकेन्द्रित भी होता है । यह वर्ग मध्य मध्य वर्ग में बैठना पसन्द नहीं करता है । प्रायः यह वर्ग उच्च वर्ग के साथ ही रहना चाहता है तथा उच्च वर्ग के होने के स्वप्न संजोये रहता है । यह वर्ग पूंजीपतियों का हिमायती है । मानसिक रूप से यह वर्ग अपने को उच्च वर्ग के अन्तर्गत ही समझता है । " उसकी यह मानसिक बनावट या झुकाव उसको सदा ही इस बात के लिये प्रेरित करते हैं, कि भौतिक परिस्थितियों पर विजय कर वह उच्चवर्ग में प्रविष्ट हो जाये । जब भी वर्ग स्वार्थ - वर्ग-भावना, वर्ग-संगठन या वर्ग-संघर्ष की बात आती है तो यह खुल के,[1] या किन्हीं सिद्धान्तों की ओट ले उच्च वर्ग की हिमायत करता है ।

पदाधिकारी समुदाय आडम्बर प्रिय होने के साथ-साथ स्वार्थी भी होते हैं । यह वर्ग भ्रष्टाचारी होता है । धन लोलुपता, पक्षपातता, बेईमानी, विलासिता जैसे दुर्गुणों से यह मंडित होता है । इसमें मानवीय संवेदनायें तथा संबंधों की आत्मीयता का भाव नहीं रहता है। उसका जीवन नैतिक मूल्यों की दृष्टि से खोखला है तथा वह आदर्श विहीन जिन्दगी जी रहा है । यह वर्ग सरकारी योजनाओं में धांधलेबाजी करता है ।

न्यायाधीश एवं वकील वर्ग बुद्धिजीवी होते है । यह लोग झूठ बोल कर रोटी कमाने वाले होते है । ये समाज की अज्ञानता

- -

1. भारतीय मध्यवर्ग : श्यामसुन्दर घोष : पृ. 74.

तथा अवसर का लाभ उठाते है । यह वर्ग बहुत स्वार्थी मनोवृत्ति का होता है । धन के लिये कुछ भी करने को तैयार रहता है । रुपये कमाने को ही जीवन का चरम उद्देश्य मानता है ।

व्यापारियों एवं वकीलों के बाद डाक्टरों का स्थान है । यह वर्ग भी लालची होता है । बहुत कम लोग होते हैं जो सेवा के रूप में आते है । अधिकांश का उद्देश्य तो यही रहता है कि इस पेशे में आकर खूब पैसा कमाये और शौक-मौज से रहे । इसीलिये वे जायज और नाजायज सभी तरीके अपनाते हैं ।

छोटे-मोटे व्यापारी वर्ग और पूँजीपति पूँजी बढ़ाने और मुनाफे कमाने पर ही रहता है । यह वर्ग पुरानी व्यवस्थाओं को तोड़ कर नयी व्यवस्थाओं का सूत्रपात करता है । यह वर्ग अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं रहता है यह वर्ग महत्वाकांक्षी होता है ।

उच्च मध्यवर्गीय विलासी प्रवृत्ति का भी होता है । यह अन्य स्त्रियों के साथ भी सम्बन्ध स्थापित करता है । अपनी पत्नी पर सन्देह करता है । यह वर्ग झूठा प्रदर्शन करता है । अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिये यह वर्ग अत्यन्त आत्म प्रदर्शक और आत्म-प्रचारक बन बैठा । सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के हेतु यह विदेशी वस्तुओं से अपने घर को साज-सज्जा करता है । यह वर्ग चटक-मटक से प्रभावित होता है । चारित्रिक दृष्टि से यह वर्ग निम्नस्तर होता है ।आत्मीय सम्बन्धों को भी स्वार्थ की तराजू से तौलता है । इसमें खुशामदी प्रवृत्ति होती है । यह वर्ग उच्च वर्ग की खुशामदी करता है ।

यह उच्च मध्यवर्ग के व्यक्ति जीवन की यथार्थता को साहित्य और कला के माध्यम से छिपाने का प्रयत्न करता है । मुक्तिबोध ने कहा कि " ऐसे कुछ कवि" उन खाते-पीते खुशहाली वर्ग के जीव है, कि जो वर्ग उच्च-मध्यवर्ग है या मैं पिछले दस-बारह वर्षों में निम्न-मध्यवर्ग से पृथक होकर सर्वोच्च वर्ग के बैठक घरों में जाकर, सर्वोच्च वर्ग की सामाजिक, राजनैतिक-सांस्कृतिक नीतियों में खास हिस्सा ले रहा है । यह उच्च-मध्यवर्गीय कवि-लेखक अपनी वर्ग-विशिष्ट

विचारधारा के अनुसार, इस बात के विशिष्ट यत्न करता है कि साहित्यिक-सांस्कृतिक जगत का नेतृत्व उसके हाथ में रहे अर्थात् उसकी [अ] अभिरुचि ही सौन्दर्य का प्रतिमान हो ; [ब] उसकी विशिष्ट साहित्यिक विचारधाराएँ, जिनमें व्याख्याएँ और मूल्यांकन भी शामिल हैं, साहित्यिक प्रश्नों के उत्तर का शासन करें, [स] वे ही कवि श्रेष्ठ हों ; [द] उन्हीं को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिले कि जो उसकी अपनी विचारधारा अथवा उसकी अपनी सौन्दर्य-दृष्टि के अनुकूल अथवा समीप हों ।"1" अतः यह उच्च मध्यवर्ग साहित्य के क्षेत्र में भी अपने को उच्च मानता है तथा मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग की व्यापक सत्ता को हटाने की चेष्टा करते रहता है ।

5.2.2.2. <u>मध्य-मध्य वर्ग</u> मध्य मध्यवर्ग के अन्तर्गत वह व्यक्ति आता है जो निश्चित तथा मोटी आय पर निर्भर रहता है । आर्थिक दृष्टि से निम्न मध्यवर्ग की अपेक्षा इस वर्ग की स्थिति कुछ ठीक होती है । इस वर्ग के अन्तर्गत छोटे-छोटे डाक्टर, इंजीनियर, छोटे अफसर, क्लर्क, उच्च शिक्षा प्राप्त युवक, साहित्यकार, अध्यापक, पुलिस कर्मचारी आदि आते हैं । मध्य मध्यवर्ग की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए हुमायु कबिर ने लिखा है - " आधुनिक भारत का सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का असंतुलित फैलाव है । सम्पूर्ण विश्व में मध्यवर्ग के लोग अशान्त आलोचक और व्यक्तिवादी हैं । ऐसी स्थिति में उसकी आर्थिक स्थिति डाँवाडोल है । वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाए रखना आवश्यक है, जो प्रायः उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है । लगातार आर्थिक संकट उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है । मध्यवर्ग सन्तुष्ट नहीं रहता और वह प्रायः उद्दण्ड, आत्मप्रदर्शनकारी और संक्लिष्ट होता है । अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वह दूसरों की आलोचना करता है ।"2"

---

1. मुक्तिबोध रचनावली : भाग 5 : सम्पादक - नेमिचन्द्र जैन : पृ.119.
2. इण्डियन हेरिटेज : हुमायु कबिर : पृ.117.

मध्यवर्ग के प्राणी जागरूक, वर्तमान स्थितियों से असंतुष्ट तथा समस्याओं के मूल कारण से परिचित होने के इच्छुक रहते हैं। उनके भीतर एक ज्वाला प्रज्वलित रहती है और यही ज्वाला उन्हें सामाजिक क्रान्ति लाने के लिये प्रेरित करती रहती है।

The Middle Classes being the Leaders of the masses, influence the trends of events, often altering the course of history. Their opinion are therefore; a matter of great importance.[1]

मध्य-मध्यवर्ग में सबसे बड़ा समुदाय सरकारी अधिकारी का है। इस वर्ग के पुरुष कुल मिलाकर आर्थिक अभावों से संघर्ष करते हुए पारिवारिक संकटों को झेलते हुए असंतोष तथा क्षोभ का साकार रूप होते हैं। इनकी विचारधारा संकीर्ण होती है। इनकी मनोवृत्ति स्वार्थी होती है। यह अपने से बड़े अफसर की चापलूसी करते है, और उनकी हां में हां मिलाते रहते है, जिससे उन्हें प्रसन्न रख सके। यह वर्ग ही सबसे ज्यादा अफसरशाही का दंश झेल रहा है। यह वर्ग किसी पराधीन सी जिन्दगी जी रहा है।

क्लर्कों की जैसी स्थिति है, ठीक उसी प्रकार की स्थिति अध्यापक वर्ग की भी है। वैसे ही पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्ष, कुण्ठाएं, द्वेष उसके साथ जुड़े हैं। यह वर्ग उपदेशप्रिय एवं झूठे आदर्शवाद को ओढ़े रहता है। साथ ही इसकी कथनी करनी में अन्तर होता है।

आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो बेरोजगार युवकों को निम्न मध्यवर्ग में रखना चाहिये। परन्तु यह वर्ग बुद्धिजीवी होता है। शिक्षा प्राप्ति के समय ऊँचे-ऊँचे सपने देखता है। शिक्षा के बाद जब उसके सपने पूरे नहीं होते हैं, और उसे बेकारी का मुंह देखना पड़ता है। जिससे उनमें असंतोष, घुटन, कुंठा जैसी भावनाओं ने आक्रमण किया। बेरोजगारी ने मध्य-मध्यवर्ग के शिक्षित बेरोजगार को

- -

1. From cost to Class by Y.P. Chhibbar : p. 137.

इतना कमज़ोर बना दिया है कि बुराई से लड़ने की उसकी शक्ति ही समाप्त हो गयी है। इतना ही नहीं उसका चारित्रिक पतन भी होता जा रहा है। वह अनैतिक कार्य भी करने लगा है। "विशिष्ट शिक्षा पाये होने के कारण वे कोई दूसरा शारीरिक काम करना नहीं चाहते और जिस ढंग की शिक्षा इन्हें मिली होती है उससे इनकी जीविका का निर्वाह नहीं होता। इस युग में आर्थिक विषमता के कारण ये निम्न वर्ग का जीवन बिताने को बाध्य होते हैं।"1.

जिस प्रकार बड़े-बड़े डाक्टरों और वकीलों की अपनी स्वभावगत् चारित्रिक विशेषतायें होती हैं। उसी प्रकार छोटे डाक्टरों और वकीलों की होती है। यह वर्ग भी स्वार्थी एवं धन का पुजारी होता है। टेढ़-सीधे दोनों तरीकों से यह वर्ग धन कमाता है। इसकी मनोवृत्ति संकीर्ण होती है। यह पलायनवादी होता है। मानवीय मूल्यों और आत्मिक सम्बन्धों का मूल्य इसके सामने नहीं रहता है। इस वर्ग में बहुत ही कम लोग हैं जो आदर्श का जीवन बिताते हैं।

मध्य-मध्यवर्ग के साहित्यकार भी आदर्शवाद का नकाब ओढ़े रहते हैं। इस वर्ग में भी ईर्ष्या, आपसी द्वेष, भ्रष्टाचार व्याप्त है। यह वर्ग भी दलों में विभक्त होकर एक दूसरे पर वार करते हैं। यह वर्ग जीवन के यथार्थ को साहित्य और कला के माध्यम से छिपाने का प्रयत्न करता है। मुक्तिबोध ने साहित्यकार की मनोवृत्ति समाज-सापेक्ष मानी है। उन्होंने कहा है कि यह वर्ग तत्कालीन ऐतिहासिक सामाजिक स्थिति के द्वारा, सामान्य रूप से, निर्दिष्ट मनोवृत्तियों के अनुसार अपने साहित्य-सृजन के विषयों का निर्वाचन करता है। साहित्य के विशेष विषयों को निर्दिष्ट करने वाली ये मनोवृत्तियाँ तत्कालीन स्थिति सापेक्ष हैं। इन मनोवृत्तियों को सक्रिय करने का श्रेय भले ही किसी महान् साहित्यकार को प्रदान किया जाये, वह साहित्यकार स्वयं उन्हीं मनोवृत्तियों का भक्ष्य होता है, जो उसे समाज से प्राप्त होती हैं।2.

---

1. भारतीय मध्यवर्ग : श्यामसुंदर घोष : पृ. 62.
2. मुक्तिबोध रचनावली भाग 5: नेमिचन्द्र जैन : पृ. 34.

मध्य-मध्यवर्ग की आँख सदैव उच्च वर्ग की ओर लगी रहती है । उसकी कामना यही रहती है कि जैसे भी हो वह उच्च वर्ग में पहुँच जाये । दृष्टि से यह व्यक्ति कुछ सचेत होता है । यह वर्ग शौकीन होता है, स्वाभिमानी एवं दंभी भी होता है । यह व्यवस्था के पाखण्डों को समझता है । समाज के सारे परिवर्तनों का केन्द्र यही होता है । इसीलिये इसी वर्ग का व्यक्ति सारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक संकट को झेलता है ।1.

मध्य-मध्यवर्ग के व्यक्ति अपनी सीमित आय के कारण अपनी चिर संचित सुख-सुविधाओं की पूर्ति में स्वयं को असमर्थ पाकर अपने से अधिक सम्पन्न उच्च मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग की ओर आकृष्ट होते हैं तथा हीन भावना से ग्रसित होकर अपनी वास्तविक स्थिति को ढोंगों के आवरण में छिपाना चाहते हैं । मध्य-मध्यवर्गीय युवकों की एक प्रमुख प्रवृत्ति है - वास्तविक जीवन की कठिनाइयों से पलायन करके काल्पनिक आनन्द के लोक में विचरण करना ।2.

मध्य-मध्यवर्गीय व्यक्ति समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं से विमुख होकर व्यक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित कराने में तत्पर दिखाई देता है । धन लिप्सा, संकीर्ण स्वभाव तथा संकीर्णता की भावना के कारण विवाह के प्रति परम्पराओं को खास महत्व देता है । उच्च वर्ग की नकल हेतु वह झूठा प्रदर्शन करता है, चाहे उसे इस प्रदर्शन से कर्ज ही क्यों न लेना पड़े । बाह्य संबंधों में असफल इस वर्ग का आक्रोश जीवन के हर पक्ष में दिखाई देता है ।

यह वर्ग स्त्री शिक्षा का विरोधी नहीं है । फिर भी वह उस पर सन्देह करता है । यह वर्ग अहं भावना से पीड़ित है । यह वर्ग अनास्था, कुंठा, अकेलापन जैसी प्रवृत्तियों से ग्रस्त है । सामाजिक बन्धनों के कारण उसमें सेक्स की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है । "मध्यवर्ग की स्वार्थी मनोवृत्ति भी उसकी स्थिति को समाज में विचित्र

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिमा : हेतु भारद्वाज: पृ. 143.
2. हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय चेतना : वीणा श्रीवास्त

बनाती जा रही है । मध्यवर्ग में ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक है जो अपने ही लाभ-हानि से अधिक चिन्तित रहते हैं तथा दूसरे किसी के कष्ट और हानि की ओर ध्यान नहीं देते । जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करती है, उसी प्रकार आज के मध्यवर्ग का व्यक्ति अपने ही वर्ग का शोषण कर वैयक्तिक उन्नति में तल्लीन रहता है । [1]

राजनीति तथा समाज-सुधार के सम्बन्ध में यह वर्ग सदैव समझौतावादी अथवा समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाता है । मध्य-मध्यवर्गीय व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों में अन्तर होता है । जीवन के निश्चित लक्ष्य के सम्बन्ध में अनिश्चितता इस वर्ग की विशेषता है । निश्चित लक्ष्य के अभाव में इस वर्ग के आचरण में भी शिथिलता, निष्क्रियता और रूढ़िवादिता का भाव रहता है । इसीलिये नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा " हमारे समाज का नया मध्यवर्ग परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोजी रोटी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है । उक्त वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्ति भी बहुत कुछ क्षीण होने लगी है और उनमें किसी प्रकार का चारित्रिक उत्कर्ष, त्याग की भावना तथा उच्च उत्साहादि न पाकर वर्ग भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहा है ।"[2]

इसके बावजूद भी इस मध्य-मध्यवर्गीय व्यक्ति में कुछ स्वभावगत चारित्रिक विशेषताएँ भी हैं । जैसे यह वर्ग धार्मिक रूढ़िवादी का विरोध करता है । समाज की जीवन के प्रति आस्था और विश्वास का स्तर भी बनने ही दिया । इसमें आत्मश्लाघा का भाव भी रहता है ।

5.2.2.3. निम्न मध्यवर्ग सामान्यतः आर्थिक परिस्थितियों से पीड़ित, सदैव पेट की चिन्ता में मग्न, शिक्षित परन्तु कला और साहित्य के संस्कारों से चिपटकर बैठे रहने वाले व्यक्तियों को निम्न मध्यवर्ग में रखा जा सकता है । इस वर्ग को " पेटी बुर्जुआ वर्ग" भी कहा जाता है । इस वर्ग में छोटे-छोटे कर्मचारी, मुंशी, छोटे-छोटे

---

1. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : मंजुला सिंह : पृ. 17.
2. राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध : नंददुलारे वाजपेयी : पृ. 11.

बनिये, दुकानदार, पुरोहित, पंडे, पुजारी आदि आते हैं ।

छोटे-छोटे कर्मचारी मुंशी अपने से बड़े अफसरों की कूटनीति के चक्र में पीसते रहता है । यह वर्ग उनकी खुशामदी में लगा हुआ रहता है । अपनी कुल मर्यादा को निभाने के लिये यह वर्ग अनेक प्रदर्शन करता है और ये प्रदर्शन उसकी आर्थिक स्थिति से मेल न खाकर मानसिक संघर्ष का कारण बन जाते हैं । इसे निरन्तर तथा अधिक कुंठिता और रूढ़िग्रस्त जर्जर मर्यादा से सदा जूझना पड़ता है । अतः अपनी स्थिति के प्रति उसके मन में एक असंतोष का भाव रहता है तथा उसे सदैव आर्थिक चिंताएं सताती रहती है । हड़ताल, छटनी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार सब से इनको निबटना पड़ता है । इसीलिये ऊब, झुंझलाहट निराशा , कुंठा क्षोभ आदि भाव इनमें बहुत प्रबल होता है ।

छोटे-छोटे बनिये, दुकानदार भी संकीर्ण मनोवृत्ति के होते हैं । और बाजारी में सिद्ध हस्त होते हैं । यह कंजूस प्रवृत्ति के होते हैं यह वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है तथा उनकी बहू-बेटियों पर बुरी नजर रखते हैं । यह लोग शारीरिक श्रम भी करते हैं । नैतिक मूल्यों से ज्यादा ये अपने स्वार्थ को प्रमुख स्थान देते हैं ।

पंडे पुजारी, पुरोहित धर्म के आधार पर भोली जनता को लूटते हैं । यह दिखावटी होते हैं । "मुंह में राम-राम बगल में छुरी" यह कहावत इन पर पूरी तरह चरितार्थ होती है ।

अतः निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति संकीर्ण विचारधारा, स्वार्थी मनोवृत्ति, आर्थिक विवशता, छोटी-छोटी बातों को लेकर आपसी कलह जैसे तत्वों से निर्मित होता है । असंतोष एवं क्षोभ का साकार रूप होते हैं । इनके आस-पास पारिवारिक कलह और अनेक अन्य विपदाएं मंडराती रहती है ।

पूंजीवादी समाज के वैषम्य को देखकर निम्न-मध्यवर्गीय व्यक्ति तिलमिला उठता है, उसमें विद्रोह कर उठता है किंतु उसके उसके हाथ कुछ नहीं लगता । उस होम में उसकी आहुति ही होकर रह जाती है उसका स्वाभिमान अमीरों के पैरों तले कुचल जाता है ।

यह वर्ग खोखली सामाजिक परम्पराएँ निभाए रह जाता है। उसकी कमजोरियाँ उसके समाज की विशेषता है। इस वर्ग में अतृप्त एवं कुंठाओं का वास होता है। उच्च वर्ग की भाँति यह वर्ग अपने सेक्स की संतुष्टि नहीं कर पाता है, जिससे उसमें यह भावना घर कर जाती है। निश्चित, सत्य-ज्ञान के अभाव में इस वर्ग के आचरण में शिथिलता, निष्क्रियता और रूढ़िवादिता का भाव रहता है। कार्य में आवश्यक दृढ़ता और कर्मठता की कमी उसे पलायनवादी बना देती है।

" निम्न-मध्यवर्ग अपनी अवसरवादिता के कारण भले ही विचार-धाराओं को भी ओढ़ कर ले, उसके हृदय में व्याप्त जो मानव स्थितियाँ, मानव सम्बन्ध और मानव-मूल्य हैं, वे उसके हृदय में उस तनाव की सृष्टि करते हैं, कि जो तनाव बाह्य जीवन-जगत में उसकी और उसके वर्ग की स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।[1] निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी परिस्थिति और स्थिति से जकड़ा हुआ रहता है। "समाज का यह स्तर शोषित होकर भी अपने सफेदपोशी के अहंकार और अपने व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थ के कारण पूँजीवादी व्यवस्था का समर्थन करता है।"[2] यह वर्ग विवशता की जिन्दगी जी रहा है। " एक सीमा तक उठने और शुरू होने के बाद भी सही राह ढूँढने के लिये कृतसंकल्प हो जाते हैं और तब वे अपना नाता निम्न वर्ग से या समाज के वृहत्तर वर्ग से जोड़ लेते हैं।[3] निम्न मध्यवर्ग को इण्टेलेक्चुअल प्रोलेटेरियेट (बुद्धिजीवी सर्वहारा वर्ग) भी कहा जाता है। अतः निम्न मध्यवर्ग के रूप में उनका जीवन बड़ा संकटापन्न और संघर्ष पूर्ण है। अतएव इनमें निराशा की भावना घर कर रही है। इसी भावना के कारण जानबूझ कर निम्न वर्ग में मिल जाना चाहता है। मुक्तिबोध के अनुसार निम्न-मध्यवर्ग की स्पृहा उच्च-मध्यवर्ग में जाकर बैठने की है। किन्तु वास्तविकता उसे पीछे ढकेलती है और

---

1. मुक्तिबोध रचनावली : भाग पंचम : पृ. 119.
2. मार्क्सवाद : यशपाल : पृ. 173.
3. भारतीय मध्यवर्ग : श्यामसुन्दर घोष : पृ.

नीचले वर्ग के साथ होने के लिए, आर्थिक दृष्टि से भी बाध्य करती है ।[1]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों को यदि हम वर्गीय दृष्टि से देखें तो सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश महिला उपन्यासकार मध्यवर्ग से आते हैं । इसलिये उनकी लेखनी मध्यवर्ग के पुरुषों के सकारात्मक चरित्रों को स्थापित करने में अधिक रमी है, तथा उनके द्वारा मध्यवर्गीय पुरुषों का चित्रण बहुत प्रामाणिक तथा यथार्थवादी रहा है ।

5.2.3. <u>निम्न वर्ग</u> निम्न वर्ग में कृषक और श्रमिक तथा अन्य निम्न वर्ग के लोग आते हैं । इस वर्ग के अंतर्गत समाज के वे लोग आते हैं, जिनका सारा जीवन उच्च तथा कुछ हद तक मध्यवर्ग की सेवा में व्यतीत हो जाता है । यों तो हम मुख्य रूप से कृषकों तथा मजदूरों को ही इस वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं, लेकिन हमारी सम्मति में वे कहार, चपरासी, घरेलू नौकर तथा इसी कोटि के अन्य सभी पेशे वाले लोग भी इसी वर्ग में हैं, जिनकी स्थिति किसान अथवा मजदूरों से भिन्न नहीं है । बहुत निम्न श्रेणी के दुकानदार अथवा खोमचे आदि लगाने वाले भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं ।[2]

5.2.3.1 <u>कृषक वर्ग</u> कृषक वर्ग का जीवन मृत्यु-रूपी सर्वसक्षम प्रकृति के साथ संघर्ष करने वाले वर्ग का जीवन है ।[3] यह कृषक वर्ग निरक्षर है, यह अन्धविश्वासी होता है । कुल की प्रतिष्ठा को यह अनावश्यक महत्व देता है । पापभीरु होता है और प्राचीन संस्कारों का बोझ ढोते रहता है । "किसान देहात में रहते हैं जो सांस्कृतिक तौर पर पिछड़ा हुआ इलाका है, और यहाँ जिंदगी मद्धिम, एकरस गति से चलती है ।.... सांस्कृतिक रूप से पिछड़े देहात में पलापोसा किसान अपेक्षाकृत सुस्त, मंदबुद्धि और अशिक्षित है ।[4]

- -

1. मुक्तिबोध रचनावली : नेमिचंद्र जैन : भाग 5 पृ. 121.
2. हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना : टंडन : पृ. 127.
3. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन : डा. चन्द्रकांत बांदिवडेकर : पृ. 140.
4. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर. देसाई. पृ. 155.

कृषक पंचायत को परमेश्वर समझता है । बिरादरी का महत्व उसके जन-जन में व्याप्त रहता है । अपने छोटे-छोटे कार्यों में वह कुछ सोचता है । उधार को वह एक तरह से मुफ्त ही समझता है । मजदूरी को वह अपनी शान के खिलाफ मानता है परन्तु आवश्यकता पड़ने पर मजदूरी करने के लिए भी तैयार हो जाता है । कृषक वर्ग आलसी एवं पराश्रयवादी होता है । " कुंठित, सामूहिक कार्य द्वारा जीवन संघर्ष में रत होने के बदले किसान निरुपाय से संकट के सामने नतमस्तक हो जाते हैं, या फिर वे स्वतः स्फूर्त, असंगठित और निष्फल विद्रोह का रास्ता अपनाते हैं जो निराशोन्मत्त आदमी के अंध साहस के प्रतीक के रूप में ।[1] यह वर्ग जमींदारों की चापलूसी करता है । यह उच्च वर्ग के आगे हमेशा दबा हुआ रहता है । यह वर्ग अगर किसी पर हाथ उठाता है तो अपनी पत्नी पर ही । अपने पिछड़ेपन की वजह से यह वर्ग अभी पूरी तरह से चेतना का विकास नहीं कर पाया है । यह वर्ग मुख्यतः वर्षा जैसी प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर रहता है । इनमें साहस की कमी होती है । यह वर्ग रूढ़िवादी होता है । " बहुत बड़े क्षेत्र में बिखराव, विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठन और रूढ़िवादिता जैसी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक कमजोरियों के कारण सामाजिक संघर्षों के इतिहास में किसानों की अपनी कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं होती । आधुनिक काल में यह या तो बुर्जुआजी की या फिर मजदूर वर्ग की अगुआई में रहा ।[2]

5.2.3.1 <u>श्रमिक वर्ग</u> भारत में अंग्रेजी शासन काल में आधुनिक उद्योग खुले, यातायात के आधुनिक साधनों की स्थापना हुई, जिसके कारण आधुनिक श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ । इनकी अपनी स्वाभाविक चारित्रिक विशिष्टताएँ होती हैं । इस वर्ग के व्यक्ति रूढ़िवादी और अन्धविश्वासी होते हैं । इस वर्ग में सामाजिक बुराइयाँ पाई जाती हैं । इस वर्ग में नारी तथा पुरुष के सम्बन्ध अन्य वर्गों की

- -

1. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई:पृ.155.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई:पृ.156.

अपेक्षा अधिक अन्धविश्वास आधार पर ही है । धर्म, बिरादरी तथा समाज का भय इसमें रहता है । ईश्वर इच्छा और भाग्य का खेल मान कर यह वर्ग प्रत्येक अत्याचार को मौन रह कर झेलता है । यह वर्ग परम्परागत अर्थहीन मूल्यों से चिपटा हुआ रहता है । पेट की भूख तथा रोटी की समस्या ने उन्हें शुष्क, पीड़ित एवं उपेक्षित कर दिया है । जिसका दारुणतर जीवन की भयानक अनिश्चितता झेलते-झेलते उनका चेहरा बुझे हुए पत्थर के कोयले की तरह हो गया है । स्याह और खुरदरा ।[1] यह अपना सहज जीवन जीता है, जो मिलता है उसी में सन्तुष्ट रहता है ।

यह वर्ग अथक परिश्रम करता है जो भी उसे मिलता है वह शराब आदि में गवां देता है । यह वर्ग अनपढ़ एवं अभिशप्त होने के कारण गन्दी गालियां आदि देता है । वस्तुतः यह दोष श्रमिक-वर्ग के अपरिहार्य दोष न होकर उस पूंजीवादी संस्कृति के दोष है, जो श्रमिकों का शोषण कर उन्हें शिक्षा और संस्कृति से वंचित करती है । श्रमिक वर्ग में मिल-मालिकों के प्रति असन्तुष्ट की भावना है । यह वर्ग गन्दी बस्तियों में रहते है । इनके घरों को देख कर हम विश्वास भी नहीं कर पाते हैं कि इतनी बुरी जगह भी कहीं है । कम मजदूरी के कारण यह हमेशा कर्ज के बोझ से दबे रहते हैं । यह वर्ग स्थितिहीन होने के कारण किसान से अधिक लड़ाकू होता है ।

औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिक वर्ग एकत्र होकर रहते हैं, जिसके कारण से संगठित होकर रहते हैं । श्रमिक वर्ग आत्म विश्वासी, तर्कशील और साफ सोचने वाला होता है ।[2] फिर भी इनमें सांस्कृतिक पिछड़ापन रहता है । इनमें जाति और समुदायगत विभेद भी पाये जाते हैं । धार्मिक और विश्वासी होता है । इस वर्ग में जीवन के प्रति भाग्यवादी दृष्टि होने के कारण निष्क्रिय होकर कार्य करने की

---

1. हिन्दी कहानी : चरित्र चित्रण का विकास : उषा गोयल :पृ.258.
2. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि : ए.आर.देसाई:पृ.166

इसका चरित्र कमजोर होता है। पैसों के लिये यह वर्ग दूषित से दूषित कार्य करने से पीछे भी नहीं हिचकते। यह वर्ग अपनी बहू-बेटियों के शरीर का भी विक्रय करते हैं। इस वर्ग में विभिन्न कुरीतियाँ व्याप्त है। किन्तु अब इस वर्ग में जागृति आई है। यह वर्ग शुरू से ही स्वतंत्र समाजवादी भारत का सपना साकार करना चाहता है।

इस तरह विभिन्न वर्गों के अपने स्वभाव एवं चरित्र अलग होते हैं। जो अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः प्रत्येक अतः समूह का पात्र अपनी निजता में सिमट रहकर भी अपने समूह से रागात्मक संबंधों से जुड़ा होता है और वे पात्र जहाँ अपने समूह के लिए सब कुछ करने को तैयार होते हैं दूसरे समूहों के कार्यों, संस्कृतियों, आदर्शों पद्धतियों आदि से टकराते हैं।[1]

5.3 साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग-दृष्टि

व्यक्ति की वर्ग दृष्टि उसकी वर्ग चेतना से निर्धारित होती है, और उसकी वर्ग चेतना उस वर्ग विशेष के संस्कारों, प्रवृत्तियों, विचारों और जीवन शैली से निर्मित होती है। वर्ग चेतना वस्तुतः "एक वर्ग के सदस्यों के बीच एक दूसरे के लिये समान भाव और चेतना अर्थात्, यह विश्वास की एक वर्ग के सभी सदस्य एक दूसरे से समानता या बराबरी के स्तर पर मिल सकते हैं और उनकी व्यवहार प्रणाली मेल खाती हो, दूसरा यह कि अपने स्तर से नीचे के स्तर के प्रति उच्चता का भाव-बोध इन तीन प्रकार के संबंधों पर ही वर्ग चेतना निर्भर करती है। इनके अभाव में वर्ग चेतना पूरी तरह स्फुटित नहीं हो सकती।"[2] वर्ग चेतना की यह व्याख्या समाज शास्त्री है - सदस्य एक समान जीवन शैली और जीवन स्तर से बन्धे रहते हैं। यही वर्ग चेतना व्यक्ति की वर्ग दृष्टि को अनुशासित करती है। एक व्यक्ति के रूप में साहित्यकार इस वर्ग दृष्टि से बंधा होता है। मुक्तिबोध ने स्पष्ट लिखा है "कला यद्यपि व्यक्तिगत आधार पर होती है किन्तु उसकी चेतना

---

1. साहित्य : अध्ययन की दृष्टियाँ : समाजशास्त्रीय काव्य दृष्टि : रामदरश मिश्र : पृ. 24.
2. समाजशास्त्र के मूल तत्व : पृ. 230.

उस वर्ग में समाहित तथा उससे विकसित है जिसके भीतर रह कर कलाकार ने अपने अनुभव प्राप्त किये हैं।"1" इस प्रकार कलाकार की वर्ग दृष्टि स्वभावतः अपने वर्ग के जीवन स्तर, जीवन पद्धति और मूल्य-दृष्टि से अनुशासित होती है। इस प्रकार एक वर्ग विभक्त समाज में कलाकार की मानसिकता और उसके अनुभव उसकी रचना भी वर्गीय संस्कारों से बद्ध होती है।

वर्ग दृष्टि का यह शासन अवांछित या हानिकारक नहीं है। लेखक को उस जीवन का यथार्थ प्रकट करना ही चाहिये जिसमें कि वह रहता है। किन्तु उसे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उसका लेखन केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं है। बल्कि यह एक सामाजिक सांस्कृतिक कर्म है। इसी कारण उसे सतर्क रहना पड़ता है कि उसके समाज में वर्गों का विभाजन कहीं उसकी चेतना का विभाजन न बन जाये। इसीलिये हर संवेदनशील लेखक अपने लेखन के विकास में "डी" क्लास होने के लिये संघर्ष करता है। वह मात्र वर्गबद्ध प्राणी नहीं रहना चाहता बल्कि वर्गातिक्रमण करने की चेष्टा करता है।

हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर महिला-उपन्यासकारों में आये मूल्यभावों का सम्यक विश्लेषण करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि यह महिला उपन्यासकार स्वयं किस वर्ग से जुड़ी है और इनकी रचना दृष्टि उनके वर्ग की दृष्टि से अनुशासित है। स्त्री की मानसिकता के संरचनात्मक और ऐतिहासिक विकास क्रम में हम देख चुके हैं कि सभ्यता के विकास में स्त्री की वर्ग स्थिति कभी निश्चित नहीं हो पायी। शोषक के पक्ष में उसका स्थान हमेशा शोषितों के साथ ही रहा। स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकार के लेखन में वर्ग दृष्टि और वर्ग चेतना की [illegible] सीमायें सुस्पष्ट न दिखाई देने का कारण नारी मात्र का यह लम्बा इतिहास रहा है फिर भी इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि इन महिला उपन्यासकारों में प्रमुखतः मध्यवर्गीय जीवन मूल्य और मध्यवर्गीय मानसिकता ही अभिव्यक्त हुई है। ये चर्चित उपन्यासकार

- - - - - - - - - -

1. मुक्तिबोध ग्रन्थावली : भाग 5.

लगभग सभी मध्यवर्ग से ही है, और उनमें यदि कहीं कोई अपवाद मिलता है तो सिर्फ ग्रामीण और कुछ मध्यवर्गीय स्थितियों से सम्बन्धित है । मध्यवर्ग की सीमा को तोड़कर निम्नवर्ग से जोड़ने का साहस एकाध ने ही किया है, और उनमें भी उनकी वर्ग सीमा ऐसा करने में बाधक बन जाती है । जैसे मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, पद्मा त्रिवेदी आदि कथाकार । शशिप्रभा शास्त्री ने इसीलिये ईमानदारी से अपनी वर्ग सीमा को स्वीकार करते हुये लिखा है । "बहुत साफ कहूँ तो मध्यवर्ग ही मेरा कार्य और विचार का क्षेत्र है, मैं इससे बहुत गहरी सम्बन्ध हूँ, खूब परिचित हूँ इसीलिये इसकी पर्तों को सहज ही मैंने अधिक उकेरा भी है । यूँ अभिजात्य वर्ग के खोखलेपन और बनावटीपन जीवन पर भी मैंने लिखा है लेकिन सिर्फ फैशन या गिनती पूरी करने के लिए लिखना मुझे कभी रुचा नहीं यही समझ लें मैं बहुत अर्थों में वही लिखती हूँ जो मैंने खुद जिया है भोगा है ।"[1] शशिप्रभा शास्त्री की स्थिति लगभग सभी महिला उपन्यासकारों की स्थिति है और यही उनकी सीमा भी है ।

किन्तु महिला उपन्यासकारों की यह वर्ग सीमा ही उनकी क्षमताएँ बन गयी है । इनमें से अधिकांश महिला उपन्यासकारों ने अपने वर्ग के जीवन को उसकी अच्छाईयों बुराइयों को और उसकी विडम्बनाओं को बहुत गहरे पैठ कर समझा है, और संवेदना के स्तर पर उसे महसूस किया है । इन उपन्यासकारों ने अपने वर्ग के मूल्यों और मानदण्डों को विरासत में प्राप्त तो किया है लेकिन कहीं-कहीं उन्हें अतिक्रमण करने की भी बेबाक चेष्टा की है । इन उपन्यासकारों में अपनी वर्ग स्थिति के प्रति दो प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है । एक सहानुभूति का और दूसरा क्षोभ का । उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, शशिप्रभा शास्त्री, आदि कई कथाकार अपने वर्ग की जीवन स्थितियों के सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करते हैं । वहीं ममता कालिया जैसी लेखिकाओं ने उसके प्रति क्षोभ का रुख अपनाया है । तीसरी ओर मृदुला गर्ग, निरुपमा सेवती जैसी लेखिकायें हैं जिनकी वर्ग दृष्टि बड़ी भ्रामक और

- -

1. आजकल (पत्रिका) : पृ. 1981 : कथा लेखिका शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 19.

आरोपित दिखाई देती है । यह एक तरह से उस मध्यवर्ग की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी वर्गीय स्थिति से संतुष्ट नहीं है, और उच्चवर्ग जिसका आदर्श और सपना है । फल यह होता है कि न तो वे अपने वर्ग का यथार्थ चित्रण कर पाती है और न ही उच्च वर्ग के मूल्यों और प्रतिमानों को आत्मसात कर पाती है ।

5·4 पुरुष पात्रों का वर्गगत विश्लेषण

हर एक वर्ग की अपनी-अपनी निजी विशेषतायें होती है । उच्चवर्ग को अपने ऐश्वर्य एवं वैभव का गर्व है वह निम्न वर्ग की मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ है । और मध्यवर्ग है, जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी कारणों से दूसरे वर्गों से भिन्न है ।[1] साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों इन तीनों वर्गों [उच्च, मध्य, निम्न] के पुरुष पात्रों का उनकी वर्गीय प्रवृत्ति एवं संस्कारों और भावना के आधार पर वर्गगत विश्लेषण किया है, क्योंकि इन प्रवृत्तियों संस्कारों एवं भावनाओं के आधार पर ही उनका विशिष्ट वर्ग बनता है । अतः साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में तीनों वर्गों के पात्र है । इसी आधार पर हम उनके पुरुष पात्रों का वर्गगत विश्लेषण करेंगे ।

5·4·1 साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उच्चवर्गीय पुरुषपात्र

यह माना जाता है कि महिला उपन्यासकारों का रचना संसार सीमित है । यह बात निराधार है क्योंकि छठे दशक तक आते-आते महिला उपन्यासकारों ने उत्तरोत्तर प्रगति की है । उनका अपना क्षेत्र सीमित न होकर अपरिमित हो गया है । क्योंकि न केवल अपने वर्ग से सम्बन्धित [मध्यवर्ग] पुरुष पात्रों का निरूपण किया है बल्कि उच्च वर्ग और निम्न के पुरुष पात्रों का चित्रण सफलतापूर्वक किया है । एक-आध महिला उपन्यासकारों को छोड़कर सभी मध्यवर्ग से सम्बन्धित है।

1· हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग : मंजुलता सिंह : पृ·4·

उच्च वर्ग के पुरुष हृदयहीन होते हैं वह अहं की भावना और कुलीनता की भावना में ही डूबे रहते हैं । पैसा और वर्ग का अहं इनकी नस-नस में रहता है । यह वर्ग अपने से साधारण वर्ग से मिलना पसन्द नहीं करता है । "एक इंच मुस्कान" के किशोर में उच्चवर्गीय अहं भावना कूट-कूट कर भरी हुई है । "पैसा और वर्ग का अहं उसकी नस-नस में भरा है सिनेमा, पार्टी, नाच, डिनर, पीना पिलाना ये सब उसके व्यक्तित्व का एक बहुत बड़ा भाग बन चुके हैं ।"[1] उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि अमला साधारण वर्ग के व्यक्तियों से मेलजोल करे । वह अमला से कहता है " तुम साहित्य में रुचि रखती हो पढ़ती लिखती हो, घूमती फिरती हो - इनमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर हर किसी के साथ आवश्यकता से अधिक घनिष्ठ हो जाओ, सबसे बराबरी का व्यवहार करो, साधारण से आदमी को अपना आत्मीय बना लो यह सब तुम्हें शोभा नहीं देता ।"[2] "निर्धनता का अभिशाप" के जमीन्दार कैलाशनाथ को भी यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि उनका बेटा मोहन एक अध्यापक की बेटी से प्रेम करे । चाहे वह प्रेम सात्विक ही क्यों न हो, चाहे वे खुद ही सुरा पान क्यों न करें । पर वे दूसरों को वैसा करने से रोकते हैं । "कैसा स्वार्थी है मानव । जिन अनुचित भावनाओं को पचास वर्ष की अवस्था में स्वयं नहीं दबा सकता, और संयम नहीं रख सकता, पर उन्हीं भावनाओं से प्रेरित जब युवक अपनी तरुणावस्था में कुछ करना चाहता है, चाहे इन तरुणों की भावनाएं शुद्ध तथा पावन प्रेम की ज्योतिर्मय ही क्यों न हो । गीता की तरह निर्मल स्नेह भी उनका अनुचित समझा जाता है ।"[3] अपनी वर्गीय अहं भावना के कारण वह अपने बेटे मोहन को घर से निकाल देता है । जमीन्दार कैलाशनाथ को अपने बेटे से ज्यादा अपनी कुलीनता का दम्भ है ।

---

1. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी : पृ.89.
2. -वही- -वही- -वही-
3. निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तागड़ी : पृ. 133.

यह उच्च वर्ग अपनी पत्नी की भावनाओं और आकांक्षाओं को नहीं समझता है । यह वर्ग नहीं चाहता है कि पत्नी के व्यक्तित्व में विकास हो । " प्रेम कहानी" उपन्यास में रत्ना का पति एक व्यापारी है । अपनी पत्नी के प्रति उसमें कोई भावनाएँ नहीं हैं । पत्नी के प्रति उसका जो कर्तव्य है, उसका पालन उसने कभी नहीं किया । "उनके दिमाग में जाने कितने खाते बने हैं, हर समय भाग दौड़, हिसाब किताब । जब तक एक भी खाते का हिसाब बकाया हो, मजाल है कि वह आदमी आराम कर लें । अनुबन्धों से फुरसत मिले तो बीवियों पर ध्यान दें ।"[1] उच्च वर्ग के पुरुष अपनी पत्नी को सती-सावित्री के रूप में देखना नहीं चाहता है, वह चाहता है कि उसकी पत्नी में वेश्याओं की तरह ही नाज नखरे चाहिये । " अमलतास" उपन्यास का हरदेवलाल भी इसी प्रकार का पुरुष पात्र है । वह अपनी पत्नी कामदा से कहता है कि " कामदा तुम्हारा यह सौन्दर्य तो बिल्कुल उम्रकैद की तरह है ।"[1]

इस वर्ग के पुरुष पात्र पत्नी के साथ-साथ बड़ी आसानी से अन्य स्त्रियों से भी सम्बन्ध रखते हैं । शिवानी के उपन्यास "चौदह फेरे" का कर्नल अपनी पत्नी के अलावा भी दूसरी स्त्री की ओर आकर्षित होता है । उसकी पत्नी का सिर्फ इतना ही दोष था कि वह अनपढ़ थी । उसकी उच्च सोसायटी में भाग नहीं ले सकती थी, वह मल्लिका की ओर आकर्षित होता है, क्योंकि वह आधुनिक विचारों की स्त्री थी । उसके साथ नाच-गाना एवं उच्च सोसायटी में भी भाग ले सकती थी ।[2] "उसकी पंचवटी" उपन्यास का विक्रम भी साक्षी से प्रेम करने लगता है । वह साक्षी से कहता है कि "साक्षी मैं सच ही तुम्हें बहुत पसन्द करता हूँ बहुत । तुम में सब कुछ वह है जो मुझे अपने लिए चाहता था । मीरा मुझे क्या दे सकती है । मैं तुमसे कुछ नहीं माँगता तुम्हें चाहते रहने का अधिकार माँगता हूँ ।[3]

- -

1. अमलतास : शशिप्रभा शास्त्री : पृ.58.
2. चौदह फेरे : शिवानी
3. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ. 45.

उच्चवर्गीय पुरुष पात्रों में मानवीय गुणों तथा संवेदनाओं का कोई अर्थ नहीं होता है । वे पैसे के लोभी होते हैं । वे आदमी से ज्यादा कीमत पैसे को मानते हैं । पैसों को मानवीय संवेदनाओं से अधिक महत्व देते हैं । ये उच्चवर्गीय पुरुष पात्र भ्रष्ट बेईमान के साथ-साथ विलासी भी होते हैं, तथा नारी को विलास का साधन भी मानते हैं । "प्रिया" उपन्यास का यशवन्त छबीला विलासी उच्चवर्गीय पुरुष पात्र है । जो समाज के सामने दिखाने के रूप में " सौदामिनी" से आर्य समाजी रीति के साथ विवाह किया... अर्थात एक अनाथ कन्या का उद्धार किया ... वे समाज की, संसार की दृष्टि में बहुत ऊँचे उठ गए । लोगों ने कहा, यशवन्तजी ने लोकापवाद की परवाह न कर एक साधारण कन्या का उद्धार किया है ।[1] परन्तु बाद में यही पुरुष अपनी ही पत्नी को दूसरे पुरुष के हवाले करता है ।[2] इतना ही नहीं यह उच्चवर्गीय पुरुष पैसों की खातिर अपनी ही पुत्री को अपने ही उम्र के मित्र के बेटे के पास भेजता है, जो उसका सतीत्व हरण कर अमेरिका चला जाता है । बाद में यही पिता अपनी पुत्री को एबार्शन के लिए बाहर भिजवाता है ।[3] पैसों की खातिर "रति-विलाप" उपन्यास में अनुसूया के मामा अनुसूया का विवाह 'करसन दास भीखोदास कापाड़िया' के विक्षिप्त बेटे से करा देता है, ताकि अनुसूया को पूरी जायदाद भी मिल जाय ।[4]

अनेक स्त्रियों से यौन सम्बन्ध स्थापित करना उच्चवर्गीय पुरुष पात्रों की सामान्य प्रवृत्ति है । उन्हें अपनी कामेच्छा को दमन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उनके लिये सामाजिक और आर्थिक मार्ग खुले रहते हैं । "एक और बात" उपन्यास का प्रीतम एक विलासी पुरुष है । वह अपने गांव की लड़कियों से जबरदस्ती यौन सम्बन्ध

---

1. प्रिया : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 115.
2. प्रिया : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 117.
3. प्रिया : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 129.
4. रति-विलाप : शिवानी : पृ.

स्थापित करता है । वह स्वयं कहता है कि " पुराण से कोई टक्कर नहीं ले पाया है, आगे भी नहीं ले पाएगा । बड़े-बड़े हाकिमों से पहिचान है, मिनिस्टरों तक पहुँच है, चुनाव के दिनों ढेरों वोट मेरी मुट्ठी में रहते हैं ... चुटकी में थानेदारों का तबादला करवा देता हूँ, ये छोकरियाँ किस खेत की मूली है, ज़रा चीं-चपड़ की तो गरदन दबा दो ।[1] " मेरा मन वनवास दिया सा" के उपन्यास में चन्दू का पति उच्चवर्गीय समस्त दुर्गुणों से युक्त है । वह शराबी एवं वेश्यागामी है तथा स्त्रियों से वह यौन सम्बन्ध भी रखता है । फिर भी समाज में उसकी प्रतिष्ठा है । क्योंकि वह एक उच्चवर्गीय कांग्रेसी नेता का बेटा है ।[2] इसके अलावा " सूखी नदी का पुल" का शैलेश भी इसी उच्च वर्गीय भावना से युक्त है । अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए वह अपने ही घर की नौकरानी के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है । जितनी भी उक्त वर्ग की मनोवृत्तियाँ है । वह सारी की सारी शैलेश में है । अपने उच्चवर्गीय अहं से युक्त रहने के कारण वह यह नहीं पसन्द करता है कि उसकी पत्नी स्वेच्छा से रहे, सिगरेट आदि पिये, चाहे वह स्वयं ही सिगरेट, शराब क्यों न पिता हो । अन्त में अपनी इसी अहं भावना के कारण वह अपनी पत्नी को छोड़ देता है ।[3]

इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग के कुछ पुरुष गलत राहों द्वारा धन कमाते हैं, एवं धन संग्रह की ही धुन में लगे रहते हैं । भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, तस्करी आदि में ही लगे रहते हैं । यह वर्ग अफसरों तथा सरकारी तंत्र को अपने हित के लिये खरीद लेते हैं और अपनी इच्छानुसार उन्हें जैसा चाहे वैसा नचाते हैं । ये चीजों का कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर महँगाई बढ़ाते हैं । " एक और बात" उपन्यास का सेठ धूमीलाल एक ऐसा ही उच्चवर्गीय पुरुष है । जिसने बड़े-बड़े गोदाम बनाएँ हैं तथा जिसमें वह अनाज आदि छुपाये हुये है । "सेठ

1. एक और बात : शान्ति जोशी : पृ. 21.
2. मेरा मन वनवास दिया सा : शान्ति जोशी
3. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा

घुग्गीलाल ने बड़े-बड़े गोदाम बनवाए हैं, सीमेन्ट के गोदाम पक्के। चारों ओर बगीचा कटहल, बेल, आम, अमरूद, नींबू, आंवला, महुआ आदि के बड़े बड़े पेड़ों से छिपे हुए गोदाम और इन गोदामों में कुछ भी छिपे हो सकता है। और बड़े-बड़े नेताओं, मिनिस्टरों, यहां तक कि प्रधानमन्त्री की चापलूसीगिरी करने वाले त्यागी सेठ जी। देश की जरूरत पड़ने पर वे कानूनों के ठेके देश के अधिकारियों के पैरों पर रख देते हैं। उनकी ट्रकें-जीपें, मोटर केवल रात को ही सामान ढोती है और इस ढोने में पकड़े जाने का कोई भय नहीं रहता सबकी मिली-जुली भगत।"1" "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का प्रमुख पात्र उच्चवर्गीय "हरिश्चन्द्र मेहता" एक ऐसा उद्योगपति है जो अनेक धन्धों को करता है। जायज और नाजायज दोनों तरीकों से धन कमाते हैं। यही नहीं वह कम्पनी में दवाएं आदि बनाकर बाहर भेजते हैं। इस प्रकार वह अनेक रूप से धन अर्जित करता है, और अपनेवर्ग की नारी वाले नीलकान्त को सिखा देता है। वह नीलकान्त से कहता है " जब हम लाखों का धन्धा कर रहे हैं तो लाखों का कोई रस हमें भी तो मिलना चाहिए "कहना भूखे भजन न होय गोपाला।" 2" मन्नू-भण्डारी के उपन्यास " महाभोज" का जोरावर भी एक ऐसा उच्चवर्गीय पुरुष है जो अपने पैसों के बल से ही पहलवानों को अपना हथियार बनाकर चमार टोले की आगजनी और बिसू की हत्या जैसी जघन्य घटनाओं के बाद भी गांव वालों का मुंह बंद कर देता है और दूसरी ओर अपने स्वार्थ कुकर्मों को भी छुपा करता है। "इस पूरे सरोहा का बेताज बादशाह···· बाप की सिफारिश उसके सिर चढ़कर हो बोलती थी।"3" जब कुकर्मों का हाथ उसके सिर पर हो तब उसे क्या चिन्ता। इसलिये हत्या जैसे जघन्य अपराध करके भी इस वर्ग के लोग आसानी से छूट जाते हैं। पैसों के बल पर यह वर्ग कुछ भी

- -

1· एक और बात : शान्ति जोशी : पृ· 21·

2· प्रतिध्वनियां : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ· 35·

3· महाभोज : मन्नू भण्डारी : पृ·

कर सकते हैं यहां तक कि सरकार को भी अपने में मिला लेते हैं ।

यह वर्ग चाहे कितना ही आधुनिक एवं पाश्चात्य संस्कृति का पोषक हो, चाहे अपने पुत्र और पुत्रियों को आधुनिक शिक्षा प्रदान करता हो । जैसे ही अपने संतानों के विवाह का प्रश्न आता है तो यह वर्ग अपनी वर्गीय दम्भ के कारण उनके विवाह की सम्मति भी लेना आवश्यक नहीं समझता है । "चौदह फेरे" उपन्यास का कर्नल भी इसी प्रकार का है । वह अहिल्या को आधुनिक शिक्षा प्रदान करता है, उसे स्वच्छ वातावरण में विचरण करने देता है, परन्तु जब अहिल्या के विवाह का प्रश्न आता है तब वह अपने ही वर्ग के व्यक्ति से अहिल्या का विवाह निश्चित करता है । यही कर्नल जो आधुनिक विचारों का पोषक है । अहिल्या के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को नकारता है । यहाँ तक कि उसने एक बार भी इस सम्बन्ध में सम्मति लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं की ।[1]

उच्च वर्ग हर क्षेत्र में अपनी ही विजय चाहता है, चाहे वह विजय उसे उचित-अनुचित किसी भी तरह से मिले । इस विजय के लिये वह अपने आत्मिक संबंधों की तिलांजली भी दे सकता है । "प्रतिध्वनियां" उपन्यास का पुरुष नीलकान्त मेहता इसी प्रकार का है । अपने यश और वैभव की खातिर उसने प्रेम, कोमलता का प्रतीक रूपसी सुधा के स्थान पर भौतिक धन की तौल सकना को चुना।जो उसे वैभव एवं यश दोनों दे सकती थी । यहाँ तक कि शहर का मेयर बनने के लिये अपने ही प्रतिद्वन्द्वि सेठ मनमोहन राय को हटाने के लिये अपनी ही बेटी को मोहरा बना दिया । श्री मनमोहन राय जीवन भर मेरे सिर दर्द, मेरे प्रतिद्वन्द्वी रह आएंगे ।... और मैं भी कब तक शतरंज की और चालों से उनसे जीतता रहूँगा..जब तक कि मैं " यह शह और वह मात ! की यह अकाट्य चाल ही नहीं चल देता ... ![2] राजा राजमोहन की शतरंज को एक अचूक मात देने का एक ही मोहरा निश्चित सा तो मेरे हाथ में था - मेरी बेटी रागिनी . . ।[3]

---

1. चौदह फेरे : शिवानी : पृ.
2. प्रतिध्वनियां : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 10.
3. -वही- -वही- : पृ.95.

यह उच्च वर्ग के पुरुष पात्र न तो रूढ़ियों को तोड़ पा रहा है न ही आधुनिक विचारों से युक्त युवा वर्ग के विचारों को अपना रहा है । जिससे दोनों में विरोध हो रहा है । "सोनाली दी" उपन्यास के जीवनदास और उनकी पुत्री रानू के विचारों में अन्तर था । जहाँ रानू स्वतंत्र विचारों की थी, वह क्लबों आदि में जाती थी । लड़कों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करती थी, वहीं जीवनदास को यह सब बिल्कुल पसन्द नहीं था । जिससे दोनों में विरोध होता था ।[1] "एक और बात" में अमित और उसके पिता के विचारों में समानता नहीं है । जहाँ उसके पिता अभिजात्य प्रवृत्ति के पोषक है, वहीं अमित उस प्रवृत्ति से बिल्कुल अछूता है । उसमें वर्गगत अहं नाम को नहीं है । वह अपने पिता के अवैध कारनामों की निंदा करता था ।[2] "मिट्टी के देव" उपन्यास का " युगकिशोर" उच्चवर्गीय है, वह सुधारवादी है । परन्तु उसकी कथनी और करनी में अन्तर है । उसकी पुत्री नीना आचार्य भिक्षु से प्रेम करती है । पहले तो वह इस विवाह से इन्कार करता है, परन्तु जब मालूम होता है कि सेठ छक्कूराम उसे अपना बेटा मानते है तो वह विवाह के लिये तैयार हो जाता है । क्योंकि छक्कूराम की सारी सम्पत्ति उसे मिल जाएगी । विवाह के समय जब मालूम होता है कि आचार्य भिक्षु एक हरिजन का पुत्र है तो उसकी सारी सुधारवादी धारणायें धरी की धरी रह जाती है । और इस विवाह को करने से इन्कार कर देता है । पर उसकी पुत्री अपने पिता की बातों का विरोध कर आचार्य भिक्षु से विवाह कर लेती है ।[3]

उच्च वर्ग में अनमेल विवाह भी पाया जाता है । इस वर्ग के पुरुष आसानी से अपने से कम उम्र की लड़की से विवाह कर लेते हैं । "कहोगी नहीं राधिका" उपन्यास में राधिका के पिता उच्चवर्गीय प्रवृत्तियों के पोषक है । इन्हीं प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर वे

---

1. सोनाली दी : रजनी पनिकर :
2. एक और बात : शान्ति जोशी :
3. मिट्टी के देव : पद्मा त्रिवेदी :

वृद्धावस्था में विवाह करते हैं किन्तु वृद्धावस्था का यह अमेल विवाह उनकी पुत्री राधिका के मानसिक संतुलन को बिगाड़ देता है । उसे पिता का प्यार खोता हुआ दृष्टिगत् होता है - " वह जान रही थी कि अब कभी भी कुछ पहले जैसा नहीं हो पाएगा । उसे बार-बार आश्चर्य होता है कि पापा को विवाह की बात सूझी कैसे ! कम से कम बीस वर्ष तो बड़े होंगे ही विद्या से, और विद्या भी यह जानते हुए कि पापा की दो बड़ी-बड़ी सन्तानें हैं इस विवाह पर ...।[1]
इसी मानसिक रूप से राधिका इतनी कुंठाग्रस्त हो जाती है कि वह पितृ-गृह छोड़कर विदेश चली जाती है । बाद में उनका यह विवाह भी सफल नहीं हो पाता है और विद्या आत्महत्या कर लेती है ।
"सोनाली दी" उपन्यास के जीवनदास भी अपने से कम उम्र की आयु सोनाली की ओर आकर्षित होते हैं, उससे प्रेम करते हैं ।[2] "रति-विलाप" उपन्यास का करसन दास भोगीदास कापड़िया वृद्ध होते हुए भी अभिजात्य प्रवृत्ति के कारण अपनी ही बहू की नौकरानी होरा की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उसके साथ घर से भाग जाते हैं । बाद में वही नौकरानी होरा उनके सारे पैसे लेकर उनकी हत्या करके भाग जाती है ।[3] "सूखी नदी का पुल" उपन्यास के योगेश चन्द्रजी अपने से कम आयु की लड़की से विवाह करते हैं । दोनों में प्रेमविवाह होता है । परन्तु दोनों के विचारों में अन्तर रहता है । क्योंकि योगेश चन्द्र की मनोवृत्ति अभिजात्य मनोवृत्ति की थी । इसी मनोवृत्ति के कारण से अपनी पत्नी पर सन्देह करते हैं और अन्य स्त्रियों से भी सम्बन्ध रखते हैं ।[4]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उच्चवर्गीय राजनेताओं का भी यथार्थ रूप से चित्रांकन किया है । यह राजनेता ऊपर से तो

- -

1. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा : पृ. 54-55.
2. सोनाली दी : रजनी पनिकर :
3. रति विलाप : शिवानी : पृ.
4. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा :

सत्ता पक्ष सभी राष्ट्र हितैषी दिखते है । परन्तु अन्दर से वे शैतान होते हैं । जो अपने स्वार्थ के कारण म कुछ भी कर सकते हैं । "महाभोज" उपन्यास में " दा साहब" ऐसे ही वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । दा साहब ऊपर से तो सन्त दिखते हैं, गीता हमेशा अपने साथ रखते हैं परन्तु उनके चेहरे के पीछे एक नहीं अनेक चेहरे हैं, एक पर एक चढ़ाये रहते हैं । जिसके नीचे उनकी शैतानियत छुप कर बैठती है । दा साहब की श्रेष्ठता का यही राज है । वे अपनी सभी शक्ति और पद का पूरा फायदा उठाते हैं । उनकी रग रग में राजनीतिक चतुराई और कुटिलता भरी हुई है । वे लखन जैसे मामूली आदमी को सुकुल बाबू जैसे राजनीतिज्ञ के विरोध में खड़ा करते है । दा साहब उस वर्ग के प्रतिनिधि है जो अपनी दूरदृष्टि के द्वारा भावी घटनाओं को समझकर शतरंज की चाल की तरह एक-एक मोहरा सही जगह बिठाते हैं । "मशाल" के संपादक को प्रलोभन देकर अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं । अपने विरोधियों को कुचल देते हैं । राजनेता कितने बड़े नाटककार हो सकते है । यह दा साहब के चरित्र द्वारा जाना जा सकता है । गांव में घटी घटनाओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए घरेलु उद्योग योजना शुरू करते है । जनता का दिल जीतने के लिये उन्हीं के गांव के युवक से उद्घाटन करवाते हैं ।[1] सुकुल बाबू भी इसी प्रकार के राजनेता है परन्तु उन्हें दा साहब से मुंह की खानी पड़ती है । बासठ वर्ष की आयु होने पर भी वह राजनीति में जुटे हुये हैं । उनकी राजनीतिक वक्र दृष्टि आस-पास की घटनाओं पर ही जमी रहती है । जब बिसू की मौत होती है तो उन्हें ऐसा लगता है जैसे थाली में परस कर मौका हाथ आ गया । वे इसे हथियार बनाकर अपनी हार को जीत में बदलना चाहते हैं । यह ऐसे वर्ग के राजनेता है जिन्हें गरीबों से हमदर्दी नहीं है बल्कि अपने स्वार्थ के कारण उनसे हमदर्दी करते हैं ।[2] " अनित्य" उपन्यास के मुखर्जी जो उद्योग मंत्री है

1\. महाभोज : मन्नू भण्डारी :

2\. महाभोज : मन्नू भण्डारी :

उस वर्ग के मन्त्री का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्होंने आजादी की लड़ाई में कभी हिस्सा नहीं लिया हो और बाद में मन्त्री बन जाते हैं । यह मन्त्री ऐसा ढोंग करते हैं कि जैसे इन्होंने आजादी की लड़ाई लड़ी है । "अलग लगे बुर्राक झक्क धोती में ईरानी कालीन पर बिछी सफेद चाँदनी पर मसनद का सहारा लिये बैठा आदमी, बेहद शालीन और सुलझा हुआ आदमी लग रहा था ।[1] यह मन्त्री किसी का भी काम करने के लिये तगड़ी रकम लेता है । दिखने में तो यह सिर्फ शालीन और सुलझा हुआ है । "उद्योग मन्त्री मुखर्जी कोई छोटी -चीज तो है नहीं... । बस रकम तगड़ी लेंगे ।[2]

"सुरंगमा" उपन्यास का मन्त्री दिनकर आधुनिक युग के मन्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । वह मानवीय दुर्बलताओं से युक्त है । अपनी प्रतिष्ठा की खातिर वह अपनी पहली पत्नी जो अनपढ़ है उसे छोड़ देता है । अपनी दूसरी पत्नी के होते हुये भी वह सुरंगमा के रूप सौन्दर्य पर आसक्त हो जाता है । पर बाद में अपने पद और प्रतिष्ठा के भय से उसे छोड़ देता है ।[3] इस प्रकार साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने लोगों के संरक्षक और राष्ट्र के कर्णधार सत्ताधारी नेता जन साधारण की प्रगति की उपेक्षा करते हुये अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में निमग्न तथा वैयक्तिक हित की परिधि में सिमट कर जन-मानस को निरंकुश किये हुये ऐसे लोकोपकारकता का ढोंग करने वाले एवं कलुषाभ्यस्त राजनेताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पुरुषों का यथार्थ चित्रांकन किया है । "मेरा मन वनवास दिया सा" उपन्यास में चन्दू के ठाकुर एक ऐसे काँग्रेसी नेता हैं जो समाज सेवा का ढोंग करते हैं । समाज को दिखाने के लिये अपने एकमात्र पुत्र का विवाह एक निर्धन घर की लड़की से करते हैं । पर घर में उसी बहू से एक नौकरानी के समान बर्ताव करते हैं । इस प्रकार यह ऐसे काँग्रेसी नेता है, जिनमें

---

1. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ. 173.
2. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ. 95.
3. सुरंगमा : शिवानी : पृ. 199.
4.

कथनी और करनी में अन्तर है ।[1]

उच्च वर्ग के पुरुष कन्या की अपेक्षा पुत्र को महत्व देते हैं । वे वंश को चलाने के लिये पुत्र का होना जरूरी मानते हैं । "मेरे सन्धि पत्र" उपन्यास में रायजादा भी इसी प्रवृत्ति के पोषक हैं । इन्हें दुःख है कि इनके कोई पुत्र नहीं हुआ । वे बेटियों को पराई समझता है । वंश को चलाने के लिये वह लड़का गोद लेना चाहता है ।"[2]

स्वातंत्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उच्चवर्गीय अवगुणों से युक्त पुरुष पात्रों को ही अपने उपन्यास में स्थान दिया है बल्कि साथ ही उच्च वर्गीय गुणों से युक्त पुरुष पात्रों का भी चित्रण किया है । "बेगाने घर में" उपन्यास के किशोरचन्द एक दयालु एवं सहृदय व्यक्ति है । इनमें घमण्ड नाम को नहीं है । वे अपने कोठी के नौकरों से अच्छा बर्ताव रखते हैं । उनको सम्मान देते हैं, और मरते समय अपनी जायदाद में से नौकरों को भी हिस्सा देते हैं ।[3] "गैंडा" उपन्यास का वैद भी एक सरल हृदय का पुरुष है जिसमें वर्गगत अभिमान का अंश जरा भी नहीं है । वह अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करता है, परन्तु उसकी पत्नी उससे प्रेम नहीं करती है, क्योंकि वह बदसूरत है । वह अपनी पत्नी को पूरी स्वतंत्रता देता है । उसे यह भी ज्ञात है कि उसकी पत्नी के अनैतिक सम्बन्ध रोहिताश्व से है तो भी वह उसे कुछ भी नहीं कहता है । जब उसकी पत्नी की मृत्यु कुछ पाखण्डियों से हो जाती है तो वह बच्चों के समान फूट-फूट कर रोता है ।[4] "अनित्य" उपन्यास का सुरेश भी इसी प्रकार का पुरुष है वह अपनी पत्नी संगीता से प्रेम करता है, परन्तु वह उसके शरीर को तब तक नहीं छूना चाहता जब तक संगीता भी उसे प्यार न करने लगे । "बलात्कार यह करेगा नहीं ; छूना आत्म समर्पण सहेगा नहीं"[5] परन्तु

- -

1. 2. मेरा मन बनवास दिया सा : शान्ति जोशी

3. बेगाने घर में : मंजुल भगत : पृ.

4. गैंडा : शिवानी : पृ.

5. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ. 267.

जब उसकी पत्नी संगीता उसकी सारी दौलत घर में घुस आये क्रान्तिकारियों को देदेती है तो सुरेश यह बर्दाश्त नहीं कर सकता और आत्महत्या कर लेता है ।[1] "एक इंच मुस्कान" उपन्यास में अमला के पिता भी एक सरल हृदय के पुरुष है । वे अपनी परित्यक्ता बेटी की देखभाल करते हैं, और उन्हें उसकी भविष्य की चिन्ता रहती है । वे चाहते हैं कि अमला दुबारा विवाह कर ले । वे अमला को हर प्रकार की सुविधाएं देते हैं ।[2] "मिट्टी के देव" उपन्यास के धनपतराज उच्चवर्ग के हैं किन्तु अभिमान उनमें नहीं है । अथक परिश्रम के द्वारा वह अछूतों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार दिलाते हैं । निर्धनों की देखभाल करते हैं । जग्गू जैसे हरिजन लड़के को अपने लड़के समान मानते हैं ।[3] इसी प्रकार "निर्धनता का अभिशाप" उपन्यास का मोहन उच्चवर्गीय होते हुये भी वह किसानों के दुःख-दर्द को समझता है । दूसरों का दुःख उससे देखा ही नहीं जाता है । यथाशक्ति वह यत्न करता था ग्राम के निर्धन तथा दुर्बल व्यक्तियों की सहायता करने का । जितना पैसा पिता उसे मासिक व्यय के लिये देते थे उसमें से अधिकांश वह पीड़ितों की औषधि के लिये व्यय कर देता था ।[4] वह किसानों को अपने से भिन्न नहीं मानता " उन्हें अपने से भिन्न क्यों समझे ?" ऐसा भी मानता है ।[5]

अतः स्वातन्त्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उच्चवर्गीय पुरुष पात्रों की सम्पूर्ण मनोवृत्ति का उनकी अच्छाइयों और बुराइयों का बड़ी निकटता से परीक्षण किया और उसका सूक्ष्मता से चित्रण किया है ।

5.4.2. स्वातन्त्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों के मध्यवर्गीय पुरुष पात्र

स्वातन्त्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों की लेखनी जितनी मध्यवर्गीय

---

1. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ. 248.
2. एक इंच मुस्कान : मन्नू भण्डारी : राजेन्द्र यादव : पृ.
3. मिट्टी के देव : पद्मा त्रिवेदी
4. निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तागड़ी : पृ. 16.
5. निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तागड़ी : पृ. 49.

पुरुष पात्रों में रमी है उतनी अन्य वर्गों में नहीं । उन्होंने मध्यवर्गीय पुरुषों के स्वभाव एवं चरित्रों के एक-एक रेशे को उधेड़ा है । अपने उपन्यासों में महिला उपन्यासकारों ने इतने मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों को लिया है कि हम उन्हें सुविधा के लिये तीन वर्गों में बाँटते हैं : उच्च-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र, मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र, निम्न मध्यवर्गीय पुरुष पात्र ।

5·4·2·1 (1) उच्च-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उच्च-मध्यवर्गीय पुरुषों के विभिन्न रूपों को अपनी रचनाओं में निरूपित करने का प्रयत्न किया है ।

उच्च-मध्यवर्ग के बड़े-बड़े पदाधिकारी एवं अफसर स्वार्थी, विलासी एवं रिश्वतखोर होते हैं । यह वर्ग खुशामदी पसन्द होता है । सेक्रेटरी आदि से यह अनैतिक सम्बन्ध भी रखता है । "पतझड़ की आवाजें" उपन्यास का चन्द्रकान्त एक उच्च पदाधिकारी है । वह अपने से नीचे काम करने वाली लड़कियों को कुछ दिलासे देकर उनसे अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करता है । वह अनुभा को भी प्रमोशन दिलाने के बहाने उसे दो दिन साथ रहकर पिकनिक मनाने का प्रोग्राम रखता है अनुभा के इन्कार करने पर वह दूसरी लड़की उषा को प्रमोशन दिला देता है जबकि उषा योग्यता में उससे कम थी ।[1] "उस तक" उपन्यास का महीपाल बाबू भी एक कामुक प्रवृत्ति का पुरुष है । "कुसुम अंसल" ने इस उच्च मध्यवर्गीय पुरुष पात्र का वर्णन इस प्रकार किया "महीपाल सिंह, जिनके सिगार से काले हो चुके होंठ और बदबूदार दाँत उनकी आत्मा तक उतरकर उसे दुर्गन्ध से भर गये हैं ...। महीपाल बाबू के चेहरे के चेचक के दाग कीचड़-भरे गड्ढे की तरह लग रहे थे । उनके चेहरे पर पैनी दरारों में कितनी मासूम लड़कियों के सपनों का खून बह रहा था ।"[2] यह अपनी सेक्रेटरी से अनैतिक सम्बन्ध करता

1· पतझड़ की आवाजें : निरुपमा सेवती : पृ·
2· उस तक : कुसुम अंसल : पृ· 30, 57·

है । जब उसका मन भर जाता है तो उस सैक्रेटरी का स्थानांतरण करवा कर अन्य सैक्रेटरी को रखता है । सुधा के साथ भी जी भरकर खेल कर उसका अन्यत्र स्थानांतरण करवा देता है । जिस "सत्यपाल बाबू के इशारे पर वह हरकारे की तरह दुनियाँ के जंगल में भटकी थी, दौड़ी थी आज उन्हीं के निशाने पर घायल होकर ढेर हो गयी है ।"[1]
"उसका घर" उपन्यास का उच्च मध्यवर्गीय पदाधिकारी आहूजा एक उच्च मध्यवर्गीय पदाधिकारी होते हुए एक विलासी प्रवृत्ति का पुरुष है । वह रेशमा से कहता है कि " हर औरत में मुझे अलग तरह का स्वाद मिला ।"[2] इस वर्ग के व्यक्ति ईमानदार एवं परिश्रमी कर्मचारी को उतना महत्व नहीं देते हैं जितना कि रिश्वत देने वाले एवं उनकी खुशामदी करने वाले व्यक्ति को । "बँटता हुआ आदमी" उपन्यास का टोनू भी इसी प्रकार का बास है । "शरदगुप्ता" उसका कर्मचारी है तथा ईमानदार एवं परिश्रमी युवक है । फिर भी वह उसको अपनी अगली फिल्म का एडीटर नहीं बनाता है । वह शरदगुप्ता को साफ कह देता है कि " मैं तो क्या न सेट-अप ही ऐसा है । एक आदमी ही अपने साथ रख सकता हूं ।"[3] उसकी जगह वह पाण्डे को रख लेता है क्योंकि पाण्डे उसकी झूठी प्रशंसा करने वाला व्यक्ति है ।

इस वर्ग के पुरुष अपनी पत्नी को एक खिलौना मात्र ही समझते हैं । उसके व्यक्तित्व के विकास को महत्व नहीं देते हैं । "पतझड़ की आवाज़ें" का सुधांशु कपूर इस उच्च मध्यवर्गीय पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है । वह अपनी पत्नी को मन बहलाने का साधन समझता है, जिसका इस्तेमाल सिर्फ रात में ही करता है । अपनी पत्नी से ज्यादा उसे अपनी इज्जत प्यारी है । "सुधांशु मेरे लिए बाप थे : ना वह मुझे किसी शर्त पर मना कर पास नहीं बनाए रखना चाहते

- -

1. उस तक : कुसुम अंसल : पृ. 58.
2. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज़ : पृ. 64.
3. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : 136.

है, डरते हैं कि उनकी फैमिली में उनकी भद्द उड़ जाएगी और हमारा डायवोर्स ही करा लो"[1] समाज को दिखाने के लिए यह पुरुष झूठा प्यार जताता है ।[2]

भौतिक साधनों की होड़ में यह वर्ग अपने आत्मीय संबंधों की भी उपेक्षा करता है । इस उच्च मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों में एकाधिकार की प्रवृत्ति है । वह बन्धन में बंधकर भी नहीं बन्धना चाहता है । इसमें अहं भावना की पराकाष्ठा रहती है । "कोहरे" उपन्यास का मेजर सिन्हा अपनी पत्नी श्यामा की उपेक्षा करता है । वह कभी कविता चौधरी से बंध जाता है तो कभी मिसेज माथुर से । वह प्रायः ही अपनी पत्नी की हंसी उड़ाते रहता था । तुम्हारे माँ-बाप ने एक ही अक्लमन्दी की जो तुम्हारा नाम श्यामा रखा. .. तुम्हारे रंग-रूप के बिल्कुल लायक । कहीं पूनम या किरण रख देते तो ... श्यामा का अर्थ तो काली औरत होता है जो तुम पर फिट बैठता है ।[3] वह सदा से तने रहते अपने सुदर्शन व्यक्तित्व का, अपने आभिजात्य आकर्षण का पूरा अहसास उनके ओठों से लेकर आँखों तक छाया रहता ।[4] इसी उपन्यास का उच्च मध्यवर्गीय पात्र सुशील अपनी पत्नी पर एकाधिकार रखना चाहता है । सुशील की इसी एकाधिकार प्रवृत्ति को संकेत करते हुये दीप्ति खण्डेलवाल ने कहा है " प्रणय, परिणय और फिर मातृत्व, नैसर्गिक रूप में ही नारी बन्धनों में बंधती रहती है.. प्रकृति से, पुरुष से, देह से, मन से ... बंधनों में और पुरुष बंधकर भी नहीं बंधता ... पर नारी को बांध रखना चाहता है...चाहे लौह पाश हो, चाहे रेशम का ।"[5] परन्तु वह इसे आसानी से तोड़ भी देता है । "चिरतकोवरा" उपन्यास का उच्चमध्यवर्गीय उद्योगपति

- -

1. पतझड़ की आवाज़ें : निरुपमा सेवती : पृ. 160.
2. -वही- -वही- : पृ. 162.
3. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 40-41.
4. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 29.
5. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 24.

मोहरा एक आधुनिक मशीनी सभ्यता का वस्तुनिष्ठ भोग में लिप्तकारी जैसे लगता जचित है । वह अपनी पत्नी मनु से आत्मिक रूप से नहीं जुड़ा है । लेकिन वह उसके शरीर पर अनुरक्त है । वह मनु से कहता है कि अगर समाज में रहने वाले हर पति को अपनी पत्नी से प्यार होगा और हर पत्नी को पति से तो समाज की भला कौन परवाह करेगा ' कचहरी की पत्रिका बन्द हो जाएगी । व्यापार, कारोबार ठप्प हो जाएगी । राजनीति का भट्टा बैठ जाएगा । बड़े-बूढ़े मर मर जाएंगे । सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरे में डूबे रहेंगे और देश रसातल को चला जाएगा । प्यार होने पर और कुछ नहीं सूझता है न ."[1]

उच्च मध्यवर्ग का पुरुष पाश्चात्य संस्कृति का पुजारी होता है । आधुनिक विचारों से प्रभावित हो वह रहन-सहन, वेश-भूषा आदि में भी पाश्चात्य सभ्यता की नकल करता है । इस वर्ग के पुरुष चाहते हैं कि उनकी पत्नी भी उसी रंग में ढल जाये । "कुहा सैलाव" उपन्यास का कैलाश इसी उच्च मध्यवर्गीय प्रवृत्ति का पुरुष है । वह चाहता है कि उसकी पत्नी ममता पाश्चात्य सभ्यता को अपनाये । वह चाहता है कि बाहर के लोग उसकी पत्नी की गर्दन को नजर से देखें । "तुम जब सज धज कर मेरे साथ चला करोगी, तो लोगों के सीनों पर साँप लोटने लगेंगे ।[2]" वह चाहता है कि उसकी पत्नी क्लबों में जाये, दूसरों के साथ डांस करे । उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं कि उसकी पत्नी बच्चे पैदा करे। वह कहता है " कैसी लगती है औरतें । इधर बच्चा, उधर बच्चा ढोती हैं, हौ-हल्ला, चीं-चीं , मैं-मैं सब ममता मुझे बच्चा नहीं चाहिए कभी नहीं -- मुझे केवल तुम ..बस तुम।"[3]

उच्च मध्यवर्ग के कुछ पुरुष ऐसे भी होते हैं जो यह जानकर भी उनकी पत्नी दूसरे पुरुष से प्रेम करती है, तो भी वह उसे कुछ नहीं कहता

---

1. चित्तकोबरा : मृदुला गर्ग : पृ.103.
2. कुहा सैलाव : निर्मला वाजपेयी : पृ. 19.
3. कुहा सैलाव : निर्मला वाजपेयी : पृ 39.

है । " उसके हिस्से की धूप" का जितेन इसी प्रकार का पुरुष है । अपनी आकांक्षाओं के कारण वह अपनी पत्नी मनीषा को ज्यादा समय नहीं दे पाता । जिसके कारण मनीषा उससे दूर होती जाती है और मैं वह मधुकर से विवाह कर लेने का निश्चय कर लेती है । जितेन उसे समझाता है । वह कहता है " किसी भी स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि वह विवाह करे ही करे । तुम जानती हो मैं उतने तंग ख्यालों का आदमी नहीं हूँ । मधुकर और तुम्हारे बीच कुछ भी गुजरा हो तो उसे भुलाया जा सकता है । इसमें तलाक की जरूरत नहीं है ।"1.

उच्च मध्यवर्ग के न्यायशील पाश्चात्य सभ्यता के पोषक होते हैं । वे आपसी वार्तालाप भी अंग्रेजी में ही करते हैं । यह वर्ग बुद्धिजीवी होता है तथा शान-शौकत में रहना पसन्द करता है । "वंशज" उपन्यास के जज शुक्ला अंग्रेजी सभ्यता के पोषक हैं । इनका रहन-सहन पहनावा आदि सभी अंग्रेजी संस्कृति जैसा है । वे चाहते हैं कि उनके पुत्र एवं पुत्री भी उसी सभ्यता में रंगे । "शुक्ला साहब अंग्रेजी अनुशासन के गहरे कायल हैं ।"2. " अपने बेगाने" उपन्यास का सेठ प्रसाद भी पाश्चात्य संस्कृति में रंगा हुआ है । रहन-सहन पहनावा सब अंग्रेजों जैसा है । अपने पुत्र-पुत्रियों एवं बहिनों को वह अंग्रेजी शिक्षा दिलाता है । अपने पुत्र को घर में नहीं रखकर हास्टल में रखता है ताकि घर में माँ के साथ रहकर असभ्य न हो जाये । " मेरे पास रह कर असभ्य न हो जाता वह । इस अंग्रेजियत ने तो हम पुराने लोगों को कहाँ छोड़ा है ।"3. यह वर्ग खून चूसकर रोटी कमाने वाले होते हैं और वे साफ कहते भी हैं कि "और मैं ठहरा वकील जबान से जो कुनैन उगलता हूँ, सब मीठा खाया बराबर कर देती है ।"4.

- -

1. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 135.
2. वंशज : मृदुला गर्ग : पृ. 14.
3. अपने बेगाने : प्रतिमा वर्मा : पृ. 30.
4. वंशज : मृदुला गर्ग : पृ. 208.

उच्च मध्यवर्गीय डाक्टर स्वार्थी एवं धन का लालची रहता है । अपनी शान-शौकत को बनाये रखने के लिये उचित अनुचित ढंग से पैसा कमाता है । जो मरीज जितना ज्यादा धन उसे देता है, उसी की देखभाल वह करता है । "प्रेम कहानी" उपन्यास का प्रोफेसर गुप्ता ऐसे प्रकार का डाक्टर है । वह कपूर को डाक्टरी के गुर बताते हुए कहता है " देखो कपूर, यह है हमारे धन्धे का अच्छा जादू सीख लो, सीख लो, काम आएगा । कम बोलो, ध्यान से सुनो जाँचो, सब पर्चा लिखो, पकड़ा दो ज्यादा से ज्यादा दुकानों से काम चलाओ ।"[1] वह फीस ज्यादा लेता है कम पैसे देने वाले मरीजों को नहीं देखता है । वह उसी कम्पनी की दवाई मरीजों को लिखकर देता है जिससे उसे मुनाफा हो । " उन राहो पर" उपन्यास का डाक्टर अशोक एक ऐसा डाक्टर है जो केवल सुन्दरता का पुजारी है । वह अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है, उसे अपने साथ कहीं भी नहीं ले जाता है क्योंकि वह सुन्दर नहीं है । उसकी दो बेटियाँ है, नीरू और तनु । वह तनु से ज्यादा नीरू से प्रेम करता है क्योंकि वह सुन्दर है उसे बाहर घुमाने ले जाते और तनु को कभी नहीं ले जाते ।[2] "कुमारिकाएं" उपन्यास का डाक्टर हिमांशु उदार दृष्टि का परिचय देकर सुमिता के साथ विवाह तो कर लेता है, परन्तु पुरुष होने के नाते उसकी बेटी को अपना नहीं सका । वह सुमिता की बेटी के गुणों को भी ईर्ष्या के भाव से देखता है । "पूजा की शालीनता और सैलानीकी अकृत्रिम सौन्दर्य से हिमांशु खुश दिखने का प्रयास करता, परन्तु उसके अवचेतन मन में पूजा के गुणों के प्रति ईर्ष्या का भाव हो था ।[3] " कुमारिकाएं" उपन्यास का डाक्टर विनोद उच्च मध्यवर्गीय उन डाक्टर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो नर्स आदि से अनैतिक सम्बन्ध करते हैं, उन्हें अपने झूठे जाल में फँसा कर बाद में उन

---

1. प्रेम कहानी : ममता कालिया : पृ॰ 61.
2. उन राहों पर : प्रतिमा वर्मा : पृ॰ 27.
3. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ॰ 74.

पर झूठा आरोप लगाकर निकाल देते है । डाक्टर विनीत शुचिता को जो एक नर्स है, अपने प्रेम के झूठे जाल में फंसा लेता है और वह उससे कहता है " तुम और मैं दोनों ही परिस्थितियों के इतने पास नहीं आये मन से भी पास है, और जहाँ मन की ईमानदारी है, वहाँ कोई अन्य कलुषता नहीं आ सकती ।"[1] यह बात कहने वाला विनीत बाद में बिल्कुल बदल जाता है । उसे ऐसे बदलते रहने का चस्का सा है । वह साफ कह देता है कि यद्यपि मैं मानता था कि शुचिता का चरित्र अच्छा नहीं तब भी उसके प्रति मेरा झुकाव भावुकतावश ही रहा । मैंने कभी शादी की बात नहीं सोची ।"[2] "गोपनीय" उपन्यास में अनुपमा का पति एक प्रसिद्ध डाक्टर है । परन्तु वह एक अहंकारी एवं हृदयहीन डाक्टर है । जो सिर्फ धनवान मरीजों को ही देखता है । गरीब मरीजों की वह उपेक्षा करता है । हर समय धन कमाने की ही चिन्ता में व्यस्त रहता है तथा पत्नी के प्रति जो कर्तव्य होना चाहिए उसे वह नहीं निभाता है ।

उच्च मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों में आत्मीय सम्बन्धों के प्रति कुछ भी भावनायें नहीं रहती है । यह वर्ग हृदयहीन होता है । "टपरेवाले" उपन्यास का हिमांशु भी इसी प्रकार का है । वह एक हृदयहीन एवं क्रूर उच्च मध्यवर्गीय पात्र है । वह अपनी माँ से अच्छा बर्ताव नहीं करता है । वह उन्हें बहुत दुःख देता है । वह इतना क्रूर है कि माँ के फिसलकर गिरने पर उन्हें उठाने के बजाय वह उनसे खजाने के बारे में पूछता है । "बड़ी मालकिन बाथरूम में फिसलकर गिर पड़ी थी उनके पैर में बहुत चोट आयी थी । वे तड़प रही थी और हिमांशु उन्हें डाँट रहे थे - अब तो बता दो वह सोना कहाँ रखा है, मर जाओगी तो छाती ही में पड़ा रह जायेगा ।"[3]

---

1. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 45.
2. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 53.
3. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 119.

आधुनिक युग में पुरुष वर्ग झूठे अभिमान एवं पुरुषत्व की भावना से युक्त रहते हैं साथ ही यह वर्ग धन का लोभी भी होता है । उच्च मध्यवर्गीय पुरुष पात्र कमजोर प्रवृत्ति के रहते हैं । उन्हें यह बिल्कुल सहन नहीं होता कि उनकी पत्नी के सम्बन्ध विवाह के पूर्व भी किसी से रहे हों । "चौदह फेरे" उपन्यास का जमींदार [?] भी झूठे अभिमान और पुरुषत्व की भावना से युक्त है । उसमें कर्तव्यता [?] की गंभीरता और जीवन का सत्य बिल्कुल नहीं है । "जमींदार में अभी से कुछ अफसरी का ठसका था । एक दो बार विदेश हो आने से, उसके पिछले दिनों की हीन भावना भी समूल में धुल-धुल गई थी । अब वह बढ़े "एक्सेंट" से अंग्रेजी बोलता था और विदेशों में सिले अपने सूट में सोना लाद कर चलता था ।"[1] "माणिक" उपन्यास का रमेन्द्र पैसों का लालची पुरुष है, धन के लिये वह कुछ भी करने को तैयार है यहाँ तक कि इसी धन के कारण वह अपनी पत्नी की बहन नीलम से भी विवाह करने को तैयार है ।[2] "बिन्दु" उपन्यास का कृष्णकान्त आधुनिक होते हुये भी उसकी विचारधारा संकीर्ण है । जब उसे मालूम होता है कि अरुण उसकी पत्नी बिन्दु से प्रेम करता था तो वह गुस्से से पागल हो जाता है और अपनी पत्नी को छोड़ देता है ।[3] "कुमारिकाएँ" उपन्यास का पुरुष कमजोर प्रवृत्ति का है । वह रोज से प्रेम करता है, परन्तु उससे विवाह नहीं कर सकता । वह कहता है " तुम मुझे क्यों सफाई दे रही हो ! मैंने तो प्यार किया है रोज । इस शब्द को किसी परिधि में क्या कोई बाँध सका है ! मैं तो आज तक तुम्हारा ही हूँ, लेकिन सामाजिकता की दीवारें अन्दर से खोखली बाहर से मजबूत है । इनके पास विश्वास नहीं केवल अहं है और अहं का नाम जो भी दे लो, मान-सम्मान, जातिवाद, धर्म इनके लिये ही व्यक्ति को तोड़ा जाता है ।"[4] अतः वह अपनी कमजोर प्रवृत्ति की इन बातों

---

1. चौदह फेरे : शिवानी : पृ. 164.
2. माणिक : शिवानी :
3. बिन्दु : सुनीता जैन : पृ. 64.
4. कुमारिकाएँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 173.

कुराता है । इसी प्रकार "बेहती" उपन्यास का तिकुम भी कमजोर प्रवृत्ति का पुरुष है । जो समाज से अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर पाया ।[1] इसी प्रकार "मायापुरी" उपन्यास का सतीश भी ऐसा ही पुरुष पात्र है, जो समाज से अपनी प्रेमिका के लिये लड़ नहीं पाता । उससे विवाह नहीं कर पाता है, और आज्ञाकारी बालक की भांति समाज के पीछे-पीछे चलता है । नियति के क्रूर चक्र में पिसते हुये अपनी जान दे देता है ।[2] अतएव इस वर्ग के पुरुष पात्र कमजोर प्रवृत्ति के होते हैं, जिनमें समाज से लड़ने की शक्ति नाममात्र को भी नहीं रहती है । जो समाज के पीछे-पीछे चलते हैं ।

"अनित्य" उपन्यास का अविजित उच्चमध्यवर्ग का पुरुष पात्र है । इस वर्ग की सारी मनोवृत्तियाँ इसमें पाई जाती है । रोटी बेटी की फिक्र से परे, वैचारिक स्तर से परे यह वर्ग विद्रोह अथवा समझौते करता है । अविजित इस वर्ग का सर्वोत्तम प्रतिनिधि है । विद्यार्थी जीवन में जिसे क्रान्ति के तेवर तरंगित करते थे, लेकिन जिसने अन्य अनेक चतुर एवं शिक्षित लोगों की तरह "स्टेटस्को" जो है यथावत में रहना ज्यादा लाभदायक समझा । इस प्रक्रिया में बहुत कुछ उसके हाथ से छूट गया, आदर्श, इन्कलाब और ईमानदारी । उसकी जगह उसे मिली नौकरी, सुन्दर पत्नी, दो चार प्रेमिकाएं और आरामदेह प्रतिष्ठित जिन्दगी ।[3] वह इस आराम देह जिन्दगी पाने के लिये पैसा कमाता गया "वह अपने को काम और काम में होम करता गया था काम नहीं पैसा अनित्य कहता है । हाँ, पैसा । पैसा कमाने में एक नशा है, सम्भोग से भी गहरा । पैसा पद, इज्जत, नाम, पैसा । एक पूरा चक्र । अहं की तुष्टि, देह की थकान, सफल होने का नशा.. कुछ कम तो नहीं ।"[4]

- -

1. बेहती : शिवानी :
2. मायापुरी : शिवानी :
3. पहल (पत्रिका) (अनित्य) ममता कालिया : पृ. 115.
4. पाषाण युग : मालती जोशी : पृ. 88.

"पाषाण युग" उपन्यास के प्रोफेसर जिजन उच्च मध्यवर्गीय पुरुष की उस प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं । जो अपनी ही शिष्या से विवाह कर लेते है । अपने स्वार्थ के कारण अपनी किताबों का पूरा काम अपनी पत्नी से निकाल लेता है और बाद में धन्यवाद का एक शब्द भी नहीं कहता है ।[1] उस पर भी नीरजा पर वह अकारण ही सन्देह करता है । उसको थीसिस भी पूरी नहीं होने देता है ।

उच्च मध्यवर्गीय पुरुष कितना ही आधुनिक क्यों न हो ,परन्तु उसमें निहीत सामाजिक संस्कार है जो उसे वह तोड़ नहीं पाता है । "कुमारिकाएं" उपन्यास का परवेज आभा से प्रेम-विवाह करता है । परन्तु उसके जातीय संस्कार उससे छूटते नहीं है । वह अपनी बेटी को मुसलमान बनाना चाहता है ।[2] इसी उपन्यास का गुलशन उच्च मध्यवर्गीय ऐसा पुरुष है जो युवती से प्रेम तो कर सकता है पर उससे विवाह नहीं कर सकता है क्योंकि अगर वह दूसरी जाति में विवाह करेगा तो, जायदाद का कुछ भी हिस्सा नहीं मिलेगा ।[3]

इस प्रकार साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने उच्च मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों का बड़ी ही सूक्ष्मता से यथार्थवादी विश्लेषण किया है ।

5.4.2.2. मध्य-मध्यवर्गीय पुरुषपात्र

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों का सजीव एवं यथार्थ रूप से विश्लेषण किया है । इस वर्ग के पुरुषों की चारित्रिक दुर्बलता एवं सबलता दोनों को लिया है । पुरुष पात्रों का आदर्श तथा यथार्थवादी व्यक्तित्व उनके जीवन की कुण्ठाओं और अभिशप्त समस्याओं का विशद चित्रण किया है । सन्देह, ईर्ष्या, आत्मपीड़न, स्वाभिमानी तथा क्रान्तिकारी मध्यवर्गीय मनोवृत्तियों का चित्रण किया है । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मध्यवर्ग के

---

1. पाषाण युग : मालती जोशी : पृ. 88.
2. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 144.
3. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 121.

पुरुष पात्रों के माध्यम से सामाजिक विकृति, राजनीतिक संघर्ष, आर्थिक असमानता, धार्मिक रूढ़िवादिता, सांस्कृतिक उत्थान और पतन का सजीव चित्रण किया है। मध्य-मध्यवर्ग के बहिरंग के साथ ही उसका अंतरंग भी साठोत्तर महिला उपन्यासकारों की कुछ कृतियों के विश्लेषण का विषय रहा है।

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष अपनी पत्नी को समान अधिकार नहीं देता, उसे स्वतंत्रता नहीं देता और प्रायः सन्देह करता रहता है। "मेरा मन वनवास दिया सा" का "हरीश" इसी प्रकार का पुरुष है। जो सहृदय होने का दावा करता है। वह अपनी पत्नी के भिक्षुक मन को नहीं समझता है। वह नारी को केवल भोग्या ही मानता है। "पत्नी तो मानो मिट्टी का पुतला है जिसकी घर में स्थापना कर दी गई है।"1. अपनी पत्नी को कठपुतली मानता है। यह उसकी इच्छा है, चाहे प्यार कर ले या मिट्टी में मिला दे।2. "बात एक औरत की" उपन्यास का संजय मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष के इस प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपनी पत्नी अनु को समान अधिकार नहीं देता। उसमें अहं की पराकाष्ठा है। "संजय में अहं की पराकाष्ठा रही और अहं कभी सीमा से अधिक बढ़कर घमंड और ऊँचे होने की भावना तक जा पहुँचता। उसमें एक अजीब सा अपने विषय में विचार जम गया है कि वह असाधारण है, उसमें कोई योग्यता है जो असाधारण कार्य करवाना चाहता है, जबकि उसकी दृष्टि में उसकी पत्नी बिल्कुल साधारण है, और उसे उसके सामने अस्तित्व विहीन रहना ही चाहिए।"3. स्वयं चाहे किसी से भी बातें करें, पर अनु अगर किसी से भी बात करती है तो उस पर सन्देह करने लगता है, और यहाँ तक कि उसे मारता-पीटता भी है "वह यहाँ तो स्त्री   स्नेहपूर्वक बातें करता, परन्तु पत्नी के लिये पूरा परम्परावादी था।"4.

---

1. मेरा मन वनवास दिया सा : शान्ति जोशी : पृ. 86.
2. मेरा मन वनवास दिया सा : -वही- : पृ. 32.
3. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 58.
4. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 78.

"उसके हिस्से की धूप" का जितेन यद्यपि मनीषा से प्रेम विवाह करता है । पर जो नारी की स्वतंत्रता पर विश्वास नहीं करता वह मनीषा से साफ कहता है कि " मैं न तो " वोमन लिब" में विश्वास करता हूं और न "फ्री लव में" ।[1] साथ ही वह यह भी कहता है "कोई दूसरा पुरुष तुम्हारे करीब आये मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता ।"[2] और विश्वासघात भी बर्दाश्त नहीं करूंगा ।[3]

"अनुगूंज" उपन्यास का मदन एक ऐसा मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष है जो अपनी पत्नी रुचि की उपेक्षा करता है । वह स्त्रियों को बिलकुल हेय मानता है । वह कहता है " मैं मानता हूं, स्त्रियों की बुद्धि या तो होती नहीं, होती है तो कहीं और होती है, सिर में कतई नहीं । जिस चीज के लिए रोती, चीखती, तड़पती रहती है, वही चीज मिल जाने पर उन्हें जहर लगती है ।[4] "पाक ने कहा था" उपन्यास का पुरुष भी अपने पत्नी को समान नहीं समझता है । वह औरत को पांव की जूती समझने वाला मर्द है ।[5] उसकी नजर में पत्नी को यथोचित आदर और सम्मान देना दकियानूसी की निशानी है । [6] लड़की लड़की है, इसलिए छूने-टूटने का ही सिर्फ उसे अधिकार है । अगर उसे कुछ नहीं मिलता, तो चुप रहे, जितना मिलता है उसी में मस्त रहे ।[7]

आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष न तो पूर्ण रूपेण परम्परागत संस्कारों से मुक्त हो सका, न नये ढंग में पूर्णतया

- -

1. उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ. 53.
2. -वही- -वही- : पृ. 145.
3. -वही- -वही- : पृ. 54.
4. अनुगूंज : सुनीता जैन : पृ. 33.
5. पाक ने कहा था : मणिका मोहिनी : पृ. 40.
6. -वही- -वही- : पृ. 12.
7. -वही- -वही- : पृ. 40.

अपने को रंग सका है । " प्यासा पानी" उपन्यास का पुरुष पात्र प्रभाकर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित है उसे बच्चे में व्यस्त रहने वाली स्त्री की जरूरत नहीं, वह कहता है " तुम इतना भी नहीं जानती कि पति एक माँ नहीं प्रेयसी चाहता है ।"1. एक ओर तो वह उसे उन्मुक्त रहने के लिए बाध्य करता है, दूसरी ओर एकनिष्ठ भी देखना चाहता है । कहीं कई स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखता है, परन्तु स्वयं में अपनी पत्नी का किसी अन्य के साथ डांस करना पसन्द नहीं करता । उसे सन्देह की दृष्टि से भी देखता है ।

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष पत्नी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को कमजोर करके ही निखर उठता है और अपने अहं की तुष्टि के लिए वह चाहता है कि उसकी पत्नी की प्रत्येक क्रिया प्रत्येक कार्य और आचरण उसकी अनुमति अथवा निर्देश से हो " मछली और मराजल" उपन्यास का कमल भी वैसा ही पुरुष है । उसे यह सहन नहीं होता है कि उसकी पत्नी मायके में जाकर या किसी अन्य से बात करें । वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसकी बात मानें । प्रत्येक कार्य और क्रिया उसकी अनुमति के अनुसार करें । वह चाहता था कि सुबह से शाम तक शाम से सवेरे तक वह उसकी सेवा में समर्पित रहें । 2.

व्यवसाय के क्षेत्र में पत्नी के पदार्पण से जो मध्य मध्यवर्गीय पुरुष को लाभ हुआ है, उसे वह वरदान समझने लगा है । पत्नी के कमाने पर भी उसकी उपेक्षा करता है । उसके चरित्र पर संदेह करता है । " नरक-दर-नरक" उपन्यास के जिनका की पत्नी एक कालेज में लेक्चरर है । वह जब-तब उसके कालेज में फोन करके उसके बारे में पूछता है । उसके एक-एक पैसे का हिसाब रखता है । उसको अगर जरा भी देर हो जाती है तो उस पर सन्देह करने लगता है । 3. "डर मेराहे" उपन्यास का पति अपनी पत्नी की उपेक्षा करता है । उसे सिर्फ

- -

1. प्यासा पानी : विमला रैना : पृ. 83 , 1965.
2. मछली और मरा जल : शान्ति जोशी : पृ. 18.
3. नरक-दर-नरक : ममता कालिया :

उसके वेतन से मतलब है । अपनी पत्नी को दी हुई सुविधाओं को अपना अधिकार समझता है ।[1] "परछाइयों के पीछे" उपन्यास में मणिलाल एक ऐसा पुरुष है जो स्वयं नहीं कमाता है, पर कमाने वाली अपनी पत्नी पर अपना अधिकार जमाता है । जब तब वह उस पर झूठा इलजाम डाल कर उसे मारता-पीटता भी है । यही नहीं उसे घर से तक निकाल देता है । आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होते हुये भी उसकी पत्नी उससे डरती है । हर क्षण उसे ऐसा लगता है जैसे कि " वह उसके साथ है और उसकी एक-एक हरकत पर कड़ी नजर रखता आ रहा है, जहाँ कोई गलत कदम रखा कि उसका सर धड़ से अलग ।[2] अतः मणिलाल एक शंकालु एवं क्रूर पुरुष पात्र है ।

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष को कभी यह सहन नहीं होता कि उसकी पत्नी उससे ऊँचे पद पर रहे । इससे उसमें या तो अहं भावना जागृत होगी, या नहीं तो वह हीन भावना से ग्रस्त होगा । मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष अपनी पत्नी के गुणों से ज्यादा प्रभावित नहीं होता है । वह अपनी दैहिक स्वकीयता चाहता है । नारी का वह सहज समर्पण चाहता है । "आपका बंटी" उपन्यास का अजय भी अहं भावना से ग्रस्त है । उसकी पत्नी शकुन कालेज की प्रिंसिपल है । जिससे वह अपने को छोटा अनुभव करता है । वह शकुन का अपने आगे समर्पण चाहता है, इधर शकुन भी उसका समर्पण चाहती है । जिससे दोनों के संबंधों में असामंजस्यता उत्पन्न होती है । मध्यवर्गीय पुरुष एक जटिल स्थिति से गुजर रहा है । अजय अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है । वह शकुन के व्यक्तित्व का आदर नहीं करता है और उसे वह भी नहीं पाता । इसका सबसे बड़ा कारण है उसका अहं ।[3] "टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" उपन्यास का विनोद अपनी पत्नी के आगे अपने को हीन समझता है क्योंकि वह एक यू.डी.सी. है और उसकी पत्नी

---

1. घर मेरा है : प्रतिभा सक्सेना : पृ. 16.
2. परछाइयों के पीछे : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 64.
3. आपका बंटी : मन्नू भण्डारी : पृ. 37.

उससे ऊँचे पद पर है । उसकी कम शैक्षिकता और अर्जित आर्थिक स्थितियों ने उसमें इतनी हीनता का भाव भर दिया कि शारीरिक दृष्टि से कोई कमी न होते हुए भी वह नोनू को सन्तुष्ट नहीं कर पाया । "टेसू की टहनियाँ" उपन्यास का प्रकाश हीनभावना से ग्रस्त है । वह शक्की, अन्धविश्वासी एवं आलसी है । पत्नी के गुणों को देखकर उसमें हीन भावना आ जाती है । " सीता के गुणों ने प्रकाश को बहुत कायल कर दिया और उसकी हीन ग्रन्थि रह-रहकर उसे सताने लगी और जैसे अन्दर से कहीं टूटने लगा । इस टूटन के साथ उसकी बाह्य झुंझलाहट बढ़ जाती ।"[1]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष पत्नी के रहते हुये भी पर स्त्री से प्रेम करते हैं । "मैला" उपन्यास का रोहिताश्वदत्त अपनी पत्नी के होते हुये भी अपनी पत्नी की ही मित्र से प्रेम करता है ।[2] टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष" उपन्यास का डाक्टर वर्मा एक ऐसा मध्यवर्गीय पुरुष है जो अपनी पत्नी के सामने ही पर स्त्रियों से प्रेम करता है, और शान से कहता भी है कि "मैं वैज्ञानिक हूँ हर तथ्य को बिल्कुल नग्नरूप में देखना चाहता हूँ । चाहे वे हमारे सम्बन्ध ही क्यों न हों । मैंने तुम्हारी दीदी से कभी कुछ नहीं छिपाया । मेरे इस सब खेल रचाने की सामर्थ्य और शक्ति पर उन्हें गर्व क्यों नहीं होना चाहिए । मैं चाहता तो यह सब बाहर भी जमा सकता था । पर मैंने ऐसा नहीं किया । वे मेरी जीवन-संगिनी है और मुझे उनसे कुछ नहीं छिपाना चाहिए ।"[3] " बँटता हुआ आदमी" उपन्यास का शरद गुप्ता भी अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है । परन्तु वह परिस्थितियों वश ही ऐसा करता है, क्योंकि उसकी पत्नी मायके चली गई थी । पत्नी के वापिस आ जाने के बाद वह अन्य स्त्रियों की ओर आकर्षित नहीं होता है ।[4] " रेत की मछली" उपन्यास का लखिमन एक भ्रष्ट

- -

1. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 36.
2. मैला : शिवानी : पृ.
3. टुकड़ों में बँटा इन्द्रधनुष : पृ. 36-37.
4. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती :

पति के रूप में चित्रित किया गया है जो अपनी पत्नी कुन्तल के होते हुये भी अन्य स्त्री जिसे वह पहले अपनी बहिन मानता था अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करता है । कुन्तल के सामने ही वह मोनल से सम्बन्ध रखता है, और बेशर्मी से कुन्तल से कहता है " यह तो आवश्यक है कुन्तल ! मेरे अपने सृजन के लिए आवश्यक है । कुन्तल तुम मुझे महान् लेखक बनाना चाहती हो ना ? उसके लिए पत्नी के अतिरिक्त प्रेरणा भी तो लेनी होती है ना ?[1] एकात्म हो जाने दो । कुन्तल, हम सब आओ एकात्म हो जाये । मैं मोनल, तुम । हम सब में उस सुख को बहने दो ।"[2] "टूटा हुआ इंद्र धनुष" का मनोज अपनी पत्नी अर्चना के होते हुये शोभना से जो विवाहित स्त्री है उससे सम्बन्ध रखता है क्योंकि विवाह के पूर्व दोनों प्रेमी-प्रेमिका थे ।[3]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष के दृष्टिकोण की असमानता और मनोवृत्तियों एवं रुचियों के भेद के कारण वह अपनी पत्नी से तालमेल बिठा नहीं पाता । जिसके कारण उनका जीवन नीरस और विषाक्त बनता है । "वह तीसरा" उपन्यास के सन्दीप और उसकी पत्नी - मल्लिका में मनोवृत्तियों और रुचियों की असमानता के कारण दोनों में संघर्ष शुरू हो जाता है जहाँ वह अकेले मिलकर विवाह की वर्षगाँठ मनाना चाहती है । वहीं संदीप पूरे स्टाफ को बुलाना चाहता है ।[4] "नहीं, परसों हम सबके बीच सैलिब्रेट करेंगे ।[5] "नागफाँसी" उपन्यास के रमेश स्वाधीनता संग्रामी है, उसके विचार उसकी पत्नी से मेल नहीं खाते हैं । उसकी पत्नी सुलोचना महत्वाकांक्षिणी नारी है । "रमेश और सुलोचना समद्विबाहु त्रिभुज की दो भुजाएं है - एक कोण पर

- -

1. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ. 151.
2. रेत की मछली : कान्ता भारती : पृ. 136.
3. टूटा हुआ इन्द्रधनुष : मंजुल भगत : पृ.
4. वह तीसरा : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 27.
5. नागफाँसी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 14.

मिलकर भी एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत । उन दोनों में से किसी ने उन्हें जोड़ने का प्रयास नहीं किया, बल्कि बीच की दूरी बनाए रखने के लिए कोई आधार-रेखा ढूंढ़ती रहे ।[1] सुलोचना की ओर से सम्बन्ध की वह ऊष्मा उन्होंने कभी महसूस नहीं की । न आवेग न उत्तेजना । सिर्फ ठंडी आग, जिसे कुरेदने पर चिनगारी नहीं, कोयले निकलें ।[2] "एक इंच मुस्कान" का अमर रंजना से प्रेम विवाह तो करता है परन्तु दोनों के विचारों में असमानताएं आ जाती है । क्योंकि वह पत्नी से ज्यादा लेखन को प्रमुखता देता है । "कलाकार तो हारा है·· वह क्यों कहता है, जब तक गति है तब तक कला है · ··फिर न गति रहेगी न कला··· सारा तालाब हो जाएगी । प्यार के नाम पर रंजना उसे बांध लेना चाहती है, शुद्ध उद्देश्य के लिए, गृहस्थी के सुख के लिए ··· अमला और रंजना जिन्दगी से बहुत आएगी । लेकिन न अमर की प्रतिभा आएगी, न प्रतिभा के स्फुरण के वे क्षण आयेंगे हम दो ऐसे किनारे हैं, जिन्हें अब कोई सेतु नहीं बांध सकेगा ; हम कभी एक नहीं हो सकेंगे । साथ रहकर भी दूर ···· एक होकर भी अलग । सब कुछ ठीक कर देने वाला कोई " चौकी नहीं होगा और हमारी जिन्दगी यों ही बीत जायेगी — नीरस, शुष्क अवसाद पूर्ण ···· ।[4] " अपने साथ" उपन्यास का रोहित अपनी पत्नी के शुष्क व्यवहार के कारण दूर रहने लगता है । रोहित दूसरी सन्तान चाहता है, और पत्नी की इच्छा नहीं रहती है । अतः इसमें आपसी मतभेद तनाव को जन्म देता है ।[5] "सैंध" उपन्यास में सुधीर और उसकी पत्नी सरिता के विचारों में भी जमीन आसमान का अन्तर है । जहाँ सुधीर एक सरल हृदयी एवं दुखी दरिद्रों की मदद करने वाला

---

1. सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 14.
2. सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 18.
3. एक इंच मुस्कान : मन्नू भण्डारी : राजेन्द्र यादव : पृ. 71.
4 -वही- -वही- -वही- : पृ.221.
5. अपने साथ : ज्योत्स्ना मिलन : पृ. 168.

पुरुष है तो वहीं संगीता एक व्यापारी की बेटी होने के नाते एक-एक पैसे का हिसाब रखने वाली है । यह असमानताएं ही दोनों में संघर्ष का कारण रहता है ।[1]

निराशा एवं कुढ़ाहट में आज का मध्य- मध्यवर्गीय व्यक्ति पीस रहा है । उसका जीवन यान्त्रिक हो गया है । इसी निराशा एवं कुढ़ाहट के कारण रागात्मक एवं आत्मीय सम्बन्ध निरर्थक से हो गये हैं । "नरक-दर- नरक" उपन्यास में जोगेन्द्र इसी निराशा एवं कुढ़ाहट में पिस रहा है । उषा से वह प्रेम विवाह करता है परन्तु बाद में आर्थिक निराशा के कारण दोनों के सम्बन्धों में निरर्थकता आती जाती है । वह कालेज के व्यवस्था की गलत नीति और सुविधा-भोगीपरि व्यक्तियों का विरोध कर एक नया परिवेश बनाना चाहता है । जिसके कारण उसे कालेज से निकाल दिया जाता है । जिससे उसका मन झुंझलाहट और कुढ़ाहट से भर जाता है । मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष समझता है कि वह उससे बेहतर नौकरी और उससे बेहतर वेतन का हकदार है । परन्तु जब उसे कहीं अच्छी नौकरी नहीं मिलती है तो वह निराशा से भर उठता है । इसी निराशा एवं कुढ़ाहट के कारण वह उषा से तालमेल नहीं बिठा पाता, तथा उसे लगता है कि उनके आत्मीय सम्बन्ध निरर्थक से हो गये हों ।[2]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष धन का लोभी होता है । धन के लिये वह उचित अनुचित तरीके अपनाता है । "कुमारिकाएं" उपन्यास का श्रीधर जी धन के लालच में अपनी पत्नी शुचिता को स्वामी जी की सेवा करने को कहता है " यह तो तुम्हारा भाग्य है शुचि कि स्वामी जी तुम्हें सबसे अधिक पसन्द करते आये हैं और दो बरसों से वे लगातार सेवा के लिये तुम्हें चुनते हैं । तुम क्या जानो कि उनकी ही कृपा से हम इतने सारे भाई-बहन अच्छे ढंग से पढ़कर सब नौकरियों में जम गये हैं । "उसका घर" उपन्यास में पदमा का भाई धन के

---

1. [illegible] : मृदुला गर्ग :
2. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ. 25.

लालच में बैंक बैलेन्स बढ़ाने की खातिर अपनी ही बहन फातमा को अपने बास आकुआ के पास जबरदस्ती भेजता है ।[1] इसी धन के लालच के कारण "बँटता हुआ आदमी" उपन्यास में किशोर अपनी प्रेमिका से एक नीच प्रस्ताव रखता है कि वह उसके सेठ से विवाह कर लें । जिससे कि वह जो कर्ज उस सेठ से लिया है वह उतर जाये । वह उसे यहाँ तक भी कहता है कि बाद में उस सेठ को छोड़ दे ।[2]

"सहचारिणी" उपन्यास में योगेश एक इंजिनीयर है, वह भी उचित अनुचित तरीकों से धन कमाता है । वह रिश्वत लेता है । इसी रिश्वत के बलबूते पर वह आये दिन घर में पार्टियाँ करता है ।[3] मध्यवर्गीय पुरुष पैसा ही सब कुछ समझता है । " आज की दुनिया का सबसे बड़ा यथार्थ, सबसे बड़ी ताकत है – पैसा । इस सत्य को, इस कटु सत्य को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता ...मेरे पास पैसा नहीं था, इसलिए जिन्दगी में मुझे कितने समझौते करने पड़े, उन लोगों के साथ शामिल हो जाना पड़ा, जिनका मुँह देखना तक मुझे गवारा नहीं था । अब फिर से उस इतिहास को दोहराना नहीं चाहता । जिंदगी के हाथों बहुत कुछ सहा है मैंने । मेरा वक्त अब आया है । अब मैं ब्याज समेत सारा हिसाब चुकता कर लेना चाहता हूँ ।"[4]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुषों की सुधारवादी प्रवृत्ति भी होती है । वे समाज में अपना नाम ऊँचा करना चाहते हैं । इसी सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर " नावें" उपन्यास का विवेक मालती से विवाह करता है । वह सोचता है कि इस तरह के कार्यों के लिए आखिर युवकों को ही आगे आना चाहिये ।"[5] "गोधूली बेला" उपन्यास का सतीश गरीब बच्चों की देखभाल करता है । रात्रि में व्यस्कों को

---

1. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज : पृ. 59.
2. बँटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : पृ. 53.
3. सहचारिणी : मालती जोशी : पृ. 58.
4. सहचारिणी : मालती जोशी : पृ. 61.
5. नावें : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 5 43

पहुँचाता है ।[1]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष प्रेम के क्षेत्र में भी पीछे नहीं रहते हैं । प्रेम का अन्त विवाह में चाहते हैं । परम्पराओं और सामाजिक बन्धनों के कारण कभी-कभी यह प्रेम असफल भी हो जाता है । "टूटा हुआ इन्द्रधनुष" का मनोज अपने प्रेम की परिणति विवाह में चाहता है । परन्तु उसकी प्रेमिका विवाह नहीं करना चाहती है, तब वह उससे कह देता है कि वह निराश प्रेमियों की तरह कुतुबमीनार से कूदकर मर नहीं जायगा । वह कहता है गुलाब को केवल बाग में देख आने से भी तो तबियत नहीं भरती । उसे घर के बगीचे में लगाने को भी तो जी चाहता है ।[2] "बात एक औरत की" उपन्यास का संदीप अपनी प्रेमिका दामिनी से विवाह अपने परिवार वालों की तरफ से नहीं कर सका । परन्तु वह दामिनी के प्रेम को भूल नहीं सका । "दामिनी के अतिरिक्त मुझे सुन्दर पत्नी भी सुखी नहीं रख सकेगी ।[3] "पचपन खम्भे लाल दीवारें" उपन्यास का पुरुष पात्र नील सुषमा से प्रेम करता है और विवाह करना चाहता है, परन्तु सुषमा उससे विवाह नहीं करती यहाँ तक कि वह सुषमा की सारी जिम्मेदारी लेने को तैयार होता है पर सुषमा नहीं मानती है ।[4]

कुछ मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों का जब इच्छित स्त्री से विवाह होना असम्भव हो जाता है तो आजीवन विवाह न करने का प्रण भी कर लेते हैं । "सूखा सैलाब" उपन्यास का अशोक ममता से प्रेम करता है । ममता का विवाह अन्यत्र हो जाता है, तो वह आजीवन विवाह न करने का निश्चय करता है ।[5] "सूखी नदी का पुल" के डाक्टर शास्त्री आजीवन विवाह नहीं करना चाहते हैं क्योंकि जिस लड़की

---

1. गोधूली बेला : चन्द्रकान्त
2. टूटा हुआ इन्द्रधनुष : मंजुल भगत : पृ. 17.
3. बात एक औरत की : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.96
4. पचपन खम्भे और लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा : 53.
5. सूखा सैलाब : निर्मला वाजपेयी :

से वह प्रेम करती है, वह लड़की अन्यत्र भागकर विवाह कर ली थी । इसीलिये वे आजीवन विवाह न कर मरीजों की सेवा करना चाहते हैं ।[1]

प्रेम न धर्म-भेद मानता है और न जाति भेद । न आयु का भी ख्याल नहीं करता है । "इन्नो" उपन्यास का नायक मुस्लिम होते हुये भी इन्नो से प्रेम करता है और दोनों विवाह भी कर लेते हैं ।[2] "दूरियाँ" उपन्यास का विजय नाज से आयु में कम है फिर भी वह उससे प्रेम करता है । नाज भी उससे प्रेम करती है और अन्त में दोनों प्रेम-विवाह के डोर में बंध जाते हैं ।[3] "टेसू की टहनियाँ" का मधुर भी मोना से आयु में छोटा है यह जानते हुये भी वह उससे प्रेम करता है । वह मोना से कहता है कि तुम तो स्त्री रत्न हो और तुम्हें बार-बार देखकर ही मुझे मिला एक निश्छल प्यार है और कुछ अनुभव नहीं होता ।"[4]

मध्य-मध्यवर्गीय युवक युवती के प्रेम में कभी-कभी धीरे भी टूट जाता है । "तीन पहाड़" उपन्यास का श्री तथा जया परस्पर प्रेम करते हैं पर श्री विदेश से लौटने पर जया से विवाह नहीं करना चाहते जिससे प्रणय असफल हो जाता है ।[5] "दूरियाँ" उपन्यास का रवि भी नाज से बेहद प्रेम करता था । पर बाद में वह दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है जिससे नाज टूट सी जाती है ।[6] कभी-कभी मध्यवर्गीय युवक समाज की स्वीकृति न मिलने पर भी पति-पत्नी के रूप में ही रहने लगते हैं । "दूरियाँ" उपन्यास के हरि और नमिता बिना विवाह के ही पति-पत्नी के रूप में रहते हैं ।[7] मध्यवर्गीय प्रेमी प्रणय में धोखा भी देते हैं । जैसे " अजन्मी आत्मा की चाहि" का राम पहले तो मोना से प्रेम करता है पर बाद में धोखा दे देता है ।

- -

1. सूखी नदी का पुल : कान्ता सिन्हा : पृ. 169.
2. इन्नो : मालती परूलकर
3. दूरियाँ : रजनी पनिकर
4. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 221.
5. तीन पहाड़ : कृष्णा सोबती : पृ. 123.
6. दूरियाँ : रजनी पनिकर :
7. – वही –

पुरुष विवाह से पहले भावना को महत्व देता है और जब उसे घर बसाने की ज़रूरत पड़ती है तब वह ज़िन्दगी की सच्चाइयों को स्वीकार करता है ।[1]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष प्रेम तो करते हैं परन्तु अपने परम्पराओं एवं संस्कारों के कारण विवाह करने से हिचकते हैं । "रुकोगी नहीं राधिका" का अक्षय इसी प्रकार का युवक है । वह राधिका की ओर आकर्षित होता है और अपने प्रेम को न केवल शब्दों में बल्कि उसके आलिंगन के लिये अपनी आकुल बाँह पसार कर व्यंजित करता है । परन्तु उसके परम्परित संस्कार राधिका को पूर्ण रूप से उसके अतीत सहित ग्रहण करने में अवरोध खड़ा करते हैं । अमेरिका में रहते हुये न मालूम उसने कैसा जीवन जिया है ।[2] परन्तु इसके विपरीत मनीश एक ऐसा मध्य-मध्यवर्गीय युवक है जो आधुनिक प्रेमी के समान उच्छृंखल शृंगार सज्जा के प्रति सचेत है । वह अनेक युवतियों को आकर्षित करता है । वह बड़ी आसानी से प्रेमिका बदल लेता है । परन्तु जब वह राधिका को अपने प्रति सीमित पाता है तो उसके प्रति झुकाव उत्पन्न हो जाता है । वह राधिका से कहता है "तुम वहाँ नहीं रह सकी, क्या न तुम्हें वहाँ स्वीकारा गया । मैं भी अपने को पृथक, अलग कटा हुआ पाता हूँ । सोचा कि हम दोनों इकट्ठे रह सकेंगे - क्योंकि हम एक दूसरे को बहुत करीब से जानते हैं, बहुत सारे संदर्भों में ।"[3]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुषों में प्रेम विवाह के पूर्व ही नहीं विवाह के बाद भी होता है । "चित्त कोबरा" उपन्यास का रिचर्ड मनु से विवाहित होते हुये भी प्रेम करता है । रिचर्ड कहता है कि बलि-दान के बाद प्रेम प्रेम नहीं रहता, परोपकार बन जाता है ।आदमी

- -

1. उजली आत्मा की बाँह : सुभद्रा : पृ. 101.
2. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा : पृ. 152.
3. रुकोगी नहीं राधिका : - वही - : पृ. 152.

नहीं, छलावे और बनावटी परोपकार । मैं जानता हूँ तुम मुझसे प्रेम करती हो । बलिदान न तुम मांगती, न मैं देता ।"[1] "नारी" उपन्यास के मध्यवर्गीय पुरुष सोम जी और "बंटता हुआ आदमी" के हीरेन वर्मा विवाहित होते हुए भी प्रेम करते हैं ।

मध्य-मध्यवर्ग में नैतिक प्रतिबन्धों के फलस्वरूप नर-नारी के आकर्षण की सहज भावना भी बरबस दबानी पड़ती है । यह भावनाएं समाप्त नहीं होती, अपितु उसमें कुण्ठाएं उत्पन्न होती है । यह भावना अचेतन मन में छिपकर, चेतन मन को दबाने का निरन्तर प्रयत्न करती है । जब भी अवसर मिलता है यह भावना भिन्न-भिन्न रूपों में अपना निकास सम्भव बनाती है । "कैंजा" उपन्यास का सुरेश प्रेम अधिक असफलता के कारण सेक्स मैनियाक हो जाता है, और बदले के फलस्वरूप वह गांव की अन्य स्त्रियों से सेक्स सम्बन्ध स्थापित करता है ।[2] "प्रेमकहानी" का दीपक अपनी सेक्स की पूर्ति अपने मित्र की भाभी से करना चाहता है ।[3]

मध्य मध्यवर्गीय पुरुष में हीन ग्रंथि तब उत्पन्न होती है, जब वह अपनी पत्नी या अपने भाई को अपने से अधिक गुणों वाला पाता है । "उसकी पंचवटी" उपन्यास का यतीन हीनता ग्रंथि का शिकार है । क्योंकि उसका बड़ा भाई मिथुन और उसकी पत्नी के गुणों को देखता है तो उसमें हीन भावना आती है । जिससे वह अपनी पत्नी से कतराने लगता है । वह उसे डांटना-डपटना चाहता है परन्तु, वह नहीं कर पाता । जिससे उसमें हीन भावना आना स्वाभाविक है । क्योंकि उसके व्यक्तित्व का विकास अपने भाई के कारण नहीं हो पाया था ।[4]

---

1. चित्त कोबरा : मृदुला गर्ग : पृ. 46.
2. कैंजा : शिवानी
3. प्रेम कहानी : ममता कालिया
4. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष दिखावा करता है । चाहे उसकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो फिर भी वह प्रदर्शन आदि करता है । "मेरा नरक अपना है" उपन्यास का हरेन्द्र इसी प्रकार का मध्यवर्गीय पुरुष पात्र है । अपनी पत्नी को प्रसन्न रखने के लिये वह अपने सामर्थ्य से भी ज्यादा खर्च करता है । " तुम्हारा यह ग्रेट हसबैंड अब सचमुच बड़ा आदमी है । अगले महीने हम फ्लैट ले रहे हैं और तुम जाओ और जो ड्रेस चाहिए, मैचिंग ज्वैलरी चाहिए ले आओ ।[1]" यह मध्य-वर्गीय पुरुष उच्च वर्ग की नकल करता है, और उनके साथ उठने बैठने में गर्व का अनुभव करता है । " कपूर साहब ने उच्चवर्ग के लोगों से तब तक खासा मेल जोल बढ़ा लिया था ।[2]"

मध्यवर्गीय पुरुष पूर्व और पश्चिमी संस्कृतियों में तालमेल नहीं बैठा पाते हैं । "कोहरे" उपन्यास का निशीथ पश्चिमी युवती से विवाह कर लेता है परन्तु बाद में दोनों में मनमुटाव उत्पन्न हो जाता है । क्योंकि दोनों की संस्कृति अलग थी दोनों के विचार अलग थे ।[3]

स्वातंत्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मध्यवर्गीय सरकारी कर्मचारी पुरुष पात्रों को भी लिया है । कृष्णा सोबती के उपन्यास "यारों के यार" में सरकारी कर्मचारी पुरुष वर्ग की टुच्ची मानसिकता, उनका काइयांपन, उनकी परस्पर ईर्ष्या, अफसरों के बारे में उनके राग द्वेष, संकीर्ण विचार तथा आर्थिक तंगी सबको यानी इस वर्ग की प्रवृत्तियों को एक ही कहानी में उतार दिया है " बड़े बाबू अफसराना अन्दाज में गर्दन उठाये बिना रोज की सी मुस्तैदी और मसरूफियत के साथ डाक मार्क करते रहे । इनकी बायीं आँख कागजों पर जमी रही और हैडक्लर्कों की तीसरी आँख ब्रांच-भर की हरकतों की जाँच करती थी ।[4]"

- -

1. "मेरा नरक अपना है" : निरुपमा सेवती : पृ. 73.
2. -वही- -वही- पृ 15
3. कोहरे : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 85.
4. यारों के यार : कृष्णा सोबती : पृ. 22.

मध्य-मध्यवर्गीय पिता अपनी सन्तान को उच्च शिक्षा दिलाना चाहता है । "नरक-दर-नरक" उपन्यास में उषा के पिता उषा को उच्च शिक्षा दिलाना चाहते हैं । वे उसे घर का कुछ भी कार्य करने को नहीं देते हैं । अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद लाकर उसको देते हैं ।[1] कुछ मध्यवर्गीय पिता आधुनिक विचारों के होते हुये भी संस्कारगत रूप में रूढ़िवादी होते हैं । "प्रेमकहानी" उपन्यास में जया के पिता आधुनिक विचारों के होते हुये भी उन्हें यह बिल्कुल पसन्द नहीं है कि जया प्रेम-विवाह करें ।[2] परन्तु कुछ मध्यवर्गीय पिता रूढ़िवादी नहीं होते हैं । जैसे "टेसू की टहनियाँ" के राजेश रूढ़िवादी नहीं है । वे अपनी बेटी शोभा से साफ कहते हैं कि अगर उसे पति के घर में सम्मान नहीं मिलता है तो यह उनका घर उसके लिए सदा खुला रहेगा । क्योंकि यदि पति की बुराईयों की अर्थी नहीं निकलती है तो पत्नी की अर्थी भी क्यों निकलेगी : तुम्हारी हर लड़ाई व समझौते में मैं व सुशील साथ है.... रहेंगे ।[3]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मध्य-मध्यवर्गीय राजनीतिक, सुधारवादी एवं क्रान्तिकारी युवकों को लिया है ।"मेरा मन वनवास दिया सा" का विमल एक क्रान्तिकारी है । वह स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेता है । तब तक विवाह नहीं करना चाहता जब तक देश स्वतंत्र न हो जाये ।[4] "अनित्य" उपन्यास का अविनाश एक क्रान्तिकारी गान्धी विरोधी व्यक्ति है । वह अपना सारा विद्रोह बड़े मौके से प्रकट करता है । उसके अनुसार यह लड़ाई मध्य-वर्ग के कन्धों पर लड़ी जा रही है ।[5] विमलदत्त चड्ढा स्वाधीनता

- -

1. नरक-दर-नरक : ममता कालिया : पृ.
2. प्रेम कहानी : ममता कालिया :
3. टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 70.
4. मेरा मन वनवास दिया सा : शान्ति जोशी :
5. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ.

के पूर्ण क्रान्तिकारी है। स्वाधीनता संग्राम के बाद देश की सरकार के प्रति असंतोष प्रकट करने के लिये कुछ युवक क्रान्तिकारी बने जैसे सरण, किशोर और अनिल। जिनमें सरकार के प्रति असंतोष की भावना है। वे देश में क्रान्ति लाना चाहते हैं। "एक और बात" उपन्यास का रविकान्त भी युवावस्था के पात्रों को समझता है। तथा युवकों से जुड़ा होने के कारण जीवन की सुख-सुविधाओं के लिये कोई छोटा मार्ग अपनाना नहीं चाहता है।[1] "सोनाली दी" उपन्यास का इन्द्रजीत भी एक क्रान्तिकारी युवक है। उसे अमीरों से सख्त नफरत है।[2]

मध्य-मध्यवर्गीय पुरुष डाक्टर कुछ आदर्शवादी होते हैं और कुछ धन पैसे द्वारा लाभ उठाना चाहते हैं। "प्रेमकहानी" उपन्यास का गिरीश जहाँ एक आदर्शवादी डाक्टर है तो वहीं कुंवर एक दुराचारी डाक्टर है। मरीजों के प्रति गिरीश का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण है। वहीं कुंवर अपने से नीचे के कर्मचारियों के प्रति दुर्व्यवहार करता है। प्राइवेट वार्ड के मरीजों द्वारा अस्पताल के कर्मचारियों के प्रति दुर्व्यवहार में उच्च वर्ग के जीवन दम्भ का सा उभर कर आया है।[3]

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने मध्य-मध्यवर्गीय आदर्श पुरुष पात्रों को भी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। "सुरंगमा" उपन्यास का "रार्बटम्यूरो" एक आदर्श मध्यवर्गीय प्रेमी है। समाज में लक्ष्मी की इज्जत की खातिर उससे विवाह करता है और जब तक लक्ष्मी उसके साथ रहती है, तब तक उससे वह प्रेम का नाता निभाता है। लक्ष्मी से वह सच्चा प्रेम करता है, बदले में वह कुछ भी प्रतिदान नहीं चाहता है।[4] "बिन्दु" उपन्यास का कवि शगुन भी बिन्दु से सच्चा प्रेम करता है। बिन्दु के अन्यत्र विवाह हो जाने पर

---

1. एक और बात : शान्ति जोशी : पृ.
2. सोनाली दी : रजनी पनिकर : पृ.69.
3. प्रेम कहानी : ममता कालिया :
4. सुरंगमा : शिवानी :

वह आजीवन अविवाहित रहता है ।[1] "चाँद अमावस का" में सच्चानन्द अपनी प्रेमिका सुनीता के साथ प्रेम करता है । परन्तु सुनीता सच्चानन्द से घृणा करती है । लेकिन सच्चानन्द किसी दूसरी नारी से शादी करने के लिये इन्कार करता है, और सुनीता के इन्तजार में दिन काटने लगता है ।[2] "इन्नो" उपन्यास का राज बिहारी अपनी प्रेमिका के गर्भ से अपने जन्म बेटा बनकर आना चाहता है क्योंकि इस जन्म में में दोनों का प्रेम सफल नहीं हो सका था । " तेरी गोद में शिशु बनकर आऊँ तो तू ठुकरायेगी तो नहीं ! फेंकेगी तो नहीं ![3] इसमें महत्वाकांक्षी के भावुक प्रेम की झलक मिलती है ।

आदर्शवादी महत्वाकांक्षी पुरुष पात्रों के अतिरिक्त कुछ राजनीतिक महत्वाकांक्षी पात्रों को भी स्वातंत्र्योत्तरी महिला उपन्यासकारों ने चित्रित किया है । "महाभोज" उपन्यास के दत्ता साहब संपादक है । वह ऐसे संपादक है जो उच्च वर्गीय मंत्री दा साहब के मान से फूले नहीं समाते है । वह उस महत्वाकांक्षी पुरुष का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने से उच्च वर्ग के व्यक्ति का सहयोगी बनता है । उसे इसका पुरस्कार भी मिलता है । "दत्ता बाबू के मन में दा साहब की शाबाशी से बहार्ई और जेब में कागज के उजले कोटे का परमिट पड़ा हुआ है और वे अपने को जमीन से डेढ़ इंच उपर महसूस कर रहे हैं । "महाभोज" उपन्यास का सक्सेना उस महत्वाकांक्षी ईमानदार व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसने अपने जमीर के मुताबिक तहकीकात की थी, पर उसे ईमानदारी से अपना कर्तव्य पूरा करने के उपलक्ष्य में मिलता है सस्पेंशन आर्डर । इसके द्वारा आज के युग पर आज की व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है कि महत्व-महत्वाकांक्षी पुरुष ईमानदारी से जीना चाहकर भी नहीं जी पा रहा है ।

---

1. बिन्दु : सुनीता जैन :
2. चाँद अमावस का : मालती जोशी
3. इन्नो : मालती परूलकर : पृ. 173.

इस तरह हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकार मध्य-मध्यवर्ग के सभी सशक्त चितेरे है, और उनकी चित्रण शक्ति के प्रमाण उनके मध्य मध्यवर्गीय जीवन्त पात्र है ।

5·5·2·3· <u>निम्न मध्यवर्गीय पुरुष पात्र</u>

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों को भी अपने अध्ययन का विषय बनाया है । वास्तव मूलक एवं तटस्थ दृष्टि से निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों का चित्रण किया है । जो दिखावें की भावना से युक्त बड़ी कठिनाई से जीवन यापन करता है । इसमें बुद्धिजीवी तथा शिक्षी आते हैं, यथा क्लर्क, प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापक आदि ।

निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष अपनी निम्न स्थिति को इज्जत,ईमान और पैबन्दों में छुपाना चाहता है । " सुबह के इन्तजार तक " के उपन्यास मुन्नी के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय विद्रूप भरी स्थिति को स्थिति को चित्रा है । "हम निम्न मध्यवर्ग के प्रतिनिधि परिवार के थे, उस मध्यवर्ग के जो कहीं पर तथा कथित निम्न वर्ग से भी निम्नतर होता है । अंदर से नितांत दयनीय रिस रिस कर चुकता हुआ, ऊपर से सफेद पोश इज्जतदार ।"[1] छोटा काम करना यह वर्ग पसन्द नहीं करता है । सुबह के इन्तजारतक के मुन्नी को कोई नौकरी नहीं मिलती क्योंकि आर्थिक तंगी के कारण वे समय से पहले ही बूढ़े दिखाई देते थे "चालीस के होने पर भी पचास से कम नहीं लगते थे । जिनकी भी उम्र की दुहाई देते वह समझता नौकरी पाने के लिए झूठ बोल रहे हैं - सर्टिफिकेट तो जाली भी हो सकते हैं पर चेहरे को समेटती ये झुर्रियाँ ।"[2] कहीं किसी जगह बहुत आग्रह करने पर यदि"क्लर्क या ड्राइवर के साथ के क्लीनर आदि का काम दिया जाता तो उनका चेहरा पीड़ा

- -

1· सुबह के इंतजार तक : सूर्यबाला : पृ·10·

2· सुबह के इंतजार तक : -वही- : पृ· 12·

से जब उठता और वे औरतों के कुछ वाक्यों में क्षमा याचना करते हुए झुकी गर्दन धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर जाते ।1.

आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण निम्न मध्यवर्ग के पुरुष अपनी संतान को इच्छा होते हुए भी उच्च शिक्षा नहीं दिला पाते, तथा उनका विवाह भी अच्छे पात्र से करवा सकते हैं । " जब तक" उपन्यास के मुक्ता के पिता अपने आर्थिक अभाव के कारण उसे उचित शिक्षा नहीं दिला पाते हैं । परन्तु मुक्ता स्वयं ही अपने कमाई पर पढ़ती है । "निर्धनता के अभिशाप" उपन्यास के पंडित रामनाथ की बेटी मीरा का विवाह जमींदार के बेटे मोहन से इसीलिये नहीं होता है कि वह गरीब है, और दहेज नहीं दे सकते । अपनी बेटी के विवाह के लिये वे कहते हैं कि " मैं कहाँ-कहाँ की तो धूल छान चुका हूँ । कितनों के द्वार पर भटक चुका हूँ । कोई यदि सौ देता, तो पहले ही घर बैठ जाता ।"2. इसी प्रकार " प्रेम कहानी" उपन्यास के रश्मि के पिता अपनी बेटियों का विवाह आर्थिक विवशता के कारण किसी भी प्रकार कर देना चाहता है । वे रिश्ता ढूँढते समय यह नहीं देखते कि रिश्ता लड़की के लायक है या नहीं, वे तो गिनती पूरी करते हैं"।3.

आर्थिक तंगी के कारण इस वर्ग का पुरुष अनुचित कार्य करने से भी नहीं कतराता है । "बँटता हुआ आदमी" उपन्यास के धीरज, सुरेश जैसे निम्न मध्य वर्गीय पुरुष पात्र हैं जो अभाव की जिन्दगी जी रहे हैं और रुपये हासिल करने के लिये यह रीलें चोरी करकर बाहर बेचने को भी तैयार हो जाते हैं । धीरज कहता है " मैंने इतनी भूख ,इतनी बेकारी देखी है कि मुझ पर किसी लेक्चर बाजी का कुछ असर नहीं होने का, और मैं अपने को जाया नहीं करना चाहता ।

- -

1. सुबह इन्तजार तक : सूर्यबाला : पृ.
2. निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तागड़ी : पृ. 108.
3. प्रेम कहानी : ममता कालिया : पृ. 14.

एक मौका हाथ लगा है - फिर कब मिलेगा जिन्दगी में इतना रुपया । रुपयों की खातिर कुछ निम्न मध्यवर्गीय पुरुष इससे भी ज्यादा नीचे गिर जाते हैं । "कुमारिकाएं" उपन्यास का निम्न मध्यवर्गीय पुरुष संतोष इसी धन के कारण कोर्ट में सुचिता के विरुद्ध झूठी गवाह देता है " मि० संतोष भी बड़ी झिझक व लज्जा से कोर्ट में गीता की कसम खाकर बोले, " मैं मिस सुचिता को डेढ़ वर्ष से जानता हूँ । उन्होंने मेरी निःशुल्क सेवा की थी । इसके बाद उनकी - मेरी आत्मीयता बढ़ती गई और मैंने उनसे शादी तक कि बात तय की, परन्तु कुछ समय बाद मुझे यह देखकर दुःख हुआ कि वे अब डाक्टर विनोद के प्रति आकर्षित है । मैंने सुचिता जी से इसके बाद जब भी मिलना चाहा, वे मना करती रही । मैं उन्हें बहुत प्रेम करता हूँ । प्रतिहिंसा में उन्हें परेशान करने की बुरी नियत मेरे मन में आ गई, परन्तु मैंने साफ-साफ नौकर से कहा था कि वह एसिड का उपयोग इसी ढंग से ही करे ।"[2]

आज का निम्न मध्यवर्गीय पुरुष आधुनिकता की ओर आकर्षित होते हुये भी पुरातनता को नहीं छोड़ पाता । परम्पराएँ और संस्कार उसमें गहरे तक पैठ गये है जिसे वह छुटकारा नहीं पाता है । जिससे वह अपने जीवन से हार जाता है । "बेघर" उपन्यास का परमजीत इसी प्रकार का निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष पात्र है । वह निम्नमध्यवर्गीय भारतीय समाज की उपज है, उसके संस्कार उसमें गहराई तक रोपित है । परन्तु जब वह बम्बई के वातावरण में आता है तो बिल्कुल बदल जाता है । अपने आपको आधुनिक समझने लगता है और जब वह संजीवनी के संपर्क में आता है, परन्तु वह आधुनिकता का सामना नहीं कर पाता । अपने भावुक संस्कार के कारण उसे तब धक्का लगता है जब उसे यह अहसास होता है कि वह संजीवनी के जीवन में अपने जैसा प्रथम पुरुष नहीं है ।" पहला

---

1. बंटता हुआ आदमी : निरुपमा सेवती : पृ० 114.
2. कुमारिकाएं : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ० 53.

न होने की निराशा के सन्नाटे के साथ-साथ उसे अपनी जिन्दगी का सारा नक्शा मुड़ा हुआ दिखाई दे रहा था ।[1] रमा से शादी कर वह पुरातनता की ओर अग्रसर होता है । परन्तु वह रमा के साथ एडजस्ट नहीं हो पाता है । इस तरह वह दोनों से हारता है । एक को वह अपने अहं के कारण स्वीकार नहीं कर सका । दूसरे को संवेदनशीलता के अभाव के कारण । वह गतिशील आधुनिकता और जड़ पुरातनता के बीच अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं कर पाता । उसका व्यवहार अपने प्रति जितना मुक्त है, नारी के प्रति उतना ही संकुचित है । एक तरफ तो वह "घर" को लेकर साधारण व्यक्ति की तरह सपने संजोता है दूसरी तरफ बम्बई के सामने उसे दिल्ली की जिन्दगी एक रस और ऊब भरी लगती है ।[2] इस प्रकार परमजीत की सारी स्थिति निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष की है ।

निम्न-मध्यवर्गीय समाज में प्रेम को उतना महत्व नहीं दिया जाता है जितना सामाजिक बन्धनों को । "टपरे वाले" उपन्यास का निम्न मध्यवर्गीय युवक पन्ना लीला से प्रेम तो करता है परन्तु उसके साथ विवाह नहीं कर पाता क्योंकि सामाजिक बन्धन उसके आड़े आ जाते हैं । अपने पिता के कारण वह उससे विवाह नहीं कर पाता है और आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय करता है । पन्ना कहता है "विवाह प्यास से अलग वस्तु है । विवाह सब सामाजिकता का निर्वाह करने के लिये करते हैं न । यह भी हो सकता था कि तुम किसी बहुत ऊँचे कुल की होती और मेरा विवाह तुमसे न भी हो पाता । मैं विश्वास सोचता हूँ कि तुम्हें मैं पत्नी की तरह रखूँगा और जीवन पर्यन्त विवाह नहीं करूँगा ।"[3] "कोरजा" उपन्यास का पहलवान रज्जो से प्रेम करता है परन्तु सामाजिक जिम्मेदारियों

- -

1. बेघर : ममता कालिया : पृ. 98.
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : भीष्म साहनी : पृ. 123.
3. टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ. 140.

के कारण वह उसके खिलाफ नहीं कर पाता । क्योंकि उसे अपनी बहिनों का निकाह करना था । वह रुख्शी की शादी का पूरा खर्च उठाता है ।[1] वह कहता है कि " इन्सान की जिम्मेदारियाँ भी तो कुछ होती है ।[2] कोरजा उपन्यास का ही अमित कम्मो से प्रेम करता है । वह नपुंसक है और इसी कारण वह हमेशा शराब में डूबा रहता है । वह प्रेम को शरीर से परे मानता था । प्यार शरीर से परे है, अमिट है कम्मो । इसकी सुगन्ध वैसी है जैसे नासमझी के महकते, धरती फोड़ते पौधों की महक "मेरा ख्याल है, हम दोनों में भी वही प्यार के बिन्दु जुड़े है ... अतः टूटने-छूटने की बात अब नहीं उठती । खोने का अंदेशा मन से निकाल दो .. । हम एक दूसरे के साथ है .. लौटने का सवाल ही नहीं उठता ।[2a] परन्तु जब कम्मो उसकी नपुंसकता के कारण उससे दूर हो जाती है तो उसे ठेस लगती है । "तुम क्या सोचती हो कम्मो तिल-तिल करके अपने को मारना क्या यूं ही है ? तुम सोचती होगी कम्मो, जब मैं नपुंसक मर्द था तो क्यों मैंने तुमसे प्यार किया? पर इसका मेरे पास सीधा-सादा उत्तर है - मैं नहीं जानता था कि प्यार में शरीर का इतना स्थान होता है । शरीर से हटकर आत्मा से किसी को प्यार किया जा सकता है । बस यही मैं सोचता था ।[3]

निम्न मध्यवर्गीय पुरुष में व्यक्तित्व का विकास न होने के कारण उनमें हीन भावना उत्पन्न होती है । "समर्पण का सुख" उपन्यास का राजू भी हीन भावना से ग्रसित है, क्योंकि उसके भाई उससे ज्यादा शिक्षित है । इसी से उसमें हीनता घर कर गई थी ।[4]

---

1. कोरजा : मेहरुन्निसा परवेज : पृ. 262.
2. -वही- : पृ. 233.
2a. -वही- : पृ. 111.
3. -वही- : पृ. 277.
4. समर्पण का सुख : मालती जोशी : पृ. 107.

निम्न-मध्यवर्गीय पुरुष महत्वाकांक्षी भी होता है । वह परिश्रम भी करने को तैयार रहता है । "सुबह के इन्तजार तक" का कुन्नू निम्न मध्यवर्गीय होने के कारण उसकी शिक्षा पूरी नहीं हो पाती । परन्तु वह और उसकी बहिन परिश्रम करते हैं, और अपनी शिक्षा पूरी करते हैं " दिन रात की मेहनत कुन्नू के चेहरे पर थकान के चिह्न प्रकट करती है, वह पहले से कहीं ज्यादा दुबला और फुर्तीला लगता है । शायद इसीलिये कि वह पढ़ाई को एक बोझ की तरह नहीं खेलकूद, मनोरंजन हँसने गाने के रूप में लेता ।[1]" इसी महत्वाकांक्षा के बल पर वह डाक्टर हो जाता है ।

चाहे कितना ही महात्मा या साधना वादी निम्न मध्यवर्गीय पुरुष पात्र हो वह सांसारिक प्रपंचों से मुक्त नहीं रहता है । "चौदह फेरे " उपन्यास का बाबा अपने आप को पुण्यात्मा बताता है, परन्तु वह अन्दर से बहुत ही नीच है । वह अहिल्या और कमला को देखकर अपने शिष्य परमानन्द से कहता है " आज उन दो-दो परियों ने हमारी तबीयत बिगाड़ दी - एक भी मिल जाती ...।"[2] इसी प्रकार " भैरवी" उपन्यास का अघोरी बाबा है । वह उच्चतम साधनारत रहता है परन्तु जैसे ही वह चन्दन को देखता है । उसकी श्मशान-साधना और शव-साधना सब ताक में रखी रह जाती है । उसका विश्लेषण करती हुई मायावी चन्दन से कहती है " अवाक है, सो गए । तू तो एकदम भोली है भैरवी । पर अघोरी होने देर नहीं लगती । मर्द का मन, चाहे वह साधु साधे, औकात में होता है एकदम देसी कुत्ता । सामने हड्डी रख दो, तो कितना ही सिखाया पढ़ाया हो, कभी लार टपकाये बिना नहीं रह सकता ।"[3] "किशुनुली का ढाट" उपन्यास का शास्त्री जी एक ढोंगी पंडित है । जो किशना से प्रभावित होकर उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है ।[4]

- -

1. सुबह के इन्तजार तक : पृ. 72.
2. चौदह फेरे : शिवानी : पृ. 105.
3. भैरवी : शिवानी : पृ. 145.
4. किशुनुली का ढाट : शिवानी :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों को मध्यवर्गीय पुरुष पात्रों का चित्रण करने में अधिक सफलता हुई है क्योंकि वे इसी मध्यवर्ग के बीच रहती है । मध्यवर्गीय पुरुषों का यथार्थवादी चित्रण किया है । उनके प्रेम, स्वार्थ, निवृत्तिप्रधान मनोवृत्ति, कुंठाएं, क्षुभ, आर्थिक संघर्ष तथा राजनीतिक चेतना का व्यापक रूप से चित्रण किया है । मध्यवर्ग के पुरुषों को परखने की उनके पास पैनी दृष्टि है । वस्तुतः साठोत्तरी महिला उपन्यासकार प्रधान रूप में मध्यवर्ग के उपन्यासकार है और मध्यवर्ग की समस्याओं की दृष्टि से इनके उपन्यास अपना विशेष महत्त्व रखती हैं ।

5·5·3 साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के निम्न वर्गीय पुरुष पात्र

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की लेखनी न सिर्फ उच्चवर्ग एवं मध्यवर्ग के पुरुष पात्रों पर चली, साथ ही निम्न वर्ग के पुरुष पात्रों के गुणों और अवगुणों का भी सूक्ष्म रूप से चित्रण किया है ।

निम्नवर्गीय पुरुष पात्रों में दरिद्रता के कारण अनेक दुर्गुणों का समावेश होता है । यह वर्ग मानवीय सम्बन्धों की बिल्कुल परवाह नहीं करता है । बहुत ही आसानी से यह वर्ग इन सम्बन्धों को तोड़ देता है । "कौरजा" उपन्यास का करीम खाँ एक ऐसा निम्नवर्गीय पुरुष पात्र है जो अपनी पत्नी यहाँ तक कि माँ की भी उपेक्षा करता है । माँ के मृत्यु के समीप होने पर भी वह उसके पास नहीं आता है ।[1] इसी प्रकार रहमान खाँ इससे भी अधिक निम्नवर्गीय दुर्गुणों से युक्त है । वह अपनी बेटी पर बुरी नजर रखता है " आदमी की वहशी आँखों का पानी था, जो घर में फुदकती नयी परों को फड़फड़ाती चिड़ियों को एक ही बार में दबोच लेना चाहते थे"।[2]

- -

1· कौरजा : मेहरुन्निसा परवेज़ : पृ·

2· - वही - पृ·22·

निम्न वर्गीय पुरुष पात्र मद्यपान करता है । दिन-भर के कड़े परिश्रम की वह थकान के समय मद्यपान के द्वारा छुटा देता है । " कृष्णा अग्निहोत्री" का उपन्यास " टपरेवाले" के प्रायः सभी पुरुष पात्र मद्यपान करते हैं । धन और वस्त्रों के अभाव में उनकी स्त्रियों और लड़कियों को शरीर का व्यापार भी करना पड़ता है । गोरे लाल, राजभरोसे, हैवा, हरदास, देबू यह सब टपरे वाले है । परिश्रम के साथ-साथ यह मद्यपान भी करते हैं । यह साफ कहते हैं कि " सब टपरेवाले पीते हैं । ये कोई साधु तो नहीं बन गया । शेर की खाल ओढ़ने से कोई गीदड़ शेर नहीं बनता है । मर्द का बच्चा है, पीयेगा, खायेगा, लेगा ।[1] अपनी कमाई का यह लोग आधा पीने में लगा देते हैं । " पहली तारीख को पचास में से दस की शराब पीकर गोरेलाल लौटा ।[2] परिश्रमी होते हुये भी निम्नवर्गीय पुरुष पात्र एक स्थान पर टिक कर कार्य नहीं करते हैं । यह वर्ग बहुत ही लम्पटता से अपनी पत्नी के होते हुये भी अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित करता है । "अनारो" उपन्यास का नंदलाल इसी प्रकार का निम्नवर्गीय पुरुष है । वह अपनी पत्नी अनारो के रहते हुये भी दूसरी स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करता है । परिश्रमी होते हुये भी एक स्थान पर टिककर काम नहीं करता है । साथ ही वह पीता भी है । गंजी के बाप को तो बस भागने की लत है । वह माल घर रखकर दुनिया-भर का कोहराम मचाए रहेगा । दारू-बीड़ी, गाली-गलौज, मारधाड़, कर्ज उधार- सब ही कुछ कर-कराके भाग लेगा । अपने आप तो घर पलटेगा भी तो सीधा नौकरी को लात मारकर । नाक पे तो मक्खी नहीं बैठने देगा । फिर क्या मालिक की कैसी सुन ले ।[3] नंदलाल एक ऐसा पुरुष पात्र है जो कभी अनारो की सहायता नहीं करता है । जब-जब

---

1. टपरे वाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.13.
2. -वही- पृ.26
3. अनारो : मंजुल भगत : पृ.6-8.

नौकरी छोड़कर अनारो की कमाई खा कर पड़ा रहता है और उस पर रौब जमाता है । यहाँ तक कि अपनी बेटी के विवाह पर भी वह अपनी पत्नी अनारो की कुछ भी सहायता नहीं करता है । वह अनारो के काम पर न जाने पर वह उससे साफ कहता है " काम पै नहीं गई ? सोचती होगी, कोल्हू का बैल तो खूँटे से बँधा है अपनी हड्डियों का चूरा कर के खिला देगा, पूरे कुनबे को । वह लोग तुझे यहाँ पड़ी चारपाई तोड़ने के पैसे देते हैं ? क्यों ? कर ले राम ।मैं तो वैसे भी अपनी नब्बे चाकरी की साली ओछी नौकरी मालिक की नाक पै मारकर आ गया । 1.

निर्धन व्यक्ति भी अपने सम्मान की रक्षा के निमित्त अपने प्राण निछावर करने को भी उद्यत रहते हैं । "एक और बात" उपन्यास का मोनू गरीब किसान है, वह भूखों मरता है, परन्तु उसे यह गँवारा नहीं कि कुछ पर्त गरीबी के कारण अपनी बेटी को प्रधान के हाथ बेचे । इससे वह मर जाना अच्छा समझता है । 2.

यह आवश्यक नहीं है कि सभी अवगुण निम्न वर्गीय पुरुषों में पाये जाते हैं । केवल गुणों से यह वर्ग भी वंचित नहीं रहता है । कुछ पुरुष अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते हैं, और कुछ पुरुष एक बार जिससे प्रेम करते हैं, दूसरा दूसरी ओर ताकते भी नहीं है । "कोहरे" उपन्यास का मोहन अपनी पत्नी दुलरिया से बेहद प्रेम करता है । उसकी पत्नी बीमार है, जिससे वह परेशान रहता है "सच्चाई दुलरिया है हमार जीवन है, हमका बहुत पियारी दुलरिया । हमका तो कि यह है - मजूरी कैसन हो पेट्ट पकनी की है, मर-मरा गई तो हम खत्म हो जाय । और मोहन की आवाज़नी लाल-लाल सी आँखों से आँसू टपकने लगे टप्-टप्-टप् ।3. "टपरेवाले"

---

1. अनारो : मंजुल भगत : पृ.50.
2. एक और बात : शान्ति जोशी : पृ. 14.
3. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ.30.

उपन्यास का गौरैलाल भी अपनी पत्नी से प्रेम करता है । "गौरैलाल अन्य टपरेवालों की तरह पत्नी को मारता-पीटता नहीं पत्नी के मना करने पर जुआ खेलने भी नहीं जाता और गनेशी से बाहर का कोई भी काम नहीं करवाता ।[1]"

"प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का भीमसिंह चंदा से बेहद प्रेम करता है, उसकी मृत्यु के बाद वह उसी की याद में अपना जीवन-यापन करता है । वह कहता है कि "विवाह तो हमारा चन्दा से हो चुका था मालिक, जमाने की नजर में नहीं सही, परभु की नजरन में तो हम एक हुई चुके हैं ...। फिर दूसरा ब्याह कैसे करते .. हम मालूम है मालिक खुदा जिनावर नहीं, जो जोड़ें के बिछुरत ही अउर जोड़ा ढूँढ लेवे ।[2]" "टपरेवाले" उपन्यास का रामभरोसे लीला से बेहद प्रेम करता है । परन्तु लीला उससे प्रेम नहीं करती है, वह पन्ना से प्रेम करती है । रामभरोसे यह जानते हुए भी उससे प्रेम करता है । जब लीला पन्ना के कारण गर्भवती होती है, पन्ना उसे नहीं अपना पाता है तो रामभरोसे लीला की इज्जत की खातिर उससे समाज के सामने ब्याह करने को तैयार हो जाता है । वह लीला को मर्जी के बिना उसे छूना तक नहीं चाहता । वह कहता है "तेरे शरीर को भी तेरी तरह चाहता हूँ... परन्तु मैं तेरी मर्जी के बिना क्यों हाथ लगाऊँगा भला ![3]"

निम्न वर्ग के पुरुष स्वामी भक्त भी होते हैं । अपने मालिक को तन-मन से सेवा करते हैं । वे नमक हराम होना पसन्द नहीं करते हैं । "बेगाने घर में" गनपत, जगेसर, रहमतुल्ला, वनफुल्ला यह सब निम्नवर्गीय पुरुष पात्र है । यह किशोर चन्द के यहाँ नौकरी करते हैं । वे अपने मालिक के स्वामी भक्त हैं तथा वे जी जान से अपने मालिक की सेवा करते हैं । जब उनके मालिक की मृत्यु हो जाती है तो बहुत दुःखी हो जाते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि

- -

1. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.6.
2. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खंडेलवाल : पृ.58.
3. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.162.

उनके लिये यह शहर और कोठी बेगानी हो गई है । [1] "उसका घर" उपन्यास का जोसेफ नौकर की स्वामी भक्ति भी अनुकरणीय है । एलमा एलमा की आन्टी की सेवा वह तन-मन से करता है । उनकी मृत्यु पर वह दुःखी हो जाता है । एलमा सोचती है कि " जोसेफ के इस रूप की तो उसने कल्पना भी नहीं की थी । जितना दुःख हम खुद पाते हैं क्या उतना ही जोसेफ को भी है" ।[2]

आधुनिकीकरण एवं उसके प्रभाव के कारण निम्नवर्गीय पुरुषों में भी चेतना आई है । राजनीतिक भ्रष्टाचार को आजकल निम्नवर्गीय पुरुष भी जानने लगा है । इसका उदाहरण " महाभोज " उपन्यास के बिसेसर और बिन्दा है । दोनों शहर से शिक्षा प्राप्त करके आये हैं । वह हरिजन है, अपने गाँव को सुधारना चाहते हैं । दूसरों के दुःख दूर करने में बिसेसर की जान चली जाती है । राजनीतिक व्यक्ति निम्न वर्ग की इस चेतना को खत्म कर देना चाहते हैं । वे बिसेसर को तो खत्म कर देते हैं, साथ ही बिन्दा को भी बिसेसर की हत्या के इल्जाम में फंसा देते हैं । बिन्दा कह जाता है कि उनकी यह चेतना कभी नहीं मर सकती है । " तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता ।"[3] राजनीतिक पार्टी एवं सरकार को वे अच्छी तरह से जानने लगे हैं । बिन्दा के इस कथन से यह जाना जा सकता है । " जब सरकार ही सारी बात को दबा-ढक रही है तो मेरे-तेरे भाग-दौड़ करने से क्या होगा ! जैसा वहाँ कि सरकार वैसी दिल्ली की सरकार । हमने तो सबको देख लिया साहब ; एक वह शराबी सरकार थी, एक यह पियाची सरकार ।[4]

- -

1. बेगाने घर में : मंजुल भगत :
2. उसका घर : मेहरुन्निसा परवेज :
3. महाभोज : मन्नू भण्डारी :
4. -वही- -वही -

"टेसू की टहनियाँ" उपन्यास का खुक एक निम्नवर्गीय युवक है । जो चाहता है कि उसकी बस्ती में ठीक तरह से कानून और व्यवस्था ठीक हो । इसी सुधार भावना के कारण वह बाद में मजदूरों का नेता भी बन जाता है । वह सरकार को भी दोष देना नहीं चाहता । " जो सरकार जाती है वही कहती है कि आम आदमी खुद को असुरक्षित महसूस करने लगा है । महिलाओं का शील हरण हो रहा है - यह सब शर्मनाक और घृणित वारदातें हैं । इन्हें कानून और व्यवस्था ठीक करनी चाहिए । पर कहनी व करनी में भारी भेद है । जब हम आपस ही में एक दूसरे की फिक्र नहीं करेंगे तो कोई भी कभी भी हमारी बेटियों को नरक दे जायेगा ।"[1]

"मिट्टी के देव" का हीरामा भी यही मानता है वह कहता है कि सब अपना-अपना लगाते इतना ही काफी है । इस प्रकार हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें यही लोकोक्ति है - इसी कारण हम आगे नहीं बढ़ते .. तू कहती है कि सुधारना और दण्ड देने का काम सरकार का है , मगर मैं कहता हूँ कि अपनी बिगड़ी को बनाने में सरकार का हाथ बँटाना आवश्यक है । सारा काम सरकार को सौंप देना कहाँ कि बुद्धिमानी है ?"[2]

निम्न वर्गीय कृषक वर्ग में भी चेतना आई है। बदलते कृषक वर्ग का चित्रण "निर्धनता के अभिशाप" उपन्यास में हुआ है । जहाँ युवा वर्गीय किसानों में चेतना आई । वे कुछ किसानों से कहते हैं कि " अरे दादा काहे इतना निराश होते हो । जमीन्दार भगवान नहीं है । हम लोगों को अपने बल-पौरुष का भरोसा है । कब तक यह दासता भोगेंगे । हम लोगों के नेत्र खुल गये हैं । हम उनकी शत्रुता नहीं करते, अपने अधिकार चाहते हैं, और जो रुधिर -पसीना बहाते हैं, उसका मूल्य चाहते हैं । हम यह नहीं चाहते हैं कि दिन-रात रुधिर-पसीना हम बहाए, और हवेलियाँ बनें किसी और की, भोजन के लिये हम दूसरों का दिया हुआ दया का टुकड़ा समझें । हम

1· टेसू की टहनियाँ : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ· 60·

2· मिट्टी के देव : पद्मा त्रिवेदी : पृ· 16·

अपाहिज तो नहीं, हमारी बाहुओं में बल है । हम अपना उदर पाल सकते हैं ।"1.

जहाँ युवा वर्ग के किसानों में चेतना आई वहीं वृद्ध वर्ग अपने संस्कार नहीं तोड़ पा रहा है । वह कहता है कि " सत्य कहते हो, पर हमारे संस्कार । अपने जीवन में तो मालिक से झगड़ा कर नहीं सकते ।2.

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने निम्नवर्गीय व्यभिचारी पुरुष पात्रों का भी चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । "प्रतिध्वनियाँ" उपन्यास का उमाकान्त एक बनिया है । जो दान के नाम दुकान के सामने, गिड़गिड़ाते भिखारियों को एक पैसा भी नहीं देता, गांजे का दम लगाता, साथी दुकानदारों से झुककर गाली-गलौज करता था ... ; और यदि सौदा लेने कोई सुन्दर या जवान औरत अकेली आ जाए तो सौदा उसके हाथ में पकड़ाते, उसकी उँगलियाँ दबा देना नहीं भूलता था ।3. यह निम्नवर्गीय व्यभिचारी ग्राहक की मजबूरियों का फायदा भी उठाते हैं । " टपरेवाले" उपन्यास का सिद्धो पंडु इसी प्रकार का बनिया है । पनिया की मजबूरी का फायदा उठाकर वह उसकी काम वासना की पूर्ति करता है । "इस महीने में और उधारी हो गई । अब देर लगाना मत । बीस रुपये ऐसे नहीं मिलते ।4." अपनी काम वासना की पूर्ति करता है ।

अतएव साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने निम्नवर्ग के पुरुष पात्रों का सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण किया है ।

अतः उपर्युक्त विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों ने सभी वर्गीय पुरुष पात्रों को अपने उपन्यासों

- -

1. निर्धनता का अभिशाप : अन्नपूर्णा तांगड़ी : पृ.223.
2. -वही- -वही- : पृ.224.
3. प्रतिध्वनियाँ : दीप्ति खंडेलवाल : पृ.30.
4. टपरेवाले : कृष्णा अग्निहोत्री : पृ.37.

में किया है । सभी वर्गों की अपनी विशेषताएँ, उनके अपने संस्कार, गुण और अवगुणों का सूक्ष्म चित्रण किया है । परन्तु विशेष रूप से उन्हें सफलता मध्यवर्ग के पुरुष पात्रों के चित्रण में मिली है । उन्होंने इस वर्ग के एक-एक रेशे को बड़ी ही सूक्ष्मता से उधेड़ा है । इस वर्ग के पुरुष पात्रों का चित्रण करने में इनकी लेखनी भी खूब रमी है ।

<u>निष्कर्ष</u>

आधुनिक सामाजिक संरचना अगर व्यापक रूप से कहा जाये तो किसी भी युग की सामाजिक संरचना उस युग में अवस्थित वर्ग भेदों को समझे बिना नहीं समझी जाती है और यह भी सच है कि रचनाकार की दृष्टि उसकी वर्ग स्थिति, वर्ग-चेतना और वर्ग संस्कारों से अनुशासित रहती है । यही उसकी वर्ग दृष्टि है । इस वर्ग दृष्टि में जहाँ एक ओर उसके वर्ग-अनुभव की सीमा होती है वहीं अपनी वर्ग स्थिति को समझकर उसे अतिक्रमित कर या डी क्लास होकर एक व्यापक समग्र मानव-स्थिति को पहुँचने की प्रेरणा भी होती है । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की वर्ग दृष्टि के विश्लेषण में यह पाया गया है कि इनमें प्रमुखतः मध्यवर्गीय जीवन अनुभव और मानसिकता ही अभिव्यक्त हुई है । इसका कारण यह है कि ये उपन्यासकार लगभग सभी मध्यवर्ग से आते हैं । वर्गातिक्रमण का साहस और क्षमता एकाध ने ही दिखाई । किन्तु जो इनकी सीमा है उसी को अपनी सामर्थ्य बनाने की चेष्टा बहुतों ने की है, और वह इस तरह कि अपने वर्ग अर्थात् मध्यवर्ग का गहरा और विस्तृत चित्रण इन्होंने किया है । परन्तु साथ ही साथ उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की अच्छाइयों और बुराइयों को भी अपनी पैनी दृष्टि से महिला उपन्यासकारों ने देखा है । परन्तु फिर भी हम कह सकते हैं कि इन महिलाओं द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्रों में अधिकांश मध्यवर्ग से ही आते हैं और यह भी सच है कि इन्हीं के चित्रण में इन लोगों ने विशेष सफलता प्राप्त की है ।

---00---

अध्याय - छः

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि और युग-छवि

अध्याय : छः

6· साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि और मूल्य दृष्टि

6·1 महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि

"सौन्दर्य" शब्द साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में अनेक प्रकार से विवाद का विषय रहा है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से सौन्दर्य का अर्थ है " सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीं करोति चित्तमिति" 1· अर्थात् मन को आर्द्र करने वाला । यह सौन्दर्य का प्रभाव बतला रहा है, अर्थात् एक ऐसा गुण है जिसके कारण मन व्यापक और तरल होता है, उसकी रागात्मकता बढ़ती है । साहित्य में सौन्दर्य के अनेक पर्याय मिलते हैं जैसे आभा, कान्ति, द्युति, रूप लावण्य, सुषमा, छवि, शोभा, चारुता इत्यादि । यह सभी संज्ञाएँ सौन्दर्य की विविध व्याख्याएँ हैं। अंग्रेजी में सौन्दर्य का पर्याय है "ब्यूटी" जिसका अर्थ है मानवीय मुख, रूप या इतर वस्तुओं में आकृति, अनुपात, रंग आदि गुणों का ऐसा सहयोग जो नेत्रों को आनंद देता हो और नैतिक तथा बौद्धिक भावना का भी परितोष करता हो । वैसे सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । सौन्दर्य क्या है ? इसकी सत्ता आत्मगत है या वस्तुगत ? इसके तत्व क्या है ? सौन्दर्य के विषय में इन विविध प्रश्नों को लेकर विभिन्न धारणाएँ गढ़ी गईं । इन कठिनाइयों को ध्यान में रखकर किसी ने कहा है कि

The Road to beauty is packed with graves of theories, but the ghost walk and as the Road is always misty, few can tall the vital from the dead (The works of art wing high and clear to the goal).

अर्थात् सौन्दर्य को जाने वाला मार्ग सिद्धान्तों की समाधियों से भरा है, लेकिन इस पर प्रेत चलते हैं और चूंकि यह मार्ग सदा कोहरे

1· सौन्दर्य तत्व निरूपण : डॉ·नरसिंहाचारी की पुस्तक से उद्धृत : पृ·2·

से ढका रहता है, कुछ ही जीवन और मृत्यु में अन्तर कर पाते हैं किन्तु कलाकृतियाँ इस मार्ग से ऊँची और स्पष्ट उड़ान भरती है और लक्ष्य को पहुँच जाती है । विषय के इस कथन में एक बात स्पष्ट है कि सौन्दर्य को लेकर सैद्धान्तिक विवादों में पड़ना व्यर्थ है । कलाकार अपनी रचनात्मक उड़ान में इस सौन्दर्य को निःसंशय रूप से पा लेते हैं ।

वैसे तो सौन्दर्य का सम्बन्ध जीवन के सभी पक्षों से है किन्तु यहाँ पर हम अपने आलोच्य उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष छवि के सन्दर्भ में ही सौन्दर्य की चर्चा करेंगे ।

मुक्तिबोध ने कहीं लिखा है कि साहित्य-विवेक जीवन-विवेक से उत्पन्न होता है । साहित्य विवेक और जीवन विवेक वस्तुतः सौन्दर्य विवेक ही के रूप है । सौन्दर्य-विवेक ही रचनाकार की सौन्दर्य दृष्टि का प्रेरक होता है । अतएव सौन्दर्य-विवेक उन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित होता है जिनमें मनुष्य का जीवन अनुशासित होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य-दृष्टि अपने आप में निरपेक्ष स्वतंत्र और ऐकान्तिक नहीं होती बल्कि यह मनुष्य जीवन की निश्चित और निर्धारित परिस्थितियों से प्रभावित होती है । सौन्दर्य दृष्टि एक दीर्घ सामाजिक प्रक्रिया का फल है । यही कारण है कि आदिम युगीन सौन्दर्य मूल्यों और आधुनिक सौन्दर्य मूल्यों में बहुत अन्तर होता है । इसका अर्थ यह है कि सौन्दर्य केवल आत्मगत नहीं होता यह वस्तुगत भी है, और इसका स्वरूप आत्म और वस्तु के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध में निरूपित होता है ।

भारतीय नवजागरण कि सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने मनुष्य को सृष्टि का सर्वाधिक सुन्दर और केन्द्रीय प्राणी माना । पन्त ने लिखा है - सुन्दर है सुमन, विहग सुन्दर

मानव तुम सबसे सुन्दरतम

यह छायावादी सौन्दर्य बोध की परिणति है जिसमें मानव-निरपेक्ष प्रकृति से ध्यान हटाकर मनुष्य पर केन्द्रित किया गया है । इस का

यही मन भावन रूप निराला की " वह तोड़ती पत्थर" में मिलता है –

श्याम तन
भर बँधा यौवन

कर्म की आँच में तपकर स्त्री का रूप का निखरता है और रचनाकार की दृष्टि भी तभी इस सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकती है जब वह स्वयं मानवीय सन्दर्भों से बँधा हो । डा॰ विजेन्द्र नारायण सिंह ने इसे श्रम का सौन्दर्य शास्त्र कहा है ।[1] यह रीतिकाल की सर्वथा विरोधी सौन्दर्य दृष्टि है । जिसके सबसे बड़े व्याख्याकार हुये प्रेमचन्द । प्रेमचन्द नये युग की सौन्दर्य दृष्टि की व्याख्या करते हुये साहित्य के सौन्दर्य मानों में आमूल परिवर्तन की माँग करते हैं । उनका बहु परिचित उद्धरण है जिसमें उन्होंने रूढ़ियुगीन सामंती सौन्दर्य दृष्टि का विरोध करते हुये नयी जनवादी सौन्दर्य दृष्टि का निरूपण किया है – " उसके [साहित्यकार] लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है – उस बच्चों वाली गरीब रूपरहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है । उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौंहों में निस्संदेह सुन्दरता का वास है, उसके उलझे हुए बालों, पपड़ियाँ पड़े हुए होठों और कुम्हलाये हुए गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहाँ ? पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है । अगर उसकी सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप-गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होठों और कुम्हलाये हुए गालों के आँसुओं में त्याग –श्रद्धा और कष्ट-सहिष्णुता है । हाँ, उसमें नफासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं ।"[2] यह सौन्दर्य दृष्टि मानव जीवन के श्रम सिक्त, कर्म संकुल

- -

1॰ उर्दू काव्य की संस्कृति : डा॰ विजेन्द्रनारायण सिंह : पृ॰ 121॰

2॰ –वही– –वही– : पृ॰ 26–27॰

सन्दर्भों से निःसृत है । प्रेमचंदोत्तर साहित्यकारों के लिये यह सौन्दर्य दृष्टि श्रेष्ठ और प्रगतिक सिद्ध हुई ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि का विवेचन करते समय हमें स्त्री मात्र की सौन्दर्य दृष्टि को साथ ही ध्यान में रखना होगा । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सौन्दर्य-बोध सुदीर्घ सामाजिक प्रवृत्तियों और प्रशिक्षण का प्रतिफल होता है तब यह स्वयं सिद्ध है कि स्त्री का सौन्दर्य बोध भी उसी सुदीर्घ परम्परा का परिणाम होगा । स्त्री की मानसिक संरचना और जीवन स्थितियों के घटक तत्वों पर पिछले अध्यायों में प्रकाश डाला जा चुका है । स्पष्ट है कि उसके सौन्दर्यबोध के निर्माण में भी यही सारे तत्व उत्तरदायी होंगे । स्त्री की सौन्दर्य दृष्टि उसकी चेतना के समान ही एक लम्बी और पुरुष प्रताड़ित जीवन की देन है । स्त्री की शृंगार प्रियता को भी पुरुषों को आकर्षित करने की यौन चेतना के रूप में देखा गया है । इसीलिये स्त्री-पुरुष समानता की बात करते हुये किसी ने कहा था कि स्त्री यदि पुरुष की बराबरी करना चाहती है तो उसे मेकअप और फैशन परस्ती छोड़ना होगा । प्रश्न यहाँ पर प्रसाधन छोड़ने या न छोड़ने का नहीं है । प्रश्न उस प्रवृत्ति के परित्याग का है जिसके अन्तर्गत स्त्री अपने को पुरुष को लुभाने, रिझाने और उसके द्वारा उपभोग किये जाने की वस्तु बना लेती है । यह देखा जा चुका है कि स्त्री का आज तक का इतिहास सौन्दर्य के भोक्ता (सब्जेक्ट) का नहीं बल्कि सौन्दर्य की वस्तु (आब्जेक्ट) के रूप में रहा है । तब यह निश्चय ही बहस का रोचक विषय है कि स्त्री जब सौन्दर्य के भोक्ता या रचयिता के पद पर आसीन होगी तब उसकी सौन्दर्य दृष्टि क्या और कैसी होगी । यह और अधिक रोचक इसलिये हो जाता है कि हम इस अध्याय में साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रस्तुत पुरुष चरित्रों के सौन्दर्य अंकन का विवेचन करना चाहते हैं । इन पात्रों के सौन्दर्य वर्णन जहाँ स्त्री की पुरुष विषयक सौन्दर्य-अपेक्षाएं और मानदण्ड प्रकट होते हैं वहीं उसकी सौन्दर्य दृष्टि का भी पता चलता है ।

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में सौन्दर्य विषयक विवेचन बहुत कम मिलता है केवल एक उपन्यास "कोहरे" में लेखिका दीप्ति खण्डेलवाल की सौन्दर्य विषयक अवधारणा स्पष्ट दी गई है । शेष सभी लेखिकाओं के पुरुष पात्रों के चित्रण में ही उनकी सौन्दर्य दृष्टि को ढूंढा जा सकता है इसके लिये कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं मिलता इन पुरुष पात्रों के चित्रण में आलोच्य उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि के विषय में दो बातें स्पष्ट की जा सकती है - पहली यह कि इनका सौन्दर्य विवेक जीवन विवेक से विच्छिन्न नहीं है । अर्थात् इनके पात्रों का सौन्दर्य किसी लोकोत्तर अप तत्वों का निर्देश नहीं बल्कि इसी समाज के जीवन से परिचालित और स्थापित सौन्दर्य है । अर्थात् यह पात्र वैसे ही सुन्दर या असुन्दर तथा सहज और स्वाभाविक है । जैसे कि हमारे आस-पास के जीवन में लोग होते हैं । अर्थात् इनकी सौन्दर्य दृष्टि मानवीय सरोकारों से जुड़ी हुई है । दूसरी बात यह कि इन कथाकारों ने अपने पुरुष पात्रों के सौन्दर्य को उनके चरित्र से अभिन्न करके देखा है अर्थात् इनके अनुसार सौन्दर्य चरित्र की सुगन्ध है । इसका रूप मुख्यतः आन्तरिक गुणों से बनता है । इसमें बाह्य सौष्ठव का बहुत अधिक योग नहीं होता ।

6·2 साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के पुरुष पात्रों का सौन्दर्य-चित्रण

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों में दीप्ति खण्डेलवाल ने सौन्दर्य का विश्लेषण इस प्रकार किया है । "सौन्दर्य सच्चा सौन्दर्य वह होता है, जो जितना निकट आता जाए उतना सुन्दरतम होता जाए ।" कितना सच है यह कथन " दाम्पत्य का प्रेम प्रणय और परिणय का आधार एवं आकर्षण सौन्दर्य ही होता है । किसी न किसी का मैं- -- फिर चाहे वह कजरारी आँखों का हो --चाहे भावना के उजले फूलों का --- अर्थात् चाहे तन का हो या मन का --- । फिर " प्रेम" की एकात्मकता में यह तन और मन भी

इतने "एक" हो उठते हैं कि उस एकात्मकता को काटकर अलग नहीं किया जा सकता, सुहाग सेज पर निर्वसन तन एक होते हैं, तो भावना की सेज पर मन भी निर्वसन होकर ही एक हो पाते हैं ... किन्तु तन की निर्वसना की मोहकता तो स्थूल होने के कारण जल्दी ही जीत या हार जाती है, मन की " निर्वसनता". . मन का सौन्दर्य कदाचित् इतना विरल होता है कि न उसे देख पाना सहज है, न दिखा पाना ।"[1] इस विवेचन में सौन्दर्य का सम्बन्ध पूरी तरह से मानवीय सम्बन्धों की निश्छलता से जोड़ा गया है । लेखिका के अनुसार सौन्दर्य सापेक्षिक तत्व है सौन्दर्य मानवीय भावनाओं के सन्दर्भ में ही अर्थ लेता है । दीप्ति खण्डेलवाल का समूचा कथा-साहित्य सौन्दर्य की इसी भावना के रूपों से देखता है ।"कोहरे" की नायिका नायक सुनील पर उसके शारीरिक सौन्दर्य को देखकर ही मुग्ध होती है वह कहती है " मैं सुनील के ग्रीकगाड जैसे शारीरिक सौष्ठव पर मुग्ध हुई थी ।"[2] सुनील की विशेषता की " अति गौर वर्ण" । सुनील के क्रुद्ध होने की स्थिति में भी लेखिका यह बताना नहीं भूलती की " सुनील का अति गौर वर्ण मुख" जैसे किसी तमतमाहट से आरक्त हो उठा ।"[3] क्रोध सौन्दर्य को विकृत कर देता है वह "गौर वर्ण मुख" को "आरक्त" बना देता है । सुनील का चरित्र भी ऐसे ही विकृत भावों से बुना गया है । उसमें " अहं" बहुत प्रबल था । वह नायिका को पूरी तरह से अपनी सम्पत्ति समझता है । नायिका से वह स्पष्ट कहता है " आप कविता लिखेंगी तो सिर्फ मेरे लिये छपने छपाने के लिये नहीं ।"[4] वह इतना नीच है कि जब वह किसी और स्त्री के साथ कमरे में बन्द रहता है और उपन्यास की नायिका उसकी पत्नी क्रोध में दरवाजा खटखटाती है तो वह बाहर

- -

1. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 8.
2. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 10.
3. - वही- पृ. 15.
4. - वही - पृ. 16.

निकलकर वही वैष्णवों से पूछता है " कहिये जानेमन क्या तकलीफ है आपको जो ऐसी गड़बड़ कर रही थी कि दरवाजा ही तोड़े डाल रही थी ।"[1] सिगरेट के साथ पत्नी के लिये भी वह कहता है आई मस्ट थैंक दोस ग्रान्ड ट ।[2] मैत्रिका ने सुनील का ग्रीक गाड वाला जो सौन्दर्यांकन किया है वह उसके चरित्र को देखते हुये एक कौतुक ही लगता है और मैत्रिका को यह बात सच लगती है कि सौन्दर्य का सम्बन्ध सत्य से ही होता है । इसी उपन्यास में केन्द्रीय समस्या के रूप में दीप्ति खण्डेलवाल ने एक रोचक और विचित्र ढंग उठाया है "कोहरे" की नायिका के पिता है मेजर सिन्हा । उनका रूप वर्णन देखिये " ऊँचा कद लंबा गोरा रंग आकर्षक व्यक्तित्व जिसको उनके फौजी पेशे ने कस कर रख दिया था - वह सदा तन के रहते थे, अपने सुदर्शन व्यक्तित्व या अपने आभिजात्य आकर्षण का पूरा खुमार उनके ओठों से लेकर आँखों तक छाया रहता है ।[3] मेजर सिन्हा की पत्नी अर्थात् नायिका की माँ ऐसे आभिजात्य सौन्दर्य की स्वामिनी नहीं है, वह सामान्य रूप रंग वाली स्त्री है । साँवला रंग, छोटा कद बिल्कुल अपने पति का प्रतिरूप । उसका मजाक उड़ाते हुये मेजर सिन्हा कहते हैं " तुम्हारे माँ-बाप ने एक ही अक्लमंदी की जो तुम्हारा नाम श्यामा रखा.... तुम्हारे रंग रूप के बिल्कुल लायक वही पुनम या किरण रख देते तो ... श्यामा का अर्थ तो काली औरत या काली रात होता है जो तुम पर फिट बैठता है ।"[4] मेजर सिन्हा का अपने रूप पर गर्व और पत्नी की उपेक्षा का यह भाव उनके दाम्पत्य के विघटन का कारण है । ठीक इसी के विलोम में मैत्रिका ने एक और युगल की रचना की है यह युगल है मील शौबी और उसकी पत्नी का । मील शौबी

- -

1. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 27.

2 - वही - 28.

3. - वही - पृ. 29.

4. - वही - पृ. 40-41.

का रूप देखिये " बड़ी-बड़ी भूरी डोरो वाली आँखें, घनी रोबीदार मूँछें पापा जैसा ही ऊँचा पूरा कद, पापा जैसा ही काफी गोरा रंग ।[1] मंगल धोबी की पत्नी है फुलरिया वह " दूसरी पत्नी नरियल काली"[2] है लेकिन मंगल धोबी की वह सचमुच में दुलरिया है । "कोहरे" की नायिका की माँ इस सौन्दर्य की किलती है एक ओर उच्चवर्गीय मेजर सिन्हा का अपनी सामान्य रूपवाली स्त्री के प्रति निर्मम उपेक्षापूर्ण व्यवहार उसके अभिजात सौन्दर्य की पोल खोल कर रख देता है तो दूसरी ओर उतने ही सुन्दर किन्तु निम्न वर्गीय मंगल धोबी का अपनी असुन्दर पत्नी का प्यार दुलार इस बात की पुष्टि करता है कि सौन्दर्य का मूल्यांकन करने के लिये वर्ण वस्तु ही पर्याप्त नहीं है । सौन्दर्य की पहचान के लिये वर्ग संस्कार आवश्यक नहीं इसमें उच्च या नीच का अन्तर नहीं । सौन्दर्य आत्मिकता और निश्छलता से पैदा होता है । इसके लिये आवश्यक है सत्ता और निश्छल समर्पण-भाव । कहानी का व्यंग्य तब सर्वाधिक तीखा हो उठता है जब "कोहरे" की नायिका की माँ श्यामा अपने सुशिक्षित सुन्दर पति के लिये सोचती है " काश तुम मंगल धोबी से ही सकते ··काश ।[3] दीप्ति खण्डेलवाल का विचार है कि " सौन्दर्य देखने वाले की आँखों में होता है ! पात्र में ही नहीं ! यानि की सौन्दर्य हो तो उसे परखने, देखने स्वीकार करने वाली आँखें भी चाहिये, अन्यथा भरपूर सौन्दर्य भी व्यर्थ होकर रह जाता है ।"[4] दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों के लगभग सभी नायिकाओं की यही शिकायत है । यह शिकायत है अपने सौन्दर्य के अस्वीकार की, पति पुरुष की आँखों में वह सौन्दर्य की मान्यता न पाने की और इस कारण इस सौन्दर्य के व्यर्थ हो जाने की । जिस तरह नारी सौन्दर्य पुरुष को

---

1. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 29.
2. - वही- पृ. 28.
3. - वही- पृ. 30.
4. - वही - पृ. 8.

अभ्यर्थना का अपेक्षित होता है उसी तरह पुरुष सौन्दर्य भी स्त्री की आँखों में प्रशंसा और स्वीकार का भाव जगाने में ही सार्थक होता है किन्तु यह प्रशंसा और स्वीकार पुरुष सौन्दर्य में निहित चारित्रिक तत्वों में परिवर्तन आने के साथ बदल जाता है क्योंकि दीप्ति खंडेलवाल के अनुसार सौन्दर्य सत्य और नैतिकता से जुड़ा हुआ है इस बात का बड़ा ही सुन्दर चित्रण लेखिका ने अपने उपन्यास " वह तीसरा " में किया है । इस उपन्यास की नायिका संदीप पर मुग्ध है । मुग्धता की पहली अवस्था में वह कहती है " संदीप की आँखें बड़ी नहीं थीं, किन्तु मुझे लगा पुरुष की आँखें ऐसी ही होनी चाहिये । संदीप के दाँत ऊबड़ खाबड़ थे मैंने सोचा बेतरतीब दाँतों में भी अपना एक सौन्दर्य होता है । सन्दीप गोरे नहीं थे पर कृष्ण भी तो काले थे ।"1.

यह मुग्धता का पहला चरण है जब नायिका का ध्यान संदीप के आकर्षण पर इतना टिका है कि वह उसके बाहरी सौन्दर्य पर ध्यान नहीं देती । उसकी कमियों को भी अच्छाइयों की तरह समझती है । अब इस आकर्षण की दूसरी स्थिति देखिये जिसमें संदीप के चरित्र का मैलापन ऊपर आया है । तब नायिका को लगता है " संदीप की आँखें छोटी हैं, संदीप के दाँत ऊबड़ खाबड़ हैं, संदीप गोरे नहीं हैं ।" यह संदीप की कमियों का अहसास है क्योंकि संदीप के चरित्र की कमियाँ अब नायिका को कचोट रही हैं और अब अंतिम स्थिति देखिये वही संदीप है वही नायिका है और वही दोनों का दाम्पत्य सम्बन्ध है किन्तु अब वह सोच रही है " "साँवला क्या खासा पक्का रंग है । खर्राटे लेने में चेहरा कैसा विकृत हो रहा है ।" यह "विकृत चेहरा" केवल खर्राटे लेने के कारण नहीं है बल्कि इसीलिये है कि संदीप के व्यक्तित्व की सारी विकृति अब उद्घाटित हो गई है । इस प्रकार दीप्ति खंडेलवाल ने यह सिद्ध कर दिया है कि सौन्दर्य दृष्टा की आँखों में होता है । यह दृष्टा

- -

1. वह तीसरा : दीप्ति खंडेलवाल : पृ. 1.

और कुछ वस्तु या व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों का अधूरा होता है। यह पूरी तरह से भावनाओं की सच्चाई पर आधारित। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यास "प्रिया" का एक चरित्र है डाक्टर मनसिज चौधरी। जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया " तीस वर्ष का गठीला हँसमुख जिन्दादिल तरुण " मनसिज सचमुच ऐसी किरण था"। वह उपन्यास की नायिका प्रिया को अपनी और आकर्षित कर लेता है। इसकी परिणति रूप में वह प्रिया से छलपूर्वक शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है। किन्तु यह कार्य उसे बहुत मँहगा पड़ता है। प्रिया हमेशा के लिए उससे विमुख हो जाती है। इसलिये कि उसने उसके साथ छल किया है। जिस मनसिज का रूप प्रिया के आँखों में इस प्रकार था " मनसिज के होंठ श्यामल थे, बत्तीसी एकदम उज्ज्वल और हँसी पता नहीं उस बत्तीसी के कारण उज्ज्वल थी या नेपथ्य की किसी उज्ज्वलता से प्रतिबिम्बित। "[1] वही रूप अब नेपथ्य की उज्ज्वलता में छिपी कालिमा के उभर कर सामने आ जाने के कारण कुरूप हो गया है। दीप्ति खण्डेलवाल देह की सौन्दर्य से अधिक मन के सौन्दर्य पर बल देती है और वे यह भी कहती है कि मन के सौन्दर्य को समझना और अधिक कठिन है क्योंकि मन का सौन्दर्य अमूर्त होता है।[2] ऐसे पुरुष चरित्र दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों में बहुत ही कम है जिनका शरीर भीतर और बाहर एक समान सुन्दर हो। "प्रिया" उपन्यास का एक ऐसा ही विरल चरित्र है देवदास - अत्यन्त सुदर्शन था देवदास घने घुँघराले बाल, व बड़ी-बड़ी आँखें, तीखी नाक, ऊँचा कद, दमकता मुख।[3] वह भीतर से भी उतना ही सुन्दर और उदार है किन्तु ऐसे चरित्रों की संख्या बहुत कम है।

---

1. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 134.
2. कोहरे : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 8.
3. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 72.

दीप्ति खण्डेलवाल के पुरुष पात्रों के सन्दर्भ में उनकी सौन्दर्य दृष्टि की कुछ विशेषतायें सामने आती है । पुरुष सौन्दर्य को वे लम्बे कद, गोरे वर्ण सुगठित शरीर औरबड़ी-बड़ी आँखों से जोड़ती है । बहुत अधिक भावुकता पुरुष के लिये व्यर्थ है । प्रिया में वे लिखती है "पुरुष की भावुकता में डूबी आँखें व्यर्थ है ... नारी को पुष्ट वक्ष चाहिये सिर टेकने के लिये सबल भुजायें चाहिये उनमें समाने के लिये ।"[1] यह पुरुष सौन्दर्य का नारी चेतना से आँका गया प्रतिमान है और पुरुष सौन्दर्य के पारम्परिक प्रतिमान से मेल खाता है पुरुष सौन्दर्य चित्रण का एक और गुण दीप्ति खण्डेलवाल ने बताया है और वह है आभिजात्य । उनके अनुसार ऊँचा कद और खरा गोरा रंग अभिजात्य के सूचक है । यह सौन्दर्य का कुलीन वर्गीय संस्कार है । लेखिका की दृष्टि मध्यवर्गीय संस्कारों से अनुशासित है जिसके अनुसार वह गौरवर्ण को कुलीनता से और श्यामल वर्ण को निम्न वर्ग से जोड़ कर देखती है ।

पुरुष सौन्दर्य के ये प्रतिमान -ऊँचा कद, सुगठित शरीर, विशाल वक्षस्थल और, पुष्ट भुजायें आदि अनेक महिला उपन्यासकारों के सौन्दर्य दृष्टि को आच्छादित किये हुये हैं । कुसुम अंसल के उपन्यास "उसकी पंचवटी की नायिका अपने सेठ विक्रम के प्रति आकर्षित होती है और अपने वैवाहिक जीवन को बलि देकर भी उससे सम्बन्ध स्थापित करती है । विक्रम का प्रमुख आकर्षण है " बालों से भरी विशाल छाती" नायिका के सन्दर्भ में लेखिका लिखती है " बालों से भरी उसकी विशाल छाती पर एक बार सिर टिका देने की इच्छा मन में प्रबल हो उठी"।[2] इसी तरह " सूरज के इन्तजार तक" उपन्यास में सूर्यबाला इसके एक पात्र के बारे में लिखती है " वह सीने तक बटन खोले मदमाते हाथी की तरह झूमता पास से आया था ।"[3]

- -

1. प्रिया : दीप्ति खण्डेलवाल : पृ. 116.

2. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ. 58.

3. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ.24.

पुरुष के घिरे बालों से भरे सीने पर बल देते हुये शुभा वर्मा के उपन्यास "खोते हुए" की नायिका कहती है " सीने पर बाल मर्दों की शोभा है"।1. इस पर नायक का जवाब है " आदमी हूँ रीछ नहीं"2. यह इस सौन्दर्य प्रतिमान पर एक तरह का व्यंग्य है । इस व्यंग्य और वितृष्णा भाव की ओर आगे बढ़ाते हुये " उस तक" उपन्यास कुसुम अंसल लिखती है " अनावृत्त रीछ के बालों से भरा उनका शरीर ।- मन को वितृष्णा से भर देता है ।"3. मूँछ भी पुरुषोचित सौन्दर्य का एक प्रतिमान माना गया । "कोहरे" उपन्यास के मेजर सिन्हा की "घनी घबीदार मूँछ " इसी प्रकार " अमलतास" में दिवान साहब की " बड़ी-बड़ी तनी हुई मूँछ हैं । "सीढ़िया" उपन्यास में शशिप्रभा शास्त्री ने " नन्हीं-नन्हीं मूँछों की उभरती रेखा में सौन्दर्य देखा किन्तु करीम शेख चेहरे का भी अपना सौन्दर्य है । " सीढ़िया उपन्यास का एक चरित्र कासम करीम शेख है । लगभग सभी उपन्यासों में इन उपन्यासकारों ने पुरुष के चित्र को ऊँचे कद और सुगठित शरीर से युक्त किया है । जैसे " इम्नो" के ताऊ या " वह तीसरा" और "कोहरे" के पुरुष पात्र " प्रेम कहानी" का गिनेस " उन शर्तों पर के" जीजा जी । ऊँचा कद और भरा पूरा डील-डौल इतना प्रभावशाली होता है कि "सागरपाखी" (बिन्दु सिन्हा) में बताया गया है कि "ऊँचे कद और भरे-पूरे डील डौल वाला प्रशान्त वहाँ की उपस्थिति पर छाया सा लगता था और उसकी बेबाक हँसी ... सुलोचना ने पहली बार महसूस किया कि कमरे में बैठे उस सुदर्शन युवक के समक्ष उसका नारीत्व बौना सा हो उठता है ।4. पुरुष के व्यक्तित्व का आकर्षण उसके पौरुषमय होने में है । प्रेम कहानी के नायक गिनेस के लिये ममता कालिया लिखती है " वह इतना सुन्दर, इतना पौरुषमय , इतना बलिष्ठ लग रहा था मानो किसी मैगज़ीन से

- -

1. उसकी पंचवटी : कुसुम अंसल : पृ. 17.
2. - वही - -वही- पृ. 17.
3. - वही- -वही- पृ. 25.
4 सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 27.

काटी गई तस्वीर एकाएक उभरती हुई, बोलती हुई सामने आ जायें।"[1] ममता कालिया "बेघर" में नायक परमजीत के रूप वर्णन में कुछ प्रान्तीय "टच" भी देती है - परमजीत खूबसूरत था और गोरा। ऐसी खूबसूरती सिर्फ पंजाबी लड़कों में होती है। जिनमें कद डील डौल रंग और नक्शा सभी एक दूसरे से होड़ लेते हैं।"[2] ममता कालिया का रूप वर्णन अपने आप में विशिष्ट है उनका व्यंग्य बड़ा धार दार है। बेघर के ही एक और पुरुष पात्र के बारे में वह लिखती है कि "पीटर को देखकर लगता है उसके शरीर में ज्यादा हड्डियाँ लग गई हैं या वे गलत जगह पर लग गई हैं। टेरीलिन के कमीज से झांकती उसके कालर और कन्धे की हड्डियाँ खासा हवाई जहाज बना रही थी।"[3] आँखों का भी पुरुष रूप वर्णन में महत्वपूर्ण स्थान है "उन रातों पर" उपन्यास के पात्र आनन्द की आँखें "बड़ी भाव पूर्ण"[4] हैं, उसी के एक और पात्र चन्द्रमोहन की "कुछ हरी कुछ बादामी"[5] चमक लिये आँखें हैं। मुक्ता के पात्र मणि की "भारी वजनदार आँखें"[6] अन्यत्र उसकी आँखों की शिनाख्त "बड़ी-बड़ी काली पुतलियों वाली"[7] "प्रेम कहानी" के पात्र मोहम्मद की आँखों की प्रशंसा में ममता कालिया लिखती है - "वाकई मुहम्मद की आँखें एक ख्वाब थी, इतनी कशिश इतनी गहराई इतना रंग राग उन आँखों में था, सागर में सुराही का असर।"[8] "प्रिया" का नायक पात्र देवदास "कलियों सी बड़ी आँखों"[9] का स्वामी है। किन्तु दीप्ति

- -

1. सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 34.
2. सागरपाखी : बिन्दु सिन्हा : पृ. 78.
3. बेघर : ममता कालिया : पृ. 19.
4. - वही - पृ. 14.
5. - वही - पृ. 85.
6. - वही - पृ. 19.
7. - वही - पृ. 106.
8. - वही - पृ. 27.
9. - वही - पृ. 72.

खण्डेलवाल के ही एक और उपन्यास 'बेघर' में कहा गया है कि "पुरुष की भावुकता में डूबी आँखें बड़ी हैं ..."[1] इसके विपरीत मनुष्य के मनोभावों की कुरूपता का चित्रण भी आँखों के द्वारा किया गया। "अनित्य" उपन्यास का सुरेश छोटी मिच-मिची आँखों वाला है। "एक और बात" (शान्ति जोशी) का प्रधान बड़ी आँखें रखते हुये भी सुन्दर नहीं है। "प्रधान की बड़ी-बड़ी आँखें बाहर को निकली हुई हैं मानो मद्यपान किया हुआ जैसा हो।[2] इसी तरह एक और जगह उसकी " उबली हुई लाल उदासीन आँखें" बतायी गई है।[3]
"बीज" में एक पात्र है मास्टर उसकी आँखों का वर्णन देखिये " आँखें छोटी और चिपचिपी थीं और उनमें अक्सर कीच जमा रहता था जिसे बाहर निकालने के लिये वह उन्हें अजीब तरह से मिचमिचाया करता।"[4]
आँखों में मनोभावों को प्रदर्शित करने की शक्ति होती है वे सुन्दर हों तो भी उनमें झलकता भाव सुन्दर न हो, उनसे जुड़ा चरित्र अमानवीय हो तो भी आँखों का बाहरी सौन्दर्य कोई मूल्य नहीं रखता।
दीप्ति खण्डेलवाल अपने उपन्यास " वह तीसरा" के नायक संदीप की आँखों के बारे में लिखती है " वे आँखें सिर्फ वस्तु यथार्थ की आँखें थीं। भावना का मजाक उड़ाती आँखें कहाँ से ले आये थे संदीप ऐसी आँखें।"[5]
अन्त में दिया गया प्रश्न बड़ा सार्थक है उन आँखों का सौन्दर्य ही क्या जो मानवीयता से रिक्त हो। " उन शाखों पर" उपन्यास में चित्रण है " कुमार की आँखें वेदना से गीली थीं, जिनसे सिकुड़ी सिकुड़ी लगती थीं।"[6] आँखें भीतर की भावना से फैलती या सिकुड़ती

- -

1. बेघर : ममता कालिया : पृ. 116.
2. बेघर : ममता कालिया : पृ. 139.
3. पृ. 16.
4. पृ. 16.
5. बीज : मृदुला गर्ग : पृ. 18.
6. पृ. 32.

है । इसी उपन्यास में एक और वर्णन आया है " उसके होंठों पर तीखी हँसी होती और मन में बैचेनी का पूरा आकाश डोलता काँपता रहता ।" 1. भीतर के भाव ही शरीर को संचालित करते हैं । "टुकड़ों में बँटा इन्द्र धनुष" [सुधा सक्सेना] में चित्रण है "किसी की जुड़ी हुई आँखें और दूसरे की खुशी को बाँट सकने की सामर्थ्य का प्रदर्शन करती हुई बाँहे ।"2.

साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के रूप चित्रण में भाव चित्रण का भी योग दिखाई देता है । रूप मूर्त होता है और भाव अमूर्त । सुन्दरता या कुरूपता रूप ही का आश्रय लेकर व्यक्त होती है, और आलोच्य उपन्यासकारों में सुन्दरता या कुरूपता केवल रूप की वस्तु नहीं है, बल्कि उसके पीछे भाव कारण रूप में बताया गया है । "मेरा नरक अपना है" में निरुपमा सेवती का वाक्य है "इस कारण या पता नहीं किस वजह से उस तीखे सुन्दर चेहरे पर बड़े अपनत्व का सलोनापन साफ छाया था ।"3. यह सौन्दर्य में अपनत्व के मिल जाने के कारण बढ़ने वाला सलोनापन है शिवानी तो अपने रूप चित्रण के लिये प्रसिद्ध है ही । उनका एक पुरुष चित्र देखिये " उस लम्बे गठीले बदन के कुंदन वर्णी अपरिचित युवक x x x उसी रंग से खुब मिल गये, उसके मूँगा रेशमी कुर्ते का हिरण्यमय आभरण , प्रतिभा-दीप्त ललाट पर तिरछे दाग का निशान और ऊँचा कद ।" 4. यह "श्मशान चम्पा" के मधुकर का सौन्दर्य है। आगे उसके स्वभाव और रूप दोनों का मिला-जुला चित्रण देखिये - " उसका मूँगा रेशम का कुर्ता, किसी अनजाने क्षोभ से चमकती आँखें, होठों पर दैव दुर्लभ स्मित के रहने पर भी उठी भृकुटि का कठोर कटाक्ष, प्याले में दोनों डोल रही है । लम्बी मध्यमा पर चमकते पुखराज की पीताभ झलक ।"

- -

1. पृ.
2. पृ. 159.
3. पृ. 50.
4. श्मशान चम्पा : शिवानी : पृ. 15.
5. पृ. 39.

एक और पुरुष चित्र देखिये जिसमें बाह्य आकृति और भीतरी प्रकृति का समन्वय किया गया है । "कलफ किया खद्दी का कुर्ता, यत्न से चुनी हुई जरी पाड की भाँति धोती, और कन्धे पर पड़ा पश्मीना लगता था किसी अरण्य में शूटिंग के लिये आई किसी फिल्म का जमीन्दार की भूमिका का अवतरित होने आया ... श्वेत सँवारे काक पक्ष भी उस चेहरे को रूपक के अनुरूप गरिमा नहीं दे पा रहे थे । अँगुलियों में बड़े-बड़े नगों की सिगनेट अँगूठियाँ, गले में झूल रही काले धागे में बँधी सोने की छड़ी और आँखों में लगा   चश्मा । उस रोबीले चेहरे को और भी रहस्यमय बना रहे थे ।"1. उस तक उपन्यास का एक पुरुष चित्र है "ऐसा शानदार पुरुष और गम्भीर चेहरा आँखों पर सुनहले फ्रेम का चश्मा, लहरदार बालों पर हवा में हिलती एक सफेद लट । बड़ा सराहनीय वेश - जैसे सब कुछ सुरुचि से पहना गया हो, गढ़ा गया हो ।" 2.

आलोच्य रचनाकारों ने रूप-चित्रण में आकृति और प्रकृति के सामंजस्य का पूरा ध्यान रखा है । आकृति अनुशासित होती है प्रकृति से, प्रकृति सुन्दर न हो तो आकृति का सौन्दर्य भी कोई अर्थ नहीं रखता । इसका उदाहरण हम ऊपर देख चुके हैं । अब ऐसे उदाहरणों पर ध्यान दिया जाये जिनमें आकृति और प्रकृति दोनों की कुरूपता का चित्रण हुआ है " उस तक" उपन्यास के एक पात्र का चित्र देखिये " सत्यपाल निगम जिनके, सिगार से काले हो चुके होंठ और बदबूदार दाँत, उनकी आत्मा तक उतर उसे दुर्गन्ध से भर गये हैं ।"3. काले होंठ और बदबूदार दाँत ठीक हो सकते हैं लेकिन आत्मा तक उनसे उतरने वाली दुर्गन्ध का क्या उपचार होगा." एक और जगह इसी चित्र को और गहरा किया गया है । सत्यपाल बाबू

- -

1. पृ. 49.

2. पृ. 81.

3. उस तक : कुसुम अंसल : पृ. 38.

के चेहरे के चेचक के दाग कीचड़ के गड्ढे की तरह लग रहे थे। उनके चेहरे पर फैली दरारों में कितनी मासूम लड़कियों के सपनों का खून बह रहा था"।1. पुरुष का घृणित चित्र देखना हो तो " रेत की मछली" का यह चित्र ध्यान देने योग्य है " मधु सीढ़ियाँ ' अचानक चौंक पड़ी अज्ञात भय की चिन्गारियाँ क्षण मात्र में मेरे रोम-रोम को छू गईं। स्नेह का आश्वासन पलक मारते ही किसी मिट्टी के खोखले खिलौने की तरह टूटा और उसके अन्दर से एक घिनौना कीड़ा बाहर आ गया। कमरे की हवा में जैसे ज्वालामुखी के विस्फोट के बाद की तपन और दुर्गन्ध भर गई। वह घिनौना कीड़ा किसी दुर्दान्त पशु की तरह ही आतंकित करता हुआ मुझे निगलने की कोशिश करने लगा।" यह विस्फोट स्त्री और पुरुष के पुण्य सम्बन्ध का विस्फोट है और इसके लिये उत्तरदायी है पुरुष प्रकृति की क्रूरता। अन्यत्र कान्ता भारती इस वितृष्णात्मक चरित्र को और अधिक उभारती है - " मैंने और उन्होंने भी देखा उनकी आँखों में निर्लज्ज कामुकता की झिल्ली चढ़ी हुई थी। वे शायद मुस्कुराये भी, उन क्षणों में वह मुस्कुराहट किसी सीमा तक वीभत्स हो उठी थी"।2. मुस्कुराहट उज्ज्वलता बिखेरती है किन्तु यही मुस्कुराहट वीभत्स भी हो सकती है यदि उसके पीछे का चरित्र दूषित हो। क्रूरता का कारण असामाजिकता भी होती है। "प्रतिध्वनियाँ" (दीप्ति खण्डेलवाल) का एक चित्र है - कल्पन क्रूरता का प्रतीक था, जिसके रंग असामाजिकता ने गहरे कर दिये थे।"3. "महाभोज" का एक चरित्र है सुकुल बाबू --"साँवला रंग नाटा कद। थोड़ा थुलथुल शरीर दा साहब की तरह सौम्य सज्जन भी नहीं। सुरा-सुन्दरी से किसी तरह का कोई परहेज नहीं। धार्मिक कहना चाहिये की अनुरागी है दोनों के।"3अ. इस उपन्यासकार का सर्वाधिक रोचक चरित्र है " दा साहब" का उनका

- -

1. उस तक : कुसुम अंसल : पृ. 57.
2. कान्ता भारती : रेत की मछली : पृ. 150.
3. पृ. 86.
3अ. पृ. 28.

का चित्रण लेखिका इस प्रकार देती है – " दा साहब का पूरा व्यक्तित्व ही जैसे भव्यता के फ्रेम में मढ़ा हुआ है । गौरवर्ण गठा हुआ शरीर कहीं भी एक इंच फालतू चर्बी दिखाई नहीं देगी । दीखती है तो केवल गरिमा । जीवन में संयम और व्यवहारों में नियम – यही उनकी राज है । उनकी गढ़ी हुई देह और गरिमामय व्यक्तित्व का ।"1· यह बड़ा ही " मिस गाइडिंग" चरित्र है इसीलिये दा साहब का चरित्र इस उपन्यास का सर्वाधिक विवादास्पद चरित्र है । दा साहब के शरीर पर जैसे एक इंच भी फालतू चर्बी नहीं है वैसे ही उनके व्यक्तित्व में एक भी जगह कमज़ोर और कुशकट नहीं है ।"2· आलोच्य महिला उपन्यासकारों ने अपने पुरुष चित्रों के कुछ "डिटेल्स" भी देने की कोशिश की है । जैसे"उसके हिस्से की धूप" की नायिका के द्वारा उसके प्रेमी का चित्र इस प्रकार देखा गया है " कमीज के खुले बटनों के भीतर से झांकती, उसकी मांसल दृढ़ गरदन और चौड़ी छाती पसीने से सराबोर थी । गोरा मुंह लाल पड़ा हुआ था, कुछ ताप लेने के श्रम से और कुछ उस पर आये क्रोध से और उसकी चोटी पर तीक्ष्ण आँखें एकदम स्याह पड़ गई थी ··· । वह हंसता है तो दो नीली झील में तैरती बतखों से दिखाई पड़ती है : प्यार करता है तो तूफानी नदी पर डोलती सहम नावों की नावों-सी प्रतीत होती है, क्रोध करता है तो ताज़े टूटे कोयले की चमक उठती है, जैसे कह सकता है, दियासलाई लगी नहीं कि ही जल उठने को तैयार है ।"3·

"अनित्य" उपन्यास का एक चरित्र है सुरेश जिसके रेखांकन में लेखिका ने काफी सूक्ष्म डिटेल्स देने की चेष्टा की है "भारी काला चेहरा, पसीने से लथपथ है, चौड़ा जबड़ा भिंचा हुआ है जैसे

1· पृ· 13·

2· महाभोज : मन्नू भण्डारी : पृ· 13·

3· उसके हिस्से की धूप : मृदुला गर्ग : पृ·24·

हुई चपटी नाक से विस्फारित नथुने फड़क रहे हैं छोटी मिचमिची आँखें अंगारों की तरह जल रही है। आतुर वासना का स्पर्श पाकर कुरूप-चेहरा खौफनाक हो उठा है।.1. किन्तु स्त्री (मीता) के द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने पर वासना से प्रज्वलित यह पुरुषत्व दयनीयता की तस्वीर बन जाता है — "अब वह खूँखार चेहरे वाला नहीं, पिल-पिले रबड़ का विकृत पुतला दीख रहा था जिसके नख शिख तान कर बनाने वाले ने वासना की कुरूपाकृति में खींच दिये थे। उसका काला चेहरा धीरे-धीरे पीला पड़ने लगा। पसीने की लकीरें जहाँ-तहाँ फूट गई। आँखों की आग बुझ गई। थरथराते होंठ अब बाँध तोड़ कर नीचे को लटक गये।.2. पुरुष की रीढ़ की हड्डी है उसका आत्मविश्वास यही उसके व्यक्तित्व का आधार है। आत्मविश्वास पुरुष के नितांत सामान्य व्यक्तित्व को भी अनुपम आकर्षण से भर देता है। "सोनाली दी" चरित्र है महिम दा। " महिम दा लम्बे और सुदृढ़ हैं, साँवला हुआ मुख। आत्म विश्वास ने मानो देह धारण की हो।.3.

यह आत्मविश्वास पुरुष को यथार्थवादी सौन्दर्य देता है। "सर्वथा सुदर्शन नहीं तो बदशक्ल भी नहीं था उसका चौरस काठी का शरीर कुछ भरा-भरा था, तूलिका किसी कलाकार की नहीं थी किन्तु एक यथार्थवादी निर्मम चित्र पुरुष की थी।" (चौदह फेरे)4.

पुरुष का यथार्थवाद, अहं, जिद, आदि स्त्री की पहली दृष्टि में आकर्षित कर लेते हैं। " मेरा नरक अपना है" की नायिका का अनुभव है। " उस क्षण सुमित की बड़ी चमकदार आँखें, नुकीली नासिका चौड़ी ठुड्डी और कुछ जिद्दी से लगते होंठ बड़े भले लगे।.5.

--- ---------------------- --

1. पृ.248.
2. अनित्य : मृदुला गर्ग : पृ.248.
3. सोनाली दी : रजनी पनिकर : पृ. 4.
4. चौदह फेरे : शिवानी : पृ. 157.
5. मेरा नरक अपना है : निरुपमा सेवती : पृ.30.

ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं जिसमें बाह्य आकृति और भीतरी प्रकृति का मेल बैठाया गया हो । प्रायः विरोधाभास के चित्रण में ही आलोच्य उपन्यासकारों की रुचि दिखाई देती है - गैंडा उपन्यास (शिवानी) का केन्द्रीय चरित्र गैंडे जैसा काला मोटा और कुरूप है । किन्तु उसका चरित्र उज्ज्वल तराशे हुये हीरे सा चमकता है । उसकी पत्नी जो अत्यन्त सुन्दरी है बड़े गर्व से कहती है " मेरे गैंडे की चमड़ी भी निरपराधिता गैंडे की तरह है ।" किन्तु उस गैंडे का सर्वाधिक मान-नीय चरित्र उसकी पत्नी की आँखों से छिपा भी हो तो, पाठकों की दृष्टि से छिप नहीं सकता । बहुत कम ऐसे चित्र मिलते हैं जिसमें बाह्य रूप कुरूप हो तो भीतरी स्वभाव भी विकृत हो या बाह्य रूप का सौन्दर्य भीतरी सौन्दर्य को भी झलकाता हो । "एक और बात" (शान्ति जोशी) के चरित्र प्रधान सुमेर, "महाभोज" के सुकुल बाबू " सीढ़ी" का मास्टर जी आदि भीतरी और बाहरी कुरूपता के चित्र हैं । इसी प्रकार " सुरंगमा" का [illegible] सूरी और "प्रिया" का देवदास भीतरी और बाहरी सौन्दर्य का मेल बतलाते हैं । सामुद्रिक की उक्ति है " यत्राकृति स्तत्र गुणावसन्ति " अर्थात् जैसी आकृति होगी वैसे ही गुण होंगे किन्तु मानव मन और सामाजिक स्थितियों की जटिल संरचना इस उक्ति को गलत साबित करती है । आलोच्य उपन्यासकारों ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य को समझते हुये अपने पुरुष चरित्रों का यथार्थपरक अंकन किया है ।

6·3 निष्कर्ष

आलोच्य युग के महिला उपन्यासकारों द्वारा लिखित उपन्यासों में पुरुष-चरित्रों का यह विवेचन कुछ रोचक निष्कर्ष सामने लाता है जैसा कि पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि स्त्री का अब तक का इतिहास सौन्दर्य की वस्तु (आब्जेक्ट) के रूप में रहा है ।

स्त्री का अनुभव संसार भी पुरुष प्रधान समाज द्वारा प्रदत्त और अनुशासित रहा है इस कारण स्त्री सौन्दर्य दृष्टि भी कटे-छटे फ्रेम में ही आश्रित होती है । तुलसीदास ने बड़ी रोचक स्थापना की थी "मोहि न नारि नारि के रूपा" अर्थात् स्त्री को स्त्री का रूप आकर्षित नहीं करता । गोस्वामीजी की इस स्थापना में उनका सदियों का पुरुष संस्कार बोल रहा है । नारी को नारी का रूप क्या आकर्षित करेगा ? जो स्वयं आकर्षण की वस्तु रही है वह आस्वादक कैसे बन सकती है । उसके लिये तो पुरुष की आँखें चाहिए । इस तरह देखा जाये तो सौन्दर्य नारी के लिये है ही नहीं क्योंकि वह उपभोक्ता होती नहीं । यह सामन्ती दृष्टि है आज के युग में सौन्दर्य की परिभाषा बहुत विस्तृत हो गई है । सौन्दर्य विवेक जीवन विवेक से अभिन्न है । इसीलिये स्त्री रचनाकार की सौन्दर्य दृष्टि उसके जीवनानुभव से अविच्छिन्न नहीं होती । पश्चिमी रचनाकारों और आलोचकों में महिलाओं द्वारा चित्रित पुरुष चरित्रों को लेकर कुछ रोचक प्रश्न उठाये हैं क्या स्त्री द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्र वास्तव में पुरुष चरित्र होता है या स्त्री के द्वारा देखा गया एक कोणीय पुरुष चरित्र । एलिन शोवाल्टर अपनी पुस्तक " ए लिटरेचर आफ देयर ओन" में लिखती है कि - The Predominant male character's are in doubtedly woman's men; that is they are a women's idea of what men are, mixed up with certain silent manly characteristics which have been conceived from observation and are possible to us.[1]

अर्थात् पुरुष चरित्र निःसन्देह स्त्रियों के पुरुष हैं, इसका अर्थ है वे इस स्त्री की उस कल्पना का प्रतिरूप है कि पुरुष को कैसा होना चाहिये । इसी कारण आगे इलेन शोवाल्टर निष्कर्ष देती है कि Therefore women's men were all absurd comtemptible and unrealistics all were either angels are devils.[2]

Q. 1 page 133.

Q. 2 page 133.

अर्थात् स्त्रियों के पुरुष आदर्श और अवास्तविक होते हैं। वे या तो शैतान होते हैं या देवदूत। किन्तु हमारे आलोच्य उपन्यासकारों ने अपने पुरुष चरित्रों के सौंदर्यांकन में इस मान्यता को बहुत सीमा तक गलत साबित किया है। इनके द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्र अच्छे और बुरे की दो अतिवादिताओं के बीच मध्यम स्थिति है। इनके सौंदर्यांकन में आकृति और प्रकृति के सौन्दर्य शास्त्र का पूरा ध्यान रखा गया है और आधुनिक मानव मन की परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। यह ठीक है कि इन उपन्यासकारों का सौन्दर्य बोध सीमित अनुभव के क्षेत्र में जुड़ा है इस कारण बहुत अधिक "डिटेल्स" और बहुत अधिक " रियलिज्म" नहीं आ पाता। फिर भी कोशिश जरूर की गई। पुरुषों के सौंदर्यांकन में वस्तुगत तटस्थता का परिचय बहुत कम मिलता है। दीप्ति खण्डेलवाल और कान्ता भारती अपने पुरुष चरित्रों को लेकर इतनी अधिक " इनवाल्वड " हो जाती है कि यह पुरुष चरित्र उनके अपनी जीवन की गाथा कहने लगते हैं। दूसरी ओर मन्नू भण्डारी जैसी सजग लेखिका भी महाभोज के दा साहब के चित्रण में कहीं चूक और उलझी नजर आती है। ममता कालिया ने जरूर इसमें वस्तुगत दृष्टिकोण का परिचय दिया है। कुछ किशोर और बचकानी अभिव्यक्तियाँ भी मिलती है जैसे निरुपमा सेवती का " मेरा नरक अपना है " में सुमित के चरित्र के प्रति की अभिव्यक्ति " हाँ अच्छा है बहुत अच्छा है यह बांका सा नौजवान। ऊँचा लम्बा अच्छा खासा बदन छवि ऐसी कि आँखों में बस जाये, दिल में उतर जाये।" यह मानसिक अपरिपक्वता का द्योतक है। दूसरी ओर ममता कालिया का चित्र है " परमजीत खूबसूरत था और गोरा ऐसी खूबसूरती सिर्फ पंजाबी लड़कों में होती है जिसमें कद डील-डौल रंग और नक्श सभी एक दूसरे से होड़ लेते हैं।" यह चित्रण नहीं "स्टेटमेंट" है इस " स्टेटमेंट " से किसी को एतराज हो सकता है लेकिन इसकी वस्तुनिष्ठ दृष्टि से नहीं।

संक्षेप में आलोच्य उपन्यासकारों के पुरुष पात्रों का सौन्दर्य चित्रण उनकी सौन्दर्य दृष्टि और सौन्दर्य मानों का विश्लेषण करने में आधार बनते हैं । इससे दो बातें स्पष्ट कही जा सकती है पहली यह कि इनका सौन्दर्य विवेक जीवन विवेक से विच्छिन्न नहीं है । अर्थात् इनके पात्रों का सौन्दर्य किसी लोकोत्तर अथवा तत्वों का निर्देशक नहीं बल्कि इसी समाज के जीवन से परिचालित और स्थापित सौन्दर्य है । अर्थात् यह पात्र वैसे ही सुन्दर या असुन्दर तथा सहज और स्वाभाविक है जैसे कि इनकी सौन्दर्य दृष्टि मानवीय सरोकारों से जुड़ी हुई है । दूसरी बात यह कि इन कथाकारों ने अपने पुरुष पात्रों के सौन्दर्य को उनके चरित्र से अभिन्न करके देखा है अर्थात् इनके अनुसार सौन्दर्य चरित्र की सुगन्ध है। इसका रूप मुख्यतः आन्तरिक गुणों से बनता है । इसमें बाह्य सौन्दर्य का बहुत अधिक योग नहीं होता ।

---00---

अध्याय - सात

उपसंहार

अध्याय - सात

उ प सं हा र

प्रस्तुत शोध कार्य से प्राप्त निष्कर्षों का आकलन करने के पूर्व मैं इस बात को एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहूँगी कि प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य महिला रचनाकारों की चेतना को पुरुष चेतना के निषेध में या विरोध में रखकर देखना नहीं है, बल्कि महिला लेखन को मानवीय सन्दर्भों के अनछुए और अपरिभाषित पहलू के रूप में उठाना है । इसके साथ स्त्री अनुभव की सीमा में प्रतिफलित होने वाले पुरुष छवि के विभिन्न आयामों को समेटना प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्रीय वक्तव्य है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध का पहला अध्याय " नारी मानस की संरचना " तथा सामाजिक विकास क्रम में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों के विकास का अध्ययन करता है । इस तरह इस अध्याय के दो उपशीर्षक हैं एक, नारी मानस की संरचना और दो, सामाजिक विकास क्रम में स्त्री पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण । इसके अंतर्गत नारी मानस की संरचना को दैहिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक सन्दर्भों में विश्लेषित किया गया है । स्त्री की दैहिकी उसके व्यक्तित्व निर्माण में तथा सामाजिक सम्बन्धों के निर्धारण में केन्द्रीय स्थान रखती है । इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुये प्रमुख मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष दिया है कि स्त्री की पराधीनता उसकी अपनी विशिष्ट जाति (Speices) के कारण है । फ्रायड ने तो कहा ही था कि 'Anotomy is destiny' स्त्री के सन्दर्भ में यह बात विशेष रूप से सत्य लगती है कि स्त्री की विशिष्ट शारीरिक संरचना उससे जुड़ी हुई प्रजनन व्यवस्था के कारण वह शारीरिक स्तर पर काफी असहाय परमुखापेक्षी तथा कमजोर दिखाई देती है । इसका प्रभाव उसके मनोविज्ञान पर पड़ता

है । मनोवैज्ञानिकों ने स्त्री पुरुष की तुलना में अपने आपको हीन समझने की ग्रन्थि का विश्लेषण इस दैहिक आधार पर ही किया है । फ्रायड के अनुसार यह हीन भाव लिंग-ईर्ष्या के कारण है । एडलर का कथन है कि स्त्री के मन में अपनी स्त्रीत्व को अस्वीकार कर दिये जाने की लज्जा ही इस हीन भाव का मूल है । किन्तु स्त्री के मनोविज्ञान के निर्माण में दैहिकी को ही एक मात्र निर्णायक तत्व मान कर नहीं चला जा सकता जैसा कि सिमोन द बउआ लिखती है कि स्त्री को उसकी दैहिकी और उससे उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित करके नहीं देखना चाहिये । उसके अनुसार स्त्री एक मानवीय अस्तित्व है जो मूल्यों के संसार की खोज में रत है । एक ऐसे संसार में वह संघर्ष कर रही है जो आर्थिक एवं सामाजिक संरचनाओं से बना हुआ है । सभी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि अपने तथाकथित दैहिक पिछड़ेपन के बावजूद स्त्री में जीवनी शक्ति की कमी नहीं है ।

किन्तु स्त्री जाति का इतिहास निरन्तर शोषण का ही इतिहास रहा है । ऐसा क्यों ? इसके लिये यह कारण है कि उत्पादन की प्रक्रिया एवं इस क्रम में निर्मित सामाजिक सम्बन्ध । मनुष्य सभ्यता के विकास के उत्तरोत्तर क्रम में स्त्री शोषण का अधिक से अधिक शिकार बनती गई है । मनुष्य सभ्यता के आदिम युग में स्त्री और पुरुष समान अधिकारों का उपभोग करते थे । घर तथा बाहर के जीवन में उनका समभाग था । किन्तु उत्पादन और आजीविका के साधनों में विकास के साथ-साथ इन पर पुरुष का स्वामित्व बढ़ता गया । शिकार, कृषि और पशु पालन आदि में पुरुष प्रधान होता गया और चूंकि इन साधनों पर उसका अधिकार था इसीलिये वह स्वामी और स्त्री दासी के रूप में परिवर्तित होती चली गई । स्त्री को पूरी तरह से पीछे ढकेल देने में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की भारी भूमिका रही । सामन्ती युग में स्त्री तरह-तरह से

व्यक्तिगत सम्पत्ति में परिणत हो गई । पूँजीवादी युग में वह दासी/डोटी या वस्तुमात्र बन कर रह गई । किन्तु आज के औद्योगिक पूँजीवाद ने स्त्री का एक बड़ा कल्याण भी किया और वह था उसके श्रम को आर्थिक मूल्य देना । इसी कारण स्त्री में अपने अस्तित्व को समझने और उसका मूल्यांकन करने की चेतना आई । स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्धों के विश्लेषण में इस दृष्टि से तीन-तीन स्थितियाँ हैं । आदिम सहयोगी सम्बन्ध, जिसमें सभ्यता का आरम्भ स्त्री-पुरुष के समभागी जीवन यापन से हुआ था । इस युग को एक तरह से "स्वर्ण युग" कहा जा सकता है । संतानोत्पत्ति की क्षमता के कारण स्त्री का महत्व और अधिक बढ़ा हुआ । पुरुष इस मातृशक्ति के आगे पराजित हो गया । इसीलिये विश्व के अधिकांश भागों में एक समय मातृसत्तात्मक व्यवस्था का समय दिखाई देता है । भारत के वैदिक युग के आरम्भ की अवस्था भी स्त्री-पुरुष के समान अधिकार तथा स्त्री के विशेष महत्व की स्थिति को बतलाती है । किन्तु उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ-साथ यह सहयोगी सम्बन्ध शोषक-शोषित सम्बन्धों में परिणत हो गये । एंगेल्स के अनुसार मातृअधिकार की समाप्ति संसार में नारी जाति की ऐतिहासिक पराजय थी । वर्ग-विभक्त समाज में स्त्री की चेतना भी विभक्त होती चली गई । वह धीरे-धीरे व्यक्तिगत सम्पत्ति में परिणत हो गई । विवाह जैसी संस्था भी स्त्री शोषण का नया उपकरण बनी । सिमन द बउवा इसका विश्लेषण करती हुई लिखती हैं कि विवाह के द्वारा स्त्री को एक वंश से उन्मूलित कर दूसरे वंश में पुनरारोपित किया जाने लगा । स्त्री एक मानवीय नहीं बल्कि लेन-देन की वस्तु बन गई । सामन्ती व्यवस्था ने स्त्री की उस स्थिति का भरपूर शोषण किया । वह भोग की वस्तु बनी । औद्योगिक विकास के साथ-साथ स्त्री का आर्थिक शोषण एक नये आयाम में पहुँच गया, वह व्यावसायिक महत्व की वस्तु बनी । उसके शरीर और

इन दोनों के शोषण का द्वार पूँजीवादी युग ने खोल दिया । तीसरी स्थिति मानवीय सम्बन्धों की सहजता की है जो अभी तक पूरी तरह से यथार्थ नहीं बन सकी है । साम्यवादी व्यवस्था में अवश्य यह सपना साकार हुआ है । भारत के सन्दर्भ में अभी भी स्त्री और पुरुष के सहज मानवीय सम्बन्धों की कल्पना ही बनी हुई है ।

किन्तु अन्यान्य असमानता और शोषण का यह क्रम निर्विरोध गति से चल नहीं सकता । सृष्टि में हर अति का अंत होता ही है । मध्यकाल सारे विश्व में स्त्री के शोषण का काल था किन्तु नवजागरण की पहली लहर के साथ स्त्री की सोयी चेतना में भी स्फुरण हुआ । नवोत्थान स्त्री जाति के लिये भी नया उत्थान लेकर आया । औद्योगिक क्रान्ति तथा नये आर्थिक सम्बन्धों के अन्तर्गत स्त्री का आर्थिक मूल्य बढ़ा । इस आर्थिक मूल्य ने उसे सामाजिक अर्थवत्ता भी दी । इसी दृष्टि में रखते हुये प्रस्तुत प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय "नारी अस्मिता " की खोज रखा गया है । भारत के स्वाधीनता आन्दोलन की एक बड़ी विशेषता इसमें भारतीय नारी का समान और सक्रिय भाग लेना है । ब्रह्म समाज, आर्य समाज, जैसी संस्थायें, राजा -राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, विवेकानन्द और महात्मा गाँधी जैसे अन्यान्य विद्वानों ने नारी मुक्ति का प्रबल प्रयास किया । एक प्रकार से समूचे भारत की चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हुआ और स्त्री जैसे देश की मुक्ति में अपनी मुक्ति भी खोजने लगी । नारी ने अपनी अस्मिता की खोज के लिये लेखन का माध्यम चुना और साहित्य की अन्यान्य विधाओं में उसने अपने दृष्टिकोण को , अपनी स्थिति को, और अपनी मुक्ति चेतना को अभिव्यक्त करना आरम्भ कर दिया । इस प्रकार भारतीय नव-जागरण नारी मुक्ति का पहला आयाम बना । सन् 60 के बाद देश के सामाजिक आर्थिक, और साहित्यिक सन्दर्भों में परिवर्तन के

साथ-साथ नारी चेतना की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन दिखाई देता है । इसी ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में सन् 1960 पूर्व के महिला उपन्यासकारों को समझने में सहायता मिलती है । सन् 1980 से हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में महिला उपन्यासकारों का आगमन होता है । उस युग में कल्पना प्रधान, पौराणिक, ऐतिहासिक और आदर्शवादी चरित्रों का प्राबल्य दिखाई देता है । कविता एवं कहानी की अपेक्षा उपन्यासों में महिला लेखिकाओं का आगमन कुछ देर से हुआ । इसका कारण सम्भवतः यह था कि उपन्यास जीवन के अधिक व्यापक वैविध्य पूर्ण और सम्पूर्ण चित्र की मांग करते हैं, और रूढ़ियों से अनुभव के सीमित और चहार-दीवारी भागों में रहने वाली नारी के लिये यह दुष्प्राप्य था । फिर भी साठ पूर्व के साहित्य की लगभग सभी विधाओं में महिलाओं का समुचित प्रतिनिधित्व दिखाई देता है । अध्ययन के अन्तर्गत यह देखा गया है कि साठ पूर्व के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में आदर्श पुरुष चरित्रों का प्राचुर्य है । इनमें यथार्थवादी चरित्र भी आये हैं किन्तु उनमें सुधार और उपदेशात्मक प्रवृत्तियों को ही अधिक स्थान मिला है । सन् 1924 के बाद से इन लेखिकाओं के उपन्यासों में कुछ परिवर्तन दिखाई देता है उस समय भारतीय मानस पर अनेक प्रकार की विचारधाराओं का आक्रमण हो रहा था । यह टकराव एक तरह से आदर्शवाद और यथार्थवाद का टकराव था । इसका प्रभाव लेखिकाओं पर भी पड़ा । उनके उपन्यासों में पुरुष- चरित्र अधिक विविधता लेकर आने लगे । यह चरित्र अच्छे और बुरे की तुलना में आये हैं, अधिकांश पुरुष चरित्र महत्वपूर्ण के लिये गये हैं । आरम्भिक उपन्यासों में {1924 से पूर्व} जहां सुधारवाद की प्रधानता थी वहां विकासकालीन उपन्यासों में उद्देश्य प्रधान और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है । उन उपन्यासकारों ने पुरुष चरित्रों में जहां उनकी लाँछित और जातिगत विशेषताओं को प्रस्तुत करते हुये उन्हें "टाईप"

का सार दिया वहीं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा उनके व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य को भी प्रस्तुत किया ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के तीसरे अध्याय से हम उसके प्रतिपाद्य विषय पर आ जाते हैं । यह प्रतिपाद्य विषय साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रस्तुत छवि का विश्लेषण । इसे चार अध्यायों में क्रमशः पल्लवित किया गया है । ये चारों अध्याय वस्तुतः प्रतिपाद्य विषय के चार आयाम है । तीसरा अध्याय साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में " पुरुष छवि" साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में " पुरुष चरित्र " । चौथा अध्याय है " साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध." पाँचवा अध्याय है साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की सौन्दर्य दृष्टि और पुरुष छवि । तीसरे अध्याय में इन प्रस्तुत पुरुष चरित्रों का अध्ययन किया गया है । सबसे पहले उन पात्रों का शास्त्रीय दृष्टि से वर्गीकरण देखा गया है । यद्यपि आज की धारणा के अनुसार मनुष्य का चरित्र छोटे-छोटे मापों वाला बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है । फिर भी प्रगति की दिशा पहचानने के लिये परम्परा का पृष्ठाधार देखना भी आवश्यक होता है । इसी प्रकार इन पात्रों के गुणों के आधार पर, वर्ग के आधार पर तथा चरित्र के विकास के आधार पर विभाजन किया गया है । यह सारे विभाजन इन उपन्यासों में आये पुरुष पात्रों का समग्र आकलन देने में सहायक होते हैं । इस अध्याय के दूसरे उपशीर्षकों के अन्तर्गत इन पात्रों की चरित्र-प्रस्तुति का विभिन्न शैलियों के आधार पर अध्ययन किया गया है । इसके बाद पुरुष चरित्रों के चित्रण की प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है । तीसरे अध्याय के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास एक जीवित सामाजिक संरचना है और उसके जीवित रहने का रहस्य है उसका

चरित्र विधान । साठोत्तरी महिला उपन्यासकारों की रचनाओं का विश्लेषण करने पर कुछ चौंकाने वाले निष्कर्ष सामने आते हैं । यह कि इन लेखिकाओं में अधिकांशतः या लगभग सभी ने चरित्र प्रधान उपन्यासों की ही रचना की है । इनमें परिवेश का विस्तृत चित्रण कम रहा है । इसका कारण यह है कि नारी स्वभावतः अन्तर्मुखी होती है और उसका अनुभव जगत् पुरुष के अनुभव जगत् की अपेक्षा बहुत सीमित होता है, लेकिन इसके कारण स्त्री को एक लाभ अवश्य मिल जाता है उसकी मानसिकता में संवेदना की मात्रा बहुत अधिक होती है । इसलिये उसकी दृष्टि गहन मर्म भेदिनी और संवेदनशील होती है । इन उपन्यासकारों ने अपनी इस निसर्गगत क्षमता का भरपूर उपयोग किया है । इन्होंने पुरुष चरित्रों का चित्रण अधिक से अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण से करने की चेष्टा की है । वैसे यह भी एक बहस का रोचक विषय है कि महिला रचनाकार पुरुष चरित्रों का विश्लेषण करने में कहाँ तक सफल हो सकती है । पाश्चात्य आलोचना जगत् में इस पर काफी चर्चा हुई है । यहाँ तक कि क्रीमोटस ग्राउट जैसी लेखिका ने स्वीकार किया है कि मैं जब नारी के बारे में लिखती हूँ तो अपने सेक्स के बारे में निश्चिन्त नहीं रहती । मार्ग्रेट आर्मिफिन्ट ने कहा है कि नारी के लेखन में नर की अत्यधिक संवेदनशीलता और आवेगशीलता को भी इस असफलता के लिये उत्तरदायी माना है । किन्तु साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से इस मान्यता को अन्तिम निर्णय के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता और न ही इसे मूल्यांकन का मानदंड बनाया जा सकता । वस्तुतः रचनाकार का मस्तिष्क उभयलिंगी होता है । यदि उसकी रचनाओं में अपने विशिष्ट लिंग के कारण प्रदत्त उसकी वर्ग स्थिति को संकेतित करती है । इसीलिये स्त्री लेखिका को पुरुष समाज द्वारा बनाये गए पारम्परिक स्त्री मिथक से और भी अधिक चिपका कर और निस्तेजित बनाकर नहीं देखा जाना

चाहिये बल्कि उनके लेखन को स्त्रीोचित विशेषताओं का ध्यान रखते हुये भी एक रचनाकार के रूप में उनकी वस्तुनिष्ठता का मूल्यांकन किया जाना चाहिये ।

इन उपन्यासों के चरित्र विश्लेषण में कुछ रोचक प्रवृत्तियाँ उद्घाटित होती है एक तो स्त्री लेखिका में रोज रूप में स्थित पुरुष से प्रतिद्वंद्विता का भाव यह प्रकट होता है कि सेक्स के स्तर पर नैतिक बन्धनों के अतिक्रमण के रूप में । इसके साथ प्रतिशोध प्रवृत्ति क भी दिखाई देती है । अनेक उपन्यासों में स्त्री चरित्रों को पुरुष पात्रों के इस्तेमाल द्वारा अपनी प्रगति करते हुये दिखाया गया है । कुछ लेखिकाओं जैसे कान्ता भारती - निरुपमा सेवती , कृष्णा सोबती मृदुला गर्ग, दीप्ति खंडेलवाल किसी न किसी " एक्सट्रीम" पर नजर आती है जबकि मन्नू भंडारी, मालती जोशी, ममता कालिया जैसी लेखिकायें सहज और सन्तुलित चित्रण कर सकी है ।

साठोत्तर उपन्यासों में युगीन परिवेश में व्याप्त मूल्य-संक्रमण की स्थिति पूरे जोर के साथ आई है । आर्थिक विषमता के आज के समय में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में कई जटिल स्थितियाँ उत्पन्न हो गई है । आर्थिक समानता ने सामाजिक समानता की संकल्पना को क्रियान्वय का ठोस आधार दे दिया है आज स्त्री का नवार्जित अहं सामाजिक आर्थिक और नैतिक मुक्ति के क्षेत्र खोज रहा है । ऐसे में परिवार की संरचना और उसकी समग्रता का टूटना एवं बदलना अनिवार्य है । यह सारे परिवर्तन स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में घटित होते नजर आते हैं और फिर यही आज के महिला उपन्यासकारों के लिये प्रमुख कथ्य है ।

आधुनिक सामाजिक संरचना का व्यापक रूप से कहा जाये तो किसी भी युग की सामाजिक संरचना उस युग में अवस्थित वर्ग भेदों को समझे बिना नहीं समझी जाती और यह भी सच है कि रचनाकार की दृष्टि उसकी वर्ग-स्थिति वर्ग-चेतना और वर्ग -संस्कारों से अनु-

शासित रहती है । यही उसकी वर्ग-दृष्टि है । इस वर्ग दृष्टि में जहाँ एक ओर उसके वर्ग -अनुभव की सीमा होती है वहीं उसकी अपनी वर्ग-स्थिति को समझकर उसे अतिक्रमित कर या डी क्लास होकर एक व्यापक समग्र मानव स्थिति को पहुँचाने की प्रेरणा भी रहती है । रचनाकार की वर्ग दृष्टि उसकी वर्ग चेतना से निर्धारित होती है । महिला उपन्यासकारों के सम्बन्ध में यह प्रश्न और अधिक रोचक तथा जोखिम भरा हो जाता है क्योंकि स्त्री की स्थिति हमेशा निम्न वर्ग के साथ ही जुड़ी रहती है । सदियों से चले आते मानवीय सम्बन्धों में स्त्री शोषित वर्ग में ही परिगणित हुई है । इस कारण यह विचारणीय हो जाता है कि एक रचनाकार की वर्ग चेतना कितनी विकसित और समृद्ध होती है । स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों की वर्ग-दृष्टि के विवेचन में यह पाया गया है कि इनमें प्रमुखतः मध्य-वर्गीय अनुभव और मानसिकता ही अभिव्यक्त हुई । इसका कारण है कि ये उपन्यासकार लगभग सभी मध्यवर्ग से आये हैं । वर्गातिक्रमण का साहस और क्षमता एकाध ने ही दिखाई । किन्तु जो उनकी सीमा है, उसी को अपनी सामर्थ्य बनाने की चेष्टा बहुतों ने की है, और वह इसतरह कि अपने वर्ग अर्थात् मध्यवर्ग का गहरा और विस्तृत चित्रण इन्होंने किया है । अपने वर्ग के प्रति इन रचनाकारों की दृष्टि सहानुभूति पूर्ण और व्यंग्यपूर्ण दोनों प्रकार की है । इस तरह कुल मिलाकर इन उपन्यासकारों में मध्यवर्गीय विकृत, स्थितियाँ भी स्पष्ट है । स्पष्ट है कि इन महिलाओं द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्रों में अधिकांशतः मध्यवर्ग से ही आते हैं और यह भी सच है कि इन्हीं के चित्रण में इन लोगों ने विशेष सफलता प्राप्त की है ।

आलोच्य युग के महिला उपन्यासकारों द्वारा लिखित उपन्यासों में पुरुष चरित्रों का यह विवेचन कुछ रोचक निष्कर्ष सामने लाता है जैसा कि पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि पुरुषों का अब तक का

इतिहास सौन्दर्य की वस्तु (आब्जेक्ट) के रूप में रहा है । स्त्री का अनुभव संसार को पुरुष प्रधान समाज द्वारा प्रदत्त और अनुशासित रहा है इस कारण स्त्री सौन्दर्य दृष्टि को कटे-छटे फ्रेम में ही प्रकाशित होती है । तुलसीदास ने बड़ी रोचक स्थापना की थी " मोहि न नारि नारि के रूपा" अर्थात् स्त्री को स्त्री का रूप आकर्षित नहीं करता । गोस्वामीजी की इस स्थापना में उनका सदियों का पुरुष संस्कार बोल रहा है । नारी को नारी का रूप क्या आकर्षित करेगा ? जो स्वयं आकर्षण की वस्तु रही है वह आस्वादक कैसे बन सकती है । उसके लिये तो पुरुष की आँखें चाहिये । इस तरह देखा जाये तो सौन्दर्य नारी के लिये है ही नहीं क्योंकि वह उपभोक्ता होती नहीं । यह सामन्ती दृष्टि है आज के युग में सौन्दर्य की परिभाषा बहुत विस्तृत हो गई है । सौन्दर्य विवेक जीवन विवेक से अभिन्न है । इसीलिये स्त्री रचनाकार की सौन्दर्य दृष्टि उसके जीवनानुभव से अविच्छिन्न नहीं होती । पश्चिमी रचनाकारों और आलोचकों में महिलाओं द्वारा चित्रित पुरुष चरित्रों को लेकर कुछ रोचक प्रश्न उठाये हैं क्या स्त्री द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्र वास्तव में पुरुष चरित्र होता है या स्त्री के द्वारा देखा गया एक कोणीय पुरुष चरित्र । एलिन शोवाल्टर अपनी पुस्तक " ए लिटरेचर ऑफ देयर ओन " में लिखती है कि – The Predominant male Character's are in doubtedly Woman's men; that is they are a women's idea of what men are, mixed up with certain silent manly characteristics which have been conceived from observation and are possible to us.[1]

अर्थात् पुरुष चरित्र निःसन्देह स्त्रियों के पुरुष हैं, इसका अर्थ है वे इस स्त्री की इस कल्पना का प्रतिरूप है कि पुरुष को कैसा होना चाहिये । इसी कारण आगे ऐलेन शोवाल्टर निष्कर्ष देती है कि

Therefore women's men were all absurd comtemptible and unrealistics all were either angels are dewils."[2]

---

1. p. 133.
2. p. 133.

अर्थात् स्त्रियों के पुरुष अमूर्त और अवास्तविक होते हैं । वे या तो शैतान होते हैं या देवदूत । किन्तु हमारे आलोच्य उपन्यासकारों ने अपने पुरुष चरित्रों के सौंदर्यांकन में इस मान्यता को बहुत सीमा तक गलत साबित किया है । इनके द्वारा प्रस्तुत पुरुष चरित्र अच्छे और बुरे की दो अतिवादिताओं के बीच मध्यम स्थिति के हैं । उनके सौन्दर्यांकन में आकृति और प्रकृति के सौन्दर्य शौर्य का पूरा ध्यान रखा गया है और आधुनिक मानव मन की परिस्थितियों का चित्रण किया गया है । यह ठीक है कि इन उपन्यासकारों का सौन्दर्य बोध सीमित अनुभव के घेरे में जकड़ा है इस कारण बहुत अधिक "डिटेल्स" और बहुत अधिक " वैरिएशन " नहीं आ पाता । फिर भी कोशिश जरूर की गई । पुरुषों के सौंदर्यांकन में वस्तुगत तटस्थता का परिचय बहुत कम मिलता है । दीप्ति खंडेलवाल और कान्ता भारती अपने पुरुष चरित्रों को लेकर इतनी अधिक " इन्वाल्व्ड" हो जाती है कि यह पुरुष चरित्र उनके अपनी जीवन की गाथा कहने लगते हैं । दूसरी ओर मन्नू भंडारी जैसी सजग लेखिका भी महाभोज के दा साहब के चित्रण में स्वयं मुग्ध और उलझी नजर आती है । ममता कालिया ने जरूर इसमें तटस्थ दृष्टिकोण का परिचय दिया है । कुछ किशोर और बचकानी अभिव्यक्तियाँ भी मिलती है जैसे निरूपमा सेवती का " मेरा नरक अपना है" में सुमित के चरित्र के प्रति की गई अभिव्यक्ति " हाँ अच्छा है बहुत अच्छा है यह बाँका सा नौजवान । ऊँचा लम्बा अच्छा खासा बदन छवि ऐसी कि आँखों में बस जाये , दिल में उतर जाये ।" यह मानसिक अपरिपक्वता का द्योतक है । दूसरी ओर ममता कालिया का चित्र है "बरमजीत खूबसूरत था और गोरा ऐसी खूबसूरती सिर्फ पंजाबी लड़कों में होती है जिनमें कद डील-डौल रंग और नक्शा सभी एक दूसरे से होड़ लेते हैं ।" यह चित्र नहीं " स्टेटमेंट" है इस "स्टेटमेंट" से किसी को एतराज हो सकता है लेकिन इसको वस्तुनिष्ठ दृष्टि से नहीं ।

संक्षेप में आलोच्य उपन्यासकारों के पुरुष पात्रों का सौन्दर्य चित्रण उनकी सौन्दर्य दृष्टि और सौन्दर्य मानों का विश्लेषण करने में आधार बनती हैं। इससे दो बातें स्पष्ट कही जा सकती है पहली यह कि इनका सौन्दर्य विवेक जीवन विवेक से विच्छिन्न नहीं है। अर्थात् इनके पात्रों का सौन्दर्य किसी लोकोत्तर अपरूप तत्वों का निर्देशक नहीं बल्कि इसी समाज के जीवन से परिचालित और स्थापित सौन्दर्य है। अर्थात् यह पात्र जैसे ही सुन्दर या असुन्दर तथा सहज और स्वाभाविक है। जैसे कि इनकी सौन्दर्य दृष्टि मानवीय सरोकारों से जुड़ी हुई है। दूसरी बात यह कि इन कथाकारों ने अपने पुरुष पात्रों के सौन्दर्य को उनके चरित्र से अभिन्न करके देखा है अर्थात् इनके अनुसार सौन्दर्य चरित्र की सुगन्ध है। इसका रूप मुख्यतः आन्तरिक गुणों से बनता है। इसमें बाह्य सौष्ठव का बहुत अधिक योग नहीं होता।

संक्षेप में इन निष्कर्षों को इस प्रकार रखा जा सकता है कि महिला उपन्यासकार और पुरुष उपन्यासकार यद्यपि रचना के स्तर पर ऐसा विभाजन नहीं है फिर भी इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि रचनाकार मूलतः एक मनुष्य होता है और वह मनुष्य एक परिवार, एक जाति, धर्म, समाज के सदस्य के रूप में व्यापक मानवीय अनुभव का सहभागी है। इस कारण रचनाकार की वैयक्तिक चेतना के निर्माण में यह सामूहिक सरोकार निर्णायक भूमिका सम्पन्न करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो महिला उपन्यासकार एक स्त्री के रूप में अपने अनुभव एक ऐसी स्थिति में प्राप्त करती है जो पुरुष की स्थिति से सर्वथा भिन्न है। इस भिन्नता के कारण महिला रचनाकार की रचना दृष्टि में कुछ विशेष बोध जरूर होता है। इसलिये आज स्त्री और पुरुष की चेतना के संस्कारों की तटस्थ पड़ताल की जानी चाहिए, उनके शारीरिक और सामाजिक स्थितियों के

परिप्रेक्ष्य में कहीं अधिक मानवीय चेतना के दृष्टिकोण और जीवन के मूलभूत विरोधाभासों को मूल बिन्दु मानकर । यह हमारे शोध का प्रस्थान बिन्दु है । स्त्री मानस की जैविक, आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है । इस मान्यता को पुष्ट करती है और एक ऐसे संसारको हमारे सामने खोलती है जो वैयक्तिक रूप से एक स्त्री का अपना संसार है जिसमें सदियों का इतिहास रहा है, अन्तर्द्वन्द्व, यातना और प्रतिक्रिया के सूत्र है । लेकिन साथ ही इस स्त्री अनुभव संसार की सीमाओं को तोड़कर व्यापक मानवीय अनुभव तक पहुँचने की आकुलता भी है । यही कारण है कि आलोच्य उपन्यासकारों के पुरुष पात्रों के चरित्र, वर्ग, सौन्दर्य और मानवीय सम्बन्धों के चित्रण में इन रचनाकारों ने कई तरह के द्वन्द्वों का परिचय दिया है । यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपनी रचना में इन रचनाकारों की दृष्टि अपने स्त्रीत्व से प्रेरित रही है, अपने वर्ग से अनुशासित रही है किन्तु इन सीमाओं को तोड़कर समग्र मानवीय अनुभव तक भी यह रचनाकार पहुँच सकी है । पर शोध प्रबन्ध अपने समग्र रूप में स्त्री और पुरुष अनुभवों, स्त्री और पुरुष संसारों तथा स्त्री और पुरुष सम्बन्धों के द्वन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत करता है और इस पद्धति से आये गये निष्कर्ष अपने आप में कम द्वन्द्वात्मक नहीं है, क्योंकि जहाँ यह एक रचनाकार के उभयलिंगी वस्तुनिष्ठ अनुभव को व्यक्त करते हैं, वहीं आधारभूत लिंग अस्मिता और जैविक अकाट्य सीमाओं को भी झलकाता है ।

--00--

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

0

0

0

0

आधार ग्रंथ

1) अग्निहोत्री, कृष्णा :

कुमारिकाएं : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दै· 71, दिल्ली, प्र·सं· 1978·

टपरेवाले : पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1976·

टेसू की टहनियाँ : पंचशील प्रकाशन, प्र·सं· 1980·

बात एक औरत की : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, द्वि·सं· 1982·

2) अवस्थी, शोभा

दो रातें :

3) कालिया, ममता

नरक–दर–नरक : लोक भारती प्रकाशन, प्र·सं· 1975·

प्रेम कहानी : राजपाल एण्ड संस, प्र·सं· 1980·

बेघर : रचना प्रकाशन : इलाहाबाद, द्वि·सं· 1976·

4) कुशवाहा, वीनारायणी

पराये बस में

5) खण्डेलवाल , दीप्ति

कोहरे, राजपाल एण्ड सन्स , 1977· प्र·सं·

प्रतिध्वनियाँ : राजकमल एंड संस, प्र·सं· 1981·

प्रिया : राजपाल एण्ड संस, प्र·सं· 1976·

वह तीसरा : राजपाल एंड संस, प्र·सं· 1971·

6) गर्ग, मृदुला

अनित्य : नेशनल पब्लिशिंग हाउस , 1980·

उसके हिस्से की धूप : अक्षर प्रकाशन प्रा·लि· दूसरा सं· 1977·

चित्तकोबरा : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1979·

वंशज : अक्षर प्रकाशन प्रा·लि· द्वि·सं· 1978·

7) गुप्त, माया मन्मथनाथ

मँझधार :

8) चौधरी, श्रीमती हेमंत कुमारी

आदर्श माता

9) जैन, सुनीता

बिन्दु : पराग प्रकाशन एंड संस, प्र॰सं॰ 1983॰

अनुगूंज : - वही - 1977॰

10) जोशी, मालती

ज्वाला मुखी के गर्भ में : पराग प्र॰ द्वि॰सं॰ 1978॰

चांद अमावस का : पराग प्रकाशन, 1979 प्र॰सं॰

पाषाण युग : पराग प्रकाशन , द्वि॰सं॰ 1978॰

समर्पण का सुख : - वही - प्र॰सं॰ 1979॰

सहचारिणी : - वही - प्र॰सं॰ 1979॰

11) जोशी, शान्ति

एक और बात : विविध भारती प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1978॰

मछली और मरा जल : - वही -

मेरा क्या अपराध किया था : ओमप्रकाश राधाकृष्ण प्रका॰

श्याम वर्ण : लोक भारती प्रकाशन : प्र॰सं॰ 1978॰

12) तांगड़ी, अन्नपूर्णा

निर्ममता का अभिशाप : विनोद शर्मा, भारती ग्रंथमाला, प्र॰सं॰ 1961॰

13) तारा देवी, कुंवर रानी

जीवन दान

14) पणिकर ,रजनी

ठोकर

जाड़े की धूप

दूरियां : दि मैकमिलन कंपनी आफ इं॰ प्र॰सं॰ 1974॰

प्यासे बादल

मोम के मोती

सोनाली दी, हिमाचल पब्लिशिंग हाउस, प्र॰सं॰ 1979॰

15] परवेज़, मेहरुन्निसा

आँखों की दहलीज़ : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

उसका घर : -वही- प्र॰सं॰ 1972.

कोरजा : -वही- प्र॰सं॰ 1977.

16] पद्मकर, मालती

इन्नी : राजपाल एंड संस, प्र॰सं॰ 1973.

मुक्ता : राजपाल एंड संस, प्र॰सं॰ 1980.

17] पारिख, राजरानी

टूटती सीमाएँ : राजपाल एंड संस, प्र॰सं॰ 1980.

18] पुरी, मीनाक्षी

अँधेरे की परतें : संजीव प्रकाशन

19] उषा, प्रियम्वदा

पचपन खंभे, लाल दीवारें, राजकमल प्रका॰ प्रा॰ लि॰ तृ॰सं॰ 1976.

रुकोगी नहीं राधिका, अक्षर प्रका॰ प्रा॰ लि॰ पाकेट सं॰ 1980.

20] भगत, मंजुल

अनारो : पराग प्रका॰ द्वि॰सं॰ 1978.

बेगाने घर में : सरस्वती विहार : प्र॰सं॰ 1978.

टूटा हुआ इन्द्रधनुष : इन्द्रप्रस्थ प्रका॰ द्वि॰सं॰ 1979.

21] भण्डारी मन्नू

आपका बंटी, अक्षर प्रकाशन, द्वि॰सं॰ 1977.

एक इंच मुस्कान : राजपाल एंड संस, पा॰सं॰ 1978.

महाभोज : राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1979.

22] भाटी, सुषमा

गैट कीपर

23] भारती, कांता

रेत की मछली : लोकभारती प्रकाशन, द्वि॰सं॰ 1976.

24] मधुरानी

किस्सा मुकद्दीलाल : साहित्य सेवक संस्थान : दिल्ली प्र॰सं॰ 1976॰

25] मिलन, ज्योत्सना :

अपने साथ : लिपि प्रकाशन,दिल्ली, प्र॰सं॰ 1976॰

26] मित्रा, उषा देवी :

नष्टनीड : के॰एल॰मलिक एंड संस, प्रा॰लि॰ नया संस्क॰ 1980॰

27] मोहिनी, मणिका

पास मैं कहा था : सरस्वती विहार, प्र॰सं॰ 1979
दिल्ली

28] रस्तोगी, मालती

छुअन : शिक्षा प्रकाशन मन्दिर ,प्र॰सं॰ 1985॰

29] रैना, विमला

प्यासा पानी : संस्करण 1965॰

30] वर्मा, प्रतिमा :

अपने बेगाने : कमलापती शर्मा, लहरी बुक डिपो,प्र॰सं॰ 1974॰

3 उन शाखों पर : आलेख प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1979, दिल्ली

31] वर्मा शुभा

एक औरत की जिन्दगी : राजपाल एंड संस

कोई एक : सरस्वती वि—हार : प्र॰सं॰ 198

बीते हुए : सरस्वती विहार : प्र॰सं॰ 1980॰

32] वाजपेयी : निर्मला

खुला सैलाब : राजपाल एंड संस, प्र॰सं॰ 1971॰

33] शास्त्री, शशिप्रभा

अमलतास, पूर्वोदय प्रकाशन : दिल्ली, प्र॰सं॰ 1975॰

नावें : राजकमल प्रकाशन,प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1974॰

परछाइयों के पीछे : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र॰सं॰1979॰

सीढ़ियाँ —वही— प्र॰सं॰1976॰

34। शिवानी

चिल्लूकी का हाट : सरस्वती विहार : द्वि॰सं॰ 1979॰

कैंजा : हिन्द पाकेट बुक्स , प्र॰स॰ 1975॰

मैठा : सरस्वती विहार

चौदह फैरे : हिन्द पाकेट बुक्स, प्रा॰लि॰ प्रथम सं॰ 1982॰

भैरवी : हिन्द पाकेट बुक्स , प्र॰सं॰ 1979॰

मायापुरी : जे॰एन॰सिंह राम न्यू एवं पब्लिकेशं प्रा॰लि॰1964॰

माणिक : सरस्वती विहार : दूसरा संस्क॰ 1979॰

रथ्या : -वही- प्र॰सं॰ 1978॰

रति -विलाप - राजपाल एंड संस, प्रथम सं॰ 1974॰

श्मशान चम्पा : - वही- द्वि॰सं॰ 1973॰

सुरंगमा : सरस्वती वि हार : तृतीय संस्करण, 1981॰

35। सक्सेना, प्रभा

टुकड़ों में बंटा चन्द्र धनुष : राजपाल एंड संस, प्र सं॰ 1980॰

36। सक्सेना, प्रतिभा

घर भैरव है : कविता प्रकाशन : बीकानेर, प्र॰सं॰ 1980॰

शर्त : - वही -

37। सक्सेना, श्रीमती कुटुम्ब प्यारी देवी

हृदय की प्यास , प्र॰सं॰ 1936॰

38। सिन्हा :कान्ता,

सूखी नदी का पुल : चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद : प्र॰सं॰1976॰

39। सिन्हा, बिन्दु

सागरपाखी : पांडुलिपि प्रका॰ दिल्ली, प्र॰सं॰ 1975॰

40। सुभद्रा : अजन्मी आत्मा की चाह :

अलंकार प्रकाशन, 1973 प्र॰सं॰ दिल्ली

41) सूर्यबाला

मेरे संधि पत्र : पराग प्रका· प्र·सं· 1977, दिल्ली

सुबह के इंतजार में : पराग प्रकाशन, प्र·सं· 1980·

42) सेवती, निरुपमा

बंटता हुआ आदमी, के·एल·मलिक एंड संस,नेशनल पब्लिशिंग हाउस
प्र·सं· 1977·

पतझड़ की आवाजें : वस्तुपुरुष प्रकाशन,दिल्ली, प्र·सं· 1970·

मेरा नरक अपना है : हापुड़ ,संभावना प्रकाशन,

43) सोबती, कृष्णा

मित्रो मरजानी : राजकमल प्रकाशन, प्रा·लि· प्र·सं· 1967·

यारों के यार , तिन पहाड़, राज·प्रका· द्वि·सं· 1976·

सूरज मुखी अँधेरे के : राज·प्रका· प्रा·लि· द्वि·सं· 1974·

44) स्वप्न, चन्द्रा

गोधूली की बेला : प्रबोध प्रकाशन , प्र·सं· 1978·

टूटे मनके : साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1980

45) त्रिवेदी,पद्मा

मिट्टी के देव : 1962 प्र·सं·

==00==

सं द र्भ ग्रं थ सू ची

(हिन्दी)

एवं

(अंग्रेजी)

व

शोध

ग्रंथ

एवं

पत्रिकाएँ

सन्दर्भ ग्रंथ सूची [हिन्दी]

1] अग्निहोत्री, श्रीनारायण
उपन्यास तत्व एवं कला विधान
आचार्य शुक्ल, साधना सदन, प्र॰सं॰ 1962.

2] अलार्ड, एम॰डी॰
मैथुन युग जानी अनजानी बातें
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली , 1978 संस्करण

3] अहूरिया, डा॰देव
हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य

4] कपूर, प्रमिला
भारत में विवाह और कामकाजी महिलायें
राजकमल प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1976.

5] कुमार, जैनेन्द्र
नारी - भारतीय प्रेस, दिल्ली प्र॰सं॰1980

6] प्रेम और विवाह
सम्पादक-ललित शुक्ल, प्रका॰पूर्वोदय प्रकाशन प्र॰सं॰ 1980.
साहित्य का श्रेय और प्रेय
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

6] कुमार, सत्यदेव
विवाह और परिवार
राजकमल प्रकाशन, प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1978.

7] कुमार, सरिता
महिला कथाकारों के कथा-साहित्य में प्रेम का स्वरूप विकास
राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1983.

8} कुमारी शैल
आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना
हिन्दुस्तान अकादमी

9} खण्डेलवाल, रामेश्वरदयाल
जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं. 1968.

10} गम्भीर, उर्मिला
प्रतापनारायण के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
आर्य बुक डिपो, प्र.सं. 1972, दिल्ली

11} गर्ग, मैलाल
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन

12} गांधी [मो.कर्मचंद]
महिलाओं से
रायशंकर लाल श्रीवास्तव, गोगांधी ग्रंथा.वाराणसी, प्र.सं. 1958.

13} गुर्टू, शचीरानी
विश्व की महान महिला|वैचारिकी
आत्माराम एंड संस, दिल्ली

14} गुप्त, उर्मिला
हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग
ओमप्रकाश राधाकृष्ण प्रका.
स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएं प्रका. वही

15} गुप्त मन्मथनाथ
भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन का इतिहास
आत्माराम एंड संस, परिवर्तित संस्करण 1966.

16} गोयल, उषा
हिन्दी कहानी : चरित्र-चित्रण का विकास
मैकेन पब्लि. प्र.सं. 1981.

17| गुप्ता, कमला
हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद
अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979.

18| गुरु रामेश्वर
प्रेमचंद : एक अध्ययन

19| घोष, श्यामसुन्दर
भारतीय महर्षि
हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्र.सं. 1972.

20| चन्द्र, शरत
नारी का मूल्य
प्रका. नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रं.अका. तृ.सं. 1946.

21| चतुर्वेदी, सीताराम
समीक्षा शास्त्र
चौखम्बा विद्या भवन

22| चारी, नरसिम्हा
सौन्दर्य तत्व निरूपण
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1977.

23| गुप्त, सत्यपाल
प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि
इकाई प्रकाशन, 16 प्र.सं. 1968.

24| जौहरी, कमलकुमारी
हिन्दी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास
ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर

25| जोशी, चण्डीप्रसाद
हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन
अनुसंधान प्रकाशन : 1962.

26. टंडन, प्रतापनारायण
हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास
कलाकप्रकाशन, प्र॰सं॰ 1974.
हिन्दी उपन्यास –कला
हिन्दी समिति सूचना, प्र॰सं॰ 1965.
हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना
लखनऊ विश्वविद्यालय, 1956.

27. अग्रवाल, पार्थसारथी
नारी तीर्थ
किताबघर प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1980 दिल्ली

28. दास श्यामसुन्दर
साहित्यालोचन

29. दिनकर, रामधारीसिंह
विवाह की मुसीबतें
स्टार पब्लिकेशन प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1975.
संस्कृति के चार अध्याय
राजपाल एंड संस, प्र॰सं॰ 1956.

30. देसाई, ए॰आर॰
भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि
मैकमिलन इं॰ लि॰ द्वि॰सं॰ 1977.

31. दुआ, सरला
आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी
साहित्य निकेतन प्रकाशन, कानपुर

32. द्विवेदी, हजारी प्रसाद
हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-10.
राज॰प्रकाशन प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1981.

33) घुर्ये, गोविन्द सदाशिव

जाति, वर्ग और व्यवसाय

पु॰ग॰रा॰ भटकल प्रकाशन, बम्बई

34) नरूला, शमशेर सिंह

उपन्यास सृजन की समस्याएं

लोकभारती प्रकाशन : प्र॰सं॰ 1980.

35) निर्मल, हेमराज

हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग :

विभु प्रकाशन, साहिबाबाद

36) पर्वतीय, लीलाधर शर्मा

स्वातंत्र्य की पूर्व संध्या

वाणी प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1972.

37) पाण्डेय, गंगाप्रसाद

महीयसी महादेवी

लोकभारती प्रकाशन, प्र॰सं॰1969

38) पानेरी, हेमेन्द्र कुमार

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास

संघी प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1970.

39) प्रसाद, नमिर

सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान

अनुपम प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1978.

40) प्रेमचंद

प्रेमचंद कुछ विचार

सरस्वती प्रेस, चौथा संस्करण, 1949.

41) प्रेमचंद, शिवरानी देवी

प्रेमचंद घर में

आत्माराम एंड संस, दिल्ली

42) बच्चन सिंह

समकालीन साहित्य आलोचना की चुनौती

हिन्दी प्रचारक प्रकाशन : प्र॰सं॰ 1968॰

43) बांदिवडेकर, चंद्रकांत

उपन्यास स्थिति और गति

पूर्वोदय प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1977॰

हिन्दी मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1947॰

44) बेचन

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र-चित्रण का विकास

दिल्ली सन्मार्ग प्रकाशन, प्रथम सं॰ 19[illegible]

45) बेनीपुरी, रामवृक्ष

नई नारी

दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि॰

46) भटनागर, प्रेम

हिन्दी उपन्यास ,बदलते परिप्रेक्ष्य

अर्चना प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1968॰

47) भण्डारी, सुख संपत्ति राय

भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास

48) भारद्वाज, हेतु

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में मानव प्रतिमा

पंचशील प्रकाशन, 1983॰

49) मदान, इन्द्रनाथ

हिन्दी उपन्यास : पहचान परख

लिपि प्रकाशन, दिल्ली

50) माथुर, उमेश

आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकायें

दिग्दर्शन चरण जैन, नई दिल्ली

51) मिश्र, रामदरश

साहित्य अध्ययन की दृष्टियाँ

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

हिन्दी उपन्यास : एक अंतः यात्रा

राजकमल प्रकाशन प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1960.

52) मुक्तिबोध, गजानन माधव

एक साहित्यिक की डायरी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,

मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5

राजकमल प्रकाशन,प्रा॰लि॰ प्र॰सं॰ 1980.

53) मोहन, नरेन्द्र

आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ

प्रकाशक व दर्शी साहित्य प्रा॰लि॰

54) यशपाल

मार्क्सवाद

विप्लव कार्यालय, लखनऊ , 1973.

55) रसेल, बर्ट्रेंड

विवाह और नैतिकता

राजकमल प्रकाशन, प्रा॰लि॰ - अनु॰ धर्मपाल

56) रविन्द्रनाथन, एन॰

मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास

57) रांग्रा, रणवीर

हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास

भारतीय साहित्य मन्दिर : दिल्ली , 1961.

58) राणा, बलराज सिंह

उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

संजय प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1978.

59] रामय्या, पट्टाभि·
हरिभाऊ उपाध्याय
कांग्रेस का इतिहास
सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली ती·सं· 1946·

60] गुलाब राय
काव्य के रूप
आत्माराम एंड संस , 1975·

61] राय, सौमेन्द्रनाथ
नवजागरण और छायावाद
अरविन्द कुमार राधाकृष्ण प्रकाशन

62] रोडरमल, गार्डन चार्ल्स, अनु· अर्चना वर्मा
हिन्दी कहानी : अलगाव का दर्शन
अक्षर प्रकाशन , प्रा·लि· प्र·सं· 1982·

63] सब्बरवाल, चन्द्रावती
स्त्रियों की स्थिति
शिवकृष्ण सब्बरवाल शिक्षा विहार, प्र·सं· 1957·

64] लक्ष्मीराय
आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, प्रसं· 1979·

65] लाल, कृष्ण
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
हिन्दी परिषद, तृतीय संस्करण

66] वर्मा, महादेवी
संभाषण
प्रका· गिरीश टण्डन द्वारा साहित्य भवन :प्रा·लि·1975 सं
श्रृंखला की कड़ियाँ
भारती भंडार लीडर प्रेस : आठवाँ संस्करण 1977·

67) वाजपेयी, नंददुलारे

आधुनिक साहित्य

राष्ट्रीय साहित्य एवं अन्य निबंध

68) वार्ष्णेय, कुसुम

हिन्दी उपन्यासों में नायक

शोध साहित्य प्रकाशन, प्र॰सं॰ 1973.

69) विजयदान, कोमल कोठारी

प्रेमचन्द के पात्र

अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰, प्र॰सं॰ 1970

70) विमल, गंगा प्रसाद

प्रेमचंद

राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1968.

71) विश्वनाथ

साहित्य दर्पण

72) विश्वामित्र, शर्मिला

उपन्यास एक कला

सरस्वती मन्दिर, 1962.

73) वेदालंकार, श्री हरिदत्त

हिन्दू परिवार मीमांसा

74) व्होरा, आशारानी

भारत की अग्रणी महिलाएं

राजपाल एंड संज, दिल्ली, प्र॰सं॰ 1973.

भारतीय नारी दशा : दिशा

प्रका॰ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्र॰सं॰ 1983.

नारी शोषण, आइने और आयाम

नेशनल पब्लिशिंग हाउस : प्र॰सं॰ 1982.

75} शर्मा, राजेन्द्र प्रसाद
हिन्दी कहानियों में व्यक्तित्व विश्लेषण पुथ
भार्गव एंड कंपनी

76} शर्मा, रामविलास
मानव सभ्यता का विकास
वाणी प्रकाशन, द्वि॰सं॰ 1983॰

77} शरद, ओंकार
देश-देश के रत्न
साहित्य भण्डार, प्र॰सं॰ 1976॰

78} शशिकान्त शुक्ल
प्राण-प्रतिष्ठा
अर्चना प्रकाशन

79} शशिबाला
शिवानी के उपन्यासों का रचना-विधान
देवनागर प्रकाशन, संस्करण, 1981॰

80} शुक्ल, रामचन्द्र
जायसी ग्रंथावली
प्रका॰ काशी नागरी प्रचारिणी सभा

81} सक्सेना, वीरेन्द्र
काम सम्बन्धों का यथार्थ और समकालीन हिन्दी कहानी
साहित्य भारती केन्द्र, 1975॰

82} सहगल, मनमोहन
हिन्दी उपन्यास के पदचिह्न
सूर्य प्रकाश, दिल्ली
उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्यांकन और मूल्यांकन
साहित्य भारती, प्र॰सं॰ 1976॰

83) सहस्त्रबुद्धे, शिला
हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
पुस्तक संस्थान, 1974.

84) सांकृत्यायन, राहुल
मानव समाज
लोकभारती प्रकाशन, पु॰सं॰ 1977.

85) सिद्दीकी, उमरा
नारी भीतर और बाहर
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
प्रथम संस्करण, 1972.

86) सिंह, कुँवरपाल
हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना
पाण्डुलिपि प्रकाशन 1976 पु॰सं॰

87) सिंह, मंजुला
हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग
आर्य बुक डिपो : दिल्ली सं॰ 1971.

88) सिंह, रामविनोद
आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास
अनुपम प्रकाशन, पु॰सं॰ 1980.

89) सिंह, रामशोभित प्रसाद
हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल
दिग्दर्शन चरण [illegible] जैन एवं सन्तति पु॰सं॰ 1981.

90) सिंह, विजय मोहन
आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना
जीत मल्होत्रा रचना प्रकाशन, संस्करण 1972.

९९) हरिभाऊ, महादेव देसाई

महात्मा गांधी की संक्षिप्त आत्मकथा

100) त्रिपाठी, चन्द्रकली :

भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास

दुर्गावली प्रकाशन संस्करण 1981.

101) त्रिपाठी, शम्भूरत्न

भारतीय सामाजिक संरचना तथा संस्कृति

प्रकाशक – किताब महल , प्र॰सं॰ 1962.

102) श्रीवास्तव, सोना

हिन्दी उपन्यास का विकास और मध्यवर्गीय

चेतना : मैकमिलन इंडिया लिमिटेड

103) श्रीवास्तव, शिवनारायण

हिन्दी उपन्यास

प्रकाशक –सरस्वती मन्दिर, वाराणसी

--00--

91) सिंह, विजेन्द्र नारायण
अशुद्ध काव्य की संस्तुति में परिमल
प्रकाशन : प्र०सं० 1984.

92) सिंह, विजेन्द्रपाल
भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन
प्रकाशन –शिशु प्रकाशक साहिबाबाद , प्र०सं० 1977.

93) सिंह, त्रिभुवन
मनुष्य के रूप : अध्ययन की सीमाएँ
हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग
हिन्दी प्रचारक संस्थान, प्र०सं० 1973.

94) सिंह, श्रीनारायण
हिन्दी औपन्यासिक कथानकों के मूल स्रोत(विभूति प्रकाशन)

95) सिन्हा, सावित्री
तुला और तारे
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्र०सं 1966.

मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ
आत्माराम एंड संस, प्र०सं० 1953.

96) सिन्हा ,सुरेश
हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास

97) सुभद्रा
हिन्दी उपन्यास : परम्परा और प्रयोग
अलंकार प्रकाशन : प्र०सं० 1974.

98) स्वर्णलता
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाज-
शास्त्रीय पृष्ठभूमि
विनोद पब्लिशिंग हाउस,

संदर्भ ग्रंथ सूची [अंग्रेजी]

1. Alder : The Science of Living.

2. Amauryde Rien Court : Sex and Power in History.

3. David Mckay Company : New York

   Anna Coote and Tessgill : Women Right's :
   A Practical guide.

4. Anna Ockley : Sex Gender and Society :
   Maurice Temple S mith Ltd. 1972.

5. Annie Besant : For Indias : Up life.

6. Arianna Stassinop : The Female Women :
   Davispoynter Ltd. 20 Garfick Street ,London ,1973.

7. Barbara Sinclair Deckard ; The Human Movement
   Harberrow Publishers, New York.

8. Betty Fridedan - The Famanine mystique
   Publisher in America : By W.Norton , 1963 in
   Great Britain.

9. Berney Karen - Self analysis.

10. Boas : The Enjoyment of Literature.

11. Bogardus - The Development of Social Thought.

12. Burgess Lock - The Family, 1960.

13. David Reuben - Any Woman Can
    M.D.Corgi , Edit. 1972
    Publsher - Director Publications Division.

14. Devaki Jani- Indian Woman
    Publisher - Director Publication
    Ministry of Information & Broad Casting,India.

15. Edel : The Psychological Novel.

16. Edwin Muir ; The structure of the Novel.

17. Elaine Showalter ; A Literature of their own.

18. Elezabaith Janeway : Man's world woman's place.
Publisher Great Britain Michal Joseph Ltd. 52
London, 1972.

19. E.M.Forster : Aspects of the Novel.
Pub. A.Penguin International Ed. 1967.

20. E.L. Ruch : Psychology and Life.
Publ. Scott Forman and Co. New York. 3rd Ed.

21. FREUD - New Introductory Lectures on Psyco-Analysis.

22. Henery James - The Art of Fiction ;
George H. Harriup and Co. Ltd. U.K.

23. Humayun Kabir - The Indian Heritage

24. To Freeman : Women : A Feminist Prespective,
May Field Pub.Co. 285 Hamelton Avenue
Polo Alto Calfornia , First Publ. 1975.

25. James R.H. Scott - The Making of Literature.

26. Kamala Devi Chatopadhyaya - Indian Woman
Battle For Freedom , Ist Ed. 1983.
Pub. Abianan Pub. E.37. Hemse Khas ,New Delhi.

27. Karen Horney ; Feminine Psychology :
Publ. Routledge & Kegan Paul, U.K. 1967.

28. Lininigm Manual - Fundamental of Marxyzem.
The Right of Woman.

29. Lynne Agrees - The Feminian Irony
Publ. Associated University Press.

30. Malinowski - Social Authropology.

31. MArk Angels - Manifesto of the Communist

32. Mary Wolstonl Crafts - A Vindication of the Right of Women.

33. Murli Manohar - Socio-Economic Status of Indian Women: Pub. Seema Publ. C 3/19 Rana Pratap Bagh, Delhi.

34. Naseer Ahmed Khan - Middle class India.

35. Neera Desai - Women in Modern India.

36. Nona Glazer - Women in a Man made World. IInd Ed. Randmenally College, Pub.Co. Chicago Copy write 1977 by Randmcnally.

37. Padmini Sen Gupta : The Story of Women in India : Publ. Indian Book Co. New Delhi.

38. Rolph Fox - The Novel and the People.

39. Simone De Beauvoir : The Second Sex. Pub. Benguin Books Ltd. Rep. 1974.

40. Sundram Gilbert and Susan - The Mad Women in the Attic.

41. Stanger - Psychology of Personality.

42. Swami Vivekananda - Thoughts of Power Pub. Advaita Ashram , 8th impression.

43. Teneubaum - The Riddle of Women.

44. Verginia E.O. Leary - Towards Understandings Women - Oalkland University Books Pub. Co. Montery California.

45. Verginia Woolf - A Room of Once Own
Publ. London the Hogarth Press 1974.
1st Publication, 1939.

46. W.F. Ogburn and M.F. Nimkaff - A Hand Book
of Sociology , 1947.

47. W.H. Hudson - An Introduction to the study
of Literature - 1954 Harrp and Co. London, 1956.

48. Young Mack - Sociology and Social Life, 1959.

49. Y.P. Chhibbar - Cast to class.

--00--

कोश ग्रन्थ

1. संस्कृत हिन्दी कोश : वामन शिवराम आप्टे
2. हिन्दी साहित्य कोश : भाग -1

संस्कृत ग्रन्थ

1. अथर्ववेद
2. मनु स्मृति : मनु
3. वैराग्य शतक : भर्तृहरि, अनुवादक : हरिभाऊ वैद
4. ऋग्वेद

--00--

पत्रिकाएँ

1. आजकल, 1981.
2. आजकल, 1982.
3. कल्याण 57 अंक
4. पहल, 1982.
5. सविता 57 अंक जून, 1981.
6. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 30 मार्च 1980
7. सारिका, 1981.